राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान - राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिलभारतीय तथा विशेषत राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषा-निबद्ध
विविधवाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

प्रधान सम्पादक

फतहसिंह एम० ए०, डी० लिट्०

ग्रन्थाङ्क ११५

गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टप्रणीतः

सिंहसिद्धान्तसिन्धुः

[प्रथमः खण्डः]

प्रकाशक

राजस्थान - राज्याज्ञानुसार

निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

सन् १९७० ई०

वि० स० २०२६ — भारतराष्ट्रीयशकाब्द १८९१

मुद्रक—कैलाश माधव कालिया, समयसार प्रेस, जोधपुर.

प्रधान संपादकीय

प्रस्तुत ग्रंथ 'सिंहसिद्धान्तसिन्धु' नामक महाग्रन्थ का प्रथम खण्ड है जो 'सिन्धु' की केवल १४ तरङ्गो को लेकर ही विद्वानों के समक्ष उपस्थित हो रहा है। सम्पूर्ण ग्रन्थ की ६२ तरङ्गो को ५ खण्डो मे समाप्त करने की योजना है जिनमे से अन्तिम खण्ड मे वह उपयोगी परिशिष्ट, सन्दर्भ तथा अन्य अध्ययन-सामग्री प्रस्तुत की जाएगी जिसके विना ग्रन्थ का वास्तविक मूल्याङ्कन सर्वसाधारण के लिए सुलभ नही हो सकता।

यह महाग्रन्थ अपनी समग्रता मे भारतभूमि एव भारतधर्म की अखण्डता का प्रतीक है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक प्रचलित शाक्त, शैव, वैष्णव, गाणपत्य, सौर आदि सम्प्रदायो की समस्त तन्त्र-प्रणाली का व्यापक सङ्कलन करके, एक समन्वित आगमदृष्टि को उपस्थित करते हुए, ग्रन्थकर्ता गोस्वामी शिवानन्दभट्ट ने दाक्षिणात्य होते हुए भी उत्तर भारत को अपनी लीलाभूमि वनाकर उस प्राचीन-परम्परा को अक्षुण्ण रक्खा है जिसके अनुसार वोधायन एव शङ्कर-प्रभृति अनेक दाक्षिणात्य आचार्य अखण्ड भारत के धार्मिक-जीवन का नेतृत्त्व करते आए हैं। ग्रन्थकार का प्रादुर्भाव 'समरपुङ्गवदीक्षित' की उस वश-परम्परा मे हुआ था जो समस्त तन्त्रशास्त्र के ज्ञान के लिए इतिहासप्रसिद्ध रही है। उसके पितामह गोस्वामी श्रीनिवासभट्ट (अपरनाम विद्यानन्दनाथ) ने शिवार्चनचन्द्रिका, सौभाग्यकल्पद्रुम आदि अनेक आगम-ग्रन्थो की रचना की थी, और उसके पिता गोस्वामी जगन्निवास तो अपने आगमज्ञान के कारण ही 'निखिलतन्त्रस्वतन्त्र' कहे जाते थे। अत एव कोई आश्चर्य नही कि इतनी समृद्ध ज्ञानपरम्परा को पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त करके गोस्वामी शिवानन्द ने तन्त्रशास्त्र के इस महत्तमग्रन्थ द्वारा भारत की समन्वित तन्त्र-साधना को उपस्थित किया।

प्रस्तुत खण्ड की १४ तरङ्गों मे केवल दीक्षा के विषय मे ही विविध आगम-ग्रन्थो के मतो का समन्वय प्राप्त है, और शेष विषयो को आगामी खण्डो मे स्थान मिलेगा। यद्यपि जब मैंने और मेरे सहयोगी श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी ने इस ग्रन्थ के सम्पादन का कार्य हाथ मे लिया, तो यह अनुभव किया था कि ग्रन्थ के प्रथम खण्ड मे ही आगमशास्त्र का इतिहास तथा सिंहसिद्धान्त-सिन्धु का सम्पूर्ण विवेचन भी प्रस्तुत कर देना अधिक उपयोगी रहेगा, परन्तु कई कठिनाइयो के कारण ऐसा करना सम्भव नही हो सका। इसके अतिरिक्त

सिन्धुलिपि-सम्बन्धी मेरे निजी शोध-कार्य ने, न केवल वैदिक साहित्य के लिए, अपि तु तन्त्रशास्त्र के लिए भी एक नई दृष्टि प्रदान की है। सिन्धुमुद्रा-लेखों से प्राप्त ऊ, ईं, ख आदि को जहा तान्त्रिक बीजमन्त्रो का पूर्व रूप कहा जा सकता है, वहाँ वे वैदिक वाङ्मय मे भी पाए जाते है। अत एव आधुनिक मान्यताओ के विपरीत, तन्त्र को वेदमूलक मानने वाली भारतीय परम्परा के लिए पर्याप्त आधार मिलता है। ऐसी स्थिति मे यही निर्णय किया गया कि सम्पादकीय प्राक्कथन को अन्तिम खण्ड मे परिशिष्टो, अनुक्रमणियो एवं ऐतिहासिक टिप्पणियों के साथ ही दिया जाय, क्योकि उससे पूर्व, उक्त परिशिष्टो आदि के अभाव मे और सम्पूर्ण ग्रन्थ की मुद्रित प्रति को सामने रक्खे बिना कोई ऐसा वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नही हो सकता था जो प्रचलित भ्रान्तियों को दूर करके आधुनिक विद्वानों को आश्वस्त कर सके। अत प्रथम खण्ड मे केवल दीक्षाप्रकरण-विषयक मूल भाग को ही दिया जा रहा है।

प्रस्तुत खण्ड को मेरे सहयोगी श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी ने बडे परिश्रम से सम्पादित किया है। प्रेस-कापी-निरीक्षण, पाठ-शोधन, प्रूफ-सशोधन आदि सारा कार्य श्रीगोस्वामीजी ने किया है और इस विषय मे उन्होने मुझसे जो भी परामर्श किया उससे मै उनके तन्त्र-सम्बन्धी ज्ञान को जानकर बहुत प्रभावित हुआ। तन्त्र के व्यवहारपक्ष का जो ज्ञान उन्हे अपनी पैतृक परम्परा से प्राप्त है उससे मुझे निगम, सिन्धुमुद्रा-लेख तथा आगम के बीच स्थित सबन्ध को समझने मे बडी सहायता मिली है अत मै इसके लिए उनका हृदय से उतना ही आभारी हूँ जितना उनके सम्पादन-प्रयत्न के लिए।

इसके साथ ही मैं प्रकाशनविभाग के अध्यक्ष म० विनयसागर तथा समयसार प्रेस के स्वामी श्रीकैलाश माधव कालिया को भी अपना धन्यवाद अर्पित करता हूँ, क्योकि इनकी तत्परता के बिना यह ग्रन्थ इतनी शीघ्रता के साथ नही निकल पाता। आशा है, विद्वान् इस खण्ड का उपयोग करेंगे, तब तक ग्रन्थ के अन्य खण्ड भी प्रकाशित हो जायेगे।

फतहसिंह

१ जनवरी १९७०
ईस्वी

विषयानुक्रमः

प्रथमस्तरङ्गः [पृष्ठ-१-५२]

द्वितीयस्तरङ्ग [पृष्ठ—५३-११५]

तृतीयस्तरङ्गः [पृष्ठ—११६-१६१]

चतुर्थस्तरङ्ग (पृष्ठ–१६२-१६८)

पञ्चमस्तरङ्ग. [पृष्ठ—१९९-२४५]

षष्ठस्तरङ्गः [पृष्ठ—२४६-२७९]

दीक्षाविधि

सप्तमस्तरङ्ग [पृष्ठ—२८०-३११]

अष्टमस्तरङ्ग: [पृष्ठ—३११-३५०]

नवमस्तरङ्ग [पृष्ठ—३५०-३६६]

दशमस्तरङ्ग [पृष्ठ—३७०-३९६]

एकादशस्तरङ्ग [पृष्ठ—३९७-४२७]

द्वादशस्तरङ्ग [पृष्ठ—४२८-४५०]

त्रयोदशस्तरङ्ग [पृष्ठ—४५१-४६२]

चतुर्दशस्तरङ्ग [पृष्ठ—४६३-४८४]

गोस्वामि श्री शिवानन्द भट्ट प्रणीतः

सिहसिद्धान्तसिन्धौः

[प्रथमः खण्डः]

गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टप्रणीतः

सिंहसिद्धान्तसिन्धुः

प्रथमस्तरङ्गः

॥ श्रीमहागणपतये नमः ॥

[मङ्गलाचरणम्]

यस्याङ्घ्रिद्वयपूजनेन निखिला सिद्धीर्लभन्ते नरा. ,
वृद्धी प्राप्य वसन्ति वेश्मसु परास्तेषा समा· सम्पद ।
भक्तस्वान्तनितान्तमोहदलने दक्ष विपक्ष वर ,
विघ्नाना प्रणमाम्यनारतमह त श्रीगणाधीश्वरम् ॥१॥

सर्वं संतमसावृत जगदिद भाभिः समुद्भासय -
न्नम्भोजानि विकासयन्विरहिण कोकान्समाश्वासयन् ।
शीतांशु परिहासयन् गतरुचि सत्रासयन्वैरिणो
भक्तक्लेशमुदासयन्स भवतु क्षेमाय भासा पति ॥२॥

असासक्तोत्तमस्रग्वनभुवि सतत यो रिरसानुरक्तो
गुञ्जोत्तसाभिराम. प्रतिभयसमरे यो नृशसारिहन्ता ।
भक्ताशसाभिपूर्त्तौ सकरुणहृदयो यो वलं सावलेप ,
विभ्रद्धसाभकीर्तिर्वितरतु विविध शर्म कसाहितस्ते ॥३॥

भाले प्रालेयरश्मि दधदतिरुचिर शोभने कण्ठदेशे ,
तार हारं फणीन्द्रैः फणमणिसुभगैर्निर्मित दीप्तिमन्तम् ।
वामा वामांगदेशे नलिननिभमुखीमुन्मुखीमिष्टदाने ,
भक्तानां विश्ववन्द्यो भसितसिततनु शं विधत्ता महेश. ॥४॥

उदारचरिताद्भुता सुरगणै समस्तै स्तुता ,
युता निखिलसद्गुणैर्द्रुतधुताघसङ्घा नृणाम् ।
कृपाकलितसेवनोद्यततमात्मभक्तायुता ,
शुभ तव निरन्तर कलयतु क्षमाभृत्सुता ॥५॥

कर्पूरस्फुटकैरवेश्वरगिरिप्रालेयगोत्राधरः ,
स्वःसिन्धूदकपूर्णशारदविधुस्वच्छप्रभाभासुराम् ।
सद्वृत्तामलमौक्तिकावलिकृतैर्भूषागणैर्भूषिता ,
वाग्गुम्फाद्भुतशक्तिदाननिपुणा वागीश्वरीमाश्रये ॥६॥

[वंशप्रशस्तिः]

दृप्यद्वैरिसमुच्चयक्षयकरः कीर्तिच्छलिच्योतिना -
ऽशेषाकाशदिगन्तरं पटुतरः प्राशीवविस्तारणे ।
राजद्राजसभासभाजितगुणग्रामोऽभिरामो भृशं ,
भक्तः श्रीनृहरेर्विभाति भुवने बुन्देलभूपान्वयः ॥७॥

यत्पाणी नृहरेः सदैव चरणावानर्चतुः सादरं ,
दाने चाब्धियुगं महीदिविपदा प्रक्षालयाञ्चक्रतुः ।
युद्धे चिक्षिपतुश्च मार्गणगणं हन्तुं परानीकिनीं ,
त्रैलोक्यप्रथिताह्वयो मधुकरो राजा स यत्राऽभवत् ॥८॥

संफुल्लानि तनोति सर्वसुजनस्वान्ताम्बुजन्मानि या ,
सौख्यं व्यातनुते श्रुना श्रवणयोः स्तुत्या कवीन्द्रव्रजैः ।
स्वर्लोके बलिसद्मनि क्षितितले यस्याः प्रकाशोऽनिशं ,
ख्याता चित्रचरित्रयुग्विजयते यत्कीर्तिसत्कौमुदी ॥९॥

यदीयनाराचहता रणाग्रे, नाराचतामापुरहो द्विपन्तः ।
तीक्ष्णाः सपक्षास्तपनस्य बिम्बं, भित्वा द्रुतं यद्विविशुर्दिवं ते ॥१०॥

सन्मानदाननिपुणस्तु तदात्मजन्मा, सन्मानसस्थहरिभक्तिरुदारशक्तिः ।
कौक्षेयकक्षतविपक्षजनो जगत्यां, श्रीरामसाहिरिति नाम नृपो बभूव ॥११॥

रामाख्ययो भक्तिभरेण तुष्टास्तस्मै ददुः स्वीयगुणान्समस्तान् ।
लोकास्ततस्तं प्रथितप्रभावं, श्रीराम इत्येव समाख्ययोचुः ॥१२॥

युद्धे युद्धविदोऽर्जुनं नयविधौ धीरा गिरामीश्वरं,
सौन्दर्ये सुदृशः स्मरं महसि यं तेजस्विनो भास्करम् ।
धर्मे धर्मविदोऽपि धर्मतनयं दानेऽर्थिसार्था बलिं,
मन्यन्ते स्म महीतले समभवच्छ्रीरामसाहिर्नृपः ॥१३॥

आसीत्तदीयतनयो विनयोपपन्नः, स्वच्छाशयो बहुदयो विबुधव्रजेषु ।
युद्धे निकाममभयो विजयोर्जितश्रीः, संग्रामसाहिरिति भूमिपतिः प्रसिद्धः ॥१४॥

यत्सैन्ये चलिते प्रचेलुरचला जाता स्थिराऽप्यस्थिरा,
धूलीभिर्निचिते वरे समभवद्भास्वानभास्वानलम् ।
अत्युच्चध्वजसङ्कुले सुरपथे भूदाशुगो नाशुगो,
मेदिन्या स बभूव भूरिविभवः सङ्ग्रामसाहिर्नृपः ॥१५॥

तस्यात्मजो बलरजोभररुद्धभानुर्द्दृप्तद्विषद्दलनतीव्रमहःकृशानुः ।
अत्यद्भुतो गुणगणैः प्रथितो धरण्या, श्रीभारतो बहुलदानरतो बभूव ॥१६॥

यत्सैन्याखर्ववाजिव्रजखुरनिकरक्षुण्णभूमीरजोभिः,
छन्नं मार्त्तण्डबिम्बं समभवदखिलं वृष्टिकाले यथाभ्रैः ।
यस्येभान्वीक्ष्य मेघप्रतिमतनुरुचीन् सम्पराये जनौघा-
न्नाद्रिभ्रान्तिं तदापुर्यदिह मघवता सन्ति ते लूनपक्षाः ॥१७॥

तेरुः केऽपि नदीर्वनेषु विकलाश्चेरुर्निगूढाः परे,
शैलानारुरुहुः श्रमेण मुमुहुश्चान्ये क्षुधाबाधिताः ।
भेजुः केचन भिक्षुवेषमपरे रेजुर्वधूरूपिणः,
श्रुत्वा शत्रुनृपाः प्रयाणपटहं श्रीभारतक्ष्मापतेः ॥१८॥

अत्युच्चैर्द्विरदा घना भटरवो भीमो भृशं गर्जितं,
दीप्ताः खड्गलताश्च यत्र तडितो बाणास्तु धारोत्कराः ।
येनेत्थं विषमो व्यधायि समरो मेघागमस्तद्भवा
रक्तौघाः सरितोऽसृजन्निरुपमो वीरोऽभवद्भारतः ॥१९॥

यत्कीर्त्तिः कविकीर्त्तनीयमहिमा चक्रे त्रिलोकीं सिता,
हित्वा यद्रिपुभूभुजामपयशो विद्वेषबुध्या परम् ।
तत्तु श्वैत्यमवाप्तुमात्मकलुषं त्यक्तुं द्विजानां पतिं,
शुभ्रांशुं शरणं गतं तदधुनाऽप्याऽऽस्ते तदङ्कच्छलात् ॥२०॥

यस्माद्दानमवाप्य भूरिभवनं स्वीयं यतामर्थिना,
मार्गेऽन्ये मिलितावनीपकगणास्तद्भूपतो लिप्सवः ।

तेभ्यस्तैस्तु तथा समीहितधन दत्त यथा तोपिता -
स्ते याता. स्वगृहानभूद्भुवि नृपो दातेदृशो भारत. ॥२१॥

तत्सूनु परिपन्थिमन्थिविलसद्वीरोऽतिधीरो रणे,
वल्गत्तुङ्गतुरङ्गनिष्ठुरखुरक्षुण्णक्षमामण्डल. ।
दानाम्भ शमितार्थिनैस्वदहन. ख्याताभिधान. क्षितौ,
देवीसिंहनरेश्वरो निरुपमो राजोत्तमो राजते ॥२२॥

निकाम काम यो जयति निजरूपेण सुधिया,
नये देवाचार्यं हरिचरणसेवावशमना. ।
स. किं दारिद्र्यारिर्विबुधनगतो लोचनपथ,
नृपो देवीसिंहो यदसिविपदाविह्वलतम ॥२३॥

व्यक्तीकुर्वन्ति दानं मदकलकरिणो विग्रहे यत् स्वकीये,
तन्मन्ये स्वप्रभूणा स्वविषयकममी बोधयत्येव दानम् ।
एतत्तद्भावबोधस्तव परमभवद्भारताधीशसूनो !
यत्त्व मत्तान्महेभान्वितरसि सततं दानिनो याचकेभ्य. ॥२४॥

देवीसिंह ! महीमहेद्र ! भवत. प्रौढप्रतापोदये,
त्रासादौज्झि परस्पर क्षितितले वैर समस्तैर्नरै. ॥
तच्चित्र न यतस्तदीयविदुषा गेहेषु वासोऽनिश,
हित्वाऽन्योन्यविरोधमद्भुततमो देव्योरपि श्रीगिरो. ॥२५॥

या नैवोष्णकर कदापि ददृशुर्यासा न चेलाञ्चल,
कम्प्र गधवहश्चकार न दधुर्भूमौ स्वतल्पात्पदम् ।
देवीसिंह ! तवारिवर्गवनिता घर्मेण शुष्कानना
वात्याप्रोत्थरजोमलीमसरुचो व्यग्रा भ्रमन्त्यद्रिषु ॥२६॥

देवीसिंह ! भवद्भयेन रिपवस्त्रस्ता समस्तास्तथा,
वाक्यानि ब्रुवतो हि यत्र भवतो नामाक्षराणि स्फुटम् ।
भिक्षा देहि नृपाधिराज ! न वय वीरा न सिंधोरपि,
प्रान्ते सद्गतिरस्ति देव ! शरण त्व मेऽथवैको हरि ॥२७॥

सौन्दर्ये कुसुमेपयन्तकि बुधा. श्रीभारतेशात्मज,
शीलत्वे शचिकान्तयन्तकि नये वागीशयन्तक्यमी ।

दाने कल्पपलाशयन्ति समरे सेनानयत्युद्भटे,
तेजस्युष्णगयन्ति पालनविधौ श्रीविष्णयन्ति क्षिते ॥२८॥

राजान केऽपि शूरा अधिधरणि परे स्थूललक्षा नयज्ञा,
केचित्काव्येष्वभिज्ञा नृपतिलक ! परे केऽपि सौजन्यवन्त. ।
देवीसिंह ! त्वमन्यै प्रगुणगुणगणैस्तैश्च युक्तस्ततस्ते,
सम्यङ्नो राजवाच्यास्त्वमसि परमिह प्राणतो ब्रह्म यद्वत् ॥२९॥

आसते भुवि नृपा. सहस्रशो, भारतात्मज ! न ते भवत्समा. ।
नन्दने कति न सति शाखिन, कोऽपि कल्पतरुसन्निभ. श्रुत ॥३०॥

सिंधुर्यथा निजजल वहुल घनेभ्यो विश्राणयन्नपि सदा परिपूर्ण एव ।
एव भवानपि ददन् द्रविण द्विजेभ्य., श्रीभारतात्मज ! तदाढचतमोऽस्तु नित्यम् ॥३१॥

यावद्राज्य विधत्ते विवुधपतिरसौ स्वर्गलोकस्य शक्र ,
सृष्टिं नानाप्रकारा रचयति रुचिरा यावदार्य. स्वयम्भू. ।
यावल्लोके स्वकीये विलसति विवुधैर्वर्णित. पद्मनाभो
देवीसिंह. क्षितीन्द्र. प्रगुणगुणयुतस्तावदव्यादनन्ताम् ॥३२॥

आसीत्तस्य गुरोर्गुरुर्गुणगणैर्मन्त्राब्धिपारगम ,
श्रीगोस्वामिजगन्निवास इति सन्नाम्ना जगद्विश्रुतः ।
यस्याज्ञावगवर्त्तिन. क्षितिभुजस्ते तेऽभवन् भूरिशो
येषा कीर्त्तिरतीव भाति भुवने दाने कृपाणेऽपि च ॥३३॥

तत्तातस्तु तथाऽभवद्ध्रुवमम **श्रीश्रीनिवासः** कृती,
ज्ञानोदारकुठारदारितजगज्जाड्योरुभूमीरुहः ।
नानातन्त्रविवोधमाप्य मनुजा यस्यानुकम्पानिधेः,
शिष्या दैवतसेवनैरभिमतामह्नाय सिद्धिं गता. ॥३४॥

यस्यांघ्रिपद्मकृपया प्रथितः पृथिव्यामेताहृगत्र जयति स्म जगन्निवासः ।
य सर्वसिद्धिसहितो जगति द्विजानां, तोष व्यधादविरत विविधोपकारैः ॥३५॥

ज्येष्ठस्तस्य सुतो जनोदितशिवानन्दाभिधान क्षितौ,
श्रीविद्याचरणारविन्दयुगलध्यानैकतानोऽनिशम् ।
देवीसिंहनृपेण धर्मकलितस्वांतेन सप्रार्थित -
स्तत्प्रीत्यै वितनोति धार्मिकजनश्रव्य निवन्धोत्तमम् ॥३६॥

गुरुचरणसरोजानुग्रहप्राप्तबोध, श्रवणजनितभक्तस्वान्तभूरिप्रमोदः।
निखिलमनुरहस्योद्बोधकोऽयं निबन्धो जयतु जगति नाम्ना सिंहसिद्धान्तसिंधुः ॥३७॥

[ग्रन्थानुक्रमः]

अत्र प्रातःकृत्यमादौ प्रोक्तं स्नानविधिस्ततः।
पश्चाद्वासोधारणं च ततस्तिलकधारणम् ॥१॥

संध्याविधिस्तर्पणञ्च नद्यादेः स्वगृहागमः।
ततः सूर्यार्घ्यदानञ्च श्रीशिवस्यार्च्चनं[1] ततः ॥२॥

अर्चनं द्वारे देवानां[2] तेषां ध्यानमपीरितम्।
आसनानि ततः प्रोक्तं पूजाद्रव्यविशोधनम् ॥३॥

करशुद्धिश्च दिग्बन्ध'स्ततः प्राकारमानलम्'[3]।
प्राणायामविधिः पश्चाद्भूतशुद्धिः समीरिता ॥४॥

ततः प्राणप्रतिष्ठा च मातृकान्यसनं ततः।
तद्भेदा निखिला प्रोक्तास्तन्न्यासोत्थ फलं ततः ॥५॥

स्वोपास्यमन्त्रऋष्यादि-षडङ्गन्यसनं ततः।
ततः समीरितो न्यासो योगपीठस्य सिद्धिदः ॥६॥

मूलमन्त्राङ्गभूतानां न्यासानां न्यसनं ततः।
ततो मुद्रादर्शनं च मुद्राणां लक्षणानि च ॥७॥

ध्यानं च स्वेष्टदेवस्याप्यन्तर्यागविधिस्ततः।
पूजाचक्रस्य निर्माणं प्रतिमायाश्च विस्तरात् ॥८॥

शालग्रामशिलानां तु लक्षणान्यर्चनाफलम्।
शिवलिङ्गस्य निर्माणं पश्चाद्देवस्थितिक्रमः ॥९॥

ततस्त्वर्घादिपात्राणि तत्स्थापनविधिस्ततः।
आत्मपूजाविधिर्योगपीठपूजाविधिस्ततः ॥१०॥

स्वेष्टदेवावाहनं च स्थापनाद्यखिलं ततः।
आवाहनादिमुद्राणां लक्षणं तत्प्रदर्शनम् ॥११॥

---

१. क. शिवस्यार्चनं। २. ख. द्वारदेवाना। ३. '-' ख. प्राकारत्रयमानलम्।

उपचारास्ततः प्रोक्तास्तेषां च परिकल्पनम् ।
गन्धपुष्पविचारश्च विस्तरेणेरितस्ततः ॥१२॥

लयांगपूजनं प्रोक्तमथावरणपूजनम् ।
अनन्तरं धूपदीपनैवेद्यानां समर्पणम् ॥१३॥

अथासनादिमुद्राणां लक्षणान्यखिलानि तु ।
बलिदानं ततः प्रोक्तं नित्यहोमविधिस्ततः ॥१४॥

ततस्ताम्बूलदानं च नीराजनमथेरितम् ।
ततो नित्यजपः प्रोक्तः स्तुतिश्चैव प्रदक्षिणा ॥१५॥

नमस्कारास्ततः प्रोक्तास्ततो देवविसर्जनम् ।
नैवेद्यस्वीकृतेश्चैव विचारोऽथ निरूपितः ॥१६॥

नित्ये नैमित्तिके लुप्ते प्रायश्चित्तमपीरितम् ।
अथ प्रवासदुर्गादौ प्रोक्तं मानसपूजनम् ॥१७॥

आतुरीप्रमुखा भेदाः पूजायाश्चेरितास्ततः ।
अनिर्माल्यं सनिर्माल्यमर्चनं च द्विधेरितम् ॥१८॥

यतीनां च गृहस्थानामधिकारोऽपि तत्र वै ।
अथाभिगमनाद्याश्च पूजाभेदा निरूपिताः ॥१९॥

नित्यपूजाप्रयोगश्च ततः सम्यगुदीरितः ।
ततो दीक्षाविधिस्तत्र दीक्षाभेदाः पुरेरिताः ॥२०॥

दीक्षाया ग्रहणार्थं तु श्रीगुरोर्मुख्यता ततः ।
लक्षणानि गुरोः पश्चात् सच्छिष्यस्येतरस्य च ॥२१॥

अधमत्वादि शिष्याणां परीक्षा गुरुशिष्ययोः ।
वर्णदीक्षानुरूपस्तु कालोऽप्यत्र[1] निरूपितः ॥२२॥

शूद्रदीक्षाविचारश्च मन्त्रा वर्णोचितास्ततः ।
ब्रह्मादिभेदा मन्त्राणां तद्बोधोपाय एव च ॥२३॥

मन्त्रदोषाश्च बहवस्तन्निरासविधिस्ततः ।
अथ ऋणादिचक्राणि[2] रिपुमन्त्रोज्झने विधिः ॥२४॥

---

१. ख ऽप्यथ। २. ख. ऋक्षादिचक्राणि।

अथ मासादिशुद्धिस्तु ततो भूमिपरीक्षणम् ।
समीकरणक भूमे प्राचीसाधनमेव च ॥२५॥

ततो मण्डपनिर्माण कुण्डाना निर्मितिस्तत. ।
तत स्थण्डिलनिर्माण स्रुक्स्रुवावीरितौ तत. ॥२६॥

वास्तुपूजा तत. प्रोक्ता प्रोक्त चैवाङ्कुरार्पणम् ।
श्रीगुरोर्वरण चैव तत्कृत्यानि ततस्तत[१] ॥२७॥

सर्वतोभद्रमुख्याना मण्डलाना च निर्मिति. ।
अथ कुम्भस्थापन च कुम्भे देवस्य पूजनम् ॥२८॥

होमो बलिस्तत प्रोक्त ताम्बूलादिसमर्पणम् ।
सशिष्यस्य गुरो. प्रोक्त ततस्तु चरुभोजनम् ॥२९॥

तत शिष्यस्य शयन तत स्वप्नपरीक्षणम् ।
सुस्वप्नाश्चैव दु.स्वप्नास्तत स्वप्ननिवेदनम् ॥३०॥

अथाग्निस्थापन प्रात कुण्डेषु हवन तत ।
ऋष्यादीना[२] बलि प्रोक्तस्तत शिष्याध्वशोधनम् ॥३१॥

प्रोक्त शिष्यस्याभिषेक. कुम्भस्थेनाम्भसा तत ।
मूलमन्त्रस्योपदेशस्ततो गुरुनमस्कृति ॥३२॥

गुरोश्च दक्षिणा प्रोक्ता ब्राह्मणाना च भोजनम् ।
अथान्या वर्णमय्याद्या दीक्षा सर्वास्समीरिता ॥३३॥

अथ प्रोक्त सदाचार. पादुकाचार एव च ।
अथोक्त. समयाचारो होमद्रव्यमितिस्तत ॥३४॥

अथानलस्य वर्णाद्या विस्तरेण समीरिताः ।
ततो दीक्षाप्रयोगश्च सुबोध कथितोऽखिल. ॥३५॥

अथ पूर्णाभिषेकस्तु ततो नैमित्तिकार्चनम् ।
अथ पौरश्चरणिको विधि. सर्वो निरूपित ॥३६॥

तत्र प्रोक्त प्रथमत पुरश्चरणलक्षणम् ।
स्थानानि जपयोग्यानि ततो भूमिपरिग्रह. ॥३७॥

---

१. ख. ततो गुरोः । ख. ऋक्षादीनां । इन्द्रादीनामित्यपि पाठ. क्वचित् ।

तेषां प्रतिष्ठाऽप्यन्येषामक्षाणां सा निरूपिता ।
करमाला ततः प्रोक्ता जपश्च विहितानि च ॥३८॥

अथोक्तानि निषिद्धानि जपारम्भोचितो विधिः ।
अथ भोज्यानि शयनं प्रातःस्वप्ननिवेदनम् ॥३९॥

ततस्तु सिद्धिचिह्नानि ततो होमाद्युदीरितम् ।
पौरश्चरणिकः प्रोक्तः प्रयोगस्तदनन्तरम् ॥४०॥

मन्त्रसिद्धेरुपायास्तु ततोऽन्येऽपि समीरिताः ।
काम्यपूजाविधिः सर्वो विस्तरेणाथ भाषितः ॥४१॥

काम्यपूजाप्रयोगोऽथाप्यग्निचक्रविचारणा ।
अथो गाणपता मन्त्रा उक्ताः सकलसिद्धिदाः ॥४२॥

तेषु प्रोक्तः प्रथमतो महागणपतेर्मनुः ।
अथैकाक्षरमन्त्रस्य भेदा उक्ताः सुसिद्धिदाः ॥४३॥

हरिद्रागणपस्याथ चिरिविघ्नेश्वरस्य[1] च ।
ततः शक्तिगणेशस्य प्रोक्तं मन्त्रचतुष्टयम् ॥४४॥

ततो लक्ष्मीगणेशस्य ततः क्षैप्रप्रसादनः ।
हेरम्बस्य ततो मन्त्रो मालामंत्रश्च भाषितः ॥४५॥

ततः सुब्रह्मण्यमनुर्वक्रतुण्डमनुत्रयम्[2] ।
उच्छिष्टगणपस्याथ प्रोक्तं मन्त्रचतुष्टयम् ॥४६॥

सौरा मन्त्रास्ततः प्रोक्तास्तेष्वाघोराक्षरो[3] मनुः ।
भेदास्तस्योदिता अन्ये त्र्यक्षरश्च ततो मनुः ॥४७॥

ततः षडर्णः सप्तार्णो मनुर्मार्त्तण्डभैरवः ।
चतुर्वर्णो मनुः प्रोक्तो भुवनेश्यधिदैवतः ॥४८॥

अथाजपाख्यः संप्रोक्तो विशेषस्तस्य चेरितः ।
ततश्चान्द्रो मनुः प्रोक्तो भौमस्य च बुधस्य च ॥४९॥

गुरोः शुक्रस्य सौरेश्च राहोः केतोरपीरितः ।
हुताशनस्य संप्रोक्तास्ततो मन्त्राः सुसिद्धिदाः ॥५०॥

---

१. ख. विरिविघ्नेश्वरस्य । २. ख. ०कक्रतुण्ड० । ३. ख. तेष्वाद्योऽष्टाक्षरो ।

ततस्तु वैष्णवा मन्त्राः प्रोक्ताः सर्वसुसिद्धिदाः ।
तेषु नारायणस्योक्त' पुरा वस्वक्षरो मनु ॥५१॥

ततो हरिहरस्योक्तः श्रीकरस्याथ भाषित ।
तत्ववर्णस्तत. प्रोक्तो मन्त्रो नारायणस्य तु ॥५२॥

वासुदेवस्याथ मनुर्लक्ष्मीपूर्वस्य तस्य च ।
पुरुषोत्तममन्त्रौ च ततः प्रोक्तौ सुसिद्धिदौ ॥५३॥

ततो हृषीकेशमन्त्र. श्रीधरस्येरितस्ततः ।
अच्युतेत्यादिमन्त्रस्तु ततस्तस्य मनुत्रयम् ॥५४॥

हयग्रीवस्य[1] मन्त्राश्च तत प्रोक्ताः सुसिद्धिदा. ।
अथो धराहृत्सञ्ज्ञौ च वाराहा मनवस्ततः ॥५५॥

ततो नृसिंहमन्त्रास्तु वामना मनवस्ततः ।
सुदर्शनस्य मन्त्रौ द्वौ राममत्रास्ततोऽखिला. ॥५६॥

ततो हनूमन्मन्त्रस्तु मुकुन्दस्य मनुस्ततः ।
अथ श्रीकृष्णमन्त्रास्तु सर्वे प्रोक्ता सुसिद्धिदाः ॥५७॥

उक्त कामस्य मन्त्रोऽथ कार्त्तवीर्यमनुस्ततः ।
अथ प्रोक्ता महेशस्य मन्त्राः सकलसिद्धिदाः ॥५८॥

तेषु पूर्वं पञ्चवर्णं प्रोक्त. स च षडक्षर. ।
उमामहेश्वरस्योक्तौ ततो मन्त्रौ सुसिद्धिदौ ॥५९॥

तत प्रासादमन्त्रस्तु प्रोक्तो वस्वर्णकस्ततः ।
मृत्युजयस्य मन्त्रोऽथ प्रोक्त आरोग्यदो नृणाम् ॥६०॥

ततः श्रीदक्षिणामूर्त्तेस्त्रयो मत्रा' समीरिताः ।
मनुत्रय नैलकण्ठ तत पाशुपतो मनु. ॥६१॥

अथाघोरास्त्रमत्रश्च चिन्तामणिमनुस्तत ।
ततस्तुबुरुवीज च मन्त्रोऽथो खाङ्गरावण ॥६२॥

ततो वटुकमत्रश्च क्षेत्रपालमनुस्तत ।
श्रीप्रासादपरामन्त्रः पराप्रासादसञ्ज्ञक ॥६३॥

---

१. ख हयग्रीवास्य ।

मन्त्र. प्रोक्तस्ततो मृत्युहन्ता त्रैयम्बको[1] मनुः ।
अथ नानाविधाः प्रोक्ताः शक्तिमन्त्रास्तु सिद्धिदा. ॥६४॥

तेष्वादौ भुवनेश्यास्तु प्रोक्तमन्त्रा[2] सुसिद्धिदा. ।
तत. सारस्वता मत्रा मातृकामत्रपूर्वका ॥६५॥

लक्ष्मीमत्रास्तत प्रोक्ताः सर्वसम्पत्समृद्धिदा. ।
मातङ्गीमनव प्रोक्तास्ततो वश्यादिसिद्धिदा ॥६६॥

ततस्तु सुमुखीमत्रो दुर्गामत्रास्ततोऽखिलाः ।
ततस्तु भैरवीमत्रा. प्रोक्ता सर्वेप्सितप्रदा. ॥६७॥

ततोऽन्नपूर्णामत्रास्तु प्रोक्ता अन्नसमृद्धिदाः ।
अन्नप्रदाख्यमत्रोऽथ तत कामेश्वरीमनु. ॥६८॥

पञ्चबाणेश्वरीमत्र पञ्चकामेश्वरीमनु. ।
कामेश्यास्त्र्यक्षरो मत्रो वगलास्यामनुस्तत. ॥६९॥

ततस्तु त्रिपुटामत्र उक्त. शक्तिमनुस्ततः ।
अश्वारूढामनुरथो उक्तो गौरीमनुस्ततः ॥७०॥

स्त्रीवश्यदो मनुरथो तत पद्मावतीमनु ।
ततो ज्येष्ठामनुरथो त्रिकण्टक्या मनुद्वयम् ॥७१॥

त्रयोऽथ वैष्णवीमत्रा महाकृत्यामनुस्तत. ।
छिन्नमस्तामनुरथो धूमावत्या मनुस्तत ॥७२॥

तत श्रीकालिकामत्रास्तारामंत्रास्ततोऽखिलाः ।
ततश्चमत्कारकर्यो विद्या. सर्वा निरूपिता. ॥७३॥

उक्ता ततः पर ज्योतिर्विद्या निर्वाणदायिनी ।
परनिष्कलदेव्यास्तु ततो विद्या समीरिता ॥७४॥

तत. सजीवनीविद्ये वाराह्याश्च मनुस्ततः ।
कुरुकुल्लामनुरथो यक्षिणीमनवस्तथा ॥७५॥

गायत्रीप्रमुखा प्रोक्ता वैदिका मनवस्तत ।
श्रीविद्यायास्ततो मत्रा. सविधाना निरूपिता. ॥७६॥

---

१. ख. त्रैयंचको । २. ख. प्रोक्ता मन्त्रा. ।

प्रोक्ता पञ्चदशानां तु नित्याना मनवस्ततः ।
त्रिविधा. पुरुषा सन्ति रज.सत्वतमोगुणै. ॥७७॥

थैव प्रकृतिस्तेषा श्रद्धाश्चैव तथाविधा. ।
कल्पिता आगमग्रन्थास्तद्धितार्थं सविस्तरा. ॥७८॥

तथा नानाविधा मार्गा गिरजापतिना स्वयम् ।
यथा वेदेऽपि दृश्यन्ते प्रयोगा. कामनाप्रदाः ॥७९॥

तथैवागममध्येऽपि ससारस्य प्रवृत्तये ।
सर्वे नैव तु सर्वेषामिति शास्त्रस्य निर्णय. ॥८०॥

अधिकारिणा तु फलदान तथाऽनधिकारिणामित्युक्तत्वादस्माभिरत्र सर्वेऽप्युपासनामार्गा निरूप्यन्ते । यस्य यत्राधिकारस्तेन तस्याभ्युपगमो विधेय. । सर्वेषा मन्त्राणां दीक्षापूर्वकग्रहणोत्तरजपस्य फलदायकत्वाद्दीक्षाया यथोक्तविधिना देवतापूजनस्यावश्यकत्वात्तद्विधिः प्रथम प्रदर्श्यते—

नारदपञ्चरात्रे—

निशावसाने शयनात्स्मृत्वा नारायण प्रभुम् ।
उत्थाय दक्षिणाङ्गेन वामपाद न्यसेद् भुवि ॥८१॥

निशावसाने पश्चिमयामे ।

कच्चिद्द्वौ मध्यमौ यामौ रात्रे सुप्त्वा विशा पते ।
सचिन्तयन्ति[1] धर्मार्थौ याम उत्थाय पश्चिमे ॥८२॥

इति महाभारते—तत्रैवोत्थानोक्ते नारायणमित्युपलक्षणम ।
तेन स्वेष्टदेवता स्मृत्वेत्यर्थ ।

सारसग्रहे—

रात्रिशेषे समुत्थाय कृत्वाऽऽवश्यकमादरात् ।
रात्रिवास परित्यज्य वाससी परिधाय च ॥८३॥

आचम्य शुद्धदेह सन्देवतायागमन्दिरम ।
मार्जयित्वोपलिप्याथ भक्तियुक्त स्वशक्तित ॥८४॥

उपविश्य शुचौ देशे प्राङ्मुख प्रोक्त आसने ।
प्राणायामत्रय कृत्वा कृत्वा न्यास विधानतः ॥८५॥

---

१ म. सञ्चिन्तयसि ।

न्यास ऋष्यादिन्यासं तस्यैव तदानीमावश्यकत्वात् ।
निर्माल्यमपकृष्याथ दद्यात्पुष्पाञ्जलिं तथा ।

शारदातिलकटीकायाम्—

तृषाक्रान्त पशुर्बद्ध. कन्यका च रजस्वला ।
देवता च सनिर्माल्या हन्ति पुण्य पुराकृतम् ॥८६॥

सारसग्रहे—

अर्घ्यपाद्ये[1] निवेद्याथ दद्याद्वै दन्तधावनम् ।
मुखप्रक्षालन दत्वा दद्यादाचमनीयकम् ॥८७॥
करयो.[2] प्रोञ्छनायाथ दद्याद्वासोऽमल शुभम् ।

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

प्रातरुत्थाय देवेशि संस्मरेत्पद्ममुज्वलम् ।
कर्पूराभ स्मरेत्तत्र श्रीगुरु शिवरूपिणम् ॥८८॥
सुप्रसन्न लसद्भूषामण्डित शान्तिभूषितम् ।

भैरवीतन्त्रे—

व्योमाम्वुजे कर्णिकमध्यसस्थे सिंहासने सस्थितदिव्यमूर्त्तिम् ।
ध्यायेद्गुरु चन्द्रशिलाप्रकाश चित्पुस्तकाभीतिवर दधानम् ॥८९॥
श्वेताम्वर श्वेतविलेपपुष्पमुक्ताविभूष मुदित त्रिनेत्रम् ।
वामाङ्कपीठस्थितरक्तशक्ति मन्दस्मित सान्द्रकृपानिधानम् ॥९०॥
रक्ताङ्गरागाभरणाम्वराढ्या स्मेरानना पीनकुचा प्रियाङ्गे ।
वामे निषण्णामतिरक्तकान्ति वामेन लीलाकमल करेण ॥९१॥
ध्यायेद्दधानामपरेण नाथमाश्लिष्य गाढ द्विभुजा द्विनेत्राम् ।
पद्म शिरसि ।

तथा च सारसग्रहे—

गुरुपादाम्वुजद्वन्द्व निजमूर्द्धनि सस्मरेत् ।
अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्वहिष्ठैर्मानसैस्तु वा ॥९२॥
नामभिस्तस्य सङ्केतससिद्धैर्गुरुकीर्त्तितै ।
तदज्ञाने गुरुभ्योऽथ नमोऽन्तैर्वा समर्चयेत् ॥९३॥
स्तुवीत स्तुतिभि प्रीत आचार्यं सर्वसिद्धये ।

---

१ ख अर्घपाद्ये । २ ख करस्य ।

स्तुतय[1] प्रयोगे वक्ष्यन्ते[2] । प्रात स्मरणातिरिक्तकाले गुरुध्यान तु ।

शैवागमे—

दीक्षाकाले यथारूप स्वस्यानुग्रहकर्मणि ।
दृष्ट त तेन भावेन ध्यायन्नोह्निकमाचरेत् ॥९४॥

सारसंग्रहे—

इति स्तुत्वा हृदि स्वीये ध्यायेदिष्टा च देवताम् ।
[3]गुरुदेवतयोरैक्य भावयेच्च निराकुलम्[4] ॥९५॥

शारदातिलकटीकायाम्—

अह देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाऽह न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽह नित्यमुक्त स्वभाववान् ॥९६॥
इष्टार्थप्रार्थना कृत्वा ह्याज्ञा सप्रार्थयेत्ततः ।
इष्टदेवस्य भूमेश्च तस्या श्वासानुसारतः ॥९७॥
विन्यस्य पादमुत्थाय कुर्यादावश्यकी क्रियाम् ।
आज्ञा प्रार्थनश्लोकाः प्रयोगे लेख्या ।

यामले—

प्रातः कृत्यमकृत्वा तु यो देवी भक्तितोऽर्चयेत् ।
तस्य पूजा च विफला शौचहीना यथा क्रिया ॥९८॥

तथा—

इत्थमुच्चार्य लब्धाज्ञो देशिक शौचमाचरेत् ।

नारदपंचरात्रे—

पदे पदे स्मरेदस्त्र दूरे यायाद् द्विजालयात् ।
नैऋत्यामिषुनिक्षेपादतीत्याभ्यधिका भुवम् ॥९९॥

पराशरः—

ग्रामात्क्रमगत गच्छेन्नगरात्तु चतुर्गुणम् ।

निबन्धे—

दगहस्त परित्यज्य मल[5] कुर्याज्जलाशये ।
शतहस्त पुरीष तु नदीतीरे चतुर्गुणम् ॥१००॥

---

१. ख. स्तुतिः । २. ख. वक्ष्यते । ३, ख. गुरुदैवतयो० ।
४. ख. निराकुल. । ५. ख. मूत्र ।

मनुः—

न मूत्र पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ।
न फालकृष्टे न जले न चित्या न च पर्वते ॥१०१॥

न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ।
न ससत्वेषु गच्छत्सु[1] न गच्छन्नापि वा स्थितः ॥१०२॥

नारदपञ्चरात्रे—

तत उद्वासयेद्देवान्मंत्रेणानेन देशिक ।
तृणलोष्ठप्रक्षेपेण[2] दत्वा तालत्रय पुन ॥१०३॥

उत्तिष्ठन्त्वृषयो[3] देवा गधर्वा यक्षराक्षसाः ।
परितस्त्यज्यता स्थान विण्मूत्रोत्सर्जनाय मे ॥१०४॥

अंगिराः—

अन्तर्धाय तृणैर्भूमि शिरः प्रावृत्य वाससा ।
वाच नियम्य यत्नेन ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जितः ॥१०५॥

यमः—

अयज्ञियैरनाद्रैश्च तृणै. संच्छाद्य मेदिनीम् ।

याज्ञवल्क्यः—

दिवा सध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुख. ।
कुर्यान्मूत्रपुरीष तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥१०६॥

मनुः—

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विज. ।
यथासुखमुख कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥१०७॥

वाय्वग्निविप्रानादित्यमप. पश्यस्तथैव गाम् ।
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥१०८॥

नारदपञ्चरात्रे—

कृत्वा मलच्युतिं तत्र वाससा क प्रवेष्टयच ।
ख दिगश्च न वीक्षेत ततो यायाज्जलाशयम् ॥१०९॥

---

१. ख. गर्त्तेषु । २. क तृणत्वोष्ठ० । ३. ख. उत्तिष्ठन्त्वृषयो ।

स्मृत्यर्थसारे—

गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः ।
गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः ॥११०॥

एका लिङ्गे करे सव्ये तिस्रो द्वे हस्तयोर्द्वयोः ।
मूत्रशौचं समाख्यातं शुक्रे तु द्विगुणं भवेत् ॥१११॥

त्रिपर्वपूरमात्रा वा मृत्तिकाक्षप्रमाणिका ।
आर्द्रामलकमात्रा वा मूत्रशौचे तु मृत्तिका ॥११२॥

पुरीषे तु—
पञ्चापाने मृदः क्षेप्याः करे वामे दश स्मृताः ।
करयोः सप्त दातव्याः पुरीषे मृत्प्रमाणकम् ॥११३॥

अर्द्धप्रसृतिमात्राद्या तदर्द्धार्द्धास्ततः[1] पराः ।
एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥११४॥
त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ।

मदनपारिजाते—

तीर्थे शौचं प्रकुर्वीत नित्यमुद्धृतवारिणा ।
रत्निमात्रं जलं त्यक्त्वा कुर्याच्छौचमनुद्धृतैः ॥११५॥
पश्चात्तु शोधयेत्तीर्थमन्यथा त्वशुचिर्भवेत् ।

निबन्धे—

आजङ्घं क्षालयेन्मूत्रे द्विराचम्य कटिं जले ।

आदित्यपुराणे—

आर्त्तः कुर्याद्यथाशक्ति शक्तः कुर्याद्यथोदितम् ।

कपिलपंचरात्रे—

यद्दिवा विहितं शौचं तदर्द्धं निशि कीर्त्तितम् ।
तदर्द्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्द्धमध्वनि ॥११६॥

नारदपचरात्रे—

पथि शौचं प्रकर्त्तव्यं देशकालानुरोधतः ।
गन्धलेपमपास्यैव मनःशुद्धया विशुद्धयति ॥११७॥

---

१. ख. तदर्द्धार्द्धस्ततः ।

निबन्धे—

एकैकया मृदा पादौ हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः ।

मरीचिः—

तिसृभिश्च[1] तलात्पादौ शोध्यौ गुल्फात्तथैव च ।
हस्तौ त्वामणिवन्धाच्च गंधलेपापकर्षणम् ॥११८॥

नारदपञ्चरात्रे—

शौचं कृत्वा यथाशास्त्र विधिनाऽऽचमनं ततः ।
दन्तकाष्ठ ततो भुक्त्वा स्नायात्तदनु नारद ॥११९॥

प्रयोगपारिजाते आचार्यः—

कुर्याद् द्वादश गण्डूपान् पुरीषोत्सर्जने द्विज ।
मूत्रे चत्वारि गण्डूषान् भोजनान्ते तु षोडश ॥१२०॥
भक्ष्यभोज्यावसानेषु गडूषाष्टौ विधीयते ।

निबन्धे—

पुरत. सर्वदेवानां दक्षिणे पितरस्तथा ।
ऋषय पृष्ठत. सर्वे वामे गण्डूषमुत्सृजेत् ।१२१॥

याज्ञवल्क्यः—

अन्तर्जानु शुचौ देशे उपविष्ट उदङ्मुख ।
प्राग्वा[2] ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥१२२॥
कनिष्ठादेशिन्यगुष्ठमूलान्यग्रकरस्य च ।
प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् ॥१२३॥

अत्रिः—

मुखे पर्युषिते नित्य भवत्यप्रयतो नरः ।
तदार्द्रकाष्ठ शुष्क वा भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥१२४॥
मत्रमाह ।

विष्णुः—

आयुर्बल यशो वर्च प्रजाः पशुवसूनि च ।
ब्रह्म प्रज्ञा च मेधां च त्वन्नो धेहि वनस्पते ॥१२५॥

---

१. ख. तिसृभिश्चा । २. ख. प्रग्वा ।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

क्लीमन्ते कामदेवाय सर्वान्ते जन चालिखेत् ।
प्रियायेति हृदन्तोऽय मनुर्दन्तविशुद्धये ॥१२६॥
अस्योद्धारः प्रयोगे ।

गर्गः—

दशाङ्गुलन्तु विप्राणां क्षत्रियाणां नवाङ्गुलम् ।
अष्टागुलन्तु वैश्यानामितरेषा षडङ्गुलम् ॥१२७॥

नारदः—

खदिरश्च करजश्च करवीरकदम्वकौ ।
सर्वे कण्टकिन पुण्या क्षीरिणश्च यशस्विनः ॥१२८॥
जम्बूतिन्दुकचूताश्च कदम्वो लोध्रचम्पका ।
वदरीतिंदुकाश्चैते प्रशस्ता दन्तधावने ॥१२९॥

पंचमीश्वरीतंत्रे—

प्रत्यह दन्तकाष्ठं तु प्लक्षकाष्ठन्तु मारणे ।
मोहने खादिर प्रोक्त स्तम्भने चूतपल्लवम् ॥१३०॥
वश्ये चाश्वत्थकाष्ठं तु रक्षार्थं वञ्जुलस्य हि ।
अय क्रमो महादेवि त्रिलोकेषु न विद्यते ॥१३१॥

सारसग्रहे—

वक्त्र मूलाणुना न क्षालयेत्सिद्धिहेतवे ।

अथ स्नान नारदपञ्चरात्रे—

अथाधिकारसिद्धयर्थं स्नान वक्ष्यामि पूर्वत ।
येन भक्तोऽभिषिक्तस्तु यागहोमार्हता व्रजेत् ॥१३२॥

वसिष्ठसंहितायाम्—

कृत्वादौ वैदिक स्नान ततस्तान्त्रिकमाचरेत् ।

पारिजाते याज्ञवल्क्यः—

तत्त्वायामीति मन्त्रेण वारुणेन तटे स्थित ।
उदुत्तममिति स्मृत्वा ह्यवतीर्य जलाशये ॥१३३॥
आवाह्य वरुण स्नानमाचरेद्विधिपूर्वकम् ।

अपरार्के—

मृदैकया शिर क्षाल्य द्वाभ्यां नाभिस्तथोपरि ।
अधश्च तिसृभिः काय षड्भि. पादौ तथैव च ॥१३४॥
क्षालयेत् सर्वकाय तु द्विराचम्य यथाविधि ॥

नारदपञ्चरात्रे—

शङ्कुनास्त्राभिजप्तेन शुचिस्थानात्तु मृत्तिकाम् ।
गृहीत्वास्त्रेण सचित्य[1] यायाज्जलनिकेतनम् ॥१३५॥

तत्रादौ जलकूप[2] तु क्षालयेदस्त्रवारिणा ।
मृद कृत्वा द्विधा तत्र एकभागोपग तत ॥१३६॥

निधाय गोमय दर्भास्तिलाश्चाप्यभिमन्त्रितान् ।
लौकिक गौणमाद्येन भागेनैकेन यत्नतः ॥१३७॥

मलस्नान पुरा कृत्वा विधिस्नान समाचरेत् ।

वसिष्ठसहितायाम्—

विन्यस्याङ्गे षडङ्गानि प्राणायामपुरःसरम् ।
श्रीसूर्यमण्डलात्तीर्थमाकृष्याकुशमुद्रया ॥१३८॥

वमित्यनेन चाप्लाव्य कवचेनावगुठयेत् ।
सरक्ष्यास्त्रेण मूलेन मत्रयेद्रुद्रसख्यया ॥१३९॥

आत्मरक्षा तत. कुर्याद्वारिक्षेपेण चास्त्रत ।
निमज्ज्य तत्र श्रीदेव ध्यायेच्छक्त्या मनुं जपेत् ॥१४०॥

उन्मज्ज्य कुभमुद्रा च वद्ध्वा सिचेत्स्वमूर्द्धनि ।

प्रयोगे तीर्थावाहनमत्रा वक्ष्यन्ते । सप्तधा त्रिधा वा सिंचेत् । 'सप्तकृत्वोऽभिपिच्याथ मनुना मत्रितैर्जलै'रिति कपिलवचनात् । 'त्रिधाभिषिच्य मूलेने'ति सारसंग्रहवचनाच्च ।

त्रिपुरार्णवे स्नानविधौ विशेष —

मृदमस्त्रेण चादाय येन तामभिमन्त्र्य च ।
शिखामत्रेण सशोध्य मत्रयेन्मूलमत्रत ॥१४१॥

मूर्द्धादिपादपर्यन्त विलिप्य च तया वपु ।
सम्मुखीकरणी मुद्रा वद्ध्वा प्राणं निरुध्य च ॥१४२॥

निमज्ज्य तूष्णीमुत्थाय नाभिमात्रे जले स्थित ।
प्राणायामत्रय कृत्वा मूलमत्रेण मंत्रवित् ॥१४३॥

---

१. ख. संचित्य । २. ख जलकूप ।

विन्यस्य च षडङ्गानि कल्पयेत्तीर्थमग्रतः ।
ततः सम्प्रार्थयेत्तीर्थं सूर्यात्तन्मण्डलं ततः ॥१४४॥
सृणिमन्त्रेण मन्त्रज्ञो भित्वा चाङ्कुशमुद्रया ।

अंकुशमुद्रालक्षणं तंत्रराजे—

कनिष्ठानामयो पृष्ठे स्यादङ्गुष्ठस्तु तर्जनी ।
कुटिला ऋजुमध्यस्था मुद्रासावङ्कुशाभिधा । ॥१४५॥

त्रिपुरार्णवे—

तीर्थावाहनमन्त्रेण तीर्थमावाहयेत्प्रिये ।
मूलमन्त्रेण संयोज्य कल्पिते तीर्थमण्डले ॥१४६॥
तीर्थशक्तिं च तत्रैव समावाह्यार्कमण्डलात् ॥
ध्यात्वा तन्मनुनाभ्यर्च्य गङ्गामन्त्रेण मन्त्रयेत् ॥१४७॥
सप्तकृत्व. शिवे वच्मि श्रृणु मन्त्रद्वयं प्रिये ।
जलस्थं व्योम षड्दीर्घस्वरभिन्नं सविन्दुकम् ॥१४८॥
सर्वानन्दमये तीर्थशक्ति चैंहियुगं द्विठः ।

जलं वकारः व्योम हकार.। तेन ह्व एतत् षड्दीर्घस्वरभिन्नं तेन ह्वाँ ह्वीं ह्वूं ह्वैं ह्वौं ह्वः । इति । द्विठ. स्वाहाकार. ।

तथा—

एकविंशाक्षरः प्रोक्तस्तीर्थशक्तिमनुः प्रिये ।
तारं नमो भगवति ब्रूयादम्बे ततोऽम्बिके ॥१४९॥
अम्बालिके महामालिन्येह्येहि भगवत्यथ[1] ।
अशेषतीर्थालवाले मायाश्रीबीजयोरथ ॥१५०॥
शिवजटाधिरूढे च गङ्गे गङ्गाम्बिके द्विठ. ।
गङ्गाविद्येयमाख्याता त्रिपञ्चाशद्भिरक्षरैः ॥१५१॥
तारः प्रणव. ॥ माया ह्रीं ॥ द्विठ स्वाहा ॥ सुबोधमन्यत् ॥

तथा—

भुवनेश्या समालोड्याऽमृतीकृत्य सुधाणुना ।
कवचेनावगुण्ठ्या संरक्ष्यास्त्रेण मन्त्रयेत् ॥१५२॥

---

१. ख भगत्यथ ।

मूलेन देवता तत्र साङ्गा सावरणां प्रिये ।
समावाह्य जले ध्यात्वा तत्पादद्वयनिर्गतम् ॥१५३॥

ध्यात्वा तीर्थं स्मरन्मूलमन्त्र स्नायाज्जले त्रिशः ।
उन्मज्ज्य[1] मूलमन्त्रेण सिचेत्के कुम्भमुद्रया ॥१५४॥

के मूर्ध्नि कुभमुद्रालक्षणम् ।

नारदपञ्चरात्रे—

दक्षागुष्ठ परागुष्ठे क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन तु ।
सावकाश त्वेकमुष्टि कुर्यात्कुभस्य मुद्रिका ॥ १५५ ॥

आचम्य विधिना पश्चान्मूलमन्त्रेण तर्पयेत् ।
त्रिधा देवी समुत्तीर्य्य जलाद्धौते शुभाम्वरे ॥ १५६ ॥

परिधायाथ तिलक कृत्वा सन्ध्या समाचरेत् ।

वह्निपुराणे—

योऽनेन विधिना स्नायाद्यत्र कुत्र जले द्विज. ।
स तीर्थफलमाप्नोति तीर्थे दशगुण फलम् ॥ १५७ ॥

विष्णुः—

उत्तम तु नदीस्नान मध्यम तु तडागके[2] ।
कूपे स्नान तु सामान्य घटस्नान वृथा भवेत् ॥१५८ ॥

स्मृत्यर्थसारे—

आग्नेय वारुण ब्राह्म वायव्य दिव्यमेव च ।
सारस्वतमिति स्नान स्मृत षोढैव तत्र तु ॥ १५९ ॥

आग्नेय भस्मना स्नानमद्भिर्वारुणमुच्यते ।
आपोहिष्ठामय ब्राह्म मन्त्रस्नान च तत्स्मृतम् ॥ १६० ॥

ब्रह्महस्तस्थित तोय शिरसा धारयेदिति ।
यत्स्मृत तदपि ब्राह्म वायव्य रजसा गवाम् ॥ १६१ ॥

दिव्यमातपवर्षाद्भिर्गङ्गास्नानमम स्मृतम् ।
विद्वत्सरस्वतीवाचा प्राप्त सारस्वत मतम् ॥ १६२ ॥

---

१ ख उन्मत्य । २ ख तडागमे ।

वृद्धमनुः—

असामर्थ्याच्छरीरस्य कालशक्त्याद्यपेक्षया ।
मत्रस्नानादिक प्रोक्त मुनिभि. शौनकादिभि. ॥ १६३ ॥

चतुर्विंशतिमते—

अशक्तावशिरस्क यत्स्नान मत्रविधानत. ।
आर्द्रेण वाससा चागमार्जन कापिल मतम् ॥ १६४ ॥

गायत्र्या जलमादाय दशकृत्वोऽभिमत्रयेत् ।
स्नान गायत्र्यक[1] नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १६५ ॥

अशक्ताना तु जन्तूना गुरो. पादोदक शुभम् ।
विप्रपादाद्विष्णुपादात्तुलस्या सभृत जलम् ॥ १६६ ॥

प्रोक्षणात्स्नानमाप्नोति ध्यानस्नान विशेषत. ।

नारदपञ्चरात्रे—

तोयाभावे तु यत्कार्यं दुर्गे काले तु शीतले ।
गमने क्षिप्रसिद्धयर्थ गुरुकार्येष्वतन्द्रितः ॥ १६७ ॥

प्राप्तापद्यथ विप्रेन्द्र निशाभागे तथा मुने ।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य प्रोद्धृतेन तु वारिणा ॥ १६८ ॥

स्नान दश दिशः प्राग्वत्सशोध्योपविशेत्ततः
अस्त्र हस्ततले न्यस्य क्रमान्न्यासास्ततस्तु वै ॥ १६९ ॥

मूलमत्रादितः कुर्यात्सर्वमत्रगणेन वै ।
केवलादुदकस्नानात्सस्कारपरिवर्जितात् ॥ १७० ॥

प्रभासादिषु तीर्थेषु यत्फल स्नातकस्य वै ।
ज्ञेय दशगुण तस्मान्मत्रस्नानस्य नारद ॥ १७१ ॥

ध्यानस्नानमथो वक्ष्ये द्वाभ्यामपि पर च यत् ।
खस्थित पुण्डरीकाक्ष मत्रमूर्त्ति प्रभु स्मरेत् ॥ १७२ ॥

तत्पादोदकजा धारा निपतन्ती स्वमूर्द्धनि ।
चिन्तयेत्सूक्ष्मरध्रेण प्रविशन्ती स्विका तनुम् ॥ १७३ ॥

---

१. ख. गायत्रक ।

तया सक्षालयेत्सर्वमन्तर्देहगत मलम् ।
तत्क्षणाद्विरजा मन्त्री जायते स्फटिकोपम ॥ १७४ ॥

इम स्नानवर मात्रात्स्नानात्[1] शतगुण स्मृतम् ।
तस्मादेकतम स्नान कार्यं श्रद्धापरेण तु ॥ १७५ ॥

स्मृत्यर्थसारे—

स्रोतसोऽभिमुख. स्नायान्मार्जने चाघमर्षणे ।
अन्यत्रार्कमुखो रात्रौ प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥ १७६ ॥

स्मृतिसमुच्चये—

बहिः स्नातस्तु नद्यादौ स्नानवस्त्रमधस्त्यजेत् ।
ऊर्ध्वं त्यजेत्स्नानवस्त्र गृहस्नातो यदा भवेत् ॥ १७७ ॥

नृसिंहपुराणे—

जलात्तीर समासाद्य शुष्के धौते च वाससी ।

निबन्धे—

नैकवासा न च द्वीपे नान्तरिक्षे कदाचन ।
श्रुतिस्मृत्युदित कर्म न कुर्यादशुचिः क्वचित् ॥ १७८ ॥

ब्राह्मणस्य सित वस्त्र नृपते रक्तवस्त्रकम् ।
पीत वैश्यस्य शूद्रस्य नील मलवदिष्यते ॥ १७९ ॥

स्मृतिसमुच्चये—

निष्पीड्य स्नानवस्त्र तु प्रात सध्यां समाचरेत् ।
मध्याह्ने तर्पणादूर्ध्व व वस्त्रनिष्पीडन भवेत् ॥ १८० ॥

ब्रह्माण्डपुराणे—

ब्राह्मणस्योर्ध्वपुण्ड्र स्यात्क्षत्रियस्य त्रिपुण्ड्रकम् ।
अर्द्धचन्द्र तु वैश्याना शूद्राणा वर्तुलाकृति ॥ १८१ ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र मृदा कुर्यात् त्रिपुण्ड्र भस्मना तथा ।
तिलक वा द्विज कुर्याच्चन्दनेन यथेच्छया ॥ १८२ ॥

---

१ ख मान्त्रात् ।

ब्रह्मपुराणे--

पर्वताग्रे नदीतीरे मम क्षेत्रे विशेषत ।
सिन्धुतीरे च वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिता ॥ १८३ ॥

मृद एतास्तु सपाद्या वर्जयेदन्यमृत्तिका. ।[1]
अगुष्ठ पुष्टिद. प्रोक्तो मध्यमायुष्करी मता ॥ १८४ ॥

अनामिकाऽन्नदा नित्य मुक्तिदा च प्रदेशिनी ।
एतैरगुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखै स्पृशेत् ॥ १८५ ॥

वर्त्तिदीपाकृति[2] वापि वेणुपत्राकृति तथा ।
पद्मस्य मुकुलाकार तथैव कुमुदस्य च ॥ १८६ ॥

मत्स्यकूर्माकृति वापि शखाकारमथापि वा ।
[3]दशागुलप्रमाण तु उत्तमोत्तममुच्यते ॥ १८७ ॥

नवागुल मध्यम स्यादष्टागुलमत परम् ।

नारदपञ्चरात्रे—

नासादिकेशपर्यन्त प्रयत्नाद्धारयेद् द्विज ।

व्यासः—

जाह्नवीतीरसभूता मृद मूर्द्ध्ना बिभर्त्ति य ।
बिभर्त्ति रूप सोऽर्कस्य तमोनाशाय केवलम् ॥ १८८ ॥

स्मृतिचन्द्रिकायाम्—

ललाटे केशव [4]विद्यान्नारायणमथोदरे ।
माधव हृदि विन्यस्य गोविन्द कण्ठकूपके ॥ १८९ ॥

उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुरित्यभिधीयते ।
तत्पार्श्वे बाहुमध्ये तु विन्यसेन्मधुसूदनम् ॥ १९० ॥

त्रिविक्रम कर्णदेशे वामे कुक्षौ तु वामनम् ।
श्रीधर बाहुके वामे हृषीकेश तु कर्णके ॥ १९१ ॥

---

१. ख. प्रतौ विशेषो निबन्धे—

द्वारावती प्रयागश्च श्रीशैले मणिकर्णिका ।
सेतु श्रीरङ्गसम्भूता मृत्तिका पावनी मता ॥

२. ख वर्त्तिदीपाकृत । ३. ख दशागुण० । ४. क. विद्या० ।

पृष्ठदेशे पद्मनाभ ककुद्दामोदर न्यसेत् ।
द्वादशैतानि नामानि वासुदेवेति मूर्द्धनि ॥१९२॥[1]

गौतमीतन्त्रे—

ललाटे च गदा कार्या मूर्द्धनि चाप. शरस्तथा ।
खड्ग चैव च हृन्मध्ये शङ्ख चक्र भुजद्वये ॥१९३॥
शखचक्रांकितो विप्र. श्मशाने म्रियते यदि ।
प्रयागे या गति. प्रोक्ता सा गतिस्तस्य गौतम ॥१९४॥

प्रयोगपारिजातसंग्रहे—

ऊर्ध्वपुड्र त्रिपुड्र वा मध्ये शून्य प्रधारयेत् ।
शृणु षण्मुख तन्मध्ये उमयाऽह श्रिया हरि. ॥१९५॥

वसिष्ठसहितायाम्—

ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र वा कृत्वा सध्या समाचरेत् ।
श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्च्चने ॥ १९६ ॥

---

१ ख पुस्तके निम्नांशोऽय विशेषो दृश्यते —
स्कन्दपुराणे मार्गशीर्षमाहात्म्ये—

विमलां मृत्तिकां रम्यामादाय द्विजसत्तम ।
मन्त्रेणैवाभिमन्त्र्याथ ललाटादिषु वैष्णव ॥१
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि यथासंख्यमतन्द्रितः ।
ब्रह्मन् द्वादशपुण्ड्राणि ब्राह्मण सतत धरेत् ॥२
चत्वारि भूभृता पुत्र पुण्ड्राणि द्वे विशाम्पतिः ।
एकं पुण्ड्र च नारीणां शूद्राणा च विधीयते ॥३
ललाटे उदरे चैव वक्ष वै कण्ठकूपके ।
कुक्षौ बाह्वो कन्धरे च पार्श्वे पृष्ठे तथैव च ॥४
त्रिक द्वादशम प्रोक्तं ब्राह्मणस्य सदाऽनघ ।
ललाटे हृदि बाह्वोश्च क्षत्री पुण्ड्राणि धारयेत् ॥५
ललाटे हृदये वैश्यो भाले वै शूद्रयोषित ।
एवं कार्यं ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्योपधारय ॥६
ललाटे केशव ध्यायेद्धृदये माधवं तथा ।
भुजयोरुभयोर्वत्स स्मरेद्वै मधुसूदनम् ॥७
क्षत्रियस्य विधिः प्रोक्तो वैश्यकृत्यं निशामय ।
ललाटे केशवं ध्यायेद्धृदये माधवं स्मृतम् ॥८
योषिच्छूद्रः स्मरेदेवं केशव भालदेशके ।
श्यामं शान्तिकर प्रोक्त रक्त वश्यकरं तथा ॥९
श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेत मोक्षकरं शुभम् ।

धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युञ्जयति मानवः ।

भविष्यपुराणे—

सत्यं शौचं जपो होमस्तीर्थं देवादिपूजनम् ।
तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुण्ड्रं न धारयेत् ॥१९७॥

स्मृतिसंग्रहे—

त्रिपुण्ड्रं ब्राह्मणो विद्वान्मनसापि न लङ्घयेत् ।
श्रुत्या विधीयते यस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत् ॥१९८॥

याबालिः[1]—

त्रिपुण्ड्रं कारयेत्पश्चाद्ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
मध्याङ्गुलिभिरादाय तिसृभिर्मूलमन्त्रितम् ॥१९९॥
अनामामध्यमाङ्गुष्ठैरथवा स्यात्त्रिपुण्ड्रकम् ।

स्कांदे—

भ्रुवोर्मध्यं समारभ्य यावदन्तो भवेद्भ्रुवोः ।

स्मृतिरत्नावल्याम्—

नेत्रयुग्मप्रमाणेन त्रिपुण्ड्रं धारयेद्द्विजः ।
षडङ्गुलप्रमाणेन ब्राह्मणानां त्रिपुण्ड्रकम् ॥२००॥
नृपाणां चतुरङ्गुल्यं वैश्यानां द्व्यङ्गुलं तथा ।
शूद्राणामथ सर्वेषामेकाङ्गुल्यं त्रिपुण्ड्रकम् ॥२०१॥
त्रिपुण्ड्रेण विना येन विप्रेण यदनुष्ठितम् ।
न तद्ध्यानं न तद्ज्ञानं[2] न तद्दानं जपो न सः ॥२०२॥[3]

---

१. ख. जाबालिः । २. ख. तज्ज्ञानं । ३. ख पुस्तके निम्नांशो ह्यधिकोऽवलोक्यते—

वीक्ष्याऽऽदर्शे जले वापि यो विदध्यात्प्रयत्नतः ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं महाभाग स याति परमां गतिम् ॥१॥
क्वचिदादर्शदर्शनपूर्वकतिलकधारणे निषेधोऽपि-
'न पादुकास्थो नादर्शे न जले त्ववलोकयन्'

इति *कृष्णभट्टीये* तिलकप्रकरणे । *स्मृत्यन्तरात्*—

ऊर्ध्वपुड्रं त्रिपुण्ड्रं च द्वयं शस्तं द्विजन्मनाम् ।
न केवलं चोर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा विशुद्धये ॥२॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रे त्रिपुण्ड्रं स्यान्नोर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रके ।
विपरीते वैपरीत्यं केवले निष्फला क्रियाः ॥३॥

स्मृतिरत्नावल्यामपि—

ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना मोहाद्यदि कुर्यात् त्रिपुण्ड्रकम् ।
न तत्फलमवाप्नोति न स्या [त्] श्रोत्रिये यथा ॥४॥

ब्रह्माण्डे—

जलेन तिलकं कुर्याज्जलान्तं कर्मसिद्धये ।
चन्दनेन स्थले कुर्यात्सर्वकर्मसुसिद्धये ॥ २०३ ॥

लिङ्गपुराणे—

विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण[1] विना रुद्राक्षमालिकाम् ।
पूजितोऽपि महादेवो न सम्यक् फलदो भवेत् ॥२०४॥

भासयत्येव यद्भस्म हुतं भासयते च यत् ।
भक्षणात्सर्वपापानां भस्मेति परिकीर्त्तितम् ॥२०५॥

[2]अप्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना ।
तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम् ॥२०६॥

वायवीयसंहितायाम्—

शिवाग्नेर्भस्म संग्राह्यमग्निहोत्रोद्भवं तु वा ।
वैवाह्याग्न्युद्भवं वापि पक्वं शुचि सुगन्धि च ॥२०७॥

कपिलायाः शकृच्छस्तं गृहीतं गगने पतत् ।
न क्लिन्नं नातिकठिनं न दुर्गन्धि न चोषितम् ॥२०८॥

उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि ।
पिण्डीकृत्य शिवाग्नौ तु तत्क्षिपेन्मूलमन्त्रतः ॥२०९॥
अपक्वमतिपक्वं च संत्यज्य भसितं सितम् ।
आदाय वाससाऽऽलोड्य भस्माधारे विनिक्षिपेत् ॥२१०॥

भस्मसंग्रहणं कुर्याद्देवेऽनुद्वासिते सति ।
उद्वासने कृते यस्माच्चण्डभस्म प्रजायते ॥२११॥

गोमयग्रहणादौ विशेषस्तत्रैव ।

यद्वा धरामसंस्पृष्टं सद्येनानीय गोमयम् ।
वामेन पात्रे संशोध्य अघोरेण विनिर्दहेत् ॥२१२॥

पुरुषेण समुद्धृत्य ईशानेन विशोधयेत् ।
इत्थं तु संस्कृतं भस्म अग्निरित्यादिमंत्रतः ॥२१३॥

---

१. ख. त्रिपुण्डेन । २. ख. अप्यकार्यं ।

तस्माद्ब्रह्मेति यजुषा मन्त्रयेद्रुद्रसंख्यया ।
प्रणवाद्यैश्चतुर्थीहृदन्तैर्नामभिरग्रकैः ॥२१४॥

पञ्चवर्णाद्यक्षराद्यैर्भालासोदरहृत्सु च ।
त्रिपुण्ड्रधारणं कुर्यान्मूर्ध्नि पञ्चाक्षरेण च ॥२१५॥

त्रिपुण्ड्रं धारयेन्मत्री साक्षाच्छिव इवापरः ।

नामभि. सद्योजातादिभि । अग्रशब्दस्त्वसद्वयवाचक:, नामपचकत्वात् ।

स्कन्दपुराणे—

त्रिपुण्ड्रं धारयेद्यस्तु भस्मना विधिपूर्वकम् ।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वनस्थो यतिरेव वा ॥२१६॥

महापातकसघातैर्मुच्यते चोपपातकै ।
तथान्यैः क्षत्रविट्शूद्रस्त्रीगोहत्यादिपातकै ॥२१७॥

वीरहत्याश्वहत्याभ्या मुच्यते नात्र सशय ।
अमन्त्रेणापि य कुर्यादज्ञात्वा महिमोन्नतिम् ॥२१८॥

त्रिपुण्ड्र भालफलके मुच्यते सर्वपातकै. ।
परद्रव्यापहरण परदाराभिमर्शनम् ॥२१९॥

परनिन्दा परक्षेत्रहरण परपीडनम् ।
सस्यारामादिदहन गृहदाहादिकर्म च ॥२२०॥

असत्यवाक्य पैशुन्य पारुष्य वेदविक्रयः ।
कूटसाक्ष्यव्रतत्यागकैतवं नीचसेवनम् ॥२२१॥

गोभूहिरण्यमहिषीतिलकम्बलवाससाम् ।
अन्नधान्यजलादीना नीचेभ्यश्च प्रतिग्रह ॥२२२॥

दासीवेश्याभुजङ्गीषु वृषलीषु नटीषु च ।
रजस्वलासु कन्यासु विधवासु च सङ्गम. ॥२२३॥

मासचर्मरसादीना लवणस्य च विक्रय ।
एवमादीन्यसख्यानि पापानि विविधानि च ॥२२४॥

सद्य एव विनश्यन्ति त्रिपुण्ड्रस्य च धारणात् ।
रुद्राक्षा यस्य गात्रेषु ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम् ॥२२५॥

स चाण्डालोऽपि सम्पूज्य. सर्ववर्णोत्तमो भवेत् ।
यानि तीर्थानि लोकेऽस्मिन् गङ्गाद्याः सरितश्च या ॥२२६॥
स्नातो भवति सर्वत्र ललाटे यस्त्रिपुण्ड्रकधृक् ।
सप्तकोटिमहामन्त्रा. पञ्चाक्षरपुर सरा. ॥२२७॥
तथान्ये कोटिशो मन्त्रा' शैवा कैवल्यहेतव ।
सर्वे तेन जप्ताः स्युर्यो विभर्त्ति त्रिपुण्ड्रकम् ॥२२८॥
सहस्र पूर्वजातानां सहस्र च जनिष्यताम् ।
[1]स वंशजाना मर्त्यानामुद्धरेद्यस्त्रिपुण्ड्रधृक् ॥२२९॥
इह भुक्त्वाऽखिलान् भोगान् दीर्घायुर्व्याधिवर्जित ।
जीवितान्ते च मरणं सुखेनैव प्रपद्यते ॥२३०॥
अष्टैश्वर्यगुणोपेत. प्राप्य दिव्य वपु शुभम् ।
दिव्य विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीशतवीजित ॥२३१॥
विद्याधराणा सिद्धाना गन्धर्वाणां महौजसाम् ।
इन्द्रादिलोकपालानां लोकेषु च यथाक्रमम् ॥२३२॥
भुक्त्वा भोगान् सुविपुलान् प्रजेशाना पुरेषु च ।
ब्रह्मण पदमासाद्य तत्र कल्पशत रमेत् ॥२३३॥
विष्णोर्लोके च रमते यावद्ब्रह्मशतत्रयम् ।
शिवलोक तत प्राप्य रमते कालमक्षयम् ॥२३४॥
शिवसायुज्यमाप्नोति न स भूयोऽभिजायते ।
अमन्त्रकमपि भस्मधारणम् ।

वायवीयसंहितायाम्—

पुनर्न्यस्तकरो मन्त्री त्रिपुण्ड्रं भस्मना लिखेत् ।
एतच्छूद्रादिविषयकम् ।

॥ अथ संध्या ॥[2]

तत्र द्विजाना वैदिकसध्यानन्तरमेव तान्त्रिकसंध्याया कर्त्तव्यत्वाद्वैदिकसध्याकालस्तद्विधिश्चनिरूप्यते ।

---

१ ख. स्व ।

२ ख. पुस्तके निम्नाशोऽभ्यधिकोऽवलोक्यते—

निबन्धे—मन्त्राणाञ्च देवानां ब्रह्मादीना च सङ्गम ।
सन्धि सर्वासुराणां च तेन सन्ध्या ह्युदाहृता ॥१॥

मरीचिः—

सध्या येन न विज्ञाता सध्या येनानुपासिता ।
जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतश्वा[1]चाभिजायते ।।[2]२३५।।

धर्मसारे—

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ।
अधमा सूर्यसहिता प्रात सध्या त्रिधा मता ।।२३६।।

अग्निस्मृतौ—

सध्याकाल प्रागुदयाद्विप्रस्य द्विमुहूर्त्तक ।
क्षत्रियस्य तदर्द्ध स्यात्तदर्द्ध स्याद्विशोऽप्युत ।।२३७।।

तथैवास्तमिते तेषा वैश्यादीनामय क्रम ।

दक्ष —

रात्र्यन्तयामनाडीद्वे सध्याकालोऽयमुच्यते ।
दर्शनाद्रविरेखायास्तदन्तो मुनिभि स्मृत ।२३८।।

अध्यर्द्धयामादासाय सध्या माध्याह्निकीष्यते ।

व्यास —

गृहे त्वेकगुणा सध्या गोष्ठे दशगुणा स्मृता ।
शतसाहस्रिका नद्यामनन्ता विष्णुसन्निधौ ।।२३९।।

शौनक —

प्राणानायम्य विधिवद्वाग्यत सयतेन्द्रिय ।
अथ सध्यामुपासिष्ये इति सकल्प्य मार्जयेत् ।।२४०।।

तिसृभिर्मार्जन कुर्यादापोहीति कुशोदकै ।
पादे पादे क्षिपेन्मूर्ध्नि प्रतिप्रणवसयुतम् ।।२४१।।

नासिकामगुलीभिश्च तर्जनीमध्यमाकृते ।
दक्षिणेन समाकृष्य सव्येन तु विसर्जयेत् ।।२४२।।

प्रणव व्याहृती सप्त गायत्री शिरसा सह ।
त्रि पठेदायतप्राण प्राणायामः स उच्यते ।।२४३।।

---

१. ख मृत श्वा ।　२. अतः परमयमंशो विशेषः ख पुस्तके—
तथा कार्त्तिकमाहात्म्ये—स्नानसन्ध्यादिक कुर्वन् य स्पृशेच्च प्रभाषते ।
तत्पुण्यकर्मसप्तांशं दद्यात्तस्मै विनिश्चितम् ।।१।।

नद्या तीर्थे ह्रदे वापि भाजने मृण्मयेऽपि वा ।
औदुम्बरे च सौवर्णे राजते दारुसम्भवे ॥२४४॥

कृत्वा तु वामहस्ते वा सध्योपास्ति समाचरेत् ।
पात्राभावे वामहस्ते न तु पात्रसम्भवे ॥२४५॥

वामहस्ते जल कृत्वा ये तु सन्ध्यामुपासते ।
सा सध्या वृषली ज्ञेया असुरास्तैस्तु तर्पिता ॥२४६॥

इति स्मृते ।

सूर्यश्चेत्यनुवाकेन प्रात.काले पिबेदप. ।
अग्निश्चेत्यनुवाकेन सायकाले पिबेदप. ॥२४७॥

आप. पुनन्तु मध्याह्ने मन्त्राचमनमाचरेत् ।
प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्या प्रणवाद्यया ॥२४८॥
आपोहिष्ठेन सूक्तेन मार्जन हि चतुर्थकम् ।

निबन्धे--

पाणिभ्या जलमादाय गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ।
रवेरभिमुख तिष्ठन् त्रिरूर्ध्वं सध्ययो क्षिपेत् ॥२४९॥

कराभ्यामञ्जलि कृत्वा रविं वीक्ष्य जलाञ्जलि. ।
मध्याह्ने तु सकृदेव क्षेपणीयो द्विजातिभिः ॥२५॥

द्वौ पादौ तु समौ कृत्वा पूरयेदुदकाञ्जलिम् ।
गोश्टङ्गमात्रमुत्क्षिप्य जलमध्ये जल क्षिपेत् ॥२५०॥

प्रातर्नाभौ कर कृत्वा मध्याह्ने हृदि सस्थितम् ।
साय जपति नासाग्रे जपस्तु त्रिविध. स्मृत ॥२५१॥

याज्ञवल्क्य ---

जपन्नासीत सावित्री प्रत्यगातारकोदयात् ।
सन्ध्या प्राक् प्रातरेव हि तिष्ठेदासूर्यदर्शनात् ॥२५२॥

व्यास ---

अष्टोत्तरशत नित्यमष्टाविंशतिमेव च ।
विधिना दशकं वापि त्रिकालेषु जपेद्बुध ॥२५३॥

ब्रह्मचार्याहिताग्निश्च जपेदष्टोत्तर शतम् ।
वानप्रस्थो यतिश्चापि सहस्रादधिक जपेत् ॥२५४॥

स्मृत्यर्थसारे—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च शतमष्टोत्तरं जपेत् ।

कूर्मपुराणे—

अथोपतिष्ठेदादित्यमुदयन्त समाहित ।

मन्त्रैस्तु विविधै सौरैर्ऋग्यजुःसामसम्भवै ॥२५५॥

अथ तान्त्रिकसध्या

महाकपिलपञ्चरात्रे—

उपविश्य शुचौ देशे प्राणायामत्रय क्रमात् ।

मूलमन्त्रेण कृत्वा वै देहे कुर्वीत मार्जनम् ॥२५६॥

शैवागमे—

प्राणायामत्रय कृत्वा मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ।

अङ्गानि विन्यसेद्देहे करन्यासपुरःसरम्॥२५७॥

अमृतीकृत्य पुरतो जल व धेनुमुद्रया ।

अभिमन्त्र्य च मूलेन सप्तवार च साधक ॥२५८॥

अकारादिक्षकारान्तैर्मातृकार्णैः सविन्दुभिः ।

प्रत्यर्णं प्रोक्षयेन्मूर्ध्नि कुशैर्मूलेन च त्रिधा ॥२५६ ॥

देव ध्यात्वाऽथ मनुविद्भानुमण्डलसंस्थितम् ।

आदाय तोयमामन्त्र्य वीजैर्भूतात्मकैस्तथा ॥२६०॥

ल व र य हमिति च तान्युक्तानि सुरार्चिते ।

सप्तकृत्वस्ततो मूलमन्त्रेण त्रि पुनश्च तत् २६१॥

वामहस्ते निधायाथ गलितैर्जलबिन्दुभि ।

सम्प्रोक्ष्य मूलमन्त्रेण दक्षहस्तेन मूर्द्धनि ॥२६२॥

नासामाश्लिष्य शिष्टेन तेजोरूपेण तेन तु ।

प्रविश्यान्तर्गत सर्वमल[1] सशोध्य निर्गतम् ॥२६३॥

दक्षनासापुटेनैतत्स्मृत्वा दक्षिणहस्तगम् ।

वामभागे वज्रशिला ध्यात्वाऽस्त्रेण च तत् क्षिपेत् ॥२६४॥

अस्त्र पाशुपतास्त्र तदग्रे वक्ष्यते ।

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ।

गायत्र्या वाथ मूलेन दद्यादर्घत्रय तत ॥२६५॥

---

१. ख. सर्वं मल ।

शिवाय मण्डलस्थाय रवेर्मूलेन तर्पयेत् ।

शिवायेति शैवागमे शिवप्राधान्यात् तेन स्वेष्टाय देवाय दद्यात् ।

त्रिधा जप्त्वाथ गायत्रीमष्टाविंशतिवारकम् ।
जपित्वा मूलमन्त्रं च शतमष्टोत्तरं ततः ॥२६६॥

समर्प्य तज्जपं मन्त्री देवमुद्वास्य मण्डलात् ।
निधाय स्वीयहृदये ततस्तर्पणमाचरेत् ॥२६७॥

मूलेनार्घदानं तु गायत्रीरहितमन्त्रपरं ज्ञेयम्, इयं सन्ध्या त्रिकालं कार्या

प्रातर्मध्याह्नसायाह्नसन्ध्यां कुर्याच्च मन्त्रवित्

इति शैवागमोक्तेः ।

तथा—

सन्ध्यालोपो न कर्त्तव्यः शम्भोराज्ञैवमेव हि ।
दीक्षितः सन्ध्यया हीनो न दीक्षाफलमश्नुते ॥२६८॥

सन्ध्याहीनोऽन्यसन्ध्यायां पूर्वसन्ध्याक्रियामथ ।
विधायोत्तरसन्ध्यायाः क्रियां कुर्यादतन्द्रितः ॥२६९॥

तन्त्रराजे---

स्नानसन्ध्यार्चनालोपे जपेद्विद्यां शतं शिवे ।

॥ अथ तर्प्पणम् ॥

योगयाज्ञवल्क्यः---

ब्रह्माणं तर्पयेत्पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिम् ।
देवान् छन्दांसि वेदांश्च ऋषींश्चैव तपोधनान् ॥२७०॥

आचार्यांश्चैव गन्धर्वानाचार्यतनयास्तथा ।
संवत्सरं सावयवं देवीश्चाप्सरसस्तथा ॥२७१॥

तथा देवानुगान्नागान्सागरान्पर्वतांस्तथा ।
सरितोऽथ मनुष्यांश्च यक्षान् रक्षांसि चैव हि ॥२७२॥

पिशाचांश्च सुपर्णांश्च भूतानथ पशूंस्तथा ।
वनस्पतींश्चौषधींश्च भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥२७३॥

ततः कृत्वा निवीतं तु यज्ञसूत्रमतन्द्रितः ।
प्राजापत्येन[1] तीर्थेन मनुष्यांस्तर्पयेत्पृथक् ॥२७४॥

१. ख. प्राजापत्यैन ।

सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातन ।
कपिलश्चासुरश्चैव[1] वोढः पिचशिखस्तथा[2] ॥२७४॥

एते ब्रह्मसुता. सप्त मनुष्या परिकीर्त्तिता ।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्य पुलह क्रतु ॥२७५॥

प्रचेताश्च वसिष्ठश्च भृगुर्नारद एव च ।

व्यासः—

एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादय ।
अर्हन्ति पितरस्त्रीस्त्रीन् स्त्रियश्चैकैकमञ्जलिम् ॥२७६॥

सांख्यायनः—

मातृमुख्यास्तु यास्तिस्रस्तामा त्रीस्त्रीन् जलाञ्जलीन् ।
सपत्नाचार्यपत्नीना द्वौ द्वौ दद्याज्जलाञ्जलीन् ॥२७७॥

कव्यबालो नलः सोमो यमश्चैवार्यमा तथा ।
अग्निष्वाता[3] सोमपाश्च तथा बर्हिषदोऽपरे ॥२७८॥

यदि स्याज्जीवत्पितृक एतान्विद्यात्ततः पितृ्न् ।

निबन्धे—

देवर्षीन् प्राङ्मुखो भूत्वा उदगास्यस्तु मानुषान्[4] ।
दक्षिणा हि पितॄन् स्कन्धाद्यज्ञसूत्रममोचयन् ॥२७९॥

आग्नेयपुराणे—

सव्येन देवकार्याणि वामेन पितृतर्पणम् ।
निवीतेन मनुष्याणा तर्पण सविधीयते ॥२८०॥

शङ्खलिखितौ—

उभाभ्यामपि हस्ताभ्या प्राङ्मुखो यज्ञोपवीती प्रागग्रैः कुशैर्देवतातर्पणं देवतीर्थेन कुर्यात् ।

विष्णुः—

ततः कृत्वा निवीत तु यज्ञसूत्रमतन्द्रित ।
प्राजापत्येन तीर्थेन मनुष्यास्तर्पयेत्पृथक् ॥२८१॥

---

१. ख. ० श्चासुरि । २ ख. पञ्चशिख० । ३ ख. अग्निष्वात्ता । ४. ख. मानुष्यान् ।

बौधायनः—

अथ दक्षिणतः प्राचीनावीती पितॄन् स्वधा नमस्तर्पयामीत्यादि ।

यत्तु—

उभाभ्यामिह हस्ताभ्यामुदकं यः प्रयच्छति ।
स मूढो निरयं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ॥२८२॥

इति व्याघ्रपदवचनं तच्छ्राद्धादिविषयम् । अत एव-

कार्ष्णाजिनिः—

श्राद्धे विवाहकाले च पाणिनैकेन दीयते ।
तर्पणे तूभयेनैव विधिरेष पुरातनः ॥२८३॥

निबन्धे—

कुशाग्रैस्तर्पयेद्देवान्मनुष्यान्कुशमध्यतः ।
द्विगुणीकृत्य मूलाग्रैः पितॄणां तर्पयेद् द्विजः ॥२८४॥

हारीतः—

हेमरूप्यमयं पात्रं ताम्रं कांस्यसमुद्भवम् ।
पितॄणां तर्पणे पात्रं मृण्मयं तु परित्यजेत् ॥२८५॥

शङ्खः—

उदकेनोदकं दद्यात्पितृभ्यश्च कदाचन ।
उत्तीर्य च शुचौ देशे कुर्यादुदकतर्पणम् ॥२८६॥

विष्णुः—

यत्राशुचिस्थलं वा स्यादुदके देवतां पितॄन् ।
तर्पयेत्तु यथाकामं सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम् ॥२८७॥

स्मृत्यर्थसारे—

तिलाभावे स्वर्णरूप्यताम्रदर्भयुतोदकैः ।
खड्गमौक्तिकहस्तेन कार्यं वा पितृतर्पणम् ॥२८८॥

सप्तम्यां रविवारे च जन्मर्क्षदिवसेषु च ।
गृहे निषिद्धं सतिलं तर्पणं तद्बहिर्भवेत् ॥२८९॥

शोभनगृहे शोभनदिने न तिलतर्पणम् ।
विवाहे चोपनयने चौले सति यथाक्रमम् ॥२९०॥

वर्षमर्द्धं तदर्द्धं च नेत्येके तिलतर्पणम् ।

मदनपारिजाते—

तीर्थे तिथिविशेषे च गङ्गाया प्रेतपक्षके ।
निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥२६१॥

लघुहारीतः—

जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये[1] पितृतर्पणे ।
अशून्य तु कर कुर्यात्सुवर्णरजतैः कुशैः ॥२६२॥

कूर्मपुराणे—

विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुन ।
राक्षस तद्भवेत्सर्वं नेहामुत्र फलप्रदम् ॥२६३॥

व्यासः—

कुशै पूत भवेत्स्नानं कुशेनोपस्पृशेद् द्विज. ।
कुशेन चोद्धृत तोय सोमपानेन सम्मितम् ॥२६४॥

कात्यायनः—

अनन्तर्गर्भिणं साग्र कौश द्विदलमेव च ।
प्रादेशमात्र विज्ञेय पवित्र यत्र कुत्रचित् ॥२६५॥

मार्कण्डेयः—

चतुर्भिर्दर्भपिञ्जूलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम् ।
एकैकन्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥२६६॥

स्मृत्यर्थसारे—

सर्वेषा वा भवेद् द्वाभ्या पवित्र ग्रन्थित न वा ।
सपवित्र सदर्भो वा कर्माङ्गाचमन चरेत् ॥२६७॥
नोच्छिष्ट तद्भवेत्तस्य भुक्तोच्छिष्ट तु वर्जयेत् ।

अत्रिः—

ब्रह्मयज्ञे जपे चैव ब्रह्मग्रन्थिर्विधीयते ।
भोजने वर्त्तुल. प्रोक्त एव धर्मो न हीयते ॥२६८॥

हेमाद्रौ—

उभयत्र स्थितैर्दर्भैं सम्यगाचामति द्विज ।
सोमपानफल तस्य भुक्त्वा यज्ञफल लभेत् ॥२६९॥

---

१. ख स्वाध्येये ।

ग्रन्थिर्यस्य पवित्रस्य न तेनाचमनं चरेत् ।
आचामेद्यस्तु मोहात्मा यथोच्छिष्टस्तथैव स ॥३००॥

शौनक —

द्वौ दर्भौ दक्षिणे हस्ते सव्यं त्रीनासने सकृत् ।

शङ्ख —

कर्मकाले प्रकुर्वीत सपवित्रामनामिकाम् ।
लङ्घयेदेकपर्वाऽस्या द्वितीयं नैव लङ्घयेत् ॥३०१॥

निबन्धे—

न ब्रह्मग्रन्थिनाचामेन्न दूर्वाभि. कदाचन ।
स्नाने होमे जपे दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि ॥३०२॥

सपवित्रौ सदर्भौ वा करौ कुर्वीत नान्यथा ।
कुशाभावे तु काशा स्यु काशा कुशमया स्मृता ॥३०३॥

काशाभावे ग्रहीतव्या अन्ये दर्भा यथोचिता ।
कुशा काशा यवा दूर्वा उशीराश्च सकुन्दराः ॥३०४॥

गोधूमा व्रीहयो मुञ्जा[1] दश दर्भा सवल्वजा ।
नभोमासस्य दर्शे तु शुचिर्दर्भान्समाहरेत् ॥३०५॥

अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्या पुन पुन ।
यै कृत पिण्डनिर्वाप· श्राद्ध वा पितृतर्पणम् ॥३०६॥

विण्मूत्रादिषु ये दर्भास्तेषा त्यागो विधीयते ।
दर्भाभावे स्वर्णरूप्यताम्ररत्नै· क्रियाश्चरेत् ॥३०७॥

अनामिक्यां धृत हेम तर्जन्या रूप्यमेव च ।
कनिष्ठिकाधृत खड्ग तेन पूज्यो भवेन्नर ॥३०८॥

अथ तान्त्रिकतर्पणम्

शैवागमे—

ध्यात्वा देवं चले सम्यक्पूजयित्वाथ मूलत ।
अष्टोत्तरशतावृत्या तर्पयेन्मूलमन्त्रत ॥३०९॥

---

१ ख भुञ्जा ।

तदर्द्धेन तदर्द्धेन दशधा वाथ तर्पयेत् ।
ततस्तदङ्गावरणदेवतास्तर्पयेत्क्रमात् ॥३१०॥

एकैकाञ्जलिना तत्तन्नाममन्त्रेण मन्त्रवित् ।
पुनः सम्पूज्य देवेशं साङ्गावरणकं ततः ॥३११॥
समुद्वास्य हृदि स्वीये स्वात्मानं तन्मयं स्मरेत् । इति ।

मन्त्रप्रकाशे—

कृत्वा सन्ध्यां जपन् स्तोत्रं यायाद्वै यागमन्दिरम् ।

तथा—

उक्तेनैव विधानेन कृत्वा स्नानं तु तान्त्रिकम् ।
वैदिकीं तान्त्रिकीं सन्ध्यां कृत्वा तर्पणमेवच ॥३१२॥
जपन् स्तोत्राणि नामानि यायाद्देवनिकेतनम् ।

नारदपञ्चरात्रे—

ततश्चोदकसम्पूर्णं भाण्डमादाय पाणिना ।
एकान्तं निर्जनं यायान्मनोज्ञं दोषवर्जितम् ॥३१३॥

हृन्मध्यस्थं स्मरन्विष्णुं प्रबुद्धानन्दविग्रहम् ।
दिगन्तरं न वीक्षेत[1] मौनी संरोधिलोचनः ॥३१४॥

महाकपिलपञ्चरात्रे—

मूलमन्त्रं जपन् गच्छेद्यावत्प्राप्नोति वै गृहम् ।
प्राप्य हस्तौ च पादौ च प्रक्षाल्याचम्य यत्नतः ॥३१५॥
यागमण्डपमासाद्य विशेत्कृत्वा प्रदक्षिणम् ।

उत्तरतन्त्रे—

आचान्तः शुचितां प्राप्तः सुस्नातो देवपूजने ।
पूजावेद्या बहिः स्थित्वा चतुर्हस्तान्तरे धिया ॥३१६॥

गृहे चेद् द्वारदेशस्थः प्रणम्य मनसा गुरुम् ।
प्रणमेदिष्टदेवं स्वं दिक्पालानपि चेतसा ॥३१७॥

यत्पूर्वमर्जितं पापं तद्दिनेऽन्यदिनेऽपि वा ।
प्रायश्चित्तेनापनुदेत्तदा पापं स्मरेद्धिया ॥३१८॥
तत्पापस्यापनोदार्थं मन्त्रद्वयमुदीरयेत् ।

---

१. ख. वीक्षेन ।

मन्त्रद्वय प्रयोगे वक्तव्यम् ।

तथा—

एव कृते प्रथमतः पापोत्सारणकर्मणि ।
यत्स्याद् दृढतर पाप तद्दूरे चावतिष्ठते ॥३१९॥
अतीते पूजने स्थान स्व प्रयाति पुनश्च तत् ।
यत्स्यादल्पतर पाप तन्नाशमुपतिष्ठति ॥३२०॥
पूजने त्यक्तपापस्य काममिष्ट क्षणाद्भवेत् ।

सारसङ्ग्रहे—

तत प्रक्षाल्य पादौ च हस्तावाचम्य यत्नत ।
दद्यादर्घं दिनेशाय तत्प्रकार इहोच्यते ॥३२१॥
गोमयेनोपलिप्ताया भूमौ कृत्वा तु मण्डलम् ।
सिन्दूरेण तत. पश्चादुपविश्य निजासने ॥३२२॥
प्राङ्मुख प्रणमेदिष्टदेवता भक्तितत्पर ।
प्राणायामत्रय कृत्वा सूर्यमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥३२३॥
विन्यस्य च तदृष्यादीन् ध्यात्वा सूर्यमनन्यधी ।
तत्कल्पोक्तविधानेन पूजयेदुपचारकै ॥३२४॥
पुरतो मण्डल कृत्वा जलेन चतुरस्रकम् ।
निधाय तत्र साधार सजल ताम्रपात्रकम् ॥३२५॥
गन्धपुष्पाक्षतान्दर्भान्दूर्वासर्षपसयुतान् ।
सतिलान् रक्तपुष्पाणि यवाश्चापि प्रविन्यसेत् ॥३२६॥
सूर्यमन्त्रेण तत्पात्र स्पृशन्नष्टोत्तर शतम् ।
अभिमन्त्र्य च तत्पात्र समुत्थाप्य करद्वयात् ॥३२७॥
मूर्द्धान्त सूर्यमन्त्रेण दद्यादर्घं विचक्षण. ।
जपेत्ततो यथाशक्ति सूर्यमन्त्रमनन्यधी· ॥३२८॥
तदर्घाम्बुप्लुत सूर्यं ध्यायन् देशिकसत्तम. ।
स्तुत्वा प्रणम्य विसृजेन्मण्डले त दिवाकरम् ॥३२९॥

सूर्यमन्त्र त्र्यक्षरम् । तत्तु तत्प्रकरणे वक्तव्यम् ।

यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय दिने दिने ।
तावन्न पूजयेद्विष्णु शङ्कर वा सुरेश्वरीम ॥३३०॥

अर्घ्यदानमिदं पुंसामायुरारोग्यवर्द्धनम् ।
धनधान्यपशुक्षेत्रपुत्रमित्रकलत्रदम् ॥३३१॥
तेजोवीर्ययशःशक्तिविद्याविभवभाग्यदम् ।

नन्दिपुराणे—
आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् धनवान् सुखी ।
वरमिष्टं लभेल्लिङ्गं पार्थिवं यः समर्चयेत् ॥३३२॥
तस्मात्तु पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम् ।

बृहन्नारदीये—
अखण्डं तद्धि कर्त्तव्यं न द्विखण्डं प्रकल्पयेत् ।
सखण्डं यः प्रकुर्वाणो रौरवं निरयं व्रजेत् ॥३३३॥
रत्नजं हेमजं लिङ्गं पारदं स्फाटिकं तथा ।
पार्थिवं पिष्टजं पौष्पमखण्डं तु प्रकल्पयेत् ॥३३४॥
अखण्डं तु चरं लिङ्गं द्विखण्डमचरं स्मृतम् ।

भविष्ये—
मृद्भस्म गोशकृत्पिण्ड[1]-ताम्रकांस्यमयं तथा ।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुषं दिवि ॥३३५॥
राज्यवित्तप्रदं लिङ्गं स्फाटिकं सर्वकामदम् ।

तिथितत्त्वे---
अक्षादल्पपरीमाणं न लिङ्गं कुत्रचिन्नरः ।
कुर्वीताङ्गुष्ठतो ह्रस्वं न कदाचित्समाचरेत् ॥३३६॥

अङ्गुष्ठतस्तत्पूर्वग्रन्थितः ।
अङ्गुष्ठाङ्गुलिमानं तु यत्र यत्रोपदिश्यते ।
तत्र तत्र बृहत्पूर्वग्रन्थिभिर्मिनुयात्सदा[2] ॥३३७॥

इति छन्दोगपरिशिष्टात् ।

शिवधर्मे—
सहस्रमर्चयेल्लिङ्गं निरयं स न गच्छति ।
रुद्रलोकमवाप्नोति भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ॥३३८॥
वालुकानि च लिङ्गानि पार्थिवानि च कारयेत् ।
सहस्रपूजनात्सोऽपि लभते वाञ्छितं फलम् ॥३३९॥

---
१ ख पिण्ड । २ ख ०मुनुयात् ।

देवीपुराणे—

मृदाहरणसङ्घट्टप्रतिष्ठाह्वानमेव च ।
स्नपनं पूजन चैव विसर्जनमत परम् ॥३४०॥

हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणि. पिनाकधृक् ।
पशुपति शिवश्चैव महादेव इति क्रमात् ॥३४१॥

नन्दिपुराणे—

गोभूहिरण्यवस्त्रादिबलिपुष्पनिवेदने ।
ज्ञेयो नमः शिवायेति मन्त्र' सर्वार्थसाधक ॥३४२॥
सर्वमन्त्राधिकश्चायमोङ्काराद्य षडक्षर ।

भविष्ये—

ॐ शर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः । ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः । ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः । ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः । ॐ भीमायाकाशमूर्त्तये नम । ॐ पशुपतये यजमानमूर्त्तये नम. । ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः । ॐ ईशानाय सूर्यमूर्त्तये नम. ।

मूर्त्तयोऽष्टौ शिवस्यैता. पूर्वादिक्रमयोगत' ।
आग्नेय्यन्ता. प्रयोज्यास्तु वेद्या लिङ्गे शिव यजेत् ॥३४३॥

नन्दिकेश्वर.—

य. प्रदद्याद् गवा लक्ष दोग्ध्रीणा वेदपारगे ।
एकाहमर्चयेल्लिङ्ग तस्य पुण्य ततोऽधिकम् ॥३४४॥

सकृत्पूजयते यस्तु भगवन्तमुमापतिम् ।
तस्याश्वमेधादधिक फल भवति भूसुरा. ॥३४५॥

शिवधर्मे—

लिङ्गानुलेपन कार्यं दिव्यगन्धै सुगन्धिभि ।
वर्षकोटिशत दिव्य शिवलोके महीयते ॥३४६॥

तस्मात्पुष्पप्रदानेन लिङ्गेषु प्रतिमासु च ।
अशीतिवर्षकोटीना दुर्गति न नरो व्रजेत् ॥३४७॥

स्कान्दे—

शुष्कान्यपि च पत्राणि श्रीवृक्षस्य सदैव हि ।
प्रदातव्यानीति ।

शिवधर्मे—

लिङ्गवेदी भवेद्देवी लिङ्ग साक्षान्महेश्वरः ।
तयोः सम्पूजनात्स्याता देवी देवश्च पूजितौ ॥३४८॥

देवीपुराणे—

सव्य व्रजेत्ततोऽसव्य प्रणाल नैव लङ्घयेत् ।
एकभूतमना रुद्रे यः कुर्यात् त्रिःप्रदक्षिणम् ॥३४९॥
छिन्नस्तेन भवेद्ग्रन्थिर्न तस्य पुनरुद्भवः ।

भविष्ये—

जानुभ्या चैव पाणिभ्या शिरसा च विचक्षणः ।
कृत्वा प्रणाम देवेशे सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥३५०॥

लिङ्गपुराणे—

गन्धधूपनमस्कारैर्मुखवाद्यैश्च सर्वश ।
यो मामर्चयते तत्र तदा तुष्टयाम्यह[1] तथा ॥३५१॥

शिवागमे—

लवणेन च सौभाग्य पार्थिव सर्वकामिकम् ।
अनेकफलद भूरिसैकतं परिकीर्त्तितम् ॥३५२॥

ग्रामद तिलपिष्टोत्थं तुषोत्थ मारणे स्मृतम् ।
[2]अन्नोत्थमन्नद प्रोक्त गुडोत्थ शान्तिवर्द्धनम् ॥३५३॥

गन्धोत्थ गुणदं भूरिशर्करोत्थं सुखप्रदम् ।
वशाङ्कुरोत्थ वश्यार्थं गोमय सर्वरोगहृत् ॥३५४॥

वेश्यास्थिसम्भव लिङ्ग सर्वशत्रुविनाशनम् ।
आसुरीलवणोत्थ च सर्वलोकवशङ्करम् ॥३५५॥
स्तम्भने रजनीपिष्टसम्भव लिङ्गमुत्तमम् ।
तण्डुलोद्भवपिष्टस्य लिङ्ग सर्वसुतप्रदम् ॥३५६॥

दधिदुग्धोद्भव लिङ्ग कीर्त्तिलक्ष्मीसुखप्रदम् ।
धान्यद धान्यज लिङ्ग कीर्त्तिग्रामाज्यवर्द्धनम् ॥३५७॥

दूर्वागुडूचीसम्भूतमपमृत्युनिवारणम् ।
इक्षुवृक्षोद्भव लिङ्गमुच्चाटनकर परम् ॥३५८॥

१. तुष्याम्यहं । २. ख. अम्भोत्थ० ।

वार्क्षं वित्तप्रद लिङ्ग स्फाटिक सर्वकामिकम्[1] ।
विद्यार्थी लिङ्गसाहस्र कन्यार्थी तु शतत्रयम् ॥३५९॥

पुत्रार्थी चार्द्धसाहस्र कान्तार्थी शतपञ्चकम् ।
सुहृत्काम. सहस्र तु वस्त्रार्थी शतमष्टकम् ॥३६०॥

उच्चाटनपर चैव यथोक्त च सहस्रकम् ।
मारणार्थी सप्तशत मोहार्थी शतमष्टकम् ॥३६१॥

स्तम्भन तु तदर्द्धेन मारण तु तदर्द्धकम् ।
निगडान्मुक्तिकामस्तु सहस्र तु समाचरेत् ॥३६२॥

महाराजभये पञ्चसहस्र सर्वकामदम् ।
एक पापहर प्रोक्त द्विलिङ्ग कार्यसिद्धिदम् ॥३६३॥

त्रिलिङ्ग सर्वकामाना कारण परमाद्भुतम् ।
लिङ्गानामयुत चापि महाराजभये चरेत् ॥३६४॥

कारागृहविमुक्त्यर्थमनन्त कारयेद्बुध ।
डाकिन्यादिभये प्राप्ते सहस्र कारयेत्तदा ॥३६५॥

सहस्राणा पञ्चशत पुत्रकामेन कारयेत् ।
कृत्वा नित्यविधानेन सगुण पुत्रमाप्नुयात् ॥३६६॥

लक्षमेक तु लिङ्गानां य करोति नरो भुवि ।
शिव एव भवेन्नित्य नात्र कार्या विचारणा ॥३६७॥[2]

[लिङ्गपूजाया विशेषो मन्त्रमहोदधौ —

---

१. ख. पुस्तकेऽय श्लोको विशेष.—

पितृणां मुक्तये पूज्यं लिङ्ग रजतसम्भवम् ।
हेमज सत्यलोकस्य प्राप्तयेऽप्यर्चयेत् पुमान् ॥१॥

पूजयेत्ताम्रज लिङ्गं पुष्टिकामो हि मानव ।
तुष्टिकामस्तु सततं लिङ्गं पित्तलसम्भवम् ॥२॥

कीर्त्तिकामोऽर्चयेल्लिङ्गं सदा कांस्यसमुद्भवम् ।
शत्रुमारणकामस्तु लिङ्ग लोहमय यजेत् ॥३॥

तया सीसमयं लिङ्गमायुष्कामोऽर्चयेत् सदा ।
ज्वरशान्त्यै चन्दनजमर्चयेद् विधिवत्पुन ॥४॥

२. इत पर [ ] कोष्ठकान्तर्गतोंश ख पुस्तकेऽभ्यधिको विलोक्यते।

स्नातो नित्यं विधायादौ गत्वा शुद्धां भुव सुधी ।
उपरिस्थामपाकृत्य षडर्णेनाभिमन्त्रयेत् ॥१॥

आकाश पृथिवीशेषस्थितो विन्दुविभूषितः ।
पृथिवी तु चतुर्थ्यन्ता नमोऽन्ता स्यात् षडक्षरः ॥२॥

ह्लाँ पृथिव्यै नम ।

ततो मृदमुपादाय कृत्वा निःशर्करा ततः ।
पात्रे निदध्यात् सशुद्धे प्रत्यहं पूजनाय ताम् ॥३॥

सद्दिने सद्गुरोर्मन्त्रौ गणेश्वरकुमारयोः ।
हराद्यांश्च मनून् सप्त गृह्णीयाद्यागसिद्धये ॥४॥

अथार्चनं शुभे घस्रे त्वारभेतेष्टसिद्धये ।
कृतनित्यक्रियः शुद्ध. प्रदायार्घ विवस्वते ॥५॥

मृदमादाय तोयेन सुवया मन्त्रितेन च ।
आसिच्य पिण्डयेत् स्वेष्टमाना पात्रे निधापयेत् ॥६॥

तत. कालमनुस्मृत्य कामनामपि हृद्गताम् ।
लिङ्गानि पार्थिवानीह पूजार्थे मुखसंख्यया ॥७॥

सङ्कल्प्यैवं मृद. पिण्डादादायाल्पा मृदं सुधीः ।
एकादशार्णमन्त्रेण कुर्याद्बालगणेश्वरम् ॥८॥

मायागणेशभूबीजैर्ङेऽन्तो गणपतिः पुनः ।
एकादशार्णमन्त्रोऽयं स्मृतो बालगणेशितुः ॥९॥

फलाभयलसत्पाणिपद्मं बालगणेश्वरम् ।
पूर्वं निर्माय तत्पीठे लिङ्गानि रचयेत्तत. ॥१०॥

हरमन्त्रेण गृह्णीयादक्षमात्राधिक मृदम् ।
महेश्वरस्य मन्त्रेण लिङ्गं कुर्यात्तथा शुभम् ॥११॥

अङ्गुष्ठमानादधिकं वितस्त्यवधि सुन्दरम् ।
पार्थिव रचयेल्लिङ्गं न न्यूनमधिक च तत् ॥१२॥

शूलपाणेस्तु मन्त्रेण लिङ्गं पीठे निधापयेत् ।
एवमन्यानि कुर्वीत यथासङ्कल्पमादरात् ॥१३॥

अवशिष्टमृदा कुर्यात् कुमार तस्य मन्त्रत ।
स्थापयेल्लिङ्गपङ्क्त्यन्ते स्वमन्त्रेणार्च्चयेच्च तम् ॥१४॥

वारवर्मकर्णविन्द्वाढ्यश्चरमो मीनकेतनः ।
कुमाराय नमोऽन्तोऽय गुहमन्त्रो दशाक्षर ॥१५॥

ऐँ हुँ क्षुँ क्लीँ कुमाराय नम ।
मन्त्रेणावाहयेद्देव प्रतिलिङ्ग पिनाकिन ।
ततो लिङ्गस्थित ध्यायेत् सुप्रसन्न महेश्वरम् ॥१६॥

दक्षाङ्कस्थं गजपतिमुख प्रामृशन्दक्षदोष्णा,
वामोरुस्थ नगपतिसुताङ्के गुह चापरेण ।
इष्टाभीती परकरयुगे धारयन्निन्दुकान्ति-
रव्यादस्मास्त्रिभुवननुतो नीलकण्ठस्त्रिनेत्र. ॥१७॥

एवं ध्यात्वा पशुपतेर्मन्त्रेण स्नापयेद्धरम् ।
शिवमन्त्रेण गन्धादीनर्पयेद्वह्निरेतसे ॥१८॥

प्रागादिवामावर्त्तेन दिक्ष्वष्टौ परिपूजयेत् ।
शिव भव रुद्रमुग्र भीमं पशुपतिं तथा ॥१९॥

महादेवमथेशान क्रमात् क्षित्यादिमूर्त्तिकान् ।
क्षित्यप्तेजोऽनिलाकाशयजमानेन्दुभास्करा ॥२०॥

क्षित्यादयः स्यु शर्वाद्यास्तत इन्द्रादिकान् यजेत् ।
धूपदीपनैवेद्यानि नमस्कारप्रदक्षिणा ॥२१॥

जप कृत्वा तु विसृजेन्महादेवस्य मन्त्रत ।
तारनत्यादिका ङेऽन्ता हराद्या मनवोऽद्रय ॥२२॥

प्रतिलिङ्ग यजेद्देवमखिलानि सहैव वा ।
पूजितौ निजमन्त्राभ्या विसृजेद् गणराड्गुहौ ॥२३॥

धनपुत्रादिकामैस्तु शिवोऽर्च्य प्रोक्तलक्षण ।
विद्याकामैश्चिन्तनीय परशु हरिण वरम् ॥२४॥

ज्ञानमुद्रा दधद्धस्ते वटमूलमुपाश्रित ।
पुसोर्विरुद्धयो सन्धौ कुर्याल्लिङ्गानि साधक ॥२५॥

नदीतीरद्वयानीतमृदा तानि पूजयेत् ।
तत्र ध्येयो हरिहर शङ्खपद्माहिशूलभृत् ॥२६॥

इन्द्रनीलगिरश्चन्द्रनिभो भूषणपुञ्जवान् ।
दम्पत्योरविरोधार्थं ह्यर्द्धनारीश्वर स्मृत ॥२७॥

पीयूषपूर्णकलश दधत्पाशाङ्कुशावपि ।
उच्चाटे मारणे द्वेष्ये ध्यातव्य. पुनरीदृशः ॥२८॥

कालीहस्ताम्बुजालम्बः शूलप्रोतद्विषच्चयः ।
मुण्डमालालसत्कण्ठो राववित्रासिताखिल. ॥२९॥

इत्थ तु कामनाभेदध्यानभेदाः प्रकीर्त्तिता ।
पूजयेत्कार्यवशतो लक्षावधि सहस्रत ॥३०॥

लक्षपार्थिवलिङ्गाना पूजनाद्भुक्तिमुक्तिभाक् ।
लक्ष तु गुडलिङ्गाना पूजनात् पार्थिवो भवेत् ॥३१॥

या नारी गुडलिङ्गानि सहस्र पूजयेत् सती ।
भर्त्तु सुखमखण्ड सा प्राप्यान्ते पार्वती भवेत् ॥३२॥

नवनीतस्य लिङ्गानि सम्पूज्येष्टमवाप्नुयात् ।
भस्मना गोमयस्यापि वालुकायास्तथा फलम् ॥३३॥

क्रीडन्त. पृथुका भूमौ लिङ्ग कृत्वा रजोमयम् ।
पूजयन्ति विनोदेन तेऽपि स्यु क्षितिनायका ॥३४॥

प्रातर्गोमयलिङ्गानि नित्य यस्त्रीणि पूजयेत् ।
बृहतीविल्वयो पत्रैर्नैवेद्य गुडमर्पयेत् ॥३५॥

एव मासत्रय कुर्वन्नत्यल्प लभते धनम् ।
एकादशैव लिङ्गानि गोमयोत्थानि यो यजेत् ॥३६॥

प्रातर्मध्याह्नयो साय निशीथे प्रतिवासरम् ।
स सर्वा सम्पदो यायात् षण्मासादेवमादरात् ॥३७॥

एकादश यजेन्नित्य शालिपृष्ठ(पिष्ट)मयानि य ।
लिङ्गानि मासमात्रेण स कल्मपचय दहेत् ॥३८॥

स्फाटिक पूजित लिङ्गमेनोनिकरनाशनम् ।
सर्वकामप्रद पुसामुदुम्वरसमुद्भवम् ॥३९॥

रेवाश्मज सर्वसिद्धिप्रद दु.खविनाशनम् ।
यथाकथञ्चिल्लिङ्गस्य पूजा नित्य कृतेष्टदा ॥४०॥

यो यजेत् पिचुमन्दोत्थै. पत्रैर्गोमयज शिवम् ।
क्रुद्ध महेश्वर ध्यायन् स पराजयते रिपून् ॥४१॥

यो लिङ्ग पूजयेन्नित्यं शिवभक्तिपरायण. ।
मेरुतुल्योऽपि तस्याशु पापराशिर्लय व्रजेत् ॥४२॥
चतुर्दश्या तथाष्टम्यां पौर्णमास्या विधुक्षये ।
पयसा स्नापिते लिङ्गे धरादानफल व्रजेत् ॥४३॥
दोग्ध्रीणान्तु गवां नित्य यो दद्याद्वेदपारगे ।
पार्थिव योऽर्चयेल्लिङ्ग तयोर्लिङ्गार्चको वर ॥४४॥
लिङ्गपूजा विधायाऽग्रे स्तोत्र वा शतरुद्रियम् ।
प्रजपेत्तन्मना भूत्वा शिवे स्व विनिवेदयेत् ॥४५॥

स्तोत्र तु—

ॐ सर्वज्ञ ज्ञानविज्ञानप्रदानैकमहात्मने ।
नमस्ते देवदेवेश सर्वभूतहिते रत ! ॥४६॥
अनन्तकीर्त्तिसम्पन्न अनन्तासनसस्थित ।
अनन्तकान्तिसम्भोग परमेश ! नमोऽस्तु ते ॥४७॥
परापरपरातीत उत्पत्तिस्थितिकारक ।
सर्वार्थसाधनोपाय विश्वेश्वर ! नमोऽस्तु ते ॥४८॥
स्वभावनिर्मलाभोग सर्वव्याधिविनाशन ।
योगियोगिमहायोगियोगेश्वर ! नमोऽस्तु ते ॥४९॥
कृत्वा लिङ्गप्रतिष्ठान्तु स्तवमेनमुदीरयेत् ।
लिङ्गस्तवमहापुण्य य शृणोति सदा नर ॥५०॥
नोत्पद्यते च ससारे स्थानम्प्राप्नोति शाश्वतम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शृणुयाल्लिङ्गसस्तवम् ॥५१॥
पापकञ्चुकनिर्मुक्त. प्राप्नोति परमम्पदम् ।
यत्सख्याक यजेल्लिङ्ग तन्मित होममाचरेत् ॥५२॥
आज्यान्वितैस्तिलैरग्नौ घृतैर्वा पायसेन वा ।
शिवमन्त्रेण तस्यान्ते ब्राह्मणान् भोजयेत्तत ॥५३॥
एवङ्कृते समस्तेष्टसिद्धिर्भवति निश्चितम् ।

तन्त्रसारे—

एकीकृत्य तु लिङ्गानि दशपञ्चशतानि वा ।
प्रत्येकं वा महेशानि विल्वपत्रै समर्चयेत् ॥५४॥

पदार्थक्रमेण काण्डक्रमेण वा पूजयेदिति पूर्वमीमांसाधिकरणन्यायेन द्रष्टव्यमिति दिक् ।]

इत्थ लिङ्गपूजां कृत्वा द्वारपूजां कुर्यात् ।

शारदातिलके—

यायादलङ्कृतो मौनी यागार्थं यागमण्डपम् ।
आचम्य विधिना तत्र सामान्यार्घं विधाय च ॥३६८॥

द्वारमस्त्राम्बुभिः प्रोक्ष्य द्वारपूजा समाचरेत् ।

सारसङ्ग्रहे—

द्वारमर्घाम्बुना प्रोक्ष्य विघ्नमूर्ध्वे समर्चयेत् ।
तद्दक्षिणे महालक्ष्मी वामे चैव सरस्वतीम् ॥३६९॥

द्वारश्रिय च तन्मध्ये शाखयोर्दक्षिणान्ययो ।
गणप क्षेत्रपालं च शङ्खपद्मनिधी क्रमात् ॥३७०॥

मायाशक्ति च चिच्छक्ति गङ्गा च यमुना तथा ।
धातार च विधातारमूर्द्ध्वादिक्रमतो यजेत् ॥३७१॥

अधश्च देहलीमिष्ट्वा द्वारपालौ समर्चयेत् ।

शारदातिलके—

प्रतिद्वारमिति क्रमादित्युक्तेर्विघ्नादिदेहल्यन्त प्रतिद्वार सम्पूज्य तत्तद्द्वारपालार्चन कुर्यात् ।

शारदातिलकटीकायाम्—

वक्रतुण्डैकदंष्ट्रौ च महोदरगजाननौ ।
लम्बोदराख्यविकटौ विघ्नराजश्च सप्तम ॥३७२॥

धूम्रराजोऽष्टमो ज्ञेयो गाणपत्या इति क्रमात् ।

सारसङ्ग्रहे धूम्रवर्ण इति पाठ ।

नन्द सुनन्दश्चण्डाख्य प्रचण्डो बलनामक. ।
प्रबलो भद्रनामा च सुभद्रो वैष्णवा मता ॥३७३॥

सारसङ्ग्रहे—

नन्दी चैव महाकालो गणेशो वृषभस्तथा ।
ततो भृङ्गिरिटिस्कदावुमाचण्डेश्वरौ तत. ॥३७४॥

एते चाष्टौ महेशस्य द्वारपालौ (ला.) प्रकीर्तिता ।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥३७५॥

वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा च श्रिया सह ।
एता देव्याः क्रमादष्टौ शक्तयो द्वारपालिकाः ॥३७६॥

एता एव सौरद्वारपालिका । 'सौर शक्तिमयं महो विजयते सौन्दर्यसीमास्पद'मिति वामदेवतन्त्रोक्तेः । आर्कमारवशिशिर विश्वेशिकाया वपुरिति सारसङ्ग्रहोक्तेश्च ।

तन्त्रान्तरे—

प्रतिद्वार पार्श्वयोस्तु द्वौ द्वावष्टाविति क्रमात् ।

अथ द्वारदेवानां ध्यानम्—

श्रीललितार्चनचन्द्रिकायाम्—

पाशाङ्कुशफलाम्भोजपाणिपाटलतुन्दिलम् ।
[1]वीरविघ्नेश्वर वन्दे गजवक्त्र त्रिलोचनम् ॥३७७॥

पद्मद्वयवराभीतिभास्वत्पाणिचतुष्टया ।
निर्दग्धहेमगौराङ्गी महालक्ष्मीस्त्रिलोचना ॥३७८॥

ध्येयेति शेष. ।

अक्षस्रक्पुस्तकाभीतीर्दधाना बाहुभिर्वरम् ।
त्रिलोचना स्मरेद्देवी सर्वशुक्ला सरस्वतीम् ॥३७९॥

तप्तकार्तस्वराभासा दिव्यरत्नविभूषिता ।
द्वारश्रीरूर्द्ध्वपद्मस्था वराभयकराम्बुजा ॥३८०॥

सितो गजास्यः परशु दन्तं पाश त्रिशूलकम् ।
भुजैश्चतुर्भिर्बिभ्राणो मूषकोपरिसस्थितः ॥३८१॥

कपालशूले बिभ्राण कृपालु कृष्णविग्रहम् ।
तीक्ष्ण त्र्यक्ष समर्चामि क्षेत्रेश क्षतविद्विषम् ॥३८२॥

मुक्तामाणिक्यसङ्काशौ किञ्चित्स्मितमुखाम्बुजौ ।
अन्योन्यालिङ्गनपरौ शङ्खपङ्कजधारिणौ ॥३८३॥

विगलद्रत्नवर्षाभ्या शङ्खास्या मूर्ध्नि लाञ्छितौ ।
शङ्खासनसमासीनौ विश्वसङ्कल्पकल्पकौ ॥३८४॥

तुन्दिल कम्बुकनिधि वसुधरा[2] घनस्तनीम् ।
वामत पङ्कजनिधि प्रियया सहित स्मरेत् ॥३८५॥

१. ख. वीरं० । २ ख. वसुधारा ।

सिन्दूराभौ भुजाश्लिष्टौ रक्तपद्मोत्पलान्वितौ ।
निःसरद्रत्नवर्षाभ्यां पद्माभ्यां मूर्ध्नि लाञ्छितौ ॥३८६॥

पद्मासनसमासीनौ विश्वसङ्कल्पकल्पकौ ।
तुन्दिलं पङ्कजनिधिं तन्वीं वसुमतीमपि ॥३८७॥

वराङ्कुशौ पाशमभीतिमुद्रां,
करैर्दधानां भवभावमूलाम् ।
घनाघनौघप्रभदेहकान्तिं,
मायां त्रिनेत्रामनिशं स्मरामि ॥३८८॥

पाशाङ्कुशवराभीतीर्दधानामरुणप्रभाम् ।
त्रिनेत्रां चित्कलां वन्दे गौरीं रक्ताम्बरोज्वलाम् ॥३८९॥

वराभयकरां सौम्यां सोमकोटिसमप्रभाम् ।
भजे गङ्गां महादेवीं परां देवतरङ्गिणीम् ॥३९०॥

वामपादार्घसम्भूतां परां देवतरङ्गिणीम् ।
वराभयकरां वन्दे कालिन्दीं कालविग्रहाम् ॥३९१॥

भर्त्तारं जगतां वन्दे शङ्खचक्रगदाम्बुजम् ।
बिभ्राणं गरुडारूढं धातारं कृष्णविग्रहम् ॥३९२॥

रक्तं रक्तारविन्दस्थं वराभयकमण्डलून् ।
हंसारूढं विधातारं वन्देऽक्षस्रक्समन्वितम् ॥३९३॥

सिंहारूढां श्यामवर्णां खड्गखेटकधारिणीम् ।
अथ स्यां देहलीं वन्दे पश्चिमास्यां सुरक्षिणीम् ॥३९४॥

सारसङ्ग्रहे—

पश्चिमद्वारमासाद्य तारत्रितयपूर्वकम् ।
द्वारमुद्घाट्य चास्त्रेण मन्त्रितान् सर्षपाक्षतान् ॥३९५॥
पुष्पयुक्तांस्तु विकिरेन्मण्डपाभ्यन्तरे बुधः
नाराचमुद्रया सम्यगस्त्रमन्त्रेण देशिकः ॥३९६॥

नारायणीये—

अपक्रामन्तु भूतानीत्येतन्मन्त्रद्वयं गुरुः।
पठित्वाऽक्षतसिद्धार्थपुष्पाणि विकिरेत्ततः ॥३९७॥
अस्त्रमन्त्रेण मन्त्रज्ञो मण्डपाभ्यन्तरे बुधः ।

मन्त्रद्वय प्रयोगे वक्तव्यम्। अस्त्रेण स्वाराध्यमन्त्राङ्गभूतेन, न तु केवल फट्कारेण।

हकाररेफौ च विसर्गवन्ता-
वस्त्राय फट्कारवचस्तदन्ते।
उक्त्वान्तरे सर्षपमक्षतांश्च,
पुष्पाणि मुञ्चेत् ·· ·· ॥३९८॥

इति भुवनेश्वरीपारिजातोक्तेः। एतत्पद्योक्तोऽयमस्त्रमन्त्रस्तु भुवनेश्वर्याः। एवमन्यदीयोऽपि ग्राह्यः।

तूर्णापद्धतौ—

निर्गच्छता तु विघ्नाना वर्त्म दद्यात् स्ववामत।

सोमशम्भु—

मण्डपाभ्यन्तरे विद्वान् वामपादपुरस्सरम्।
प्रविश्य विघ्नांस्त्रिविधानुत्सार्याऽस्त्रमनु स्मरन् ॥३९९॥

यामले—

पाखण्डकारिणो भूता भूमौ ये चान्तरिक्षगाः।
दिवि लोके स्थिता ये च ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥४००॥
इत्यन्तेऽस्त्र समुच्चार्य पार्ष्णिघातादिभिस्त्रिभिः।
विघ्नानुत्सारयेदिति।

तूर्णायागे—

पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमास्तालैस्तानन्तरिक्षगान्।
विघ्नानुत्सारयेद्दिव्यानस्त्रतीक्ष्णावलोकनात् ॥४०१॥

पार्ष्णिघातैर्वामपदस्य वामपार्ष्णेस्त्रिभिर्घातैर्भूमिष्ठानिति **सोमशम्भु-**वचनात्।

ललितार्चनचन्द्रिकायाम्—

कास्यघण्टास्वन कृत्वा द्वारमाच्छाद्य वाससा।
पञ्चगव्यार्घतोयाभ्या प्रोक्षयेन्मण्डपान्तरम् ॥४०२॥

पञ्चगव्यप्रमाणन्तु—

गौतमीये—

पलमात्र दुग्धभाग गोमूत्र तावदिष्यते।
घृतञ्च पलमात्र स्याद् गोमय तोलकद्वयम् ॥४०३॥

दधि प्रसृतिमात्रं स्यात्पञ्चगव्यमिदं स्मृतम् ।
अथवा पञ्चगव्यानां समानो भाग इष्यते ॥४०४॥

श्रीकुलार्णवे—

सम्मार्जनोपलेपाद्यैर्दर्पणोदरवत्कृतम् ।
वितानधूपदीपादिपुष्पदामादिशोभितम् ॥४०५॥
पञ्चवर्णरजश्चित्रं स्थानशुद्धिरियं मता ।

सारसङ्ग्रहे—

नैर्ऋत्यामर्चयेद्वास्तुपुरुषं चन्दनादिभिः ।
ईशाने दीपनाथं च क्षेत्रपालाज्ञया ततः ॥४०६॥
सविशेदासने मन्त्रीति । क्षेत्रपालप्रार्थनमन्त्रः प्रयोगे वक्तव्यः ।

उत्तरतन्त्रे—

अं फडिति च मन्त्रेण पूजावेदीं ततो विशेत् ।
संस्कुर्यादासनस्थानं चतुर्भिर्वीक्षणादिभिः ॥४०७॥
संस्कारैस्तत्र सम्पूज्या वेद्यन्ताः पीठदेवताः ।
आधारशक्तिमारभ्य स्वासनं तत्र विन्यसेत् ॥४०८॥
आधारशक्तिमित्युपलक्षणं मण्डूकमारभ्येत्यर्थः ।

इति श्रीगोस्वामिश्रीश्रीनिवासभट्टपौत्रश्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ
प्रथमस्तरङ्गः ॥१॥



द्वितीयस्तरङ्गः

अथासनानि तत्र

पुरश्चरणचन्द्रिकायम्—

सर्वसिद्ध्यै व्याघ्रचर्म ज्ञानसिद्ध्यै मृगाजिनम् ।
वस्त्रासन रोगहर वेत्रज श्रीविवर्द्धनम् ॥१॥

कौशेय पौष्टिक प्रोक्त काम्वल दु खमोचनम् ।
अभिचारे कृष्णवर्णं रक्त वश्यादिकर्मणि ॥२॥

शान्तिके धवल प्रोक्त चित्रक सर्वकर्मसु ।
स्तम्भने गजचर्म स्यान्मारणे माहिप तथा ॥३॥

मेषीचर्म तथोच्चाटे खड्गज वश्यकर्मणि ।
विद्वेषे जाम्बुक प्रोक्त भवेद् गोचर्म शान्तिके ॥४॥

वशासने च दारिद्रय दौर्भाग्य दारुजासने ।
धरण्या दु खसम्भूति पाषाणे व्याधिसम्भवः ॥५॥

तृणासने यशोहानि. पल्लवे चित्तविभ्रम ।
इष्टकायामथाधि, स्यादेतत्साधारणे जये ॥६॥

नादीक्षितो विशेज्जातु कृष्णसाराजिने गृही ।
विशेद्यतिर्वनस्थश्च ब्रह्मचारी च स्नातक ॥७॥

कुशाजिनाम्बरेणाढ्य चतुरस्र समन्तत ।
एकहस्त द्विहस्तं वा चतुरङ्गुलमुच्छ्रितम् ॥८॥

शारदातिलकटीकायाम्—

कौशेय वाथ चैल वा चार्मं तौलमथापि वा ।
वेत्रज तालपत्र वा काम्वल दार्भमासनम् ॥९॥

वशाश्मवीरुद्धरणीतृणपल्लवनिर्मितम् ।
वर्जयेदासनं मन्त्री दारिद्रयव्याधिदु खदम् ॥१०॥

धर्मार्थकाममोक्षाप्त्यै चैलाजिनकुशोत्तरे ।
दार्वासनेऽन्यत्र विशेष उक्त ।

यतीनामासन श्लक्ष्ण कूर्माकारं तु कारयेत् ।
अन्येषा तु चतुष्पाद चतुरस्र तु कारयेत् ॥११॥

गोशकृण्मृण्मय भिन्न तथा पालाशपिप्पलम् ।
लोहविद्ध सदैवार्क वर्जयेदासन बुध ॥१२॥

व्यास—

दौर्भाग्य छिद्रदारुजे ।

नारदः—

कुशाजिनाम्बरैर्युक्त चतुरङ्गुलमूर्ध्वतः ।
चतुरस्र द्विहस्त च सुदृढ मृदु निर्मलम् ॥१३॥
आसन कल्पयित्वा तु जपकर्म समारभेत् ।

केवलवस्त्रासने दोषो

ब्रह्मयामले—

तृणपल्लवकाष्ठानि पाषाण मृण्मय तथा ।
वशासन च वस्त्र च केवल क्षितिमासनम् ॥१४॥
एवमष्टविध देवि चासन परिवर्जयेत् ।

उत्तरतन्त्रे—

वास्त्रेषु कम्बल श्रेष्ठमासन देवतुष्टये ।

ब्रह्मयामले—

तृणासने भवेद्रोगः पल्लवे चित्तविभ्रमः ।
पाषाणे च तथोच्चाटो ज्वर स्यान्मृण्मयासने ॥१५॥

क्षित्यासने भवेत्पीडा पापविस्फोटदु खदा ।
वशासने दरिद्र. स्याद्वस्त्रे स्थानविनाशनम् ॥१६॥

चिन्ता च प्रबला हानिरुच्चाटो विविधो ज्वरः ।
शोकशूलादिका रोगा मृत्यु. स्याद्दारुकासने ॥१७॥

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

स्वस्तिकादिक्रमेणाथ विशेत्तत्र निराकुलः ।

शारदातिलकटीकायाम्—

पद्मस्वस्तिकवीरादिष्वेकासनसमास्थित. ।
जपार्चनादिक कुर्यादन्यथा निष्फल भवेत् ॥१८॥

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

स्वस्तिक पद्मकं वीरं सिद्ध चेति चतुष्टयम् ।

जपे प्रशस्तमिति । स्वस्तिकादिलक्षणानि—

गोरक्षसंहितायाम्—

जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे[1] ।
ऋजुकाय समासीन. स्वस्तिकं तदुदाहृतम् ॥१९॥

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयो क्षिपेत् ।
पार्श्वपादौ च पाणिभ्या दृढं बद्ध्वा सुनिश्चल.[2] ॥२०॥

सिद्धासन भवेदेतत्सर्वव्याधिविषापहम ।
एकपादमथैकस्मिन्विन्यस्योरुणि सस्थितम् ॥२१॥

इतरस्मिंस्तथा चोरौ वीरासनमुदाहृतम् ।
वामपादमुपादाय दक्षिणोरौ प्रविन्यसेत् ॥२२॥

तथैव दक्षिण पादं सव्यस्योपरि विन्यसेत् ।
पद्मासन भवेदेतत्सर्वेषामपि पूजितम् ॥२३॥

शारदातिलकटीकायाम्—

दानमाचमन होम भोजन देवतार्चनम् ।
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्याय चैव तर्पणम् ॥२४॥

आसनारूढपादस्तु जानुनोर्वाऽथ जङ्घयो ।
कृत्वावसस्थिको यस्तु प्रौढपाद स उच्यते ॥२५॥

गौतमीतन्त्रे—

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि स्वस्तिकासनमास्थित ।
रात्रावुदङ्मुख कुर्याद्दैवकार्यं सदैव हि ॥२६॥

शिवार्चन सदाऽप्येव शुचि कुर्यादुदङ्मुख ।[3]

उत्तरतन्त्रे—

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा भूत्वा प्रयतमानस ।
स्वस्तिकासनमासीन पद्मासनमथापि वा ॥२७॥

---

१. ख. उभे । २. ख. सुनिश्चतः । ३. ख. पुस्तके विशेष.—

निबन्धे— तत्र कृष्णार्चक प्रायो दिवसे प्राङ्मुखो भवेत् ।
उदङ्मुखो रजन्यां तु स्थिरमूर्तेश्च सम्मुखः ॥१॥

आपस्तम्ब —

पूजासनमथात्मीय चेलाजिनकुशोत्तरम् ।
तत्रोपविश्य विधिवत्स्मरेद्विष्णुं गुरु मुदा ॥२८॥

विष्णुमित्युपलक्षणम् । स्वेष्टदेवमित्यर्थ. । योगिनीतन्त्रे पृथ्वीमन्त्रेणासने सन्निविष्ट । मन्त्र प्रयोगे वक्तव्य· ।

भैरवीतन्त्रे—

मेरुपृष्ठ ऋषि. प्रोक्त. सुतल छन्द ईरितम् ।
पृथिवी देवता प्रोक्ता विनियोगो निजासने ॥२९॥

सारसङ्ग्रहे—

आसनस्य चतुष्कोणे गणेश च सरस्वतीम् ।
दुर्गा क्षेत्रपतिं चापि वह्न्यादिषु समर्चयेत् ॥३०॥

स्थापयेद्दक्षिणे भागे पूजाद्रव्याणि चात्मन ।
सुवासिताम्बुसम्पूर्णं सव्ये कुम्भ सुशोभनम् ॥३१॥

प्रक्षालनाय करयोः पात्र पृष्ठे निधापयेत् ।
घृतादिज्वलितान् दीपान् स्थापयेत्परित शुभान् ॥३२॥

दर्पण चामर छत्र तालवृन्त च पादुके ।
यथायथ तु सस्थाप्य सस्कुर्यात्तानि चात्मवान् ॥३३॥

उत्तरतन्त्रे—

पुष्पनैवेद्यगन्धादि ह्रॉ हूँ फडिति मन्त्रकै ।
नाराचमुद्रया दृष्ट्या समया च विलोकयेत् ॥३४॥

यदात्मना न विज्ञातं सम्यक् पुष्पादिदूषणम् ।
अस्पृश्यस्पर्शन वापि यदन्यायार्जित च वा ॥३५॥

तथा निर्माल्यसस्पृष्टं कीटाद्यारोहण च यत् ।
तत्सर्वं नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात् ॥३६॥

ततो रमिति मन्त्रेण शिखा दीपस्य सस्पृशेत् ।
स तु स्याच्छुभदो दीपो निष्क्रव्याद सुखप्रदः ॥३७॥

पतङ्गकीटकेशादिदाहात् क्रव्यादसंहते ।
वसामज्जादिसम्भूतैर्यज्ञादावुपयोजने ॥३८॥

अज्ञातरूप तत्सर्वं दोषः स्पर्शाद्विनश्यति ।
नारसिंहेन मन्त्रेण देवतीर्थेन संस्पृशेत् ॥३९॥

पानीयं घटमध्यस्थ वीक्षन् गृह्य च याजकः ।
वामेन पाणिना धृत्वा वामपार्श्वेस्थित तदा ॥४०॥

पात्रमाधारमन्त्रेण संस्कुर्वन् संस्पृशेज्जलम् ।
यदज्ञानादपेयादिसंस्पृष्टिरिह सङ्गता ॥४१॥

यदन्यद्दूषणं पात्रे तोये वाऽज्ञानतो भवेत् ।
[1]जलाशयशिवस्पर्शाज्जलस्नानाच्च सङ्गतम् ॥४२॥
दूषणानि विनश्यन्ति तानि वै देवपूजने ।

नारसिंहो मन्त्र एकाक्षर. स तु प्रयोगे वक्तव्य. । आधारमन्त्रस्तु—

'स्वसंज्ञाद्यक्षर बिन्दुचन्द्रार्द्धपरियोजितम्'

इति सज्ञाद्यक्षर नामाद्यक्षरमित्यर्थ. । तेन आँ इति ।

ज्ञानार्णवे—

आत्मस्थानद्रव्यदेवमन्त्रशुद्धि तु पञ्चमीम् ।
यावन्न कुरुते देवि तावद्देवार्चनं कुत ॥४३॥

पञ्चशुद्धिं विना पूजा अभिचाराय कल्पते ।
सुस्नातैर्भूतशुद्ध्याच्च च प्राणायामादिभि प्रिये ॥४४॥

षडङ्गाद्यखिलन्यासैरात्मशुद्धिरितीरिता ।
ग्रथित मातृकावर्णैर्मूलमन्त्राक्षराणि च ॥४५॥

क्रमोत्क्रमाद् द्विरावृत्त्या मन्त्रशुद्धिरितीरिता ।
पूजाद्रव्याणि मूलास्त्रैर्विशोध्य च विधानत ॥४६॥

दर्शयेद्धेनुमुद्रादि द्रव्यशुद्धिरितीरिता ।
पीठे देवी प्रतिष्ठाप्य सकलीकृत्य मन्त्रवित् ॥४७॥

मूलमन्त्रेण दीपादीन्माल्यादीनुदकेन च ।
त्रिवार प्रोक्षयेद्धीमान् देवशुद्धिरितीरिता ॥४८॥

स्थानशुद्धि प्रागुक्तैव ।

---

१. ख जलाशयशवस्पर्शात्० ।

उत्तरतन्त्रे—

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वामदक्षिणपार्श्वयोः ।
नत्वा गुरुं गणेशानं पुरतः स्वेष्टदेवताम् ।।४९।।

सुगन्धपुष्पाण्यादाय चन्दनाक्तानि मन्त्रवित् ।
मर्दयित्वा करौ सम्यक् सुरभीकृत्य साधकः ।।५०।।

वामहस्ते समादाय निर्मुष्ट्याघ्राय[1] तत्पुनः ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण चैशान्या दूरतस्त्यजेत् ।।५१।।

सारसङ्ग्रहे—

क्षिपेदुत्तरतः पुष्पं मन्त्री नाराचमुद्रया ।

कालिकापुराणे—

कुसुमं विष्णुमन्त्रेण स्वाङ्गुल्यग्रेण साधकः ।
विमर्दनार्थं गृह्णीयात्करशोधनकर्मणि ।।५२।।

निर्मुष्ट्य[2] रोमबीजेन जिघ्रद् घ्राणेन तत्पुनः ।
प्रासादेन परित्यागो दिश्यैशान्या विशेषतः ।।५३।।

एवं कृते तु करयोर्विशुद्धिरतुला भवेत् ।
अङ्गुल्यग्राणि शुद्धानि पुष्पाणां ग्रहणाद्भवेत् ।।५४।।

तलद्वयं मर्दनात्तु विशुद्धमति जायते ।
निर्मुञ्छनात्पाणिपृष्ठं घ्राणान्नासाग्रमुत्तमम् ।।५५।।

तीर्थानि च समायान्ति नासिकाग्रं करं प्रति ।
उपान्त्यः साग्निचन्द्रेण रञ्जितः शून्यसंयुतः ।।५६।।
रुद्रान्तोपरि संस्पृष्टो मन्त्रोऽयं वैष्णवः स्मृतः ।

उपात्यो हकारः,मातृकायाः पञ्चाशदक्षरत्वेन द्वितीयलकारस्याग्रहणात् । अग्नी रेफ, चन्द्रः सकारः, शून्यं विन्दुः, रुद्रान्तः ऐकार, ह्स्रैंमिति वीजं सिद्धम् ।

प्रान्तादिर्वासुदेवान्तवर्णेनापि च संहतः ।
शम्भुचूडाशिखाविन्दुयुक्तः प्रासाद उच्यते ।।५७।।

प्रान्तादिर्हकारः । वासुदेवान्त औकार । शम्भुचूडशिखा अर्द्धचन्द्रः । विन्दुरनुस्वारः, तेन हौँ, रोमबीजं रोमिति ।

१. ख निर्मुंछ्याघ्राय । २, निर्मुंछ्य ।

नृसिंहकल्पे—

करशुद्धिं समापाद्य कुर्यात्तालत्रयं ततः ।
ऊर्द्ध्वोर्द्ध्वमस्त्रमन्त्रेण दिग्बन्धमपि देशिकः ॥५८॥
तेन सञ्जनितं तेजो रक्षां कुर्यात्समन्ततः ।

अस्त्रमन्त्रेणेत्यस्य करशुद्ध्यादिषु त्रिषु सम्बन्धः ।

पाणी विशोधयेदस्त्रमन्त्रेण मनुवित्तम ।

इति दक्षिणामूर्त्तिकल्पवचनात् । अस्त्रमन्त्रस्तु तत्तदङ्गभूतः । न तु केवलं फट्कारः ।

र. अस्त्राय फट् प्रोक्ता भ्रामयेद्दक्षिणं करमिति ।

कुम्भसम्भववचनात् । दिग्बन्धस्वरूपमुक्तम् प्रयोगसारे—

आच्छाद्य दिक्षु तर्जन्या ज्येष्ठाग्रस्खलिताग्रया । इति ।

सारसङ्ग्रहे—

प्राकारत्रितयं वह्नेः कृत्वाऽस्त्रेण स्वमुद्रया ।

स्वमुद्रया । अग्निप्राकारमुद्रया । तल्लक्षणम् —

प्रयोगसारे—

त्रिशूलाढ्यौ करौ कृत्वा व्यत्यस्तावभितो नयेत् ।
अस्त्रमुद्रेयमाख्याता वह्निप्राकारलक्षणा ॥५९॥
परद्रोहोपशमनी नागाशनिभयापहा ।

सनत्कुमारीये गोपालकल्पे—

सुखासनेनोपविश्य प्राणायामं विधाय वै ।
भूतशुद्धिं ततः कृत्वा न्यासं कुर्यादनन्तरम् ॥६०॥

न्यासं मातृकायाः ।

शारदातिलके—

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वामदक्षिणपार्श्वयोः ।
नत्वा गुरुं गणेशानं भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥६१॥

सारसङ्ग्रहे—

भूतशुद्धिं ततः कुर्यात्प्राणायामपुरःसरम् ।

ज्ञानार्णवे—

आसने सम्यगासीनो वामेनापूर्य चोदरम् ।
कुम्भकेन त्रिरावृत्य दक्षिणेन तु रेचयेत् ॥६२॥

ह निष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।
प्राणायाम स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना ॥६३॥

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

मूलमन्त्रेण देवेशि वामेनापूर्य चोदरम् ।
कुम्भकेन त्रिरावृत्य दक्षिणेन तु रेचयेत् ॥६४॥

त्रिरिति न्यूनसख्याव्यवच्छेदकम् ।

कुम्भसम्भवः—

यावच्छक्यं नियम्यासून्मनसैव मन जपेत् ।
राम मुहुर्मुहुर्ध्यायन्पूर्वोक्तविधिना मुने ॥६५॥

असून्नियम्य कुम्भक कृत्वा राम ध्यायेत्, यावच्छक्य मनु जपेदिति सम्बन्ध । अत कुम्भकसमय एव मन्त्रजपो ज्ञेय ।

दक्षिणामूर्त्तिकल्पेऽपि—

प्राणापानौ समौ कृत्वा प्रविधाय च कुम्भकम् ।
हृत्पङ्कजे समासीन मां ध्यायन् यतमानसः ॥६६॥
मूलमन्त्र यथाशक्ति जपेद्भक्तिपरायणः ।

वामकेश्वरतन्त्रे—

कुम्भके चिन्तयेद्विद्वान् विद्या मुक्तिकरी शुभाम् ।
पूरकं कुम्भक चैव रेचक च विचिन्तयेत् ॥६७॥

ललितार्चनचन्द्रिकायाम्—

वाह्यादाधरण[1] वायोरुदरे पूरको हि स. ।
सम्पूर्णं कुम्भवद्वायोर्धारण कुम्भको मत ॥६८॥

वहिर्यद्रेचनं वायोरुदराद्रेचक. स्मृत ।
युक्तं युक्तं पिवेद्वायु युक्त युक्तं च धारयेत् ॥६९॥

युक्तं युक्त त्यजेदेनमेव सिद्धिमवाप्नुयात् ।
यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वार्यः शनै. शनै ॥७०॥

तथैव हि निजो वायुरन्यथा हन्ति साधकम् ।
प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ॥७१॥
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः ।

१. ख. वाह्यावापूरणं ।

जपपूजाङ्गभूतप्राणायामेषु यथाशक्ति मूलमन्त्रस्य जप एव कार्यः । न तु मात्रादिगणना । तस्या योगाङ्गप्राणायामपरत्वात् । उक्तञ्च—

कात्यायनीतन्त्रे—

मध्यामूलाद्यावदग्रमङ्गुष्ठेन निपीडयते ।
मात्रा सा प्रोच्यते सद्भिर्योगेऽभीष्ट प्रयच्छतीति ॥७२॥

योगशास्त्रे—

जानु प्रदक्षिणीकुर्याद्यावत्कालेन साधक ।
तावत्कालमिता मात्रा स्वनिश्वाससमापि सा ॥७३॥

प्रातर्मध्यन्दिने सायमर्द्धरात्रे च कुम्भकान् ।
शनैरशीतिपर्यन्त चतुर्वार समभ्यसेत् ॥७४॥

कनीयसि भवेत्स्वेद कम्पो भवति मध्यमे ।
उत्तिष्ठत्युत्तमे प्राणरोधे पद्मासनो मुहु. ॥७५॥

जलेन श्रमजातेन गात्रमर्दनमाचरेत् ।
दृढता लघुता चैव तेन गात्रस्य जायते ॥७६॥

अभ्यासकाले प्रथमे शस्त क्षीराज्यभोजनम् ।
ततोऽभ्यासे दृढे भूते न तादृङ्नियमग्रह ॥७७॥

रुद्रयामले—

सगर्भश्च विगर्भश्च प्राणायामो द्विधा मत. ॥

योगिनीतन्त्रे—

अयम्प्राणायाम. सकलदुरितध्वसनकरो
विगर्भः प्रोक्तोऽसौ शतगुणफलो गर्भकलित ।
जपध्यानापेत स तु निगदितो गर्भरहित,
सगर्भस्तद्युक्तो मुनिपरिवृढैर्योगनिरतै· ॥७८॥

त्रिपुरासारसमुच्चये—

अथेद शरीर स्वकीयाङ्गुलीभि—
र्बुधै षण्णवत्यङ्गुलायामयुक्तम् ।
दिनेशाङ्गुलीभि· शरीरात् समीरो
ऽधिक प्राणसज्ञो मतो योगविद्भि· ॥७९॥

इति प्राणवायु सदाऽभ्यासतो यो
नरो न्यूनभाव नयत्येनमङ्गात् ।

समत्व शरीरेण वा भूतलेऽस्मिन् ।
स पूज्यो बुधैरुत्तमो योगवित्सु ॥८०॥

शुचि प्राणायामान् प्रणवसहितान् षोडश वशी,
प्रभाते सायञ्च प्रतिदिवसमेव वितनुते ।
द्विजो यस्त भ्रूणप्रहरणकृताहोऽभिकलित-
म्पुनन्त्येते मासादिह दुरिततूलौघदहना ॥८१॥

त्रायन्त्यमी पड्भिरपीह मासै-
र्जन्मान्तरोपार्जितपापपुञ्जात् ।
संवत्सराद्ब्रह्मपद तदेक-
म्प्रकाशयन्त्येव यदच्युताख्यम् ॥८२॥

कुलार्णवे—
तपासि तीर्थयात्राद्या मखदानव्रतादय ।
प्राणायामस्य तस्यैते कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥८३॥

मानस वाचिक पाप कायिक वापि यत्कृतम् ।
तत्सर्वं निर्दहेच्छीघ्र प्राणायामत्रयेण वै ॥८४॥

दह्यन्ते ध्मायमानाना धातूना हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणा दह्यन्ते दोषा प्राणस्य सयमात् ॥८५॥

प्राणायामविशुद्धात्मा यद्यत्कर्म करोति हि ।
तत्तत्फलत्यसन्देह त्वप्रयत्नेन वा कृतम् ॥८६॥

अगस्तिसंहितायाम्—
प्राणायामैर्विना यद्यत्कृत कर्म निरर्थकम् ।
अतो यत्नेन कर्त्तव्याः प्राणायामाः शुभार्थिभि ॥८७॥

सारसङ्ग्रहे—
पादतो जानुपर्यन्त चतुरस्रं सवज्रकम् ।
लंयुत पीतवर्णं च भुव स्थान विचिन्तयेत् ॥८८॥

जान्वोरानाभि चन्द्रार्द्धनिभ पद्मेन लाञ्छितम् ।
शुक्लवर्णं स्वबीजेन युक्त ध्यायेदपा स्थलम् ॥८९॥

नाभित, कण्ठपर्यन्त त्रिकोण रक्तवर्णकम् ।
सस्वस्तिक स्वबीजेन युक्त वह्नेस्तु मण्डलम् ॥९०॥

कण्ठाद्भ्रूमध्यपर्यन्त कृष्ण वायोस्तु मण्डलम् ।
षट्कोण बिन्दुभि षड्भिर्युक्त बीजेन चिन्तयेत् ॥९१॥

भ्रूमध्याद्ब्रह्मरन्ध्रान्त वर्त्तुल ध्वजलाञ्छितम् ।
धूम्रवर्णं स्वबीजेन युक्त ध्यायेन्नभ.स्थलम् ॥९२॥

निबन्धे—

पद्धस्तपायूपस्थावाक् क्रमाद् ध्येया धरादिगा. ।
स्वकीयविपर्ययैर्युक्ता गमनग्रहणादिभि. ॥९३॥

घ्राण च रसना चक्षु स्पर्शन श्रोत्रमिन्द्रियम् ।
क्रमाद् ज्ञेय धरादिस्थ गन्धादिगुणसयुतम् ॥९४॥

ब्रह्मविष्णुशिवेशानाः सदाशिव इतीरिता ।
धरादिभूतसङ्घेशा ध्येयास्तन्मण्डलेषु ते ॥९५॥

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिश्चतुर्थिका ।
शात्यतीतेति पञ्चैव कला ध्येया धरादिगा ॥९६॥

समानोदानव्यानाश्चापानप्राणौ च वायव ।
धरादिमण्डलगताः पञ्च ध्येयाः क्रमादिमे ॥९७॥

सारसङ्ग्रहे—

इति ध्यात्वा तु भूतानि स्वकाये देशिकोत्तम. ।
धर्मकन्दसमुद्भूत ज्ञाननाल सुशोभनम् ॥९८॥

ऐश्वर्याष्टदल चैव परवैराग्यकर्णिकम्[1] ।
स्वीयहृत्कमल ध्यायेत्प्रणवेन प्रकाशितम् ॥९९॥

कृत्वा तत्कर्णिकासस्थ प्रदीपकलिकानिभम् ।
सुषुम्णावर्त्मनात्मान परमात्मनि योजयेत् ॥१००॥

योगयुक्तेन विधिना सोऽह मन्त्रेण देशिक ।
तत्रैव सर्वतत्वानि विलीनानि विचिन्तयेत् ॥१०१॥
तत पापपुरुष ध्यायेत्तत्प्रयोगे वक्तव्यम् ।

---

१ ख. पर वैराग्यकर्णिकम् ।

तथा—

ततः संशोषयेदेन पूरकादिक्रमेण वै ।
विधाय प्राणसंरोधं वायुबीजेन वायुना ॥१०२॥

वह्निबीजेन तेनैव सन्दहेत्सकलां तनुम् ।
भस्म तद्वाममार्गेण निर्गतं चिन्तयेत्सुधीः ॥१०३॥
ततो वमिति बीजेन प्लावयेत्सकलां तनुम् ।

डामरे—

बीजैश्चतुर्विधैर्वायोरग्नेर्वरुणशक्रयोः ।
यमिदं शोषकं बीजं रमिदं दाहकं महत् ॥१०४॥

वं वै प्लावनबीजं[1] च लमैन्द्रममृतात्मकम् ।

लमिति बीजेन दग्धप्लावितशरीरस्य पुनः स्वस्थीकरणमुक्तम् ।

सञ्जाते सकले देहे देवतोपासनक्षमे ।
आत्मलीनानि तत्वानि स्वस्थानं प्रापयेत्ततः ॥१०५॥

आत्मनो हृदयाम्भोजमानयेत् परमात्मनः ।
हंसमन्त्रेण विधिवत्तेजोरूपकलेवरम् ॥१०६॥
देवताराधने योग्यमुत्पन्नमिति भावयेत् ।

अत्र केचित्—

संयोज्य जीवमथ दुर्गममध्यनाडी
मार्गेण पुष्करनिविष्टशिवे सुसूक्ष्मे ।

हंसेनेति **योगिनीतन्त्र**वचनात् ।

नेतव्यो हंसमन्त्रेण द्वादशान्ते सितः परः ।

इत्यन्यत्राप्युक्तत्वाद्धंसमन्त्रेण जीवस्योन्नयनम् ।

सोहं मन्त्रेण तामाद्यां नादान्ते सिद्धभाविताम् ।
ध्यात्वैव ब्रह्मरन्ध्राच्च हृदि जीवकलां न्यसेत् ॥१०७॥

इति **वसिष्ठसंहिता**वचनात् ।

सोहं धियात्मचैतन्यं समानीय चिदम्बरात् ।

---

१. ख. प्लावन बीजं ।

इति गणेश्वरपरार्मर्शिणीवचनाच्च सोहं मन्त्रेण जीवस्यानयनं वदन्ति। यथागुरूपदेशमत्र कर्त्तव्यम्। अत्र वायुबीजादिजपस्तत्तत्कर्मभावनापर्य्यन्तं विधेयः।

ततो भूतात्मकं देहं वायुबीजेन वायुना।
वायुमुत्तोल्य संशोप्य ज्ञात्वामुं दक्षया त्यजेत् ॥१०८॥

इति कात्यायनीसंहितायाम्।

दक्षिणे वह्निबीजेन प्रागदग्धमिति भावयेत्।

इति योगिनीतन्त्रे च सख्यानुक्ते।

शारदातिलकटीकायाम्—

अत्र स्थानत्रये षोडश-चतुष्षष्टि-द्वात्रिंशत्संख्याक्रमेण जप इति केचित्। अन्ये द्वादश-पञ्चाशत्पञ्चविंशतिसंख्येत्यूचुः। तदुक्तम्—

संहितायाम्—

मरुदग्निसुधाबीजैः पञ्चाशन्मात्रमात्रकम्। इति।

आचार्याश्च—

अथवा शोषणदहनप्लावनभेदेन शोधिते देहे।
पञ्चाशद्भिर्मात्रा सदैव विधिवत्समापयेत्प्राणान् ॥१०९॥

इत्युक्तं यथागुरूपदेशं कर्त्तव्यम्।

कुम्भसम्भवः—

भूतशुद्धिविहीनेन कृता पूजाऽभिचारवत्।
विपरीतफलं दद्यादभक्त्या पूजनं यथा ॥११०॥

शारदातिलकटीकायाम्—

भूतशुद्धिं विना कर्मजपहोमार्चनादिकम्।
भवेत्तन्निष्फलं सर्वप्रकारेणाप्यनुष्ठितम् ॥१११॥

श्रीकुलार्णवे—

आत्मस्थानमनुद्रव्यदेवशुद्धिश्च पञ्चमी।
यावन्न कुरुते देवि तावद्देवार्चनं नहि ॥११२॥

सुस्नानभूतसंशुद्धिप्राणायामादिभिः प्रिये।
षडङ्गाद्यखिलन्यासैर्देहशुद्धिरितीरिता ॥११३॥

सारसंग्रहे—

भूतशुद्धिं विधायेत्थं ततो वै स्थापयेदसून् ।
तार नारायण सेन्दु मायामङ्कुशमुद्धरेत् ॥११४॥

यादीन्सविन्दून्सप्तार्णानुद्धृत्य वियदो युगम् ।
विन्दुयुक्त चाजपाख्य परमात्ममनुं वदेत् ॥११५॥

अमुष्यशब्दमुद्धृत्य प्राणा इह इतीरयेत् ।
प्राणा. पाशादिकान्वर्णास्तिथिसख्यान् पुनर्वदेत् ॥११६॥

अमुष्य जीव इह च स्थित इहेत्युद्धरेत्तत.[1] ।
पुन. पञ्चदशार्णान्ते अमुष्येति पद वदेत् ॥११७॥

सर्वेन्द्रियाणि च तत पुन पञ्चदशार्णकान् ।
अमुष्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणपदादय[2] ॥११८॥

प्राणा इहागत्य सुख चिर तिष्ठन्तु च द्विठ ।
इत्थ प्राणप्रतिष्ठाख्यमनु. प्रोक्तो मनीषिभि. ॥११९॥

चतुर्दशोत्तरशतवर्णैः सर्वार्थसिद्धिद ।

तारः प्रणवः, नारायणः आकारः स सेन्दु. सानुस्वारः। माया भुवनेश्वरी-बीज ह्रीमिति। अङ्कुशस्तद्बीज क्रोमिति। वियत् हकार, औस्वरूपम्, विन्दुरनुस्वार. तेन हौमिति। अजपा हस. इति परमात्ममनुः। सोहमिति, द्विठः स्वाहाकारः। स्वीयप्राणप्रतिष्ठायाममुष्येति स्थाने ममेति पद योज्यमेव देवतादिप्रतिष्ठाया तत्तद्देवतानाम षष्ठ्यन्तं ग्राह्यम् ।

अत्र केचित्—

प्रत्यमुष्यपद पूर्वं पाशाद्यानि प्रयोजयेत् ।
प्रयोगेषु समाख्यात प्राणमन्त्रो मनीषिभि. ॥१२०॥

इति शारदातिलकादिदर्शनात्पाशबीजादिपञ्चदशवर्णानामादावेवोच्चारण स्थानान्तरेषु न काम्यप्रयोगकाले तेषामुच्चार; स्थानान्तरेषु न जपपूजादिष्विति वदन्ति तत्र स्वगुरुमत प्रमाणम् ।

सारसङ्ग्रहे—

ऋषयो ब्रह्मविष्णवीशा मन्त्रस्यास्य समीरिता. ।
छन्दासि ऋग्यजु सामान्याहुरागमपारगाः ॥१२१॥

---

१. ख. इत्युद्धरेत्ततः। २. क. ० पदास्य।

प्राणशक्तिर्देवता स्यात्सर्वप्राणिहृदि स्थिता ।
पाशो बीज शक्तिरेव शक्तिः कीलकमङ्कुश. ॥१२२॥

विनियोगस्तु विज्ञेयः प्राणस्थापनकर्मणि ।
श्रीकण्ठ विन्दुसयुक्त कवर्गं विन्दुसयुतम् ॥१२३॥

आकाशवाय्वग्निजलपृथिव्यात्मने च वदेत् ।
सविन्द्वनतो हृन्मत्र. सूक्ष्म बिन्दुयुत वदेत् ॥१२४॥

विन्दुयुक्तचवर्गान्ते शब्दस्पर्श च रूप च ।
रसगन्धात्मनेत्यन्ते त्रिमूर्त्तीश सबिन्दुकम् ॥१२५॥

वदेदथ शिरोमन्त्रस्त्वमरेश सविन्दुकम् ।
टवर्ग च तथोद्धृत्य श्रोत्रत्वक्चक्षुरित्यथ ॥१२६॥

जिह्वाघ्राणात्मनेऽर्घीशो विन्दुयुक्तः शिखामनुः ।
भिण्टीश विन्दुसयुक्तं तवर्गं तादृश वदेत् ॥१२७॥

वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने विन्दुभौतिके ।
[1]वर्माणुविन्दुयुक् सद्यः पवर्गो विन्दुसयुत ॥१२८॥

वचनादानविसर्गगमनानन्द चात्मने ।
अनुग्रहो विन्दुयुतो नेत्रमन्त्र उदाहृत ॥१२९॥

र्तिथस्वरान्ते याद्यार्णान्[2] दशविन्दुविभूषितान् ।
उक्त्वा मनोबुद्ध्यहङ्कारान्ते चित्तात्मने पदम् ॥१३०॥

विसर्ग एष सम्प्रोक्तो मनुरस्त्राभिधानक ।
एव षडङ्गमनवस्तारबीजत्रयादिका. ॥१३१॥

न्यस्तव्या जातियुक्ताश्च मन्त्रिभिः स्वकराङ्गयो. ।
नाभित पादयुग्मान्त कण्ठादानाभिमस्तकात् ॥१३२॥

कण्ठान्तर्मिति बीजानि पाशादीनि प्रविन्यसेत् ।
ततो हृत्पद्ममध्ये तु ध्यात्वा वसुदलाम्बुजम् ॥१३३॥

तस्य वाय्वग्निपूर्वेषु पश्चिमेशानयोरपि ।
नैऋतोत्तरयाम्येषु कर्णिकाया दलेषु च ॥१३४॥

---

१. ख. वर्माणुबिन्दुयुक् । २. ख याद्यर्णान् ।

यादिक्षान्तान्यक्षराणि बिन्दुयुक्तानि विन्यसेत् ।
एकैकशो लवर्ज्यानि ततो देवीं हृदि स्मरेत् ॥१३५॥

ध्यान प्रयोगे वक्ष्यते ।

इति ध्यात्वाऽर्चयित्वा च मानसैरुपचारकैः ।
हृदि हस्तमथो न्यस्य प्राणस्थापनमाचरेत् ॥१३६॥

एतत्प्रतिष्ठाप्रकारः प्रयोगे व्यक्तो भविष्यति ।

त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रे—

प्राणायाम ततः कृत्वा मातृकान्यासमाचरेत् ।

कुम्भसम्भवः—

वामया पूरयेद्वायुं स्वरैः काद्यैश्च कुम्भयेत् ।
रेचयेद्यादिभिर्वर्णैस्ततः पिङ्गलया पुनः ॥१३७॥

प्राणायामत्रयं त्वेवं कृत्वा व्यापकमाचरेत् ।
अकारादिक्षकारान्तैरापादतलमस्तकम् ॥१३८॥

इति मातृकाप्राणायाम । 'मातृकान्यासाः प्रयोगे वक्तव्याः । अत्र तेषां प्रमाणवचनानि लिख्यन्ते—'[1]

सारसङ्ग्रहे—

अथ सम्यङ्मातृकाया विधानमभिधीयते ।
अशेषदुःखशमनं समस्तज्ञानदीपनम् ॥१३९॥

प्रोक्तो ब्रह्मा मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता मता ।
सरस्वती सर्वदेववन्दिताऽनिन्दितप्रभा ॥१४०॥

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

.... हलो बीजानि शक्तयः ।
स्वरास्तु परमेशानि जाता व्यक्तिस्तु कीलकम् ॥१४१॥ इति ।

सिद्धसारस्वततन्त्रे—

दक्षहस्ततले पृष्ठे करभेऽङ्गुष्ठकादिषु ।
कनिष्ठान्तासु वामे च कनिष्ठादितलावधि[2] ॥१४२॥

स्वरान् षोडश देवेशि केवलान्विन्यसेत्प्रिये ।
बिन्दुयुक्तान्विलोमेन वामहस्ततलात्प्रिये ॥१४३॥

---

१. '—' चिह्नगतो नास्ति ख पुस्तके । २. ख. ०तलाविधि ।

दक्षहस्ततलान्तन्तु न्यसेत्संहार ईरित ।
दक्षहस्ततलाद्देवि वामहस्ततलावधि ॥१४४॥

न्यसेद्विसर्गसंयुक्तान् सृष्टिरेषा प्रकीर्त्तिता ।
वामहस्तकनिष्ठादितत्तलावधि विन्यसेत् ॥१४५॥

विन्दुसर्गयुतानष्टौ लृकारादीन्स्वरान्पुन ।
दक्षहस्ततलाद्देवि तत्कनिष्ठावधि प्रिये ॥१४६॥

अकारादिऋकारान्तान् स्थितिन्यास उदाहृतः ।
वामहस्तकनिष्ठादिपञ्चस्वङ्गुलिषु क्रमात् ॥१४७॥

तकारादिगकारान्तान् पर्वस्वेकैकशो न्यसेत् ।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तास्वङ्गुलीषु तथा न्यसेत् ॥१४८॥

दक्षहस्ते च देवेशि कादिणातान् स्थितिक्रमात् ।
पकारादीन्पञ्चवर्णान् युगपत्करयोर्न्यसेत् ॥१४९॥

अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु व्यापकत्वेन सुन्दरि ।
करशुद्धि विधायेत्थ मातृकार्णैर्महेश्वरि ॥१५०॥

षडङ्गानि[1] न्यसेत्पश्चाद्वक्ष्यमाणेन वर्त्मना ।

सारसङ्ग्रहे

ततश्चास्या षडङ्गानि विन्यसेद्देशिकोत्तम ।
अमामध्ये कवर्ग स्यादिमीमध्ये चवर्गक ॥१५१॥

उमूमध्ये टवर्ग स्यादेमैंमध्ये तवर्गक ।
अमौमध्ये[2] पवर्ग. स्यादनुस्वारविसर्गयो. ॥१५२॥

यशवर्गौ मलक्षौ[3] स्तो जातियुक्तानिमान्न्यसेत् ।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

आदावभ्यन्तरे न्यस्य षडाधारेषु मन्त्रवित् ।
अकारादिक्षकारान्ता ततो देहे वहिर्न्यसेत् ॥१५३॥

तत्प्रकारमाह दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

कलापत्राम्बुजे कण्ठे स्वरान्सम्यक्प्रविन्यसेत् ।
हृद्यर्कपत्रे तद्वर्णान्नाभौ दशदले न्यसेत् ॥१५४॥

---

१. ख षडङ्गावि । २. ख ओमौंमध्ये । ३. ख. सलक्षौ ।

दशवर्णान् लिङ्गमूले षड्दले षट् तथेश्वरि ।
चतुर्दले तथाधारे चतुर्वर्णास्ततो न्यसेत् ॥१५५॥
भ्रूमध्ये द्विदले [1]हक्षावित्यन्तर्मातृका न्यसेत् ।
इति तद्वर्णान्द्वादशवर्णान् ।

सारसङ्ग्रहे—

मस्तके मुखवृत्ते च नेत्रकर्णेषु विन्यसेत् ।
नासागण्डोष्ठदन्तेषु समूर्द्धास्येषु विन्यसेत् ॥१५४॥

पाणिपादयुगस्यापि सन्ध्यग्रेषु न्यसेत्क्रमात् ।
पार्श्वयो पृष्ठसन्नाभिजठरेषु प्रविन्यसेत् ॥१५५॥

हृद्दोर्मूलककुद्वामदोर्मूलेषु हृदादि च ।
करपद्युगले चैव जठराननयोर्न्यसेत् ॥१५६॥

न्यसेद्विन्द्वन्तिकामेता सहारेण विलोमत. ।
पूर्वोक्ता एव मुन्याद्याः षडङ्ग च तथा भवेत् ॥१५७॥

सचिन्त्य सृष्टिमार्गेण विन्यसेत्सर्गसयुतान्[2] ।
विन्दुसर्गयुतान्[3] स्थित्या [4]डादिढार्णान्तिकान्न्यसेत् ॥१५८॥
पूर्वोक्ता एव मुन्याद्याः षडङ्ग च तथा भवेत् ।

श्रीकुलार्णवे—

यतिवैखानसैः कार्य सहारान्तः कुलेश्वरि ।
न्यासो गृहस्थैः स्थित्यन्तः सृष्ट्यन्तो वर्णिना भवेत् ॥१५९॥

सारसङ्ग्रहे—

प्रणवोत्थकलायुक्त मातृका विन्यसेत्ततः ।
वर्णादिका नमोऽन्तास्ता न्यस्तव्या ध्रुवसयुता ॥१६०॥

ऋषि. प्रजापति. प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम् ।
सरस्वती कलारूपा देवता परिकीर्त्तिता ॥१६१॥
ह्रस्वदीर्घस्वरद्वन्द्वगतैरङ्ग ध्रुव[5] भवेत् ।

शारदातिलके—

तारस्य पञ्चभेदेभ्यः पञ्चाशद्वर्णगाः कला. ।
सृष्टि ऋद्धि. स्मृतिर्मेधा कान्तिर्लक्ष्मीर्द्युतिः स्थिरा ॥१६२॥

---

१. ख. वक्षावि० ।　२. ख. ०सर्गसंयुतम् ।　३. ख. ०सर्गयुतां ।
४. ख. सादिढार्णान्तिकान् ।　५. ख. ध्रुवं. ।

स्थिति सिद्धिरिति प्रोक्ता: कचवर्गकला. क्रमात् ।
अकाराद् ब्रह्मणो-पन्नास्तप्तचामीकरप्रभा: ॥१६३॥
एता. करधृताक्षस्रक्पङ्कजद्वयकुण्डिका·
जरा च पालिनी शान्तिरैश्वर्या रतिकामके ॥१६४॥
वरदाह्लादिनीप्रीतिदीर्घा: स्युष्टतवर्गजा ।
उकाराद्विष्णुनोत्पन्नास्तमालदलसन्निभा: ॥१६५॥
अभीतिशङ्खचक्रेष्टबाहव. परिकीर्त्तिता ।
तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तद्रा क्षुत्क्रोधिनी क्रिया ॥१६६॥
उत्कारी मृत्युरूपा: स्यु कथिता पयवर्गजा. ।
रुद्रेण मारणादुत्पन्ना. शरच्चन्द्रनिभप्रभा ॥१६७॥
उद्वहन्त्योऽभय शूल कपाल बाहुभिर्वरम् ।
ईश्वरेणोदिता बिन्दो· पीता श्वेताऽरुणाऽसिता ॥१६८॥
अनन्ता च षवर्गस्था जपाकुसुमसन्निभा ।
अभय हरिण दन्त दधाना बाहुभिवरम् ॥१६९॥
निवृत्ति· सप्रतिष्ठा स्याद्विद्या शांन्तिरनन्तरम् ।
इन्धिका दीपिका चैव रेचिका मोचिका परा ॥१७०॥
सूक्ष्माऽसूक्ष्माऽमृता ज्ञानामृता चाप्यायिनी तथा ।
व्यापिनी व्योमरूपा: स्युरनन्ता: स्वरसयुता: ॥१७१॥
सदाशिवेन सञ्जाता नादादेता सितत्विष. ।
अक्षस्रक्पुस्तकगुणकपालाद्यकराम्बुजा. ॥१७२॥
न्यासे तु योजयेदादौ षोडशस्वरजा: कला· ।
इति पचाशदाख्याता: कला सर्वसमृद्धिदा ॥१७३॥

सारसङ्ग्रहे—

केशवादिहृदा युक्ता न्यसेत्तां कामपूर्विकाम् ।
यादीन्धातुयुतान्न्यस्येत्प्राणशक्त्यात्ममूर्त्तिभि ॥१७४॥
साध्यनारायण ऋषिर्गायत्री छन्द उच्यते ।
लक्ष्मीनारायणो देवि देवता परिकीर्त्तिता[1] ॥१७५॥
षड्दीर्घयुक्तकामान्तै: प्राग्वद्वर्गै: षडङ्गकम् ।

---

१. ख परिकीर्त्तित: ।

शारदातिलके—

केशवनारायणमाधवगोविन्दविष्णव ।
मधुसूदनसञ्ज्ञोऽन्य स्यात्त्रिविक्रमवामनौ ।।१७६।।

श्रीधरश्च हृषीकेशः पद्मनाभस्ततः परम् ।
दामोदरो वासुदेवः सङ्कर्षण इतीरिताः ।।१७७।।

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च[1] स्वराणा मूर्त्तयस्त्विमा' ।
पश्चाच्चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी शङ्खी हली पुन ।।१७८।।

मुसली शूलसयुक्तः पाशी स्यादङ्कुशी पुन' ।
मुकुन्दो नन्दजो नन्दी नरो नरकजिद्धरि. ।।१७९।।

कृष्णः सत्य सात्वत. स्याच्छौरि शूरो जनार्दन ।
भूधरो विश्वमूर्त्तिश्च वैकुण्ठ. पुरुषोत्तम. ।।१८०।।

बली बलानुजो बालो वृषघ्नश्च वृष पुन. ।
हसो वराहो विमलो नृसिहो मूर्त्तयो हलाम् ।।१८१।।

केशवाद्या इमे श्यामाश्चक्रशङ्खलसत्कराः ।
कीर्त्ति. कान्तिस्तुष्टिपुष्टी धृतिः शान्तिः क्रिया दया ।।१८२।।

मेधा सहर्षा श्रद्धास्याल्लज्जा लक्ष्मीः सरस्वती ।
प्रीती रतिरिमाः प्रोक्ताः क्रमेण स्वरशक्तयः ।।१८३।।

जया दुर्गा प्रभा सत्या चण्डा वाणी विलासिनी ।
विजया विरजा विश्वा विनदा सुनदा स्मृतिः ।।१८४।।

ऋद्धि. समृद्धि स्याच्छुद्धिर्भुक्तिर्बुद्धिर्मति. क्षमा ।
रमोमा क्लेदिनी क्लिन्ना वसुधा[2] वसुधाऽपरा ।।१८५।।

परा परायणा सूक्ष्मा सध्या प्रज्ञा प्रभा निशा ।
अमोघा विद्युता चेति कीर्त्याद्या सर्वकामदा. ।।१८६।।

एताः प्रियतमाङ्केषु निषण्णा. सस्मिताननाः ।
विद्युद्दामसमानाङ्गचः पङ्कजाऽभयबाहव ।।१८७।।

---

१. ख. ० श्चानिरुधाश्च । २ ख वसुदा ।

सारसङ्ग्रहे—

न्यसेत्तार्त्तीयसयुक्ता हृदन्ता रुद्रपूर्विकाम् ।
यादीन् धातुसमायुक्तान्प्राणशक्त्यात्मभिः सह ॥१८८॥

मुनिस्तु दक्षिणामूर्तिश्छन्दो गायत्रमुच्यते ।
अर्द्धनारीश्वरो देवि देवता परिकीर्त्तिता ॥१८९॥
षड्दीर्घयुक्ततार्त्तीयप्रान्तवर्गे षडङ्गकम् ।

शारदातिलके—

श्रीकण्ठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्त्तिरमरेश्वर ।
अर्घीशो भारभूतिश्चातिथीशः स्थाणुको हरः ॥१९०॥

झिण्टीशो भौतिक सद्योजातश्चानुग्रहेश्वर. ।
अक्रूरश्च महासेन. षोडशस्वरमूर्त्तय. ॥१९१॥

पश्चात्क्रोधीशचण्डीशपञ्चान्तकशिवोत्तमा ।
अथैकरुद्रकूर्मैकनेत्रा ह्वचतुराननाः ॥१९२॥

अजेशशर्वसोमेशास्तथा लाङ्गलिदारुकौ ।
अर्द्धनारीश्वरश्चोमाकान्तश्चाषाढिदण्डिनौ ॥१९३॥

स्युरत्र मीनमेषाख्या लोहितश्च शिखी तथा ।
छगलण्डद्विरण्डेशौ समहाकालवालिनौ[1] ॥१९४॥

भुजङ्गेशपिनाकीशखड्गीशाख्या वकस्तत ।
श्वेतभृग्वीशनकुलिशिवा. सवर्त्तकस्ततः ॥१९५॥

एते रुद्रा स्मृता रक्ता घृतशूकलपालकाः ।
पूर्णोदरी स्याद्विरजा शाल्मली तदनन्तरम् ॥१९६॥

लोलाक्षी वर्त्तुलाक्षी च दीर्घघोणा समीरिता ।
सुदीर्घमुखिगोमुख्यौ दीर्घजिह्वा तथैव च ॥१९७॥

कुण्डोदर्यूर्ध्वकेश्यौ च तथा विकृतमुख्यपि ।
ज्वालामुखी ततो ज्ञेया पश्चादुल्कामुखी स्मृता ॥१९८॥

---

१. ख. महाकालविलासिनो ।

सुश्रीमुखी च विद्यामुख्येता स्युः स्वरशक्तयः ।
महाकालीसरस्वत्यौ सर्वसिद्धिसमन्विता ॥१९९॥

गौरी त्रैलोक्यविद्या स्यान्मत्रशक्तिस्ततः परम् ।
आत्मशक्तिर्भूतमाता तथा लम्बोदरी मता ॥२००॥

द्राविणी नागरी भूयः खेचरी चापि मञ्जरी ।
रूपिणी वीरिणी पश्चात्काकोदर्यपि पूतना ॥२०१॥

भद्रकाली योगिनी च शङ्खिनी गर्जिनी तथा ।
कालरात्रिश्च कुर्द्दिन्या कपर्द्दिन्यपि वज्रया ॥२०२॥

जया च सुमुखेश्वर्या रेवती माधवी ततः ।
वारुणी वायवी प्रोक्ता पश्चाद्रक्षोवधारिणी ॥२०३॥

ततश्च सहजा लक्ष्मीर्व्यापिनी माययान्विता ।
एता रुद्राङ्कपीठस्था सिन्दूरारुणविग्रहाः ॥२०४॥
रक्तोत्पलकपालाभ्यामलङ्कृतकराम्बुजाः ।

सारसङ्ग्रहे—

मायाद्या मातृकां देवि न्यसेत्साधकसत्तमः ।
मुनिः शक्तिः समाख्यातो गायत्रीछन्द उच्यते ॥२०५॥

देवता जगतामादिर्देवता भुवनेश्वरी ।
षड्दीर्घयुक्तमायान्तैर्वर्गैः प्राग्वत्षडङ्गकम् ॥२०६॥

श्रीयुतां मातृका न्यस्येद्विधिवत्परमेश्वरि ।
मुनिर्भृगुः समाख्यातो गायत्री छन्द ईरितम् ॥२०७॥

देवता जगतामादिर्लक्ष्मीः प्रोक्ता तु मातृका ।
षड्दीर्घभिन्नश्रीबीजप्रान्तैर्वर्गैः षडङ्गकम् ॥२०८॥

कामबीजयुतां न्यस्येन्मातृका कमलेक्षणे ।
सम्मोहनो मुनिश्छन्दो गायत्री देवता प्रिये ॥२०९॥

सम्मोहिनी समाख्याता देवता विश्वमोहिनी ।
दीर्घयुक्तेन कामेन युतैर्वर्गैः षडङ्गकम् ॥२१०॥
मायालक्ष्मीस्मरारूढा मातृका विन्यसेत्प्रिये ।
महासम्मोहनोऽस्य स्यान्मुनिश्छन्दस्तु कीर्त्तितम् ॥२११॥

गायत्रं देवता देवि महासम्मोहिनीरिता ।
द्विरक्तबीजत्रितयप्रान्तैर्वर्गैः षडङ्गकम् ॥२१२॥

प्रपञ्चयागकर्माऽथ वक्ष्यते भुक्तिमुक्तिदम् ।
पञ्चमन्त्रमयं सर्वसिद्धिसम्पत्प्रदायकम् ॥२१३॥

महागणपतिन्त्वादौ सऋषिच्छन्ददैवतम् ।
साङ्गन्यासं सावरणं ध्यात्वा तन्मन्त्रमष्टधा ॥२१४॥

जपेद्गाणपतं बीजं सऋषिच्छन्ददैवतम् ।
चत्वारिंशच्च चत्वारि तथैव प्रजपेत्ततः ॥२१५॥

एकाद्गाणपतं मन्त्रं जप्त्वा वैदिकमप्यथ ।
मालामन्त्रं चतुर्वारं सऋष्याद्यं जपेत्ततः ॥२१६॥

मातृका विन्यसेत्प्राग्वदृष्यादिसहिता त्रिधा ।
स्वरादिसप्तवर्गैस्तु ग्रहान्सप्त प्रविन्यसेत् ॥२१७॥

मुखे बाह्वोः पादयोश्च जठरे हृदये क्रमात् ।
तारो माया च हंसश्च सोहं स्वाहेति वै मनुः ॥२१८॥

प्रपञ्चयागमन्त्रोऽयमष्टार्णः समुदीरितः ।
प्रपञ्चयागमन्त्रस्य मुनिर्ब्रह्मा समीरितः ॥२१९॥

परमाद्या समाख्याता गायत्रीछन्द उत्तमम् ।
महः परं समाख्यातं देवता चिन्मयी प्रिये ॥२२०॥

तृप्यन्ते बोधितं नित्यं सर्वव्यापि निरञ्जनम् ।
विलोमगैः पञ्चमन्त्रैः सार्द्धं हरिहराक्षरैः ॥२२१॥

प्राग्वद्वर्गावसानस्थैस्तारमायादिकैः क्रमात् ।
षडङ्गानि प्रकुर्वीत जातियुक्तानि मन्त्रवित् ॥२२२॥

वेदादिमाययोरन्ते दत्वादीन्[1] क्रमतस्ततः ।
मन्त्रशेषं समुच्चार्य होमं कुर्यात्समाहितः ॥२२३॥
प्रपञ्चयागनामायं होमः सर्वसमृद्धिदः ।

---

१. ख. तत्वादीन् ।

एतेषां ध्यानानि प्रयोगे वक्ष्यन्ते । अथ प्रपञ्चयागे यो विशेषः स च लिख्यते । तत्रादौ मन्त्रनिरुक्ति ।

श्रीसारसङ्ग्रहे—

अकारादिस्तु शान्तान्तः प्रथमोऽत्र मनुर्मतः ।
शान्तान्तश्च हकाराद्यो द्वितीयो मन्त्र इष्यते ॥२२४॥

तृतीयोऽपि समाख्यातो हकाराकारबिन्दुभि. ।
सकारौकारसर्गैश्चेन्द्रियषट्कात्मको भवेत् ॥२२५॥

चतुर्थोऽपि [1]वसौकारहकाराकारबिन्दुभि ।
[2]आत्मान्त करणात्माय पञ्चवर्णो महामनु ॥२२६॥

पञ्चमोपि सकारश्च वकाराकारकौ ततः ।
हकाराकारकौ चाथ पञ्चवर्णात्मको भवेत् ॥२२७॥

इति । अस्यार्थः-अकारादिरित्यादिभिः प्रत्येक पञ्चमन्त्राणामवयवनिरूपणं करोति । अकारोकारमकारबिन्दुनादशक्तिशान्ताख्यसप्तभेदात्मकः प्रणवः प्रथममन्त्र इत्यर्थ. । हकाररेफईकारबिन्दुनादशक्तिशान्तात्मक भुवनेश्वरीबीज द्वितीयमन्त्र । हकाराकारबिन्दुसकाराकारसर्गैस्तृतीयमन्त्रः । सकाराकार-[3] हकाराकारबिन्दुभिश्चतुर्थ. । सकारवकाराकारहकारात्मक.[4] पञ्चम इति ।

तथा—

बृहत्त्वयोगाद् ब्रह्माऽत्र मुनित्वेन निगद्यते ।
श्रेष्ठार्थवाचक प्रोक्त परमाख्य परम्पदम् ॥२२८॥

गायन्तन्त्रायते [5]यस्माद्गायत्र छन्द इत्यत. ।
यस्मादतिशय. क्वापि तेजसा[6] न च[7] विद्यते ॥२२९॥
पर पदेन तत्प्रोक्त पर ज्योतिश्च देवता ।

ऋष्यादिशब्दनिरुक्तिमाह । बृहत्वादिति । यस्मादित्यस्यार्थः । वेदान्तादिषु विचारितेषु यदादित्यादिज्योतिषु यत्सर्वस्मादतिशायिचिल्लक्षण ज्योति. प्रतीयते तज्ज्योतिर्देवतेति ।

---

१. ख च सौकार ० । २. ख. आत्मान्तःकारणात्मायं । ३. ख. सकारौकार । ४. ख. ० हकाराकारात्मक । ५ ख. तस्माद् ० । ६. ख. तेजसां । ७. ख. नैव ।

तथा—

स्वर्गार्थस्वेतिशब्दोऽयमात्मार्थोपि तथा भवेत् ।
[1]हाह्वानार्थोऽपि गत्यर्थ. सर्वतोभावतस्तत. ॥२३०॥

स्वर्गात्मनो. स्वरूप या व्याप्ता तेज परम्परा ।
स्वाहाकारेण साख्याता हुत यस्या समीरितम् ॥२३१॥

तेजोरूप तु यद्व्याप्त स-शब्देन तदुच्यते ।
अह-पदेन चात्मापि द्वयोरैक्य ततो भवेत् ॥२३२॥

सोह मन्त्रो विधानेन हकारो ह वदेत्ततः ।
स इत्यनेन चिद्रूप सर्वार्थस्यावभासकम् ॥२३३॥

नित्य व्याप्त च निर्लेन हसमन्त्रो वदेत्तत. ।
चराचरस्य जगत सारभूत गुणात्मकम् ॥२३४॥

जनकं सर्वलोकाना मायावीजेन चोच्यते ।
अकाराद्यैर्मकारान्तैस्त्रिभिर्भेदैर्गुणात्मकै ॥२३५॥

भावसत्ता तु य कुर्यात्प्रणवार्थ स उच्यते ।
हृद्धातुर्हरणार्थः स्यादनिष्ट मन्त्रिणस्तु यत् ॥२३६॥
सहरेत्तन्मह. प्रोक्त वर्णैर्हरिहरैर्ध्रुवम् ।

स्वर्गार्थ इत्यादि श्लोकानामयमर्थ. । तत्र स्वाहाशब्देन स्व आ हा इति पदत्रयमस्ति, तत्र स्वशब्द. स्वर्गवाचक. आत्मवाचकश्च, आ इत्यक्षर आततेत्यस्मिन्नर्थे अभिविधौ च भवति, हा इत्यक्षरमाह्वाने व्याप्तौ च वर्त्तते । तेनात्र स्वसमीपादारम्य स्वर्गावधिक व्याप्ता सर्व्वदेवगणान् हविर्भागार्थमाहूयानयति, यस्या हुत च समीरित सा तेज परम्परा स्वाहाकारेणोच्यत इत्यर्थः । तेजोरूपमिति । सर्वतो व्याप्त परमानन्दस्वभावतयोत्कृष्टलक्षण ज्योतिर्जगत्कारण सोह मन्त्रेणोच्यत इत्यर्थ. । सुगममन्यत् ।

अथ प्रपञ्चयागमन्त्रस्य प्रभावमाह—

सारसङ्ग्रहे—

प्रपञ्चयागमन्त्रोऽयं प्रपञ्चस्यादिकारणम् ।
प्रपञ्चयाग आख्यातो न्यासो येन तु य कृत. ॥२३७॥

---

१. ख. आह्वानार्थोऽपि ।

अङ्गेर्णोर्ज्वलने द्रव्यैर्होमोऽत्र द्विविधो मत. ।
अकारादीस्तु सयोज्य यथापूर्वं विधानवित् ॥२३८॥

स्थानेषु मातृकोक्तेषु न्यसेदष्टाक्षरेण तु ।
साधकेन्द्रस्तु शुद्धात्मा पञ्चाशद्वारमन्वहम् ॥२३९॥

वर्णा सर्वे तु विख्याता बाह्यज्ञानेन्द्रियात्मका: ।
प्रत्येकेन्द्रियसङ्ग्राह्य जगद्व्याप्तं ततस्तु[1] तैः ॥२४०॥

परात्परतर लोके ज्योतिरंश तु यद्भवेत् ।
तस्मिन्ब्रह्मानले होमो ब्रह्मज्ञैर्मन्त्रिभिस्तु य: ॥२४१॥

कृतो ज्योतिर्मयैः सम्यङ्मनुभिस्त प्रचक्षते ।
ब्रह्मात्मकहविर्द्रव्यैस्तद्विदो ब्रह्मणोर्प्पणम्[2] ॥२४२॥

वर्णाना भेदतो भिन्नमित्थं शिथिलतां गतम् ।
शरीर चर्मसन्नद्ध [3]शोणितामिष्ठसवृतम् ॥२४३॥

मेदोमज्जास्थिसयुक्त गत्वरत्वेन सम्मतम् ।
ब्रह्मानले महास्वस्थे सर्वव्याप्ते निरञ्जने ॥२४४॥

यो जुहोति कृती मन्त्री शुद्धात्मा महसा निधिः ।
अशेषमन्त्रसञ्जापे ध्याने पूजनकर्मणि ॥२४५॥

अधिकारी स एव स्यान्नेतर. फलभाजनम् ।
केवलोऽपि च विन्द्वन्तः कलादिः केशवादिक ॥२४६॥

श्रीकठाद्यैश्च सयुक्तो मायाबीजसमन्वित. ।
लक्ष्म्याद्यः कामबीजाद्यो बीजत्रययुतोऽपि च ॥२४७॥

प्रपञ्चयागसयुक्ता दशन्यासाः समीरिता. ।
वांछितार्थप्रदाः सर्वे सर्वमन्त्रेषु कल्पिता. ॥२४८॥

एतेषु श्रेष्ठ आख्यातः प्रपञ्चाह्वययागक. ।
ज्ञानद पुष्टिदश्चाथ सर्वसम्पत्करस्तथा ॥२४९॥
विशेषतो ग्रहक्षुद्रप्रपञ्चज्ञाननाशकृत् । इति ।

---

१. ख. मतस्तु । २. ख. ब्रह्मणोर्प्पणं । ३. ख. शोणितामिष ० ।

तथा—

प्रपञ्चयागमन्त्रेण यथा होमो विधीयते ।
यद्यद्द्रव्यैस्तथा तानि यदा यल्लभ्यते बुधैः ॥२५०॥

एतत्सर्वं विधानेन कथयामि यथातथम् ।
उक्तेनैव प्रकारेण गणपत्यवसानकम् ॥२५१॥

आज्येन जुहुयान्मन्त्री तद्वदेकाहुतिं हुनेत् ।
प्रपञ्चयागमन्त्रेण घृतेनैव तत. परम् ॥२५२॥
वटोदुम्बरसम्भूताः पर्कटद्या. पिप्पलस्य च ।
[1]पर्प्पटी प्लक्षः—

समिधस्तिलसिद्धार्थहविराज्यानि च क्रमात् ।
एतद्द्रव्याष्टक प्रोक्त हुनेदेतेन मन्त्रवित् ॥२५३॥

दशायुत विधानेन तदर्द्धमथवा तु य. ।
[2]यथाभिललितानत्र भोगान् भुक्त्वा सुख हि सः ॥२५४॥

देहान्ते मुक्तिमाप्नोति मुनिभिः प्रार्थितां तत. ।
चौरशत्रुग्रहव्याधिसर्प्पराक्षसदोपनुन् ॥२५५॥

चतु.शत तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा हुत मतम् ।
तत्तद्दोपानुसारेण होमसख्या प्रवर्द्धयेत् ॥२५६॥

रविसख्यसहस्राणि हुनेद्द्रव्याष्टकेन यः ।
एतद्द्विगुणतश्चाथ चतुर्गुणात एव वा ॥२५७॥

भूतावेशग्रहावेश-[3] जूर्त्यादीन्स विनाशयेत् ।
शास्त्रोक्तक्रमभङ्गेन जपपूजादिकृत्तु यः ॥२५८॥

स्मृतिभ्रशो भवेत्तस्य होम द्रव्याष्टकेन सः ।
सहस्रसख्यया कुर्यात्स्वस्थो भवति तत्क्षणात् ॥२५९॥

प्रत्येक द्विसहस्र यो हुनेद् द्रव्याष्टकेन तु ।
अपस्मार स्मृतिभ्रश शापदोष स नाशयेत् ॥२६०॥
द्रव्याष्टक त्रिमध्वक्त लक्षमान हुनेत्तु यः
प्रादुर्भूतेन महता तस्यैश्वर्येण तत्क्षणात् ॥२६१॥

---

१. ख. पर्कटी । २. ख. यथाभिलषितानत्र । ३. ख. जूर्त्यादीन्स ।

देवेन्द्रस्य महालक्ष्मी. स्थिरा तुच्छतरा भवेत् ॥
लक्ष लक्षार्द्धक वाथ मधुरत्रयलो.लितम् ॥२६२॥

द्रव्याष्टक हुनेद्यो वै वत्सरत्रयमध्यत' ।
त्रैलोक्यं सकल तस्य वशे तिष्ठति नान्यथा ॥२६३॥

वश्यादिसाधन प्रोक्त हुत द्रव्याष्टकेन यत् ।
ह्रासवृद्ध्यादिक होमे जानीयात्कार्यगौरवात् ॥२६४॥

शुद्धैस्तिलैस्तु लक्ष यो होम कुर्याद्यथाविधि ।
महापापानि तस्याशु प्रलय यान्ति नान्यथा ॥२६५॥

लक्ष कमलहोमेन महालक्ष्मी प्रजायते ।
हविषा पुष्टिदो होमो घृतहोमो यशस्कर· ॥२६६॥

मालतीपुष्पहोमोऽपि सर्ववश्यप्रदो भवेत् ।
सामुद्र लवरण हुत्वा तथा वश्य प्रसाधयेत् ॥२६७॥

अथ शालिसमुद्भूतान् तंडुलान्सुष्ठु चूर्णयेत् ।
मधुरत्रयसयुक्तचूर्णेनैव साधक ॥२६८॥

साध्यप्रतिकृति कुर्यात्सम्यक् सपूज्य ता स्पृशन् ।
प्राणस्थापनमन्त्र तु जपेत्साष्टशत तत ॥२७६॥

विभज्य जुहुयान्मन्त्री तान्न्यासक्रमतो निशि ।
सप्तरात्र प्रकुर्वाणो नर वा स्त्रियमेव वा ॥२७०॥

वशीकरोति झटिति नात्र कार्या विचारणा ।
सामुद्रलवणस्यापि पुत्तल्या फलमीदृशम् ॥२७१

वर्णौषधविपक्वेन पञ्चगव्येन पूरिते ।
चुल्ल्यां सस्थापितेऽधस्ताद्वह्नि कुम्भे प्रदीपयेत्॥२७२॥

प्रादुर्भूते पुनस्तस्मिन् घटेऽग्नौ जुहुयाद्घृतम् ।
अष्टोत्तरशत मन्त्री भसित पतित च यत् ॥२७३॥

तावत्सख्य च सज्ञप्य गृह्णीयात्सर्वसिद्धिदम् ।
भक्षणाद्गात्रलेपाच्च तिलकक्रियया तथा ॥२७४॥

मस्तके धारणात्सद्य सर्वे नश्यत्युपद्रवा ।
भूतप्रेतपिशाचादिविषरोगादिनाशनम् ॥२७५॥

सर्ववश्यकर पुसा श्रीसौभाग्यजयप्रदम् ।
सहस्रसस्यके होमे तदानी गुरवे बुध ॥२७६॥

पलं पलार्द्धक वापि दद्याद्धेम्नो वरस्य तु ।
कल्पवृक्षाद्यथा देवा लभन्ते वाञ्छित फलम् ॥२७७॥
प्रपञ्चयागतोऽप्येवं साधकोऽभीष्टमश्नुते । इति ।

कादिमते—

मातृकाया. षडङ्ग च मातृकान्यासमेव च ।
सर्वासां प्रथम कृत्वा पश्चात्तन्त्रोदितं न्यसेत् ॥२७८॥

अन्यत्रापि—

रुद्रैर्युक्ता केवला वा मनूनां, कर्मारम्भे मातृकां विन्यसेद्य:
मन्त्रा सद्य. कुर्वते तस्य सिद्धि, पापै सार्द्धं याति नाश जरा च ॥२७९॥

[1]कुलप्रकाशतन्त्रे—

मातृकाया तु सिद्धाया सिद्धा स्युर्मन्त्रजातय. ।
सुसिद्धा स्युर्न सदेहो यस्मात्सर्वं तदुद्भवम् ॥२८०॥

अत पर स्वोपास्यमन्त्रस्य ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् कृत्वा योगपीठन्यासं कुर्यात् । उक्त च—

गुहकल्पे—

एव विन्यस्य देहे स्वे मातृकां विश्वमातरम् ।
प्रणायामत्रय कृत्वा मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥२८१॥

विन्यस्य तदृषिच्छन्दोदैवतानि महामुने ।
कृत्वा कराङ्गविन्यास योगपीठ न्यसेत् तनौ ॥२८२॥

---

१. इत प्राक् ख. पुस्तके विशेषः पाठ:—
गौतमीतन्त्रे—चतुर्द्धा मातृका प्रोक्ता केवला बिन्दुसंयुता ।
सविसर्गा सोभया च रहस्यं त्वथ कथ्यते ॥१॥
विद्याकरी केवला च सोभया भक्तिदायिनी ।
सविसर्गा पुत्रप्रदा सबिन्दुर्मोक्षदायिका ॥२॥

पदार्थादर्शे—

ऋषिच्छन्दोदेवतानां विन्यासेन विना यदा ।
जप्यते साधितोऽप्येष तस्य तुच्छं फलं भवेत् ॥२८३॥

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

ऋषिर्भृगुर्निवृच्छन्दस्तथा[1] श्रीर्देवता प्रिये ।
श-तुर्ये बीजशक्ती च कीलकं रेफ उच्यते ॥२८४॥

प्रपञ्चसारे—

ऋषिर्गुरुत्वाच्छिरसैव धार्यश्छन्दोक्षरत्वाद्रसनागतं स्यात् ।
धियावगन्तव्यतया सदैव हृदि प्रतिष्ठा मनुदेवतायाः ॥२८५॥

गौतमः—

महेश्वरमुखाज्ज्ञात्वा गुरुर्यस्तपसा मनुम् ।
संसाधयति शुद्धात्मा पूर्वं स ऋषिरीरितः ॥२८६॥

तथान्यत्रापि—

येन यदृषिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता च येन वै ।
मन्त्रेण तस्य तत्प्रोक्तमृषेर्भावस्तदार्षकमिति ॥२८७॥

छन्दःशब्दव्युत्पत्तिरुक्तान्यत्र—

छादनात् छन्द उद्दिष्टं वाससा इव चाकृतेः ।
आत्मा चाच्छादितो देवैर्मृत्योर्भीतैस्तु वै पुरा ॥२८८॥
आदित्यैर्वसुभी रुद्रैस्तेन छन्दांसि तानि वै ।

तथान्यत्रापि—

मृत्युभीतैः पुरा देवैरात्मनश्छादनाय च ।
छन्दांसि संस्मृतानीह छादितास्तैस्ततोऽमराः ॥२८९॥

छादनाच्छन्द उद्दिष्टं[2] सर्वं छन्दोभिरावृतम् ।
यस्य यस्य तु मन्त्रस्य उद्दिष्टा देवता तु या २९०॥

तदाकारं भवेत्तस्य देवत्वं देवतोच्यते ।
पुरा कल्पे समुत्पन्ना मन्त्राः कर्मार्थमेव च ॥२९१॥
अनेन चेदं कर्त्तव्यं विनियोगः स उच्यते ।
दौर्बल्यं याति तन्मन्त्रो विनियोगमजानतः ॥२९२॥

---

१. ख. ०निचृच्छन्द० । २ क उच्छिष्टं ।

याज्ञवल्क्यः—

आर्षं छन्दश्च दैवत्यं विनियोग तथैव च ।
वेदितव्य प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषत २६३॥

अविदित्वा तु य. कुर्याद्यजनाध्यापन जपम् ।
होममन्यच्च यत्किंचित्तस्य चाल्प फल भवेदिति ॥२६४॥

योगिनीतन्त्रे—ऋष्यादीन्विन्यसेद्देवि चतुर्थीहृदयान्तिकान् ।
ऋषये नमः । छन्दसेनम. इत्यादि ।

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

षडङ्गानि न्यसेन्मन्त्री हृच्छिरश्च शिखा तत ।
कवच नेत्रमस्त्र च नम स्वाहा क्रमेण च ॥२६५॥
वषट्-हु-वौषडन्तस्तु फडेभि सह विन्यसेत् ।

शारदातिलके—

हृदयाय नम. प्रोक्त शिरसे वह्निवल्लभा ।
शिखायै वषडित्युक्त कवचाय हुमीरितम् ॥२६६॥

नेत्राय वौषडित्युक्तमस्त्राय फडिति क्रमात् ।
षडङ्गमन्त्रानित्युक्त्वा षडङ्गेषु नियोजयेत् ॥२६७॥

पञ्चाङ्गानि मनोर्यस्य तत्र नेत्रमन् त्यजेत् ।
अङ्गहीनस्य मन्त्रस्य स्वेनैवाङ्गानि कल्पयेत् ॥२६८॥

तत्तत्कल्पोक्तविधिना न्यासानन्यान्समाचरेत् ।

अथ षडङ्गन्यास करन्यासपूर्वक कार्यं ।

आदा कृत्वा करन्यास षडगेषु ततो न्यसेत्

इति सारसग्रहोक्तेः । अत्र केचित् करन्यासे अगुष्ठाभ्यां नम , तर्ज्जनीभ्यां नमः 'इत्यादि न्यास'[1] वदन्ति तदसगतमिव प्रतिभाति ज्ञानार्णवादिनानातन्त्रेष्वदर्शनात् । यथा—

ज्ञानार्णवे—

मूलविद्यां द्विरावृत्य पञ्चाङ्गुलितलेषु च ।
षडङ्गक्रमयोगेन विन्यसेत्परमेश्वरी ॥२६६॥ इति

१. ' ' ख पुस्तके नास्ति ।

षडङ्गक्रमयोगेन हृदयाय नम. शिरसे स्वाहेत्यादिक्रमेणेत्यर्थः ।

शारदातिलकेपि—

अगुष्ठादिष्वङ्गुलीषु न्यसेदङ्गैः सजातिभिः ।
अस्त्र तु तलयोर्न्यस्य········ ···॥३००॥

इति सजातिभिर्नम स्वाहेत्यादिसहितैः अङ्गैस्तत्तन्मन्त्रोक्तैस्तेन हृदयाय नम. शिरसे स्वाहेत्यादिक्रमो ज्ञेयः जातिलक्षणं तु—

कारणागमे—

नम स्वाहा वषट् हुं च वौषट् फट्कार एव च ।
जातिषट्कमिद प्रोक्त हृदाद्यस्त्रान्तसङ्गतम् ॥३०१॥

नारदपञ्चरात्रेऽपि—

···············अथ चांगानि योजयेत् ।
कनिष्ठाद्यासु च ततो हृदयादिक्रमेण तु ॥३०२॥

इति हृदयादिक्रमेण हृदयाय नम, शिरसे स्वाहेत्यादि क्रमेण ।

योगिनीतन्त्रे—

उच्चरेत् प्रणवं पूर्वमाकारं विन्दुसंयुतम् ।
खड्गाय हृदयायेति नमोयुक्त कनीयसि ॥३०३॥

ईंकार[1] प्रणवाद्देवि चन्द्रविम्बसमायुतम् ।
सुखड्गाय ततो वाच्यं शिरसे तदनन्तरम् ॥३०४॥

स्वाहायुक्त प्रविन्यस्येत्तर्जन्याऽनामिकाङ्गुलौ ।
ऊंकार[2] प्रणवाद्देवि विन्दुलाञ्छितमस्तकम् ॥३०५॥

श्रीवज्राय ततो वाच्य शिखायै च ततः परम् ।
वषडन्त प्रविन्यस्येन्मध्यया मध्यमांगुलौ ॥३०६॥

मात्रा द्वादशिका ताराद्विन्दुपाशाय सयुता ।
कवचाय हुमित्येतत्तर्जन्यामप्यनामया ॥३०७॥

अकारादिविसर्गान्त योजयेत्प्रणवाक्षरम् ।
असुरक्षयमाये च अस्त्राय तदनन्तरम् ॥३०८॥

---

१. ल. ईकार । २. ख. ऊकार ।

षडक्षरसमायुक्त विन्यसेत्तलयोर्द्वयोः ।

इति स्पष्ट एवोक्तः । अत एव नमःस्वाहादीनां हृदयादिपदयोगेनाभि– धानं नाङ्गुष्ठादिपदयोगेन । अन्यथा तदप्यभिधीयेत । पञ्चाङ्गपक्षे तु—

मन्त्राभिमृष्टयोः पाण्योः पल्लवेऽङ्गानि विन्यसेत् ।
मूलाद्यग्रपदग्रान्तव्यापकत्वेन नारद ॥३०९॥

अङ्गुष्ठेनाचरेन्न्यासमन्याङ्गुलिसमाश्रयम् ।
अङ्गुष्ठविषयन्यासस्तर्ज्जनी शिरसैव हि ॥३१०॥

अत्र केचित् षडङ्गन्यासे नेत्रत्रयाय वौषडिति प्रयोग वदन्ति वस्तुतस्तु— हृदयशिरसोः शिखायां कवचाक्ष्यस्त्रेषु सह चतुर्थीभिरिति प्रपञ्चसारवचनात् ।

षडङ्गं विन्यसेन्मन्त्री हृच्छिरश्च शिखा ततः ।
कवच नेत्रमस्त्र च .... ॥३११॥

इति दक्षिणामूर्त्तिवचनात् ।

हृदय च शिरो देवि शिखा च कवचं ततः ।
नेत्रमस्त्र न्यसेत्तद्ध्ऽन्त........................ ।

इति ज्ञानार्णवाच्च नेत्रपदमात्रस्यैव दर्शनान्नेत्रायेति तत्वम् । अत एव ।
नेत्राय त्र्यर पदम् ॥३१२॥

तदन्ते वौषडित्युक्त नेत्रमन्त्रोऽप्ययं स्मृतः ।

इति नारदपञ्चरात्रे स्पष्ट एवोक्तः । अन्यथा द्विनेत्रदेवता पक्षे नेत्राभ्यामिति पदान्तरप्रक्षेपापत्तेः ।

अथ ऋष्यादिषडङ्गमुद्राः

सारसंग्रहे—

ऋषिच्छन्दो देवतानांन्यासे त्वङ्गुलयः स्मृता ।
चतस्रोऽङ्गुष्ठरहिता......................। इति ।

नारदपञ्चरात्रे—

अङ्गुष्ठवर्ज्यमङ्गुल्यश्चतस्रो हृदि मूर्द्धनि ।
शिखायां मुष्टिरेवस्यादङ्गुष्ठकृतनालिका ॥३१३॥

सर्वाङ्गुलय आनाभेः पाण्योः कवचबन्धने ।
तर्जनीमध्यमानामाः प्रोक्ता नेत्रत्रये क्रमात् ॥३१४॥
अंगुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां हस्तयोरभिगच्छयेदिति ।

पदार्थादर्शे—

यदा नेत्रद्वयं प्रोक्तं तदा तर्जनिमध्यमे । चतस्रः प्रसारिताः ।

प्रसारितं तलेनैव पाणिना हृदयं शिरः ।

इति कपिलवचनात् । एता मुद्राः शक्तिमन्त्रव्यतिरिक्तमन्त्रपराः । शक्तिमन्त्राणां तु त्रिद्व्येकदशकत्रिमिताङ्गुलिभिः । इति ज्ञानार्णवात् ।

अयमर्थः—कनिष्ठाङ्गुष्ठरहिताङ्गुलित्रयेण हृदयस्था हृदयमुद्रा, मध्यमानामाभ्यां शिरोमुद्रा, अङ्गुष्ठेन शिखामुद्रा, दशाङ्गुलिभिः कवचमुद्रा, तर्जनीमध्यमानामाभिर्नेत्रमुद्रा, तर्जनीमध्यमाभ्यां तालत्रयेणास्त्रमुद्रेति । आनाभेः स्कन्धात्तथाभूताभ्यां पाणिभ्यां कवचम् । 'वर्मस्कन्धादि नाभिग' मिति तन्त्रराजवचनात् ।

तन्त्रान्तरे शक्तिषडङ्गमुद्राः ।

हृदयं मध्यमानामातर्जनीभिः स्मृतं शिरः ।
मध्यमातर्जनीभ्यां स्यादङ्गुष्ठेन शिखा स्मृता ॥३१५॥

दशभिः कवचं प्रोक्तं तिसृभिर्नेत्रमीरितम् ।
प्रोक्ताङ्गुलिभ्यामस्त्रं स्यादङ्गक्लृप्तिरियं मता ॥३१६॥

शैवमन्त्राणां तु शैवागमे षडङ्गमुद्राविशेष उक्तः । यथा—

कृतमुष्टिपदौ हस्तौ कृत्वांगुष्ठौ हृदि न्यसेत् ।
हृन्मुद्रेयं समाख्याता शिरोमुद्रा प्रकीर्त्यते ॥३१७॥

ललाटाग्रे समाधाय कृतमुष्टिपुटाकृती ।
कुर्यादूर्ध्वप्रसक्ताग्रे तर्जन्यौ ज्येष्ठबाह्यतः ॥३१८॥

करौ शिखायां संयोज्य कृतमुष्टिपुटाकृती ।
ज्येष्ठावधः प्रसक्ताग्रौ कारयेदूर्ध्वतस्तथा ॥३१९॥

कुर्यात्सेयं शिखामुद्रा सर्वोपद्रवनाशिनी ।
कृत्वाङ्गुष्ठौ प्रसक्ताग्रौ तर्जन्यौ च त्रिकोणवत् ॥३२०॥

मूर्ध्नि पश्चान्मुखं कृत्वा नयेदुभयपार्श्वतः ।
कर हृदन्तं मुद्रेय कवचस्याभयप्रदा ॥३२१॥

कृत्वा नेत्रोन्मुख हस्त सक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठकम् ।
प्रसार्य मध्यमा किंचिन्नमयेदितरागुली. ॥३२२॥

नेत्रमुद्रेयमुद्दिष्टा रक्षोभूतार्त्तिभञ्जनी ।
परस्परतलद्वन्द्व पुनरास्फोटयेद् भृशम् ॥३२३॥
तर्जन्या शब्दयेत्ताभ्यां ज्येष्ठाग्रस्खलिताग्रया ।

इति ताभ्या कराभ्याम् ।

पदार्थादर्शे—

पूजाजपार्चनाहोमा सिद्धमन्त्रकृता अपि ।
अङ्गविन्यासविधुरा न दास्यन्ति फलन्त्वमी ॥३२४॥

प्रपञ्चसारे—

सदीक्षितो मनुमिम प्रति जप्तुमिच्छ-
न्कुर्यान्निजेन वपुषैव तु योगपीठम् ।
अ सोरुयुग्मपदमानननाभिमूल,
पार्श्वद्वयैर्विहितगात्रसमुज्वल च ॥३२५॥

मध्येऽनन्ताद्यैरपि सज्ञानात्मान्तिकैर्यजेन्मत्री ।

पीठाख्यमन्त्रपश्चिममिति । आननवामपार्श्वनाभिमूलदक्षपार्श्वैरिति पद्मपादाचार्याः ।

ईशानशिवः—

आधाराख्यं यजेच्छक्ति हृदयेऽसे च दक्षिणे ।
धर्मं ज्ञान च सव्यासे ऊर्वोर्वामान्ययोरपि ॥३२६॥

वैराग्यसज्ञमैश्वर्यमिति । अनन्ताद्यैरित्यादिपदेन पद्मसूर्यसोमवह्नि-सत्वरजस्तमआत्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मज्ञानतत्वमायातत्वकलातत्वविद्यातत्व-परतत्वानां ग्रहणम् ।

सारसङ्ग्रहे—

मूलाधारेऽथ मण्डूकं रुद्रं कालाग्निसज्ञकम् ।
स्वाधिष्ठानेऽथ नाभ्यब्जे प्रकृतिं मूलपूर्विकाम् ॥३२७॥

आधारशक्तिं हृदये विन्यस्य मनुवित्तमः ।
कूर्मानन्तौ वराह च धरणी च सुधार्णवम् ।३२८॥

रत्नद्वीपं च विन्यस्य तत्र स्वर्णमहीधरम् ।
तदूर्ध्वे नन्दनोद्यानं तन्मध्ये मणिमण्डपम् ॥३२९॥

कोटिसूर्यप्रभं हेमप्राकारपरिवेष्टितम् ।
रत्नमण्डपमध्यस्थां वेदिकां हेमनिर्मिताम् ॥३३०॥

विन्यस्य तस्या मध्यस्थं रत्नसिंहासनं शुभम् ।
शरीरे स्वस्य धर्माद्यैः पीठकल्पनमाचरेत् ॥३३१॥

दक्षिणांसे न्यसेद्धर्मं ज्ञानं वामांसके न्यसेत् ।
वामोरुमूले वैराग्यमैश्वर्यं दक्षिणे न्यसेत् ॥३३२॥

मुखेऽधर्मं वामपार्श्वे चाज्ञानं नाभिमण्डले ।
अवैराग्यं दक्षपार्श्वे चानैश्वर्यं न्यसेत्क्रमात् ॥३३३॥

धर्मादीन्पीठपादांश्च गात्राण्यन्यान् प्रकल्पयेत् ।
हृद्यनन्तं न्यसेत्तस्मिन्पद्मं तत्कर्णिकोपरि ॥३३४॥

अर्कं च केसरे सोमं पत्रे वह्निं ततो न्यसेत् ।
तेषां कला न्यसेत्तत्तन्मण्डले तत्र तत्र वै ॥३३५॥

तत्र तत्र तत्तन्मण्डलन्याससमय एवेत्यर्थः । वै शब्दस्त्वेवकारार्थवाचकः ।
तथा—

न्यसेद् गुणत्रये पश्चात्सत्वादिकमतः परम् ।
आत्मान्तरात्मपरमात्मविज्ञानात्मकान्न्यसेत् ॥३३६॥

ज्ञानमायाकलाविद्यापरतत्वानि च क्रमात् ।
पीठमन्त्रं प्रविन्यसेत्ततो देशिकसत्तमः ॥३३७॥
देहात्मके ततः पीठे ध्यायेदिष्टां च देवताम् ।

अत्र पीठाख्यमन्त्रपश्चिममिति, पीठमन्त्रमनन्तरमिति, पीठमन्त्रं प्रविन्यसेदिति च । प्रपञ्चसार-शारदातिलक-सारसङ्ग्रहाणां वचनैः पीठशक्तिन्यासो नास्तीति प्रतीयते ।

पदार्थादर्शे तु—

मायातत्वं कलातत्वं विद्यातत्वं परं तथा ।
विन्यस्य पीठशक्तीश्च ततः पीठमनुं न्यसेत् ॥३३८॥

इत्युक्तम् । अत्र यथागुरूपदेशमाचरणीयम् ।

अथ मूलमन्त्रन्यासः । तत्र—

श्रीरुद्रयामले—

प्राणायामत्रय कृत्वा मूलमन्त्रेण साधकः ।
विन्यसेत्तदृषिच्छन्दोदैवतानि यथाविधि ॥३३९॥

कराङ्गन्यासमुख्यांस्तु न्यासानन्यान्समाचरेत् ।
तत्तत्कल्पोदितान्मन्त्री ततो मुद्रा. प्रदर्शयेत् ॥३४०॥

नारदपञ्चरात्रे—

एव न्यास पुरा कृत्वा करयोर्विग्रहे तत ।
मूलमन्त्रादिसर्वस्य न्यस्तमन्त्रगणस्य च ॥३४१॥

मुद्रा. प्रदर्शयेत्स्वस्वध्यानमन्त्रसमन्विता. ।
ततस्तु विग्रहे ध्यायेदात्मान विष्णुरूपिणम् ॥३४२॥

सारसङ्ग्रहे—

तत स्वोपास्यमन्त्रस्य न्यासान् ऋष्यादिकान् न्यसेत् ।
यस्य मन्त्रस्य ये न्यासा. कर्त्तव्या सिद्धिमिच्छता ॥३४३॥

ततो मन्त्रपुटैर्वर्णैर्मातृकाया. सविन्दुभि. ।
विन्यसेन्मन्त्रवित्सम्यक् शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ॥३४४॥

श्रीकुलार्णवे—

आगमोक्तेन मार्गेण न्यासान्नित्य करोति य. ।
देवताभावमाप्नोति मन्त्रसिद्धि. प्रजायते ॥३४५॥

यो न्यासकवचच्छन्नो मन्त्र जपति त प्रिये ।
दृष्ट्वा विघ्ना. पलायन्ते सिह दृष्ट्वा यथा गजा. ॥३४६॥

अकृत्वा न्यासजात यो मूढात्मा कुरुते जपम् ।
विघ्नै. स बांध्यते नून व्याघ्रैर्मृ गशिशुर्यथा ॥३४७॥

कालिकापुराणे—

न्यासाना प्रचुरत्वे हि फलानामपि भूरिता ।
उक्तन्यासो न हि त्याज्यस्त्वधिकं तु समाचरेत् ॥३४८॥

वायवीयसंहितायाम्—

नाशिवः शिवमभ्यस्येन्नाशिवः शिवमर्चयेत् ।
नाशिवस्तु शिवं ध्यायेन्नाशिवः शिवमाप्नुयात् ॥३४९॥

शारदातिलके—

मन्त्राक्षराणि विन्यस्येद्देवताभावसिद्धये ।

पदार्थादर्शे—

न्यासं विना जपं प्राहुरासुरं विफलं बुधाः ।
न्यासात्तदात्मको भूत्वा देवो भूत्वा यजेदिति ॥३५०॥[1]

अथ गणेशादिमुद्रालक्षणानि

लक्षणसङ्ग्रहे—

ततो गणेशमुद्राणामुच्यन्ते लक्षणान्यपि ।
उत्तानोर्द्ध्वमुखी मध्या सरला बद्धमुष्टिका ॥३५१॥

दन्तमुद्रा समाख्याता सर्वागमविशारदैः ।
वाममुष्टेस्तु तर्जन्या दक्षमुष्टेस्तु तर्जनीम् ॥३५२॥

संयोज्याङ्गुष्ठकाग्राभ्यां तर्जन्यग्रे स्वके क्षिपेत् ।
एषा पाशाह्वया मुद्रा विद्वद्भिः परिकीर्त्तिता ॥३५३॥

ऋज्वीं च मध्यमां कृत्वा तर्जनीं मध्यपर्वणि ।
संयोज्याकुञ्चयेत्किञ्चिन्मुद्रैषाऽङ्कुशसञ्ज्ञिका ॥३५४॥

तर्जनीमध्यमासन्धिनिर्गताङ्गुष्ठमुष्टिका ।
अधोमुखी दीर्घरूपा मध्यमा विघ्नमुद्रिका ॥३५५॥

तले तलं तु करयोस्तिर्यक्संयोज्य चाङ्गुलीः ।
संहताः प्रसृताः कुर्यान्मुद्रा परशुसञ्ज्ञिका ॥३५६॥

ऊर्ध्वास्थं[2] दक्षिणं हस्तमानम्रविरलाङ्गुलिम् ।
किञ्चिन्निम्नतलं कुर्यान्मुद्रैषा लड्डुकाभिधा ॥३५७॥

---

१. अतः परमयमंशो विशेषः ख. पुस्तके—

गौतमीतन्त्रे—मोदनात्सर्वदेवानां द्रावणात्पापसन्ततेः ।
मुद्रास्ताः कथिताः सद्भिर्देवसान्निध्यदायिकाः ॥१॥

२. ख. ऊर्ध्वास्यं ।

उत्तानवाममुष्टस्तु वीजपूराह्वया मता ।
दन्तपाशाङ्कुशाविघ्नपर्शुलड्डुकसञ्ज्ञिकाः ॥३५८॥
वीजपूराह्वया चेति गणेशस्य प्रिया मताः ।

अथ सौरमुद्रे

नारायणीये—

पद्माकारौ करौ कृत्वा प्रविशिष्टे तु मध्यमे ।
अङ्गुल्यौ धारयेत्तस्मिन् विम्बमुद्रेति सोच्यते ॥३५९॥
दर्शयेदग्रतः पद्मविम्बमुद्रे यथोचिते ।

अथ वैष्णवीमुद्रा[1] । तत्रैव—
एकोनविंशतिर्मुद्रा विष्णोरुक्ता मनीषिभिः ।
शङ्खचक्रगदापद्मवेणुश्रीवत्सकौस्तुभाः ॥३६०॥

वनमाला तथा ज्ञानमुद्रा विल्वाह्वया तथा ।
गरुडाख्या तथा मुद्रा विष्णोः प्रीतिविवर्द्धिनी ॥३६१॥

नारसिंही च वाराही हयग्रीवी धनुस्तथा ।
वाणमुद्रा च परशुर्जगन्मोहिनिका तथा ॥३६२॥

काममुद्रा समाख्याता तासां लक्षणमुच्यते ।
वामाङ्गुष्ठं तु सगृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना ॥३६३॥

कृत्वोत्तानां तथा मुष्टिमङ्गुष्ठं तु प्रसारयेत् ।
वामाङ्गुल्यस्तथा श्लिष्टाः संयुक्ताः सप्रसारिताः ॥३६४॥

दक्षिणाङ्गुष्ठसस्पृष्टा मुद्रैषा शङ्खसञ्ज्ञिका ।
विपर्यस्ते तले कृत्वा वामदक्षिणहस्तयोः ॥३६५॥

अङ्गुष्ठौ ग्रथयेच्चैव कनिष्ठानामिकान्तरे ।
चक्रमुद्रेयमुद्दिष्टा सर्वसिद्धिकरी शुभा ॥३६६॥

हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा सलग्नौ सप्रसारितौ ।
अङ्गुल्यौ मध्यमे भूयः सलग्ने सप्रसारिते ॥३६७॥

---

१. ख वैष्णवमुद्रा. ।

गदामुद्रेयमाख्याता विष्णोः सन्तोषकारिणी ।
हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा सहतावुन्नताङ्गुली ॥३६८॥

तलान्तर्मिलिताङ्गुष्ठौ मुद्रैषा पद्मसंज्ञिका ।
ओष्ठे वामकराङ्गुष्ठो लग्नस्तस्य कनिष्ठिका ॥३६९॥

दक्षिणाङ्गुठसलग्ना तत्कनिठा प्रसारिता ।
तर्जनीमध्यमानामाः किञ्चित्सङ्कोच्य चालिताः ॥३७०॥

वेणुमुद्रा भवेदेषा सुगुप्ता प्रेयसी हरेः ।
अन्योन्यस्पृष्टकरयोर्मध्यमानामिकाङ्गुली ॥३७१॥

अङ्गुष्ठेन तु वध्नीयात्कनिष्ठामूलसश्रिते ।
तर्जन्यौ कारयेदेषा मुद्रा श्रीवत्ससञ्जिता ॥३७२॥

अनामापृष्ठसंलग्नां दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम् ।
कनिष्ठिकान्यया वद्ध्वा तर्जन्या दक्षया तथा ॥३७३॥

वामानामा च वध्नीयाद्दक्षाङ्गुठस्य मूलके ।
अङ्गुष्ठमध्यमे वामे सयोज्य सरला परा ॥३७४॥

चतस्रोऽप्यग्रसलग्ना मुद्रा कौस्तुभसञ्ज्ञिका ।
स्पृशेत्कण्ठादिपादान्त तर्जन्याङ्गुष्ठनिष्ठया ॥३७५॥

करद्वयेन मालावन्मुद्रेयं वनमालिका ।
उन्नतं वाममङ्गुष्ठ दक्षाङ्गुष्ठेन वेष्टयेत् ॥३७६॥

दक्षिणाङ्गुष्ठकं चैव तदीयाभिर्निपीड्य च ।
अङ्गुलीभिर्वामहस्ताङ्गुलिभिश्च ता पीडयेत् ॥३७७॥

गाढ हृदि क्षिपेदेषा विल्वाख्या मुद्रिका मता ।
हस्तौ तु विमुखौ कृत्वा ग्रथयित्वा कनिष्ठिके ॥३७८॥

मिथस्तर्जनिके श्लिष्टे श्लिष्टावङ्गुष्ठकौ तथा ।
मध्यमानामिके द्वे तु द्वौ पक्षाविव चालयेत् ॥३७९॥

एषा गरुडमुद्रा स्याद्विष्णो प्रीतिविवर्द्धिनी ।
तर्जन्यङ्गुष्ठकौ सक्तावग्रतो हृदि विन्यसेत् ॥३८०॥

वामहस्ताम्बुज चैव वामजानुनि विन्यसेत् ।
ज्ञानमुद्रा भवेदेषा रामचन्द्रप्रियङ्करी ॥३८१॥

जानुमध्ये करौ कृत्वा चिबुकौष्ठौ समावुभौ ।
हस्तौ च भूमिसलग्नौ कम्पमान पुन. पुन. ॥३८२॥

मुख च विवृत कुर्याल्लेलिहाना च जिह्विकाम् ।
नारसिंही भवेदेषा मुद्रा तत्प्रीतिवर्द्धिनी ॥३८३॥

दक्षोपरि कर वाम कृत्वोत्तानमध सुधीः ।
नामयेदिति सप्रोक्ता मुद्रा वाराहसज्ञिका ॥३८४॥

वामहस्ततले कृत्वा दक्षाङ्गुलीरधोमुखी ।
सरोप्य मध्यमा तासामुन्नम्याधो विकुञ्चयेत् ॥३८५॥
हयग्रीवप्रिया मुद्रा तन्मूर्त्तेरनुकारिणी ।

धनुर्बाणमुद्रेऽग्रे वक्ष्येते ।

मूर्ध्नि साङ्गुष्ठमुष्टी द्वे मुद्रा त्रैलोक्यमोहिनी ।
हस्तौ तु सम्पुटौ कृत्वा प्रसृताङ्गुलिकौ तथा ॥३८६॥

तर्जन्यौ मध्यमापृष्ठे अङ्गुष्ठौ मध्यमास्थितौ ।
काममुद्रेयमुदिता सर्वदेवप्रियङ्करी ॥३८७॥

पदार्थादर्शे वासुदेवमन्त्रस्याञ्जलिमुद्रोक्ता—

अञ्जल्याञ्जलिमुद्रा स्याद्वासुदेवाभिधाय सेति ।

अथ शैवमुद्रा । तत्र

शिवरहस्ये—

शैवीनामथ मुद्राणा दशाना षण्मुख शृणु ।
महादेवप्रियाणा ते कथ्यन्ते लक्षणानि वै ॥३८८॥

उच्छ्रित दक्षिणाङ्गुष्ठ वामाङ्गुष्ठेन रुन्धयेत् ।
वामाङ्गुलीर्दक्षिणाभिरङ्गुलीभिश्च वेष्टयेत् ॥३८९॥

लिङ्गमुद्रा समाख्याता शिवसान्निध्यकारिणी ।
मिथ कनिष्ठिके बद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके ॥३९०॥

अनामिकाद्वयाश्लिष्टदीर्घमध्यमयोरध ।
अङ्गुष्ठाग्रद्वय न्यस्येद्योनिमुद्रेयमीरिता ॥३९१॥

अङ्गुष्ठेन कनिष्ठाग्र बद्ध्वा शिष्टाङ्गुलीत्रयम् ।
प्रसारयेत् त्रिशूलाख्या मुद्रैषा परिकीर्त्तिता ॥३९२॥

अङ्गुष्ठतर्जन्यग्र तु ग्रथयित्वाङ्गुलित्रयम् ।
प्रसारयेदक्षमालामुद्रेय गुहकीर्त्तिता ॥३९३॥

अध कृतो दक्षहस्त. प्रसृतो वरमुद्रिका ।
ऊर्ध्वीकृतो वामहस्त. प्रसृतोऽभयमुद्रिका ॥३९४॥

मिलितानामिकाङ्गुष्ठमध्यमाग्राणि योजयेत् ।
शेषाङ्गुल्यावुच्छ्रिताग्रे मृगमुद्रेयमीरिता ॥३९५॥

पञ्चाङ्गुल्यो दक्षिणास्तु मिलितास्तूर्ध्वमुच्छ्रिता ।
खट्वाङ्गमुद्रा षड्वक्त्रशिवस्यातिप्रिया मता ॥३९६॥

पात्रवद्वामहस्त च कृत्वाङ्के वामके तथा ।
विधायोच्छ्रितवत्कुर्यान्मुद्रा कापालिनी मता ॥३९७॥

मुष्टि च शिथिला बद्ध्वा ईषदुच्छ्रितमध्यमा ।
दक्षिणामूर्ध्वमुन्नम्य[1] कर्णदेशे प्रचालयेत् ॥३९८॥

एषा मुद्रा डमरुका सर्वविघ्नविनाशिनी ।
लिङ्गयोनित्रिशूलाक्षमालेष्टाभिमृगात्मिका ॥३९९॥
खट्वाङ्गा च कपालाख्या डमरुः शिवतोषदा ।

अथ शक्तिमुद्राः—

शाक्तेयीनां च मुद्राणा कथ्यन्ते लक्षणानि तु ।
पाशाङ्कुशवराभीतिखड्गचर्मधनुःशराः ॥४००॥

मौशली मुद्रिका दौर्गी मुद्रा शक्तिप्रिया मता. ।
लक्ष्मीमुद्रार्चने लक्ष्म्या वाग्वादिन्यास्तु पूजने ॥४०१॥

अक्षमाला तथा व्याख्या वीणापुस्तकमुद्रिका ।
मातङ्गिन्यास्तु वीणाख्या मुद्रा चातिप्रिया मता ॥४०२॥

लक्ष्मीमुद्रा तु सर्वासा शक्तीनां प्रीतिदा मता ।
पाशाङ्कुशाख्ये प्रोक्ते च कथ्यन्तेऽन्या यथाक्रमम् ॥४०३॥

---

१. क. ० मुन्नस्य ।

उत्तान दक्षिण हस्त कृत्वाऽधो नामयेच्छनै ।
सहताङ्गुलिक मुद्रा वराख्या परिकीर्त्तिता ॥४०४॥

पराङ्मुख वामहस्तमुच्छ्रिताङ्गुलिक भवेत् ।
अभयस्य तु मुद्रैषा कथिता चाभयप्रदा ॥४०५॥

कनिष्ठानामिके वद्ध्वा स्वाङ्गुष्ठेनैव दक्षत. ।
शिष्टाङ्गुली तु प्रसृते सम्पुटे खड्गमुद्रिका ॥४०६॥

वामहस्त तथा तिर्यक् कृत्वा चैव प्रसार्य च ।
आकुञ्चिताङ्गुलि कुर्याच्चर्म्ममुद्रेयमीरिता ॥४०७॥

वामस्य मध्यमाग्र तु तर्जन्यग्रे नियोजयेत् ।
अनामिका कनिष्ठा च तस्याङ्गुष्ठेन पीडयेत् ॥४०८॥

दर्शयेद्वामके स्कन्धे धनुर्मुद्रेयमीरिता ।
दक्षमुष्टेस्तु तर्जन्या दीर्घया बाणमुद्रिका ॥४०९॥

मुष्टि कृत्वा तु हस्ताभ्या वामस्योपरि दक्षिणम् ।
कुर्यान्मुशलमुद्रेय सर्वविघ्नविनाशिनी ॥४१०॥

मुष्टि कृत्वा कराभ्या च वामस्योपरि दक्षिणम् ।
कृत्वा शिरसि सयोज्या दुर्गामुद्रेयमीरिता ॥४११॥

चक्रमुद्रा तथा वद्ध्वा मध्यमे द्वे प्रसार्य च ।
कनिष्ठिके तथानीय तदग्रेऽङ्गुष्ठकौ क्षिपेत् ॥४१२॥

लक्ष्मीमुद्रा परा ह्येषा सर्वसम्पत्प्रदायिनी ।
दक्षिणाङ्गुष्ठतर्जन्यावग्रलग्ने पराङ्गुलीः ॥४१३॥

प्रसार्य दर्शयेदेषा मुद्रा स्यादक्षमालिका ।
एषैव सन्नतोत्ताना व्याख्यामुद्रा समीरिता ॥४१४॥

वीणावादनवद्धस्तौ कृत्वा सञ्चालयेत्तत ।
वीणामुद्रेयमाख्याता सरस्वत्या प्रियङ्करी ॥४१५॥
वाममुष्टि स्वाभिमुखी कुर्यात्पुस्तकमुद्रिका ।

लक्षणसङ्ग्रहे—

अथ गायत्र्या द्वात्रिंशन्मुद्राः

सम्मुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा ।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुःपञ्चमुखं तथा ॥४१६॥

षण्मुखमधोमुखं च व्यापकाञ्जलिका तथा ।
शकटं यमपाशं च ग्रथितं सम्मुखोन्मुखम् ॥४१७॥

विलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मवराहकौ ।
सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥४१८॥

एता मुद्राश्चतुर्विंशद्गायत्र्यास्तु प्रतिष्ठिताः ।
वृथा मन्त्रजपश्चैव स्नानं भोजनमेव च ॥४१९॥

तथा वै तीर्थयात्रा च मुद्राहीने वृथा हि सा ।
यज्ञश्च निष्फलस्तेषां होमो देवार्चनं तथा ॥४२०॥

तस्मान्मुद्रा सदा ज्ञेया विद्वद्भिर्यत्नमास्थितैः ।
आकुञ्चिताङ्गुलिकरौ सम्मुखौ सम्मुखं भवेत् ॥४२१॥

कोशाकारौ तु साङ्गुष्ठौ तत्सम्पुटमुदाहृतम् ।
विरलाङ्गुलिकौ तौ तु विततं परिकीर्त्तितम् ॥४२२॥

विस्तीर्णं विस्तृतौ हस्तावन्योन्याञ्जलिसंयुतौ ।
कनिष्ठेनामिके युक्ते चेदेतद्द्विमुखं भवेत् ॥४२३॥

तदेव मध्यमायुक्तं त्रिमुखं परिकीर्त्तितम् ।
तदेव तर्जनीयुक्तं चतुर्मुखमुदीरितम् ॥ ४२४॥

तदेव स्यात्पञ्चमुखं मिलिताङ्गुष्ठकं यदि ।
तदेव षण्मुखं प्रोक्तं तथा व्यक्तकनिष्ठिकम् ॥४२५॥

अधोमुखयुतौ हस्तावधोमुखमुदीरितम् ।
व्यापकाञ्जलिका सा स्याद्व्यस्ताङ्गुलिकरौ युतौ ॥४२६॥

अङ्गुष्ठकद्वययुतं मुष्टिद्वयमधोमुखम् ।
भवेद्यदि तदा प्रोक्तं शकटं मुनिसत्तमैः ॥४२७॥

मुष्टिं कृत्वा करौ योज्य तर्जनी च प्रसार्य च ।
आकुञ्च्याग्रौ तु संयोज्य यमपाशं विदुर्बुधाः ॥४२८॥

अन्योन्यान्तरमाश्लिष्टदशाङ्गुलिकरावुभौ ।
अन्योन्यमपि बध्नीयाद् ग्रथित परिकीर्त्तितम् ॥४२९॥

चुलुकाग्रौ करौ कृत्वा चोर्ध्वे वामकरे सुधी ।
अधोमुखेन दक्षेण योजयेत्सम्मुखोन्मुखम् ॥४३०॥

अध कोशाकृतिकरौ विलम्ब विदुषो विदु. ।
युत मुष्टिद्वय चैव सम्यङ्मुष्टिकमीरितम् ॥४३१॥

अन्योन्यानामिकामध्यमन्योन्येन च सस्पृशेत् ।
कनिष्ठिकायुगेनैव मत्स्यमुद्रा समीरिता ॥४३२॥

अधोमुखे करे वामे तादृशो दक्षिणः कर. ।
पृष्ठदेशसमाक्रान्त. कूर्ममुद्रा समीरिता ॥४३३॥

मुष्टि कृत्वा वामहस्त मध्यमा तत्प्रसार्य च ।
निवेशयेद्वामकक्षे वराहस्य समीरिता ॥४३४॥

प्रसारिताङ्गुलिकरौ समीप कर्णयोर्नयेत् ।
सिंहाक्रान्त समुद्दिष्ट गायत्रीजपतत्परैः ॥४३५॥

दर्शयेच्छ्रोत्रयोर्हस्तौ सयुक्ताङ्गुलिपञ्चकौ ।
महाक्रान्त भवेन्मुद्रा गायत्रीहृदयङ्गता ॥४३६॥

तर्जनी दक्षहस्तस्य वामे करतले न्यसेत् ।
बध्नीयाद्वामहस्तेन मुद्गर समुदीरितम् ॥४३७॥

दक्षिणेन करेणैव चालिताङ्गुलिना शिर ।
वदनाभिमुखेनैव पल्लव मुनिभि स्मृतम् २४ ॥४३८॥

सुरभी ज्ञानसिंहौ च योनि कूर्मोऽथ पङ्कजम् ॥
लिङ्ग निर्याणमुद्रेति जपान्तेऽष्टौ प्रदर्शयेत् ॥४३९॥

निर्याण प्रयाण, तेन प्रयाणकाले दर्शनीया सहारमुद्रा लक्ष्यते ।

मणिबन्धस्थितौ कृत्वा प्रसृताङ्गुलिकौ करौ ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयुगल मिलित्वान्त. प्रसारयेत् ॥४४०॥
सप्तजिह्वाख्यमुद्रेय प्रिया वैश्वानरस्य हि ।

कुलार्णवे—

सर्वाभिरगुलीभिश्च दद्याद्भूतबलिं प्रिये ।

पद्यवाहिन्याम्—

वृद्धाभ्यामङ्गुलीर्बध्वा तर्जन्यौ दण्डवत्सृजेत् ।
अग्रे वाम ततः पृष्ठे दक्षमाकर्षयेच्छनैः ॥४४१॥
नाराचमुद्रा सम्प्रोक्ता योज्या बलिविसर्जने ।

लक्षणसंग्रहे—

अधोमुखे वामहस्ते ऊर्द्ध्वास्य दक्षहस्तकम् ।
क्षिप्त्वाङ्गुलीरङ्गुलीभिः सयोज्य परिवर्त्तयेत् ॥४४२॥
एषा सहारमुद्रा स्याद्विसर्जनविधौ मता ।
ऊर्द्धास्या वामतर्जन्यामधोवक्त्रा परा न्यसेत् ॥४४३॥
तिर्यङ्मध्ये भवेदेषा शनिमुद्राऽरिमर्दिनी ।
अङ्गुष्ठावुन्नतौ मुष्ट्योः कृत्वा सलग्नयोर्द्वयोः ॥४४४॥
तावेवाभिमुखौ कुर्यान्मुद्रैषा कालकर्णिका ।
दक्षिणा निविडा मुष्टिर्नासिकार्पिततर्जनी ॥४४५॥
मुद्रा विस्मयसज्ञा स्याद्विस्मयावेशकारिणी ।
मुष्टिरूर्ध्वकृताङ्गुष्ठा दक्षिणा नादमुद्रिका ॥४४६॥
तर्जन्यङ्गुष्ठसंयोगादग्रतो विन्दुमुद्रिका ।
वाग्भवस्य द्वितीयेन कामराजेन भैरव ॥४४७॥
मुद्राया बन्धन कार्यं मूलमन्त्रेण दर्शनम् ।
परित्याग तु मुद्रायास्तारावीजेन चाचरेत् ॥४४८॥
प्रान्तादि च द्रविन्दुभ्या षष्ठस्वरसमन्वितम् ।

तारावीजमिति प्रोक्तमिति । प्रान्तादिर्हकारः, सुबोधमन्यत् ।[1]

सारसंग्रहे—

ध्यान कुर्यात्ततो मन्त्री तत्तत्कल्पोक्तवर्त्मना ।
ध्यानमात्मेष्टदेवस्य वेदन मनसा मतम् ॥४४९॥
तदपि द्विविध प्रोक्त सगुण निर्गुण तथा ।
आत्मनो हृदयाम्भोज कर्णिकाकेसरोज्वलम् ॥४५०॥

---

१ अतः परमयमंशो विशेष ख पुस्तके—
निबन्धे—गन्धादिग्धौ करौ कृत्वा मुद्रा सर्वत्र योजयेत् ।
योऽन्यथा कुरुते मूढो न सिद्धिफलभाग्भवेत् ॥

प्रफुल्ल सोमसूर्याग्निमण्डलेन विराजितम् ।
स्वीयेष्टदेवतां तत्र ध्यायेदागमबोधिताम् ॥४५१॥

एव यद्वेदन तद्धि सगुरण ध्यानमुच्यते ।
यज्जीवब्रह्मरणोरैक्य सोह स्यामिति वेदनम् ॥४५२॥

तदेव निर्गु रण ध्यानमिति ब्रह्मविदो विदु ।
ध्यान तु तत्तत्कल्पेगु वक्ष्यते ।

योगनीतत्रे—

अथान्तर्यजन वक्ष्ये यथावदवधारय ।
वामनाडी समाकृष्य किञ्चिदाकुञ्चयेद् गुदम् ॥४५३॥
रेचयेत्सव्यमार्गेरण जिह्वां तालुगता चरेत् ।
शक्ति. शिवपदे योज्या किञ्चिदाकुञ्चयेदधः ॥४५४॥
अन्तर्यागमिद देवि कथितं गुरुभाषितम् ।

फेत्कारिरणीतन्त्रे—

आराध्य मनसा भक्त्या वाह्यपूजामथाचरेत् ।

गौतमीये—

पूजा च मानसी कुर्यात्ततोऽर्घस्थापन चरेत् ।

सारसङ्ग्रहे—

ध्यात्वा ह्यन्तर्यजेत्पीठ न्यासमार्गेण मन्त्रवित् ।
तस्मिन्पीठे स्थितामिष्टदेवतामुक्तविग्रहाम् ॥४५५॥

ध्यात्वा यजेच्चन्दनाद्यैर्मानसैर्भोजनान्तिकैं ।
भोजनावसरे चान्तर्वैश्वदेव समाचरेत् ॥४५६॥
मूलाधारे स्मरेत्कुण्ड कुण्डल्यग्निसमुज्वलम् ।
आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मचतुरस्रकम् ॥५५७॥
धर्माधर्मान्वित तत्र मूलमन्त्रपुर सरम् ।
अमु जुहोमि स्वाहेति प्रत्येक जुहुयात्तत ॥४५८॥
अहन्तासत्यपैशुन्यकामक्रोधादिक हवि.
मन एव स्रुवः प्रोक्तः सुषुम्णा स्रुगुदीरिता ॥४५९॥
तदन्ते तन्मयो भूत्वा यथाशक्ति जपेन्मनुम् ।
तज्जप सर्वसम्पत्त्यै देवतायै निवेदयेत् ॥४६०॥

जपनिवेदनमन्त्रस्त्वग्रे वक्ष्यते ।

लक्षणसागरे[१]—

इत्थं जपं यथाशक्ति कृत्वा देवि समर्प्य तत् ।
गुरुं प्रणम्य विधिवत्पूजाचक्रं समुद्धरेत् ॥४६१॥

सिद्धेश्वरीतन्त्रे—

प्रणम्य श्रीगुरुं भक्त्या साधकः कुङ्कुमादिभिः ।
स्वर्णादिरचिते पीठे पूजाचक्रं समुद्धरेत् ॥४६२॥

संस्थाप्य पुरतो देवि शुभे पीठे सुरेश्वरि ।
दद्यात्पुष्पाञ्जलिं तत्र मूलमन्त्रेण साधकः ॥४६३॥

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

श्रीखण्डरक्तश्रीखण्डश्रीपर्णीसम्भवे पुटे ।
चक्रं संस्थापयेद्देवि नान्यत्र वरवर्णिनि ॥४६४॥

श्रीरुद्रयामले—

ततः कुङ्कुमसिन्दूरैः कार्यं यन्त्रं तु योगिना ।
सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके वैद्रुमे तथा ॥४६५॥
चक्रे यथोक्तविधिना पूज्या देवी नरोत्तमैः ।

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

गण्डकीभवपाषाणे स्वर्णे रजतताम्रयोरिति ।

लक्षसागरे—

यावज्जीवं सुवर्णे स्याद्रूप्ये द्वाविंशतिं प्रिये ।
ताम्रे द्वादशकं वर्षं तदर्द्धं भूर्जपत्रके ॥४६६॥

सारसङ्ग्रहे—

ताम्रे द्वादशकं वर्षं स्फाटिकादौ तु सर्वदा ।
तेषां मध्ये स्फाटिकं तु सर्वसिद्धिप्रदं भवेत् ॥४६७॥

लक्षसागरे—

भूमौ सिन्दूररजसा रचितं सर्वकामदम् ।
सुवर्णरचितं यन्त्रं सर्वराजवशङ्करम् ॥४६८॥

---

१. ख. लक्षसागरे ।

रजतेन कृत यन्त्रमायुरारोग्यकामदम् ।
ताम्रेण रचित यन्त्र सर्वैश्वर्यप्रदं मतम् ॥४६९॥

यन्त्र तु स्फटिके देवि मनोभिलषितप्रदम् ।
माणिक्यरचित यन्त्र राज्यदं भुक्तिद मतम् ॥४७०॥

गोमेदरचित यन्त्र सर्वैश्वर्यप्रदं मतम् ।
क्लृप्त मरकते यन्त्र सर्वशत्रुविनाशनम् ॥४७१॥

लोहत्रयोद्भव यन्त्र सर्वसिद्धिकर मतम् ।
लोहत्रयविभाग तु कथयामि तवानघे ॥४७२॥

भागा दश सुवर्णस्य रजतस्य च षोडश ।
ताम्रस्य रविभागेन पीठ कुर्यान्महेश्वरि ॥४७३॥

तस्मिन्पीठे तु निर्माण पूजाचक्रस्य कारयेत् ।
शान्तिद पुष्टिद प्रोक्तं सर्वशत्रुनिवर्हणम् ॥४७४॥
आयुरारोग्यजनक कान्तिदं पुष्टिद मतम् ।

तन्त्रराजे—

सीसकास्यादिषु पुन पूर्वोक्तविपरीतकृत् ।
फलकायां पटे भित्तौ स्थापयेन्न कदाचन ॥४७५॥

स्थापित यदि मोहेन लोभेनाज्ञानतोऽपि वा ।
कुल वित्तमपत्य च निर्मूलयति सर्वदा ॥४७६॥

कुलमूलावतारे—

अग्निरङ्गुलविस्तार प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोत्तरम् ।
पलप्रमाण कर्त्तव्यमर्चापीठ मनोहरम् ॥४७७॥

यवार्द्धोच्चं प्रकुर्वीत चतुरस्रं समन्ततः ।
तस्मिन्पीठे च निर्माण पूजाचक्रस्य कारयेत् ॥४७८॥

सौत्रामणीतन्त्रे—

ऋजुरेखा भवेल्लक्ष्मीर्वक्ररेखा दरिद्रता ।

लक्षसागरे—

अग्निरङ्गुलहेमस्य रजतस्य तथैव च ।
ताम्रस्य पूर्वसख्यैव माणिक्यादौ यथेच्छया ॥४७९॥

हेमस्येति । अग्निरङ्गुलविस्तारमिति च छान्दसम्, अङ्गुलविस्तारायाममित्यर्थ. । पल विंशत्युत्तरत्रिशतगुञ्जापरिमितम् । अगुलविस्तारस्तु मानान्तराङ्गुलमानेन ।

वेदिकापीठशिविकारथादीना विधि पुन
मानान्तराङ्गुलेनैव भवेन्नान्येन केनचित् ।।४८०।।

इति महाकपिलपञ्चरात्रवचनात् । पूजाचक्रस्य पीठशब्दवाच्यत्वात् ।

मानान्तराङ्गुललक्षण तु—

महाकपिलपञ्चरात्रे—

विन्यस्तैस्तिर्यगष्टाभिर्यवैर्मानान्तराङ्गुलम् ।
शालिभिर्वा ऋजुन्यस्तैस्त्रिभिर्मानान्तर भवेत् ।।४८१।।

तन्त्रराजे—

चक्रे देव्या तथा शिष्ये प्रतिष्ठा त्रिविधोच्यते ।
सा च तत्वविदा कार्या सम्प्रदायानुरोधिना ।।४८२।।

चक्रे पूजाचक्रे । देव्या देवीमूर्त्तौ देवीत्युपलक्षणम्, तेन स्वेष्टदेवतामूर्त्तौ सप्रदायानुरोधिना नित्यनैमित्तिकोपास्तिनिरतेन ।

तथा—

स्थिरे शुभग्रहोपेतेऽनुकूले गुणशालिनि ।
मुहूर्ते कारयेद्विद्वान्पूर्णाया वा शुभोदये ।।४८३।। इति ।

तथा—

क्षौद्राज्यदुग्धै प्रथम नालिकेराम्भसा तत ।
अभिषिच्याथ तोयेन क्वथितेनाक्षरौषधै ।।४८४।।
आवाह्याभ्यर्च्य तल्लग्ने चक्रे सस्थाप्य पूजयेत् ।
गन्धै पुष्पैर्नवैधूपैर्दीपैर्नैवेद्यतर्पणै ।।४८५।।
त्रिरात्र पूजयेद्देवी योगिनीयोगिभि. सह ।
एव दिनत्रय कृत्वा ततो नित्यक्रम भजेत् ।।४८६।।
एवदेवी प्रतिष्ठाया क्रम सान्निध्यकारक ।

लक्षसागरे—

आदौ वेदोदितैर्मन्त्रैरग्न्युत्तारणमाचरेत् ।
धातुनिर्मितचक्राणा मूर्त्तीना च विशेषत ।।४८७।।

अग्न्युत्तारणप्रकारस्तु प्रयोगे वक्ष्यते । वर्णौषधयस्तु—

प्रपञ्चसारे—

चन्दनकुचन्दनागुरुकर्पूरोशीररोगजलघुसृणा ।
कक्कोलजातिमासीमुरचोरग्रन्थिरोचनापत्रा ॥४८८॥

पिप्पलविल्वगुहारुणकत्तृणलवङ्गाह्व[1]-कुम्भिवन्दिन्य ।
सोदुम्बरकाश्मरिकारिथराह्वदरपुष्पिकामयूरशिखा ॥४८६॥

प्लक्षाग्निमन्थसिंहीकुशाह्वदर्भोऽथ कृष्णदरपुष्पी ।
रोहिणटुण्डुक[2]-वृहतीपाटलचित्रातुलस्यपामार्गा ॥४६०॥

शतमखलताद्विरेफो विष्णुक्रान्ता मुसल्यथाजलिनी ।
दूर्वा श्रीदेविसहे तथैव लक्ष्मीसदाभद्रे ॥४६१॥

आदीनामिति कथिता वर्णाना क्रमवशादिहौषधय ।
गुटिकाकषायभसितप्रभेदतो निखिलसिद्धिदायिन्यः ॥४६२॥

अथैतासा नामानि सुवोधानि लिख्यन्ते—चन्दन[1]रक्तचन्दना[2]-ऽगुरु[3]कर्पूरो[4]-शीर[5]कुष्ठ[6]बाल[7]कुङ्कुम[8]कक्कोल[9]जातीफल[10]जटामासी[11]मुर[12]चोर[13]ग्रथि[14] रोचना[15] पत्र[16] पिप्पल[17] विल्व[18] पृश्णिपर्णी[19] चित्रक[20] कत्तृण[21] लवङ्ग[22] कच्चुल[23]वन्दि यु-[24]दुम्वर[25] पाषाणभेद[26] पद्म[27]शङ्खपुष्पी[28]मयूर शिखा[29]प्लक्षा[30]ऽग्निमन्थ[31]सिंही[32]कुश[33]कृष्णशखपुष्पी[34]रोहिण[35]श्योनाक[36] वृहती[37]पाटल[38]मूषकपर्णी[39]तुलस्य[40]पामार्ग[41]-न्द्रवल्ली[42]भृङ्गराजा[43]ऽपरा-जिता[44]तालमूली[45]कृताञ्जलि[46]दूर्वा[47] श्रीदेवी[48]कुमारी[49]भार्गी[50] भद्र-मुस्ते[51]त्येकपञ्चाशदक्षरौषधय. क्रमादकारादिक्षकारान्तैकपञ्चाशद्वर्णानाम् ।

[3] [निबन्धे—

अथ वक्ष्ये देवताना सुप्रतिष्ठाविधिक्रमम् ।
पुण्यक्षेत्रे पुण्यकाले शैलादिविहितस्थले ॥४६३॥

मन्त्री कल्पानुसारेण पूर्वेद्युरधिवासयेत् ।
साय सङ्कल्प्य विधिवद् घटस्थापनपूर्वकम् ॥४६४॥

---

१ पदार्थादर्शे ०तृणकलवङ्गह्व' इति पाठ । २ ख. दुण्डुक०

३ [—] कोष्ठगताशो त्रिणवत्युत्तरचतु शतश्लोकादारभ्य त्रयोविंशोत्तरपञ्च—शतश्लोकादध स्थित-'गोरश्मे ते चन्द्राणी' ति-चन्द्रमन्त्रपर्य्यन्तो नास्ति क. पुस्तके ।

गणेशादीन् समभ्यर्च्य दिक्पालान् परिपूजयेत् ।
यथाशक्त्युपचाराद्यै. पूजयेन्मूलदेवताम् ॥४९५॥

सुगन्धितैलगन्धाद्यैर्दिव्यैस्तमधिवासयेत् ।
चन्द्र इत्यादिमन्त्रेण जयघोषपुरस्सरम् ॥४९६॥

इत्यधिवासन कृत्वा सयतो विजितेन्द्रिय. ।
प्रातर्नित्य तु निर्वर्त्य क्लृप्ते यागस्थले विशेत् ॥४९७॥

पताकाध्वजसङ्कीर्णे दिव्यमण्डलमण्डिते ।
वितानचामरच्छत्रपुष्पमालाविराजिते ॥४९८॥

मङ्गलाङ्कुरपात्राद्यैः कलशै. परिभूषिते ।
मण्डल सर्वतोभद्र वेद्या उपरि सलिखेत् ॥४९९॥

प्राङ्मुखो वाग्यतो भूत्वा सङ्कल्प्याभीष्टसिद्धये ।
पञ्चशुद्धि समाचर्य कूर्चमक्षतसयुतम् ॥५००॥

सस्थाप्य मण्डले तत्र यजेदाधारशक्तिका ।
पीठमन्त्रान्तमास्तीर्य स्थापयेत्कलश बुध ॥५०१॥

दीक्षाक्रमोक्तविधिनाऽभिषेककलशं तथा ।
पञ्चगव्य तत. कृत्वा शिवमन्त्रविशोधितम् ॥५०२॥

तेन सुस्नापयेन्मन्त्री प्रतिमां प्रणव जपन् ।
पञ्चामृतेन हविषा दध्ना च पयसा क्रमात् ॥५०३॥

तत उद्वर्त्तन कुर्याज्जलेन स्नापयेदपि ।
वाससा जलमुत्तोल्य गन्धलेप विधापयेत् ॥५०४॥

नयेत् स्थापितकुम्भस्य समीपे देवतां बुध ।
ततो ध्यात्वा यथोक्ता ता मुद्रयाऽऽवाहयेत् क्रमात् ॥५०५॥

लेलिहामुद्रया हस्त विन्यसेद्देवताहृदि ।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रन्तु दशधा प्रजपेत्तत. ॥५०६॥

ततो दैवतगायत्री शतमष्टोत्तर तथा ।
तत. कल्पोक्तविधिना परिवारसमन्विताम् ॥५०७॥

पूजयेद्देवतां पश्चात् स्ववामे स्नानमण्डले ।
अष्टपत्रसमायुक्ते पीठे परिनिधाय च ॥५०८॥

सुगन्धिदिव्यतैलेन दद्यादभ्यङ्गमेव हि ।
मूलेन पावमानेन सहस्रशीर्षया बुध॰ ॥५०९॥

स्नापयेद् भक्तिभावेन अभिषेकघटामृतै॰ ।
कर्पूरागरुकस्तूरीप्रसूनचन्दनोदकै॰ ॥५१०॥

नानातीर्थोदकेनापि स्वर्णरत्नोदकैर्जलै. ।
सर्वौषधिजलैर्गन्धजलैर्यत्नेन सेचयेत् ॥५११॥

तत शुद्धदुकूलेन जलमुत्तोल्य साधक. ।
परिधाय दुकूले द्वे स्वर्णनिर्मितदोलया ॥५१२॥

मण्डले ता समानीय गीतनृत्यजयस्वनैः ।
षोडशैरुपचारैस्तु पूजयेत् कल्पमानस ॥५१३॥

कुण्डे वा स्थण्डिले मन्त्री हविषा सस्कृतेऽनले ।
शतमष्टोत्तर हुत्वा श्रपयित्वा चरु तत. ॥५१४॥

यथाविधि विधानेन श्रुचा होम समाचरेत् ।
ग्रासप्रमाण चरुक मूलेनाहृत्य मन्त्रवित् ॥५१५॥

घृतप्लुत ततो हुत्वा जुहुयादग्निसम्मुखे ।
पञ्चविशतिवार च देवमुद्दिश्य यत्नत. ॥५१६॥

चरुणा दिक्पतिभ्यश्च दद्यात् पूर्वादितो बलिम् ।
तत्र आवृतिदेवेभ्यो घृतेनाहुतिमाचरेत् ॥५१७॥

अथवा चरुणा तद्वत्ततो देवसमीपगे ।
गन्धपुष्पाञ्जलि पञ्च प्रदद्याच्छत्रचामरे ॥५१८॥

अष्टोत्तरशत मूलमन्त्र जप्त्वा समाहित ।
अभिषिञ्चेत्ततो देवी पूजाकुम्भस्थपल्लवैः ॥ ५१९॥

मातृकायुक्तमन्त्र च जपञ्जयजयस्वनै॰ ।
गत्वा होमसमीपं च दद्यात्पूर्णाहुतिं तत. ॥५२०॥

दक्षिणा गुरवे दद्यात् सुवर्णं कर्षमानत. ।
अथवा तच्चतुर्थांश यथाविभवपूर्वकम् ॥ ५२१॥

गुञ्जाद्वादशको माषस्तदष्टौ कर्ष उच्यते ।
तत सन्तोषयेद्विप्रान् गृहीत्वा चाशिषो द्विजात् ॥५२२॥

इति देवप्रतिष्ठानमुक्त सर्वसमृद्धिदम् ।
य करोति प्रतिष्ठान दैवतस्य महाजन ॥५२३॥

वसेद्दिवि सहस्राणि वर्षाणि देवमानत ।
ततो वर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥५२४॥
अथवा कोटि कल्पान्ते मोदते चाच्युते पदे ।

'चन्द्र' इत्यादिमन्त्रास्तु यजुर्वेदे— 'चन्द्र त्वा चन्द्रेण क्रीणामि शुक्र शुक्रेणामृतममृतेन सग्मेते गोरश्मे ते चन्द्राणि' इति ।]

देवस्य यन्त्ररूपस्य यन्त्रव्याप्तिमजानता ।
कृतार्चनादिक सर्वं व्यर्थं भवति शाम्भवि ॥५२५॥

यन्त्र मन्त्रमथ प्रोक्त देवता मन्त्ररूपिणी ।
यन्त्रे सम्पूजिता देवि सहसैव प्रसीदति ॥५२६॥

कामक्रोधादिदोषोत्थसर्वदुःखनियन्त्रणात् ।
यत्रमित्याहुरेतस्मिन्देव प्रीणाति पूजितः ॥५२७॥

शरीरमिव जीवस्य दीपस्य स्नेहवत्प्रिये ।
सर्वेषामपि देवाना तथा यन्त्र प्रतिष्ठितम् ॥५२८॥

तस्माद्यन्त्र लिखित्वा वा ध्यात्वा वा भजते शिवम् ।
ज्ञात्वा गुरुमुखात्सर्वं पूजयेद्विधिना शिवे ॥ ५२९॥

एकपीठे पृथक्पूजा विना यन्त्र करोति य ।
अङ्गाङ्गित्वमपि त्यक्त्वा देवताशापमाप्नुयात् ॥५३०॥

एकपीठे सुरेशानि स्वे स्वे यन्त्रे पृथक् पृथक् ।
यजेदावरणोपेतान् देवास्तत्तद्विधानत. ॥५३१॥

आवाह्य देवतामेकामर्च्चयेच्चान्यदेवताम् ।
उभाभ्या लभते शाप मन्त्री चञ्चलमानस ॥५३२॥

कुलप्रकाशतन्त्रे—

खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानविवर्जिते ।
व्यङ्गेऽनर्हपशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु ॥५३३॥

अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते ।
दशस्वेतेषु नो कुर्यु. सन्निधान दिवौकस ॥५३४॥

रुद्रयामले—

तेषा लिङ्गे मणौ कुम्भे मण्डले च प्रपूजनम् ।
शालग्रामे च तद्बुध्या यन्त्रादौ च प्रपूजयेत् ॥५३५॥
भूमावेव कृता पूजा पुत्रायुर्द्धननाशिनी ।

[1] [शातातप —

भूमावप्सु तथाग्नौ च दिवि सूर्ये च देवता ।
नित्यमन्त्रे हिरण्ये च ब्राह्मणेषु च गोषु च ॥५३६॥

अप्सु देवा मनुष्याणा दिवि देवा मनीषिणाम् ।
काष्ठलोष्ठेषु मूर्खाणां मुमुक्षोरात्मनि देवता ॥५३७॥

निवन्धे—

सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणा गावो वैष्णवा खं मरुज्जलम् ।
भूरात्मा सर्वभूतानि भद्रपूजापदानि मे ॥५३८॥
सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् ।
आतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोषु वै यवसादिना ॥५३९॥

वैष्णवे वन्धुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ।
वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतै ॥५४०॥
स्थण्डिले मन्त्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि ।
क्षेत्रज्ञ सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥५४१॥]

सोमशम्भुः—

शालग्रामशिलाया तु तत्तद्बुध्या समर्चयेत् ।

कुलार्णवे—

लिङ्गस्थण्डिलयोर्वन्हौ सूर्यकुड्यपटेषु च ।
मण्डले फलके मूर्ध्नि हृदये दश कीर्त्तिता. ॥५४२॥

एषु स्थानेषु देवेशि यजन्ति परम शिवम् ।

शिवमित्युपलक्षण तेषामित्युक्ते. । तेषां पचायतनदेवतानाम् । यंत्रादावित्यादिपद प्रतिमापरम् ।

---

१ [—] कोष्ठवद्धोऽश. ख. पुस्तके दृश्यते ।

सालग्रामे मणौ यन्त्रे स्थण्डिले प्रतिमासु च ।
हरेः पूजा तु कर्त्तव्या केवले न तु भूतले ॥५४३॥

इति त्रैलोक्यसम्मोहनवचनात् ।

निबन्धे—

अग्नौ चैवाथवा सूर्ये प्रतिमाया जलेऽपिवा ।
पूजयेद्भक्तिभावेन प्रत्यहं परमेश्वरम् ॥५४४॥

प्रतिमा तु तत्तद्ध्यानोक्तरूपा कार्या ।[1]

कपिलपञ्चरात्रे—

मात्राङ्गुलप्रमाणेन दशपञ्चदशाङ्गुला ।
गृहे तु प्रतिमा पूज्या नाधिका तु प्रशस्यते ॥५४५॥

दशाङ्गुलमिता पञ्चदशाङ्गुलमिता वेत्यर्थः ।

दशाङ्गुलप्रमाणा वा तिथ्यङ्गुलमितापि वा ।
अभ्यर्च्या प्रतिमा विष्णोर्गृहेषु गृहमेधिभिः ॥५४६॥

इति हयशीर्षपञ्चरात्रवचनात् ।

वाराहपुराणे—

नार्च्या गृहेऽश्मजा मूर्त्तिश्चतुरङ्गुलतोऽधिका ।
न वितस्त्यधिका धातुसम्भवा श्रेय इच्छता ॥५४७॥

पदार्थादर्शे—

अङ्गुष्ठपर्व आरभ्य वितस्तिर्यावदेव तु ।
गृहे तु प्रतिमा कार्या नाधिका हि प्रशस्यते ॥५४८॥

[2]मात्राङ्गुललक्षणं तु—

महाकपिलपञ्चरात्रे—

आचार्यदक्षिणकरे मध्यमाङ्गुलिमध्यमम् ।
पर्वणोरन्तरं दीर्घं मात्राङ्गुलमुदाहृतम् ॥५४९॥

---

१. इत परमयमशोऽभ्यधिकोऽवलोक्यते ख० पुस्तके—

कुलार्णवे—गवां सर्वाङ्गगं क्षीरं स्रवेत्स्तनमुखाद्यथा ।
तथा सर्वगतो देवः प्रतिमादिषु राजते ॥१॥
आभिरूप्याच्च बिम्बस्य पूजायाश्च विशेषतः ।
साधकस्य तु विश्वासात् सान्निध्यं देवता भजेत् ॥२॥

२. इतः पूर्वमयमशोऽदृश्यते ख० पुस्तके—*क्वचित्*-शैलजा न गृहे पूज्या । शैलजा पाषाणजा ।

यत्तु—

सौम्या तु हस्तमात्रा वसुदा हस्तद्वयोच्छ्रिता प्रतिमा ।
क्षेमसुभिक्षाय भवेत् त्रिचतुर्हस्तप्रमाणा वा ॥५५०॥

इति वचनं तद्गृहव्यतिरिक्तस्थलस्थापितप्रतिमाविषयम् ।[1]

ज्ञानमालायाम्—

गिरिजारतसौख्याय जाता विघ्नपरा सुराः ।
तच्छ्रुत्वा चरित देव्या शापो दत्तोऽतिदारुण. ॥५५१॥

पार्वतीशापसयुक्ता देवा अश्मत्वमागता' ।
विष्णुना शङ्करेणापि तथान्यै. सुरसत्तमैः ॥५५२॥

सस्तुता वरदा जाता पाषाणत्वेऽपि भो सुरा ।
स्वस्थाने पूजयिष्यन्ति पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥५५३॥

दातु समर्था मद्वाक्यादेष एव वरोऽर्पित. ।
तस्मात्पूजा विधातव्या पाषाणप्रतिमासु च ॥५५४॥

हयशीर्षपञ्चरात्रे—

मृण्मयी दारुघटिता लोहजा रत्नजा तथा ।
शैलजा गन्धजा चैव कौसुमी सप्तधा स्मृता ॥५५५॥

कौसुमी गन्धजा चैव मृण्मयी प्रतिमा हिता ।
तत्कालपूजिताश्चैता सर्वकामफलप्रदा. ॥५५६॥

---

१. ख० पुस्तकेऽध:स्थोऽयमशो विशेष·—

गौतमीतन्त्रे—शिल्पिना कृष्णभक्तेन विश्वकर्मोक्तिजानता ।
दशपञ्चाङ्गुला मुख्या मध्यमा द्वादशाङ्गुला ॥१॥

अष्टाङ्गुलाऽधमा सा तु न्यूनाधिक्यं न कारयेत् ।
अज्ञानेनापि मोहेन यदि कुर्य्यान्निराधमः ॥२॥

प्रतिष्ठा विकला तस्य पूजनान्न फलं भवेत् ।
मानाङ्गुलविहीना या प्रतिमा यत्र तिष्ठति ॥३।

राजान पीडयत्येव गृहस्थो निरय व्रजेत् ।
मानाङ्गुलेन सा कार्या नान्यथा मुनिसत्तम ॥४॥

पर्वताग्रे नदीतीरे चत्वरे गोष्ठभूमिषु ।
समुद्रतारेऽरण्येवा मानहीना न दुष्यति ॥५॥

महाकपिलपञ्चरात्रेऽपि—

शैलजा लोहजा वापि रत्नजा वाथ दारुजा ।
मृण्मयी चैति पञ्चैता. प्रतिमाः परिकीर्त्तिता. ॥५५७॥

सर्वेषामेव देवानां महानीला यश प्रदा ।
दारुजा कामदा प्रोक्ता सौवर्णी भुक्तिमुक्तिदा ॥५५८॥

राजती स्वाराज्यदात्री ताम्री ह्यायुर्विवर्द्धिनी ।
कास्या वह्वापद हन्ति रैतिकी शत्रुनाशिनी ॥५५९॥

सर्वभोगप्रदा शैली स्फाटिकी दीप्तिकारिका ।
महाभोगप्रदा ख्याता मृण्मयी खलु शोभना । ५६०॥

मृण्मय्यां तत्रैव विशेष उक्तः—

मृण्मयी प्रतिमा वक्ष्ये यथावत्ता निबोध मे ।
पक्काऽपक्का द्विधा प्रोक्ता मृण्मयी प्रतिमा क्रमात् ॥५६१॥

सर्वलोका न शसन्ति प्रतिमां दग्धमृण्मयीम् ।
अपक्का प्रतिमा शस्ता सैव कार्या विचक्षणै. ॥५६२॥

सुधया नैव कर्त्तव्या नाश्मचूर्णैः कदाचन ।
मृदैव मृण्मयी कुर्याद्यथावदनुपूर्वशः ॥५६३॥

ब्राह्मणस्य सिता मृद्वै क्षत्रियस्यारुणा स्मृता ।
विशाम्पीता भवेन्मृद्वै कृष्णा शूद्रस्य कीर्तिता ॥५६४॥

इति [1] । अन्यत्र विशेष —

नृपभयमत्यङ्गायां हीनाङ्गायामकल्पता कर्त्तु ।
क्षामोदर्यां क्षुद्भयमर्थविनाश कृशाङ्गायाम् ॥५६५॥

मरण तु सक्षतायां शस्त्रनिपातेन निर्दिशेत्कर्त्तु ।
वामे विनता पत्नी दक्षिणविनता हिनस्त्यायु ॥५६६॥

---

१ अत परमयमशो विशेषः ख. पुस्तके— तथा मृण्मयमूर्त्तिपूजने फलाधिक्यश्रवणात् । देवीमाहात्म्ये—

तौ तस्मिन्पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्ति महीमयीम् ।
अर्हणां चक्रतुस्तस्या पुष्पधूपाग्नितर्पणै. ॥१॥　इति दिक् ।

अन्धत्वमूर्ध्वंदृष्टौ करोति चिन्तामधोमुखी दृष्टिः ।
सर्वप्रतिमास्वेव शुभाऽशुभ भास्करोक्तमवगच्छेत् ॥५६७॥

इति तथान्यत्रापि—

नाधिकाङ्गी न हीनाङ्गी कर्त्तव्या देवता क्वचित् ।
अधिका शिल्पिन हन्यात्कृशा चैवार्थनाशिनी ॥५६८॥

कृशोदरी तु दुर्भिक्ष निर्मांसा धननाशिनी ।
वक्रनासाऽतिदु खाय सक्षिप्ताङ्गी भयङ्करी ॥५६९॥

चिपिटा दु खशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी ।
दु खदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा ॥५७०॥

हीनासा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृप ।
शुष्कवक्त्रा च राजान कटिहीना च मारयेत् ॥५७१॥

पाणिपादविहीनाया जायते म(न)रको महान् ।
जङ्घाहीना च या मूर्ति शत्रुकल्याणकारिणी ॥५७२॥

पुत्रमित्रविनाशाय हीना वक्ष स्थलेन या ।
सम्पूर्णावयवा या तु आयुर्लक्ष्मीप्रदा सदा ॥५७३॥
एव लक्षणमासाद्य कर्त्तव्या मूर्त्तिरुत्तमा । इति ।

तथान्यत्र—

खण्डिता स्फुटिता जीर्णामवलीढा च वह्निना ।
प्रतिमां वर्जयेद्यत्नाद्भग्ना स्वाल्लक्षणाच्च्युताम् ॥५७४॥
नि.क्षिपेद्दारुजामग्नौ तथान्यामप्सु नि क्षिपेत् ।इति।

तन्त्रसारे—

दग्ध च स्फुटित यन्त्र हृत चौरेण वा पुन ।
उपवासम्प्रकुर्वीत दिनमेकमतन्द्रित. ॥५७५॥

लक्षमात्र जपेद्विद्यां होमतर्पणपूर्विकाम् ।
भक्त्या चैव गुरु तोष्य ब्राह्मणानपि भोजयेत् ॥५७६॥
लक्षमयुतमित्येके ।

कदाचिल्लुप्तचिह्न वा स्फुटिता दिवि दूषणम् ।
भग्न करोति यो मूर्खो मृत्युस्तस्य ध्रुव[1] भवेत् ॥५७७॥

---

१. ख. द्रुतम् ।

तस्मात्तु तीर्थराजे वा गङ्गादिसरिता वरे ।
समुद्रे वा क्षिपेद्देवि चान्यथा मृत्युमाप्नुयात् ॥५७८॥

तथा—

एकाहपूजाविहतौ कुर्याद् द्विगुणमर्चनम् ।
द्विरात्रे तु महापूजां सम्प्रोक्षणमत परम् ॥५७९॥

मासादूर्ध्वमनेकाहपूजा यदि विहन्यते ।
प्रतिष्ठैवेष्यते कैश्चित्कैश्चित्सम्प्रोक्षणक्रमः ॥ ५८०॥

सम्प्रोक्षणलक्षण यथा तत्रैव—

सम्प्रोक्षण तु देवस्य देवमुद्वास्य पूर्ववत् ।
पञ्च पञ्चक्रमेणैव स्नापयित्वा मृदम्भसा ॥५८१॥

गवाञ्चैव रसै. स्नाप्य दर्भतोये विशोध्य च ।
प्रोक्षयेत्प्रोक्षणीतोयैर्मूलेनाष्टोत्तर शतम् ॥५८२॥

सपुष्प सकुशं पाणि न्यस्य देवस्य मस्तके ।
पञ्चवार जपेन्मूलमष्टोत्तरशतोत्तरम् ॥५८३॥

ततो मूलेन मूर्द्धादिपीठान्तं सस्पृशेदपि ।
तत्वन्यास लिपिन्यासं मन्त्रन्यास च विन्यसेत् ॥५८४॥

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्रतिष्ठापनमाचरेत् ।
पूजा च महती कुर्यात्स्वतन्त्रोक्ता यथाविधि ॥५८५॥
यागहीनादिषु प्रायः सम्प्रोक्षणविधि. स्मृत. । इति ।

हयशीर्षपञ्चरात्रे—

आदिमूर्त्तिर्वासुदेवः सङ्कर्षणमथासृजेत्[1] ।
प्रद्युम्न चानिरुद्ध च स्वयमेवासृजत्प्रभु. ॥५८६॥
चतुर्मूर्त्ति. परम्प्रोक्त एकैको भिद्यते त्रिधा ।
केशवादिप्रभेदेन मूर्त्तिद्वादशक स्मृतम् ॥५८७॥

पङ्कज दक्षिणे दद्यात्पाञ्चजन्य तथोपरि ।
वामोपरि गदा यस्य चक्र चाधोऽव्यवस्थितम् ॥५८८॥

---

१. ख.० सृजत् ।

आदिमूर्त्तेस्तु भेदोऽयं [1][केशवेति प्रकीर्त्यते ।
अधरोत्तरभावेन कृतमेतत्तु यत्र वै ॥५८८॥

नारायणाख्या सा मूर्त्ति. स्थापिता भुक्तिमुक्तिदा ।
सव्याध.पङ्कज यस्य पाञ्चजन्य तथोपरि] ॥५८९॥

दक्षिणोर्ध्वे गदा यस्य चक्र चाधोव्यवस्थितम् ।
आदिमूर्त्तेस्तु भेदोऽय माधवेति प्रकीर्त्तित. ॥५९०॥

दक्षिणाधःस्थित चक्र गदा यस्योपरि स्थिता ।
वामोर्ध्वे सस्थित पद्म शख चाधोव्यवस्थितम् ॥५९१॥

सङ्कर्षणस्य भेदोऽय गोविन्देति प्रकीर्त्यते ।
'दक्षिणोपरि पद्म तु गदा चाधोव्यवस्थिता ॥५९२॥

वामोर्ध्वे पाञ्चजन्य च चक्र चाधोव्यवस्थितम् ।'[2]
सङ्कर्षणस्य भेदोऽयं विष्णुरित्यभिधीयते ॥५९३॥

दक्षिणोपरि शख च चक्र चाध प्रदृश्यते ।
वामोर्ध्वे पङ्कज यस्य गदा चाधोव्यवस्थिता ॥५९४॥

मधुसूदननामाऽय भेद. सङ्कर्षणस्य तु ।
दक्षिणोर्ध्वे गदा यस्य पङ्कज चाप्यध स्थितम् ॥५९५॥

वामोर्ध्वे सस्थित चक्रमधःशखः प्रदृश्यते ।
ब्रह्माण्डग वामपादं दक्षिण शेषपृष्ठगम् ॥५९६॥

बलिवञ्चनससक्त वामन चाप्यध.स्थितम् ।
वामोर्ध्वे कौमुदी यस्य पुण्डरीकमध स्थितम् ॥५९७॥

दक्षिणोर्ध्वे सहस्रार पाञ्चजन्यमध.स्थितम् ।
सप्ततालप्रमाणेन वामन कारयेत्सदा ॥५९८॥

ऊर्ध्वं दक्षिणतश्चक्रमधः पद्म व्यवस्थितम् ।
वामोर्ध्वे कौमुदी यस्य पाचजन्यमध.स्थितम् ॥५९९॥

पद्मा पद्मकरा वामपार्श्वे यस्य व्यवस्थिता ।
स्थितो वाप्युपविष्टो वा सानुरागो विलासवान् ॥६००॥

---

१. [—] कोष्ठबद्धोऽशो नास्ति ख. पुस्तके । २. '—' चिह्नान्तर्गतोऽशो नास्ति ख पुस्तके ।

प्रद्युम्नस्य हि भेदोऽयं श्रीधरेति प्रकीर्त्यते ।
दक्षिणोर्ध्वे महाचक्रं कौमुदी तदधःस्थिता ॥६०१॥

वामोर्ध्वे नलिन यस्य त्वध. शखो विराजते ।
हृषीकेश इति ज्ञेयः स्थापित. सर्वकामद. ॥६०२॥

दक्षिणोर्ध्वे पुण्डरीक पाञ्चजन्यमधस्तथा ।
वामोर्ध्वे सस्थित चक्रं कौमुदी तदध.स्थिता ॥६०३॥

पद्मनाभेति सा मूर्त्ति.स्थापिता मोक्षदायिनी ।
दक्षिणोर्ध्वे पाञ्चजन्यमधस्तात्तु कुशेशयम् ॥६०४॥

सव्योर्ध्वे कौमुदी देवी हेतिराजमधःस्थितम् ।
अनिरुद्धस्य भेदोऽय दामोदर इति स्मृत. ॥६०५॥

एतेषां तु कार्ये पद्मवीणाधरे शुभे ।

सिद्धार्थसहितायां तु चतुर्विंशतिमूर्त्तय उक्ता. ।

वासुदेवो गदागखचक्रपद्मधरो मतः ।
पद्मं शङ्ख तथा चक्र गदा वहति केशव. ॥६०६॥

शख पद्म गदा चक्रं धत्ते नारायणः सदा ।
गदां चक्रं तथा गख पद्मं वहति माधवः ॥६०७॥

चक्रं पद्मं तथा गख गदां च पुरुषोत्तम. ।
पद्मं कौमोदकी शङ्ख चक्रं धत्तेऽप्यधोक्षज. ॥६०८॥

सङ्कर्षणो गदागङ्खपद्मचक्रधरः स्मृत. ।
चक्रं गदां पद्मगङ्खौ गोविन्दो धरते भुजैः ॥६०९॥

गदां पद्म तथा गङ्खं चक्रं विष्णुर्बिभर्त्ति य· ।
चक्र शख तथा पद्म गदां च मधुसूदनः ॥६१०॥

गदां सरोजं चक्रं च गङ्खं धत्तेऽच्युत. सदा ।
गङ्खं कौमोदकी चक्रमुपेन्द्र. पद्ममुद्वहेत् ॥६११॥

चक्रगङ्खगदापद्मधर· प्रद्युम्न उच्यते ।
पद्मं कौमोदकी चक्रं शङ्ख धत्ते त्रिविक्रम ॥६१२॥

शखं चक्र गदा पद्म वामनो वहते सदा ।
पद्म चक्र गदा शङ्ख श्रीधरो वहते भुजैः ॥६१३॥

चक्र पद्म गदा शङ्ख नरसिंहो विभर्त्ति य· ।
पद्मं सुदर्शनं शङ्ख गदाधत्ते जनार्दन ॥६१४॥

अनिरुद्धश्चक्रगदाशङ्खपद्मलसद्भुजः ।
हृषीकेशो गदां चक्रं पद्म शङ्ख च धारयन् ॥६१५

पद्मनाभो वहेच्छड्खं पद्म चक्रं गदां तथा ।
पद्म चक्रं गदा शङ्ख धत्ते दामोदर. सदा ॥ ६१६

शङ्ख चक्रं सरोज च गदां वहति यो हरिः ।
शङ्खं कौमोदकी पद्म चक्रं कृष्णो विभर्त्ति यः ॥६१७
एताश्च मूर्त्तयो ज्ञेया दक्षिणाधःकरक्रमात् ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मजगोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ
द्वितीयस्तरङ्गः ।

तृतीयस्तरङ्गः

अथ शालग्रामलक्षणानि

स्कन्दपुराणे—

स्निग्धा कृष्णा पाण्डुरा च पीता नीला तथैव च ।
रक्ता रूक्षा च वक्रा च महास्थूला च लाञ्छिता ॥१॥

कपिला कर्वुरा भग्ना वहुचक्रैकचक्रिका ।
वृहन्मुखी वृहच्चक्रा लग्नचक्राऽथवा पुनः ॥२॥
वद्धचक्राऽथवा काचिद्भग्नचक्रा त्वधोमुखी ।

अथ तासा वर्णादिभेदेन गुणदोषौ तत्रैव—

स्निग्धा सिद्धिकरी मन्त्रे कृष्णा कीर्तिं ददाति च ।
पाण्डुरा पापदहनी पीता पुत्रफलप्रदा ॥३॥

नीला [1]सन्दिशते लक्ष्मी रक्ता रोगप्रदायिनी ।
रूक्षा चोद्वेगदा नित्य वक्रा दारिद्रयदायिका ॥४॥

स्थूला निहन्ति चैवायुर्निःफला तु अलाछिता ।
कपिला कर्वुरा भग्ना वहुचक्रैकचक्रिका ॥५॥

वृहन्मुखी वृहच्चक्रा लग्नचक्राऽथवा पुनः ।
वद्धचक्राऽथवा या स्याद्भग्नचक्रा त्वधोमुखी ॥६॥
पूजयेद्यः प्रमादेन दुःखमेव लभेत सः ।

अग्निपुराणे च—

तथा व्यालमुखी भग्ना विषमा वद्धचक्रिका ।
विकारावर्त्तनाभिश्च, नारसिंही तथैव च ॥७॥

कपिला विभ्रमावर्त्ता रेखावर्त्ता च या शिला ।
दुःखदा सा तु विज्ञेया सुखदा न कदाचन ॥८॥

स्निग्धा श्यामा तथा शुक्ला पूजिता समचक्रिका ।
घोरिणमूर्त्तिरनन्ताख्या गम्भीरा सम्पुटा तथा ॥९॥

---

१. ख. सा दिशते ।

सूक्ष्ममूर्त्तिश्च सुमुखी पूजिता सिद्धिदायिका ।
धात्रीफलप्रमाणा या करेणोभयसम्पुटा ॥१०॥

पूजनीया प्रयत्नेन भक्त्या तां तु प्रपूजयेत् ।
पूजिते फलमाप्नोति इह लोके परत्र वै ॥११॥

दोषाश्चैते सकामार्चनविषयाः । अत उक्त श्रीभगवता स्कन्देन—

खण्डित स्फुटित भग्न सालग्रामे न दोषभाक् ।
इष्टा तु यस्य या मूर्त्ति. सता यत्नेन पूजयेत् ॥१२॥

चक्र वा केवल तत्र पद्मेन सह सयुतम् ।
केवला वनमाला वा हरिर्लक्ष्म्या सह स्थित ॥१३॥

मुख्या. स्निग्धादयस्तत्रामुख्या रक्तादयो मताः ।
मुख्याभावे त्वमुख्या हि पूज्या इत्युच्यते परै. ॥१४॥

अथैतासामेव लक्षणविशेषेण सज्ञाविशेष । ब्राह्मे श्रीभगवद्ब्रह्मसवादे भगवद्वाक्यम्—

निवसामि सदा ब्रह्मन् सालग्रामाख्यवेश्मनि ।
तत्रैव मुखचक्राङ्कभेदे नामानि मे शृणु ॥१५॥

द्वारदेशे समे चक्रे दृश्येते नान्तरीयके ।
वासुदेव. स विज्ञेय शुक्लाभश्चातिशोभन ॥१६॥

द्विचक्रे एकलग्ने तु पूर्वभागस्तु पुष्कल. ।
सङ्कर्षणाख्यो विज्ञेयो रक्ताभश्चातिशोभन. ॥१७॥

प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतदीप्तिस्तथैव च ।
शुपिर छिद्रवहुल दीर्घाकार तु तद्भवेत् ॥१८॥

अनिरुद्धस्तु नीलाभो वर्त्तुलश्चातिशोभन ।
रेखात्रय तु तद्द्वारि पृष्ठ पद्मेन लाञ्छितम् ॥१९॥

सौभाग्य केशवो दद्याच्चतुःकोणो भवेत्तु यः ।
श्याम नारायण विद्यान्नाभिचक्रं तथोन्नतम् ॥२०॥

दीर्घरेखासमोपेत दक्षिणे शुषिर पृथु ।
ऊर्ध्वे मुख विजानीयाद्द्वारे च हरिरूपिणम् ॥२१॥

कामद मोक्षद चैव अर्थद च विशेषत. ।
परमेष्ठी च शुक्लाभः पद्मचक्रसमन्वित. ॥२२॥

बिल्वाकृतिस्तथा पृष्ठे शुषिरं चापि पुष्कलम् ।
कृष्णवर्णस्तथा विष्णु. स्थूले चक्रे सुशोभने ॥२३॥

द्वारोपरि तथा रेखा दृश्यते मध्यदेशत. ।
कपिलो नरसिंहस्तु पृथुचक्र सुशोभन ॥२४॥

ब्रह्मचर्येऽधिकारी स्यान्नान्यथा पूजन भवेत् ।
ब्रह्मचर्येण पूज्योऽसावन्यथा विघ्नदो भवेत् ॥२५॥

क्वचिच्च—

कपिलोऽधस्त्रिबिन्दु. स्यात् कपिल पञ्चबिन्दुकः ।
ब्रह्मचर्येण पूज्यः स्यादन्यथा सर्वविघ्नद. ॥२६॥

स्थूल चक्रद्वय मध्ये गुडलाक्षासवर्णकम् ।
द्वारोपरि तथा रेखा पूजा कार्या सुशोभन ॥२७॥

स्फुटित विषम चक्र नारसिंह तु कापिलम् ।
सम्पूज्य मुक्तिमाप्नोति सग्रामे विजयी भवेत् ॥२८॥

पाद्मे कार्त्तिकमाहात्म्ये—

यस्य दीर्घमुख पूर्वं कथितैर्लक्षणैर्युतः ।
रेखाश्च केसराकारा नारसिंहो मतो हि सः ॥२९॥

ब्राह्मे—

वाराह शक्तिलिङ्गं च चक्रे च विषमे स्मृते ।
इन्द्रनीलनिभ स्थूल त्रिरेखालाञ्छितस्थलम् ॥३०॥

पाद्मे च—

वराहाकृतिराभुग्नश्चक्ररेखास्वलङ्कृतः ।
वाराह इति सम्प्रोक्तः.........।.....॥३१॥

ब्राह्मे च—

दीर्घा काञ्चनवर्णा या बिन्दुत्रयविभूषिता ।
मत्स्याख्या सा शिला ज्ञेया भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥३२॥

क्वचिच्च—

मत्स्यरूप च देवेश दीर्घाकारं तु यद्भवेत् ।
विन्दुत्रयसमायुक्त कास्यवर्णं सुशोभनम् ॥३३॥

ब्राह्मे—

कूर्म्मस्तथोन्नतः पृष्ठे वर्त्तुल. परिपूरितः ।
हरित वर्णमाधत्ते कौस्तुभेन च चिह्नितः ॥३४॥

पाद्मे च—

कूर्माकारा च चक्राङ्का शिला कूर्मा प्रकीर्त्तिता[1] ।

ब्राह्मे—

हयग्रीवोऽङ्कुशाकारे रेखा चक्रसमीपगा ।
वहुविन्दुसमायुक्त पृष्ठ नीरदनीलकम् ॥३५॥

क्वचिच्च—

हयग्रीवेऽङ्कुशाकारे रेखा. पञ्च भवन्ति हि ।
वहुविन्दुसमाकीर्णो दृश्यते नीलरूपक ॥३६॥

पाद्मे च—

हयग्रीवा यथा लम्वा रेखाङ्का या शिला भवेत् ।
तथा सौम्यो हयग्रीव. पूजितो ज्ञानदो भवेत् ॥३७॥

किञ्च—

अ ाकृति मुख यस्य साक्षमाल शिरस्तथा ।
प॰ ंति भवेद्वापि हयशीर्षास्त्वसौ मत ॥३८॥

ब्राह्मे—

वैकु नीलवर्णाभ चक्रमेक तथा ध्वजम् ।
द्वारोपरि तथा रेखा पूजा कार्या सुशोभना ॥३९॥

श्रीधरस्तु तथा देवश्चिह्नितो वनमालया ।
कदम्वकुसुमाकारो रेखापञ्चकभूषित ॥४०॥

वर्त्तुलश्चातिह्रस्वश्च वामन परिकीर्त्तित ।
अतसीकुसुमप्रख्यो विन्दुनोपरि शोभितः ॥४१॥

अन्यत्र च—

वामनारख्यो भवेद्देवो ह्रस्वो य स्यान्महाद्युति ।
ऊर्ध्वचक्रोऽप्यधश्चक्र सोऽभीष्टार्थप्रदोऽर्चित ॥४२॥

---

१. ख शिला कूम प्रकीर्त्तित ।

ब्राह्मे—

सुदर्शनस्तथा देवः श्यामवर्णो महाद्युति. ।
वामपार्श्वे गदाचक्रे रेखे चैव तु दक्षिणे ॥४३॥

पाद्मे च—

चक्राकारेण पङ्क्ति. सा यत्र रेखामयी भवेत् ।
स सुदर्शन इत्येव ख्यात पूजाफलप्रदः ॥४४॥

दामोदरस्तथा स्थूलो मध्ये चक्रम्प्रतिष्ठितम ।
दूर्वाभ द्वारि सङ्कीर्णं पीता रेखा तथैव च ॥४५॥

उपर्यधश्चक्रे द्वे नातिदीर्घं मुखे बिलम् ।
मध्ये च रेखा लम्बैका सा च दामोदर. स्मृत. ॥४६॥

अन्यत्र च—

स्थूलो दामोदरो ज्ञेय. सूक्ष्मरन्ध्रो भवेत्तु य· ।
चक्रे च मध्यदेशस्थे पूजितः सम्मुखः सदा ॥४७॥

नानावर्णो ह्यनन्ताख्यो नागभोगेन चिह्नित ।
[1]अनेकचिह्नसम्भिन्नः सर्वकामफलप्रदः ॥४८॥

पाद्मे च—

अनेकचक्रो वहुभिश्चिह्नै रप्युपलक्षितः ।
अनन्त स तु विज्ञेय सर्वपूजाफलप्रद. ॥४९॥

ब्राह्मे—

विदिक्षु दिक्षु सर्वासु यस्योर्ध्वे दृश्यते मुखम् ।
पुरुषोत्तम. स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिफलप्रद ॥५०॥

दृश्यते शिखरे लिङ्ग शालग्रामसमुद्भवम् ।
तस्य योगेश्वरो नाम ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥५१॥

आरक्त पद्मनाभाख्य पङ्कजच्छत्रसयुतम् ।
तुलस्या पूजयेन्नित्य दरिद्रस्त्वीश्वरो भवेत् ॥५२॥

चन्द्राकृति हिरण्याख्य रश्मिज्वाल विनिर्दिशेत् ।
सुवर्णरेखाबहुलं स्फटिकद्युतिशोभितम् ॥५३॥

---

१. ख. अनेकचक्रसम्भिन्नः ।

पाद्मे—

वज्रकीटोद्भवा रेखाः पङ्क्तीभूताश्च यत्र वै ।
शालग्रामशिला या सा विष्णुपञ्जरसञ्ज्ञिका ॥५४॥

नागवत्कुण्डलीभूतरेखापङ्क्तिसशेषक. ।
पद्माकारे तु पङ्क्ती द्वे मध्ये लम्बा च रेखिका ॥५५॥

गरुड स तु विज्ञेयश्चतुश्चक्रो जनार्दन ।
चतुश्चक्र सूक्ष्मद्वारो वनमालाङ्कितोदर. ॥५६॥

लक्ष्मीनारायणः श्रीमान् भुक्तिमुक्तिफलप्रद ।
अर्द्धचन्द्राकृतिर्देवो हृषीकेश उदाहृत ॥५७॥

अभ्यर्च्य[1] लभते स्वर्गं विषयांश्च समीहितान् ।
वामपार्श्वे समे चक्रे कृष्णवर्णं सविन्दुक. ॥५८॥

लक्ष्मीनृसिंहो विख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रद. ।
त्रिविक्रमस्तथा देव. श्यामवर्णो महाद्युति ॥५९॥

वामपार्श्वे तथा चक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे ।
प्रदक्षिणावर्त्तकृतवनमालाविभूषिता ॥६०॥

या शिला कृष्णसंज्ञा सा धनधान्यसुखप्रदा ।
चतस्रो यत्र दृश्यन्ते रेखा. पार्श्वसमीपगा ॥६१॥

द्वे चक्रे मध्यदेशे तु सा शिला तु चतुर्मुखा ।
एतल्लक्षणयुक्तास्तु सालग्रामशिला शुभा ॥६२॥
याश्च तास्वपि सूक्ष्मा स्युस्ता प्रशस्ततरा. स्मृता ।

तथा च श्रीभगवद्ब्रह्मसवादे तत्रैव—

यथा यथा शिला सूक्ष्मा महत्पुण्यं तथा तथा ।
तस्मात्ता पूजयेन्नित्य धर्म्मकामार्थसिद्धये ॥६३॥

तत्राऽप्यामलकीतुल्या सूक्ष्मा चातीव या भवेत् ।
तस्यामेव सदा ब्रह्मन् श्रिया सह वसाम्यहम् ॥६४॥

---

१. ख. तमर्च्य ।

[1]अथ श्रीसालग्रामशिलायां हरिपूजामाहात्म्यम्—

पाद्मे माघमाहात्म्ये—

य. पूजयेद्धरिं चक्रे सालग्रामशिलोद्भवे ।
राजसूयसहस्रेण तेनेष्ट प्रतिवासरम् ।।६५।।

यदामनन्ति वेदान्ता ब्रह्म निर्गुणमच्युतम् ।
तत्प्रसादो भवेन्नॄणा सालाग्रामशिलार्च्चनात् ।।६६

महाकाष्ठस्थितो वह्निर्मथ्यमान. प्रकाशते ।
अपि पापसमाचारा कर्मण्यनधिकारिण: ।।६७।।

सालग्रामार्चका वैश्य नैव यान्ति यमालयम् ।
न तथा रमते लक्ष्म्या न तथा स्वपुरे हरि ।।६८।।

सालग्रामशिलाचक्रे यथा स रमते सदा ।
अग्निहोत्र हुत तेन दत्ता पृथ्वी ससागरा ।।६९।।

येनार्चितो हरिश्चक्रे सालग्रामशिलोद्भवे ।
कामै क्रोधैर्मदैर्लोभैर्व्याप्तो योऽत्र नराधम. ।।७०।।

सोऽपि याति हरेर्लोक सालग्रामशिलार्चनात् ।
य पूजयति गोविन्द सालग्रामे सदा नर ।।७१।।

आभूतसम्प्लव यावन्न स प्रच्यवते दिव: ।
विना तीर्थैर्विना दानैर्विना यज्ञैर्विना व्रतै ।।७२।।

मुक्ति यान्ति नरा वैश्य शालग्रामशिलार्चनात् ।
नरक गर्भवास च तिर्यक्त्व कृमियोनिकम् ।।७३।।

---

१. इत· पूर्वं ख. पुस्तके विशेष·—

हेमाद्रौ—ब्राह्मणैर्वासुदेवस्तु नृपै. सङ्कर्षणस्तथा ।
प्रद्युम्न: पूज्यते वैश्यैरनिरुद्धस्तु शूद्रजै· ।।१।।

विष्णुधर्मोत्तरे—पञ्चवक्त्रो वासुदेव षड्भि प्रद्युम्नक. स्मृत. ।
सङ्कर्षण सप्तवक्त्रोऽनिरुद्ध एकादशै· स्मृत: ।।२।।
चत्वारो ब्राह्मणै पूज्यास्त्रयो राजन्यजातिभि ।
वैश्यैर्द्वाविव सम्पूज्यौ तथैक शूद्रजातिभि ।।३।।

स्मृत्यन्तरे—एकमूर्त्तिर्न पूज्यैव गृहिणा भूतिमिच्छता ।
अनेकमूर्त्तिसम्पन्न सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।।४।।

न याति वैश्य पापोऽपि सालग्रामेऽच्युतार्चक. ।
दीक्षाविधानमन्त्रज्ञश्चक्रे यो बलिमाहरेत् ।।७४।।

स याति वैष्णवं धाम सत्य सत्य मयोदितम् ।
नैवेद्यैर्विविधै पुष्पैर्धूपदीपैर्विलेपनै ।।७५।।

गीतवादित्रस्तोत्राद्यैः शालग्रामशिलार्चनम् ।
कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायण ।।७६।।

कल्पकोटिसहस्राणि रमते सन्निधौ हरे ।
लिङ्गैस्तु कोटिभिर्दृष्टैर्यत्फल पूजितैस्तु तै. ।।७७।।

सालग्रामशिलायास्तु एकेनापीह[1] तत्फलम् ।
सालग्रामशिलारूपो यत्र तिष्ठति केशव, ।।७८।।

तत्र देवासुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश ।
शालग्रामशिलाया तु य श्राद्ध कुरुते नर. ।।७९।।

पितरस्तस्य तिष्ठन्ति तृप्ता कल्पशत दिवि ।
सालग्रामसमीपे तु क्रोशमात्र समन्तत ।।८०।।

कीकटेऽपि मृतो याति वैकुण्ठभवन नर. ।
सालग्रामशिलाचक्र यो दद्याद्दानमुत्तमम् ।।८१।।

भूचक्र तेन दत्त स्यात् सशैलवनकाननम्[2] ।[3]

स्कान्दे कार्त्तिकमाहात्म्ये श्रीशिवस्कन्दसवादे—

सालग्रामशिलाया तु त्रैलोक्य सचराचरम् ।
मया सह महासेन लीन तिष्ठति सर्वदा ।।८२।।

दृष्टा प्रणमिता येन स्थापिता पूजिता तथा ।
यज्ञकोटिसम पुण्य गवा कोटिफल भवेत् ।।८३।।

---

१. ख. एका नापीह । २. पुस्तकद्वयेऽपि०'वनकातनम्' इति पाठः ।
३. इत परमयमशो विशेषः ख पुस्तके—

सालग्राममयी मुद्रा सस्थिता यत्र कुत्रचित् ।
वाराणस्या यवाधिक्य समता योजनत्रये ।।१।।
यो मृतस्तत्समीपे तु मृतो वा नीयतेऽन्तिकम् ।
सर्वो मोक्षमवाप्नोति सत्यं सत्य न चान्यथा ।।२।।

कामासक्तोऽपि यो नित्य भक्तिभावविवर्जितः ।
सालग्रामशिला पुत्र सम्पूज्यैवाऽच्युतो भवेत् ॥८४॥

सालग्रामशिलाविम्ब हत्याकोटिविनाशनम् ।
स्मृत सङ्कीर्त्तित ध्यात पूजित च नमस्कृतम् ॥८५॥

सालग्रामशिला दृष्ट्वा यान्ति पापान्यनेकशः ।
सिह दृष्ट्वा यथा यान्ति वनेमृगगणा भयात् ॥८६॥

मन. करोति मनुजः सालग्रामशिलार्चने ।
पापानि विलय यान्ति तम.सूर्योदये यथा ॥८७॥

कामासक्तोऽथवा क्रुद्धः सालग्रामशिलार्चनम् ।
भक्त्या वा यदि वाऽभक्त्या कृत्वा मुक्तिमवाप्नुयात् ॥८८॥

वैवस्वतभय नास्ति तथा मरणजन्मनोः ।
य कथा कुरुते विष्णो शालग्रामशिलाग्रत ॥८९॥

गीतैर्वाद्यैस्तथा स्तोत्रै. सालग्रामशिलार्चनम् ।
कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायण. ॥९०॥

कल्पकोटिसहस्राणि रमते विष्णुसद्मनि ।
सालग्रामे नमस्कारे भावेनापि नरै कृतै. ॥९१॥

भय नैव करिष्यन्ति तद्भक्त्या[1] ये नरा भुवि ।
मद्भक्तिबलदर्पिष्ठा मत्प्रभु न नमन्ति ये ॥९२॥

वासुदेव न ते ज्ञेया मद्भक्ता पापिनो हि ते ।
सालग्रामशिलाया तु सदा पुत्र वसाम्यहम् ॥९३॥

दत्त देवेन तुष्टेन स्वस्थान मम भक्तित.
पद्मकोटिसहस्रैस्तु पूजिते मयि यत्फलम् ॥९४॥

तत्फल कोटिगुणित सालग्रामशिलार्चने ।
पूजितोऽह न तैर्भक्तैर्नमितोऽह न तैर्नरैः ॥९५॥

न कृत मर्त्यलोके यैः सालग्रामशिलार्चनम् ।
शालग्रामशिलाग्रे तु य करोति ममार्चनम्॥९६॥

---

१. ख. तद्भक्ता ।

तेनार्ऽचितोऽहं सततं युगानामेकसप्ततिः ।
किमर्चितैर्लिङ्गशतैर्विष्णुभक्तिविवर्जितैः ॥९७॥

सालग्रामशिलाविम्बं नार्चितं यदि पुत्रक ।
अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥९८॥

सालग्रामशिलालग्नं सर्वं याति पवित्रताम् ।
यो हि माहेश्वरो भूत्वा वैष्णवं लिङ्गमुत्तमम् ॥९९॥

द्वेष्टि वै याति नरकं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
सकृदभ्यर्चिते विम्वे सालग्रामसमुद्भवे ॥१००॥

मुक्तिं प्रयान्ति मनुजा नूनं सांख्येन वर्जिताः ।
मल्लिङ्गै कोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलं पूजितैस्तु तैः ॥१०१॥

शालग्रामशिलायां तु एकेनापि हि तद्भवेत् ।
तस्माद्भक्त्या च मद्भक्तैः प्रीत्यर्थं मम पुत्रक ॥१०२॥

कर्त्तव्यं सततं भक्त्या सालग्रामशिलार्चनम् ।
सालग्रामशिलारूपो यत्र तिष्ठति केशवः ॥१०३॥

तत्र देवासुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश ।
सालग्रामशिलाग्रे तु सकृत्पिण्डेन तर्प्पिताः ॥१०४॥

वसन्ति पितरस्तस्य न सख्या तत्र विद्यते ।
प्रमाणमस्ति सर्वस्य सुकृतस्य हि पुत्रक ॥१०५॥

फलं प्रमाणहीनं तु शालग्रामशिलार्चने ।
यो ददाति शिलां विष्णोः सालग्रामसमुद्भवाम् ॥१०६॥

विप्राय विष्णुभक्ताय तेनेष्टं बहुभिर्मखैः ।
मानुष्ये दुर्लभा लोके सालग्रामोद्भवा शिला ॥१०७॥

प्राप्यते न विना पुण्यैः कलिकाले विशेषतः ।
स धन्यः पुरुषो लोके सफलं तस्य जीवितम् ॥१०८॥

सालग्रामशिला शुद्धा गृहे यस्य च पूजिता ।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सालग्रामशिलार्चनम् ॥१०९॥

य कुर्यान्मानवो भक्त्या स याति परमम्पदम् ।
भक्त्या वा यदि वाऽभक्त्या य. करोति स पुण्यभाक् ॥११०॥
द्वेषेणापि च लोभेन दम्भेन कपटेन वा ।
सालग्रामोद्भव देव दृष्ट्वा पापात् प्रमुच्यते ।१११॥
अशुचिर्वा दुराचार सत्यशौचविवर्जित. ।
सालग्रामशिला स्पृष्ट्वा सद्य एव शुचिर्भवेत् ॥११२॥
तिलप्रस्थशत भक्त्या यो ददाति दिने दिने ।
तत्फल समवाप्नोति सालग्रामशिलार्चने ॥११३॥
पत्र पुष्प फल मूल तोय दूर्वाक्षता सुत ।
जायते मेरुणा तुल्य सालग्रामशिलार्पितम् ॥११४॥
विधिहीनोऽपि यः कुर्यात् क्रियां मन्त्रविवर्जित ।
चक्रपूजामवाप्नोति सम्यक् शास्त्रोदित फलम् ॥११५॥

तत्रैवान्यत्र—

स्कन्धे कृत्वा तु योऽध्वानं वहते शैलनायकम् ।
तेनोढ तु भवेत्सर्वं त्रैलोक्य सचराचरम् ॥११६॥
ब्रह्महत्यादिक पाप यत्किञ्चित्कुरुते नरः ।
तत्सर्वं निर्दहत्याशु सालग्रामशिलार्चनम् ॥११७॥
न पूजन न मन्त्राश्च न जपो न च भावना ।
न स्तुतिर्नोपचारश्च सालग्रामशिलार्चने ॥११८॥
सालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं योजनत्रयम् ।
तत्र दान च होम च सर्वं कोटिगुण भवेत् ॥११९॥
शालग्रामशिलाया तु य. श्राद्धं कुरुते नर. ।
पितरस्तस्य तिष्ठन्ति तृप्ता. कल्पशत दिवि ॥१२०॥
सालग्रामसमीपे तु क्रोशमात्र समन्ततः ।
कीकटेपि मृतो याति वैकुण्ठभवन नर ॥१२१॥
सालग्रामशिलाचक्रं यो दद्याद्दानमुत्तमम् ।
भूचक्र तेन दत्तं स्यात्सशैलवनकाननम् ॥१२२॥

गरुडपुराणे—

तिष्ठन्ति नित्य पितरो मनुष्या—
स्तीर्थानि गङ्गागयपुष्कराणि ।

यज्ञाश्वमेधा ह्यपि पुण्यशैला—
अक्राङ्किता यस्य वसन्ति गेहे ॥१२३॥

पाद्मे कार्त्तिकमाहात्म्ये यमधूम्रकेतुसंवादे—

सालग्रामशिलाया तु यैर्नरै. पूजितो हरि. ।
सशोध्य तेषा पापानि मुक्तये बुद्धिदो भवेत ॥१२४॥

कार्त्तिके मथुराया तु सारूप्य दिशते हरिः ।
सालग्रामशिलाया वै पितॄनुद्दिश्य पूजित. ॥१२५॥
कृष्ण. समुद्धरेत्तस्य पितॄन्नेता स लोकताम् ।

बृहन्नारदीये च यज्ञध्वजोपाख्यानान्ते—

सालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ।
न वाधन्ते सुरास्तत्र भूतवेतालकादयः ॥१२६॥
सालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ।
शत वा पूजिता भक्त्या तदा स्यादधिक फलम् ॥१२७॥

अथ तासा वाहुल्ये विशेष —

पाद्मे माघमाहात्म्ये देवदूतविकुण्डलसवादे—

सालग्रामा युगा पूज्या युगेषु द्वितय नहि ।
अयुग्मा नैव पूज्यन्ते विपमेष्वेक एव हि ॥१२८॥
शिला द्वादश भो वैश्य सालग्रामसमुद्भवाः ।
विधिवत्पूजिता येन तस्य पुण्य वदामि ते ॥१२९॥

कोटिद्वादशलिङ्गैस्तु पूजितैः स्वर्णपङ्कजैः ।
यत्स्याद् द्वादशकल्पैस्तु दिनेनैकेन तद्भवेत् ॥१३०॥

य पुन पूजयेद्भक्त्या सालग्रामशिलागतम् ।
तत्फल नैव शक्तोऽहं वक्तुं कल्पशतैरपि ॥१३१॥

इत्यास्तां विस्तर । इति तल्लक्षण माहात्म्य च—

विष्णुधर्मोत्तरे—

शालग्रामशिला वापि चक्राङ्कितशिला तथा ।
ब्राह्मण पूजयेन्नित्य क्षत्रियादिर्न पूजयेत् ॥१३२॥

आपस्तम्बः—

प्रणवोच्चारणाद्धोमाच्छालग्रामशिलार्चनात् ।
ब्राह्मणीगमनाच्चैव शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥१३३॥

लैङ्गे—

ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं शुचेरप्यशुचेरपि ।
स्त्रीशूद्रकरसस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मम ॥१३४॥

बृहन्नारदीये—

स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च नराधिप ।
स्पर्शने नाऽधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शङ्करस्य च ॥१३५॥

शूद्रो वाऽनुपनीतो वा स्त्री वापि [1]पतितोऽथवा ।
केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥१३६॥

स्त्रीशूद्रपतितादीनां षण्ढादीनां विकर्मिणाम् ।
नैवाऽधिकारो विज्ञेयः शालग्रामशिलार्चने ॥१३७॥

दीक्षायुक्तैस्तथा शूद्रैर्मद्यपानविवर्जितैः ।
कर्त्तव्यं ब्राह्मणद्वारा शालग्रामशिलार्चनम् ॥१३८॥

अथ शिवलिङ्गनिर्माणप्रकारः

शिल्पशास्त्रे—

लिङ्गमस्तकमध्यात्तु सूत्रं स्यादाप्रणालकम् ।
लिङ्गप्रणालीपुष्टत्वं तावदेव प्रकीर्त्तितम् ॥१३९॥

उच्चत्वे च तथा पीठे पञ्चसूत्रं प्रचक्षते ।
पञ्चसूत्रसमायुक्तं शिवलिङ्गं समर्चयेत् ॥१४०॥
भुक्तिदं मुक्तिदं चैव धनारोग्यसुखप्रदम् ।

कालोत्तरे—

अङ्गुलादिवितस्त्यन्तं लिङ्गं गेहे प्रपूजयेत् ।
प्रासादे तु तदूर्ध्वं स्यात्पूजनीयं प्रयत्नतः ॥१४१॥

लिङ्गमस्तकविस्तारं पूज्यभागसमं नयेत् ।
नाहं तत्त्रिगुणं कुर्यान्नाहवत्पीठविस्तृतिः ॥१४२॥

१. ख. यतितोऽथवा ।

पूज्यांशद्द्विगुणं कुर्यात्तच्च पीठं समुन्नतम् ।
वृत्तं वा चतुरश्रं वा मध्ये कण्टसमन्वितम् ॥१४३॥

द्विगुणं लिङ्गनाहाच्च कण्ठनाहं समाचरेत् ।
त्रिमेखलमधश्चोर्द्ध्वं समं वापि द्विमेखलम् ॥१४४॥

लिङ्गमस्तकविस्तारं षड्भागं विभजेत्ततः ।
मेखलामेकभागेन कुर्यात्खातं च तत्समम् ॥१४५॥

लिङ्गदैर्घ्यसमं कुर्यात्प्रणालं तस्य बाह्यतः ।
विस्तारं तत्समं मूले तदग्रं च तदर्धतः ॥१४६॥

जलमार्गः प्रकर्तव्यस्तस्य मध्ये त्रिभागतः ।
कुर्यात्पीठार्द्धदीर्घं वा प्रणालं श्रीशिवोदितम् ॥१४७॥

सर्वेषां रत्नलिङ्गानां[1] सपीठानां विशेषतः ।
लोहादीनां च लिङ्गानामिदं लक्षणमाचरेदिति ॥१४८॥

अस्यार्थः—स्वाभिमतमानेन लिङ्गं कृत्वा तस्य मस्तकस्य विस्तारं पूज्यस्य लिङ्गस्य यो भागः उच्चता तत्समं नयेत्कुर्यादित्यर्थः ।

लिङ्गमस्तकविस्तारो लिङ्गोच्छ्रायसमो भवेत् ।

इति शैवागमवचनात् ।

ततो लिङ्गमस्तकविस्तारो यावान् तन्त्रिगुणसूत्रवेष्टनयोग्यं लिङ्गस्य नाहं स्थौल्यं कृत्वा लिङ्गस्य यो नाहस्तत्सूत्रमानविस्तारम्, पूज्यस्य लिङ्गस्य यः अंशः उच्चता तद्द्विगुणोन्नत्ययुक्तं वृत्ताकारं चतुरश्रं वा पीठं विधाय, ततस्तस्य पीठस्य मध्ये लिङ्गस्य नाहसूत्रस्य स्थौल्यसूत्रस्य द्विगुणसूत्रवेष्टनयोग्यस्थूलं कण्ठं कृत्वा, कण्ठस्योर्ध्वमधश्च समांशेन मेखलात्रयं मेखलाद्वयं वा विधाय, लिङ्गमस्तकविस्तारं षोढा विभज्य, तेष्वेकांशप्रमाणेन पीठस्योपरिभागे सर्वबाह्यांशेन मेखलां कृत्वा, तदन्तस्तन्मानेन तत्सलग्नांशेन खातं विरच्य, पीठाद्बहिर्लिङ्गदैर्घ्यसमानदैर्घ्यं पीठमानस्यार्द्धमानदीर्घं वा मूलदेशे दीर्घांशसमानविस्तारमग्रदेशे तदर्द्धांशमानविस्तारं, तन्मध्ये मूलादग्रावधिप्रणालविस्तारस्य तृतीयांशमानविस्तारखातरूपजलमार्गयुक्तं पीठवत्समेखलं प्रणालं च कुर्यादिति स्फटिकादिरत्नविशेषैः,

१. ख. रत्नसिहाना ।

स्वर्णादिधातुविशेषैः, पाषाणादिभिर्वा शिवलिङ्गनिर्माणे साधारणोऽयं विधिरिति शिवलिङ्गनिर्माणप्रकारः। रत्नलिङ्गादौ लक्षणाभावेऽपि न दोषः। तदुक्तम्—

हयशीर्षपञ्चरात्रे—

न कुर्याल्लक्षणोद्धारं रत्नजानां चलात्मनाम्।
सुप्रभा लक्षणं त्वेषां स्वर्णजानामपि द्विज ॥१४९॥

तस्मान्न लक्षणोद्धारं कुर्यात्पाषाणलिङ्गवत्।
अचलानां तैजसानां क्वचिदिष्येत लक्षणम् ॥१५०॥

लक्षणं कल्पनीयं तु स्थाप्यलिङ्गे यथाविधि।
चललिङ्गे कुशाग्रेण लक्षणं कल्पयेद् गुरुः ॥१५१॥

मनसा चिन्तयेद्वापि लक्षणं लिङ्गसंस्थितम्। इति।

सोमशम्भुनाप्युक्तम्—

रत्नजे लक्षणोद्धारो न लौहे न सरिद्भवे ॥१५२॥

भविष्ये—

बाणलिङ्गानि राजेन्द्र ख्यातानि भुवनत्रये।
न प्रतिष्ठा न संस्कारस्तेषामावाहनं तथा ॥१५३॥

कालोत्तरे—

त्रिः सप्त पञ्च वारं वा तुलासाम्यं न जायते।
तदा बाणं समाख्यातं शेषं पाषाणसम्भवम् ॥१५४॥
नद्यां वा प्रक्षिपेद् भूयो यदा तदुपलभ्यते।

पद्मपुराणेऽप्युक्तम्[1]—

बाणलिङ्गं च रुद्राक्षं शालिग्रामादिकं च यत्।
पूजनीया यथोक्तेन तण्डुलादीनि तोलयेत् ॥१५५॥[2]

रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रभाते स्नानमाचरेत्।
पुनस्तुलादिकं कृत्वा तण्डुलाच्चाधिका शुभा ॥१५६॥[3]

बाणलिङ्गं तदा विद्धि नूनं सुखविवर्द्धनम्।
बाणः सदाशिवो देवो बाणो बाणासुरोऽपि च ॥१५७॥

---

१ ख. नास्ति। २. ३ पद्यद्वयी नास्ति ख पुस्तके।

तेन तस्मै कृत यस्माद्वाण लिङ्गमुदाहृतम् ।
सदा सन्निहितस्तत्र शिव सर्वार्थसाधक. ॥१५८॥
कृतप्रतिष्ठं तल्लिङ्ग बाणाख्येन शिवेन च ।
पकजम्बूफलाकार कुक्कुटाण्डसमाकृति ॥१५९॥
भुक्तिमुक्तिप्रद चैव वाणलिङ्गमुदाहृतम् ।
श्वेत रक्त तथा पीत कृष्ण विप्रादिपूजितम् ॥१६०॥
स्वभावात्कृष्णवर्णं वा सर्वजातिषु सिद्धिदम् ।

रेवाखण्डे—

नर्मदाजठरमध्यस्थ वाणलिङ्गमिति स्मृतम् ॥१६१॥
सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च साङ्गा वेदा व्रतानि च ।
सुरसङ्घा योगिनश्च वाणलिङ्गे व्यवस्थिता ॥१६२॥
वाणासुरार्चित लिङ्ग वाणलिङ्ग तदुच्यते ।
तदर्च्य विधिवद्भक्त्या शिवलोके महीयते ॥१६३॥
वाणलिङ्गे न चण्डाशो न च निर्माल्यकल्पना ।
सर्वं वाणार्पित ग्राह्य भक्त्याऽभक्त्या न दोषभाक् ॥१६४॥
ग्राह्याग्राह्यविचारोऽय वाणलिङ्गे न विद्यते ।
तदर्पित जल वाऽन्न ग्राह्य प्रसादसज्ञया ॥१६५॥

पदार्थादर्शे—

गृहे लिङ्गद्वय नार्च्यं गणेशद्वयमेव च ।
शक्तित्रय तथा शङ्ख मत्स्यादिदशकाङ्कितम् ॥१६६॥
द्वौ शङ्खौ नार्चयेच्चैव शालग्रामशिलाद्वयम् ।
द्वे चक्रे द्वारकायास्तु तथा सूर्यद्वय बुध ॥१६७॥
एतेषामर्च्चनान्नित्यमुद्वेग प्राप्नुयाद् गृही ।

सारसङ्ग्रहे—

अथेष्टदेवताप्रीत्यै यजेदायतनान्यपि ॥१६८॥

आयतनानि चतुरायतनानि । तानि तु मध्यस्थस्वेष्टदेवताया अङ्गभूतानि ।

तत्स्थापनक्रमो—

विज्ञानमालायाम्—

यदा तु शङ्कर मध्ये ईशान्या श्रीपतिं यजेत् ।
आग्नेय्या च तथा हस नैर्ऋत्या पार्वतीसुतम् ॥१६९॥

वायव्यां च सदा पूज्या भवानी भक्तवत्सला ।
यदा तु मध्ये गोविन्दमैशान्यां शङ्करं यजेत् ॥१७०॥

आग्नेय्यां गणनाथं च नैर्ऋत्यां तपनं तथा ।
वायव्यामम्बिकां चैव यजेन्मन्त्री समाहितः ॥१७१॥

सहस्रांशु यदा मध्ये ईशान्यां पार्वतीपतिम् ।
आग्नेय्यामेकदन्तं च नैर्ऋत्यामच्युतं तथा ॥१७२॥

वायव्यां पूजयेद्देवीं भोगमोक्षैकभूमिकाम् ।
भवानी तु यदा मध्ये ईशान्यां माधवं यजेत् ॥१७३॥

आग्नेय्यां पार्वतीनाथं नैर्ऋत्यां गणनायकम् ।
प्रद्योतनं तु वायव्यामाचार्यस्तु प्रपूजयेत् ॥१७४॥

हेरम्बं तु यदा मध्ये ईशान्यामच्युतं यजेत् ।
आग्नेय्यां पञ्चवक्त्रं तु नैर्ऋत्यां जगदम्बिकाम् ॥२७५॥

वायव्यां द्युमणिं चैव यजेन्मन्त्री ह्यतन्द्रितः ।
स्वस्थानवर्जिता देवा शोकदुःखभयप्रदाः ॥१७६॥
तन्मण्डलस्थितो राजा साधकश्च प्रणश्यति ।

अन्यत्रापि—

शम्भौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शङ्करे—
भास्येनागसुता रवौ हरगणेशाजाम्बिका स्थापिता ।
देव्यां विष्णुहरैकदन्तरवयो लम्बोदरेजेश्वरे—
नार्यो[1] शङ्करभावतोऽतिसुखदा व्यस्तास्तु ते हानिदाः ॥१७७॥

इति । आग्नेयादिक्रमेणापि स्थानमुक्तम्—

पदार्थादर्शे—

सूर्यैकदन्ताच्युतशक्तिरुद्रा विघ्नेश्वरेशाद्रिसुतार्ककृष्णाः ।
श्रीनाथविघ्नेशभगाम्बिकेशाश्चण्डीशहेरम्बपतङ्गकृष्णाः ॥१७८॥
श्रीशम्भुसूर्याखुरथाम्बकृष्णाः प्रदक्षिणं मध्यविदिक्षु पूज्याः ।

---

१ ख० येना. ।

मध्येऽभ्यर्च्य हरिं गणेननगजाशर्वा गण मध्यत',
शम्भ्वार्यारविविष्णवो रविमथो विघ्नाजशक्तीश्वरा ।
मध्ये शक्तिमथेशविघ्नरवयो विष्णुश्च मध्ये हर,
सूर्येभास्यशिवाच्युता हि विहिता आग्नेयकोणादिगा. ॥१७६॥

अत्रेशानादिक्रमेणाग्नेयादिक्रमेण वा स्थापनक्रमे चतुरायतनदेवतानां तत्तद्दिगवस्थानेन फल सममेव । ईशानादिदिश आग्नेयादिदिशश्च स्थापितदेवताग्रस्य प्राचीत्वकल्पनानुसारेण कल्पनीया' ।

यष्टुरभिमुखा देवा देवाभिमुखतो दश ।
प्राच्यादिहरितो ज्ञेया. पूजाहोमादिकर्मसु ॥१८०॥

इति **पद्मवाहिनी**वचनात् ।

देवस्य मुखमारभ्य दिश प्राची प्रकल्पयेत् ।
तदादिपरिवाराणामङ्गाद्यावरणस्थिति ॥१८१॥
पूज्यपूयकयोर्मध्ये प्राची प्रोक्ता विचक्षणैः ।
देवसाधकयोरन्त पूर्वा सा दिगिहोच्यते ॥१८२॥
देवाग्रे स्वस्य चाप्यग्रे प्राची प्रोक्ता तु देशिकैं ।
प्राच्येव प्राची चोद्दिष्टामुक्त्वा तु देवातार्चनम् ॥१८३॥

इति मन्त्रशास्त्रोक्तै । किञ्च मध्यस्थापितदेवताया अङ्गित्वेनान्यासां चतसृणामङ्गत्वेन च **रत्नसागर**वचनेन पूजनोक्ते । वचनन्तु—

आग्नेयादिषु कोणेषु स्थाप्याश्चाङ्गाङ्गिभावत ।
पूज्याश्चैव महेशानि·········॥१८४॥

इति । पूजन तु गणपतिमारभ्य यत्र गणपतेर्मुख्यत्व तत्र सूर्यमारभ्य कार्यम् ।

मुख्ये पुष्पाञ्जलिं दत्वा गणेशाद्यर्चन भवेत् ।
गणेश एव मुख्यश्चेत्तत्र सूर्यक्रमाद्भवेत् ॥१८५॥

इति मन्त्रशास्त्रोक्तै ।

अथार्घादिपात्राणि । तत्रार्घादिपात्रसंख्या

गौतमीये—

अर्घस्य त्रीणि पात्राणि पाद्यस्यापि त्रय भवेत् ।
तथैवाचमनीयानि पात्राणि च विशेषत. ॥१८६॥
तथा करणदौर्बल्यादेकमेव प्रशस्यते ।

नवरत्नेश्वरे—

एकपात्र न कर्त्तव्य यदि साक्षान्महेश्वर ।
मन्त्रा पराङ्मुख यान्ति त्वापदश्च पदे पदे ॥१८७॥
इह लोके दरिद्र: स्यान्मृतश्च निरय व्रजेत् ।

पृथक्पृथगर्घादिपात्रस्थापनाशक्तावेकेनापि पात्रेणार्घ्यपाद्यादि विधेयम् ।

तदुक्तम्—

पदार्थादर्शे—

एकस्मिन्नथवा पात्रे पाद्यार्घादीनि कल्पयेदिति ।

निबन्धे—

हेमराजतताम्राणा सर्वेषामर्घभाजनम् ।
शिवसूर्यौ परित्यज्य शङ्खोऽन्यत्र प्रशस्यते ॥१८८॥

स्कन्दपुराणे[1]—

सुप्रतिष्ठितशङ्खस्य तोर्थै: पञ्चामृतैरपि ।
अभिषिच्य महादेव रुद्रसूक्तै. समाहित ॥१८९॥

इत्युक्तम् । तेन सूर्यस्यैव शङ्खनिषेध ।

सारसङ्ग्रहे—

शङ्खमान तु प्रादेश चतुरङ्गुलमुच्छ्रितम् ।[2]

तन्त्रराजे—

त्रिलोहकाचमृत्पात्रेष्वेकस्मिन्नर्घकल्पनम् ।

भैरवीतन्त्रे—

पात्र काञ्चनकाचरूप्यजनित मुक्ताकपालोद्भव ,
विश्वामित्रमय[3] च कामफलद हैम श्रिये स्फाटिकम् ।
तारम्प्रीतिदमिष्टसिद्धिजनक श्रीनालिकेरोद्भव,
कापाल स्फुटमन्त्रसिद्धिजनक मुक्तिप्रद मौक्तिकम् ॥१९०॥

---

१ ख. स्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे । २. इतः परमयमंशो विशेष ख. पुस्तके—

क्रियासारे—प्रस्थाम्बुप्रमित शङ्ख श्रेष्ठस्तत्र्यंशपूर्वकः ।
मध्यस्तदर्द्धप्रमित. कनिष्ठ क्रमतो भवेत् ॥१॥

३. क. विश्वामित्रयमं ।

हेमादीनि बुभुक्षूणामिति ।

कुलार्णवे—

स्वर्णरूप्यशिलाताम्रकाचाऽलाबुजमृण्मयम् ।
नालिकेर च शङ्ख च मुक्ताशुक्तिसमुद्भवम् ॥१९१॥
पुण्यवृक्षकृत रम्य पात्र सङ्कोलित शुभम् ।

भैरवयामले—

नरपात्र वरारोहे विज्ञेय चोत्तमोत्तमम् ।
नालिकेरोद्भव देवि ज्ञेय चोत्तममध्यमम् ॥१९२॥

काचपात्र तु सुश्रोणि ज्ञेय चोत्तमकन्यसम् ।
मध्यमोत्तमक हैम तार मध्यममध्यमम् ॥१९३॥

ताम्रपात्रादिकं चैव प्रोक्त मध्यमकन्यसम् ।
कन्यसोत्तमक वैल्व ब्रह्मवृक्षजमेव च ॥१९४॥
कन्यसे मध्यम प्रोक्त मृण्मय कन्यसाधमम् ।

महाहारकतन्त्रे—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नालिकेरविधि शुभम् ।
पुरा वै निर्मित पात्र विश्वामित्रेण धीमता ॥१९५॥

विश्वामित्रकपात्र तु सर्वपात्रोत्तमोत्तमम् ।
तस्मिन् सम्पूजयेच्चैव सिद्धदेवीश्च सर्वश. ॥१९६॥

तस्य दर्शनमात्रेण चैकविंशतिक कुलम् ।
उद्धरिष्यत्यसन्देहो गृहस्थो भवति प्रिये ॥१९७॥

ब्रह्महत्यादिपापानि तथा विश्वासघातकम् ।
दृष्ट्वा पात्रं नालिकेर सर्वपाप प्रणश्यति ॥१९८॥

कन्याकोटिप्रदानानि तथा हेमशतानि च ।
यो ददाति महेशानि राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥१९९॥

तत्फल कोटिगुणित नालिकेरार्घदानत ।
अलाभे तस्य पात्रस्य चान्यपात्रैस्तु पूजयेत् ॥२००॥

दृष्ट्वार्घपात्र देवेशि ब्रह्माद्या देवतागणा. ।
नृत्यन्ति सर्वयोगिन्य. प्रीता सिद्धि ददन्ति च ॥२०१॥

देवीपुराणे—

हेमराजतताम्राणि काष्ठमृच्छैलजानि च ।
रत्नादीनि च पात्राणि शुभरेखाङ्कितानि च ॥२०२॥
अर्घनैवेद्यपूजार्थं वलिदाने प्रकल्पयेत् ।

शिवरहस्ये—

हेमपात्रेण सर्वाणि ईहितानि भवन्त्युमे ।
अर्घं दत्वा तु रौप्येण आयूराज्यसुतान् लभेत् ॥२०३।

ताम्रपात्रेण सौभाग्य धर्मं देवेशि मृण्मये ।
सर्वालाभे तु माहेय स्वहस्तघटित यदि ॥२०४॥

आसन चार्घपात्र च भग्नमासादयेन्न तु ।
सर्वत्र स्वर्णवत्ताम्रमर्घपात्रे[1] ततोऽधिकम् ॥२०५॥

पात्राणामादर कार्यं पात्राण्येवोत्तमानि तु ।
वलिहोमक्रियार्थं हि विना पात्र न सिध्यति ॥२०६॥

षट्त्रिंशदङ्गुल पात्रमुत्तम परिकीर्त्तितम् ।
मध्यम तु त्रिभागोन कनिष्ठ द्वादशागुलम् ॥ २०७॥[2]

वस्वङ्गुलविहीन तु न पात्रं कारयेत्क्वचित् ।[3]
नाभीविवररूपाणि पुण्डरीकाकृतीनि च ॥ २०८॥
शङ्खनीलोत्पलाभानि पात्राणि परिकल्पयेत् ।

देवीयामले—

वश्याकर्षणकर्माणि हेमपात्रे सुरेश्वरि ।
शान्तिके पौष्टिके चैव राजत कारयेत्प्रिये ॥२०९॥

लोहपात्रं समानेयं मारणोच्चाटने तथा ।
स्तम्भकार्येषु पाषाण विशेषेण तु मृण्मयम् ॥२१०॥

सर्वकार्येषु कर्त्तव्य वैश्वामित्र च सुव्रते ।
काष्ठपात्र विजानीयान्मन्त्राराधनकर्मणि ॥२११॥

[विना पात्रेण यः कुर्यात्प्रतिष्ठा याज्ञिकी क्रियाम् ।
विकला जायते सर्वा वाहनानि धनानि च ॥२१२॥

---

१. ख. ० ताम्रसर्वपात्रे । २. ख. पद्यमदो वास्ति । ३ ख. पादद्वय नास्ति ।

वलिहीने च दौर्भाग्यं गन्धहीने ह्यभोगता ।
धूपहीने तथोद्वेगो वस्त्रहीने धनक्षयः ॥२१३॥

रत्नहीने म्रियेतैव विपताके ह्यनायक ।
छत्रहीने हृत छत्रमविताने तु नारकी ।२१४॥

विद्याहीने तु नाश. स्यादात्मनो नगरस्य च ।
दीपादाने तु दौर्भाग्य प्राप्नुयात् कारक सदा ॥२१५॥

दक्षिणाहीने तु सर्वं व्यर्थं स्यान्नात्र सशय ।
मन्त्रविद्याविहीने तु सम्पूर्णमपि नश्यति ॥२१६॥
पात्रमन्त्रसमायुक्त सर्वदोषापह भवेत् ।][1]

नारदीये—

देवाग्रत स्ववामाग्रे त्रिकोण चन्दनाम्भसा ।
वृत्तेन वेष्टित बाह्ये चतुरस्रेण चैव हि ॥२१७॥
विरच्य मुद्रया मत्स्यरूपया साधको भुवि ।

सारसंग्रहे—

त्रिकोण वृत्तसवीत चतुरस्रेण वेष्टितम् ।
गन्धलिप्ते स्ववामाग्रे विदध्यान्मत्स्यमुद्रया ॥२१८॥

सम्पूज्य गन्धैर्देवार्घ्यमण्डलाय नमोऽणुना ।
अगानि चतुरस्रस्य कोणेषु पुरतस्तथा ॥२१९॥

दिक्षु चास्त्र समभ्यर्च्य शङ्खाधार प्रविन्यसेत् ।
मूलेन क्षालित शङ्खाधार सस्थापयामि च ॥२२०॥

काल सबिन्दुक तद्वद् भुजङ्गेश समुद्धरेत् ।
वह्न्यन्ते मण्डलायेति तथा धर्मप्रदेति च ॥२२१॥
दशकलात्मने प्रोक्त्वा नमो गन्धादिभिर्यजेत् ।

काल मकारम्, भुजङ्गेश रेफम् ।

वह्नेर्दशकलास्तत्र प्रादक्षिण्येन पूजयेत् ॥२२२॥

कुलार्णवे—

आधारेण विना भद्रो न च तृप्यन्ति मातरः ।
तस्माद्विधिवदाधारं कल्पयेत् कुलनायिके ।।२२३॥

---

१ [—] कोष्ठवद्धोंऽश ख. पुस्तके विशेषोऽवलोक्यते ।

आधार त्रिपदम्प्राहु षट्पद वा चतुष्पदम् ।
अथवा वर्त्तुलाकार कुर्याद् देवि मनोहरम् ॥२२४॥

यामले—

धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी।
सुश्री सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहे तथा ॥२२५॥
वह्नेर्दशकला ज्ञेया दशकर्मफलप्रदाः ।[1]

सारसङ्ग्रहे—

अस्त्रेण क्षालित शङ्ख तत्र सस्थाप्य पूजयेत् ।
अर्घपात्रमिति प्रोक्त्वा स्थापयामीति मन्त्रत ॥२२६॥
अहमर्थप्रदायान्ते वदेद् द्वादश इत्यथ ।
कलात्मने-पद प्रोक्त्वा अर्घपात्राय हृन्मनु ।२२७।
अनेन शङ्खमभ्यर्च्य कला सूर्यस्य पूजयेत् ।

यामले—

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः ।
सुषुम्णा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा ॥२२८॥
एता द्वादश सम्पूज्या रवेरर्थप्रदाः कलाः ।

[2]सारसग्रहे—

तत सुधामयैस्तोयैर्मूलान्ता मातृकाम्पठन् ।
विलोमाम्पूरयेत्तस्मिन् पूजको मनुनाऽमुना ॥२२९॥
अर्घपात्र पूरयामीत्युक्त्वा सम्पूरयेत्तत ।

शारदातिलके—

....बिन्दुस्रुतसुधामयै ।
तोयै सुगन्धपुष्पाढ्यै. पूरयेत्त यथाविधि ॥२३०॥
बिन्दुर्भ्रूमध्य तत्र चन्द्रमण्डलस्य विद्यमानत्वादिति ।

सारसङ्ग्रहे—

कर्णचन्द्रौ बिन्दुयुतौ कामप्रदपद तत ।
षोडशान्ते कलाशब्दमात्मने नम इत्यथ ॥२३१॥
गन्धपुष्पैस्तमभ्यर्च्य कलाषोडशक यजेत् ।

---

१ इत परमधमशो विशेष ख पुस्तके—
शारदातिलके—यादीना दशवर्णाना कला धर्मप्रदा इमा ।
१. इत प्रागयमशो विशेष ख पुस्तके—
शारदातिलके—कभाद्या वसुदाः सौराष्ठडान्ता द्वादशेरिता ।

कर्णः उ, चन्द्रः स, बिन्दुः अनुस्वार, तेन ङ स इति ।

यामले—

अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः ।
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा ॥२३२॥

पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः स्वरगा कलाः ।
सोममण्डलमध्यस्था. ………………॥२३३॥

नारदीये—

प्राणप्रतिष्ठा कुर्वीत कलाना तत्र तत्र च ।

तत्र तत्रेति तत्तत्कला आवाह्य तासां तासा प्राणप्रतिष्ठा विधाय तास्ताः पूजयेदिति ।

सारसग्रहे—

प्राग्वत्तीर्थं समावाह्य मूलमन्त्रेण तत्र च ।
सयोज्य नेत्रमन्त्रेण पुष्प न्यस्य शिखाणुना ॥२३४॥

प्रदर्श्य गालिनी मुद्रां मुद्रया धेनुसञ्ज्ञया ।
अमृतीकृत्य विधिवत्सुधाबीजेन साधक ॥२३५॥

ध्यात्वेष्टदेवता तत्र सकलीकृत्य देशिक ।
अङ्गन्यासेन चास्त्रेण कलयेच्च दिशो दश ॥२३६॥

नेत्रमन्त्रेण सवीक्ष्य मुद्रया शङ्खसञ्ज्ञया ।
अवष्टभ्य ततोद्दीप्य मुद्रया योनिरूपया ॥२३७॥

गन्धपुष्पादिभिस्तत्र पूजयेदिष्टदेवताम् ।
षडङ्गानि च सम्पूज्य मन्त्रयेन्मूलमन्त्रतः ॥२३८॥
अष्टकृत्वस्ततश्चार्घं छादयेन्मत्स्यमुद्रया ।

गालिनीमुद्रालक्षण तु—

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ सक्तौ करयोरितरेतरम् ।
तर्जनीमध्यमानामाः सहता भुग्नवर्जिता. ॥२३९॥

मुद्रैषा गालिनी प्रोक्ता शङ्खस्योपरि चालिता ।
सहताः परस्पर सयुक्ता, भुग्नवर्जिताः अकुटिला ।

मत्स्यमुद्रालक्षणम्

लक्षणसङ्ग्रहे—

अधोमुखे वामहस्ते तादृश दक्षहस्तकम् ।
विन्यस्याङ्गुष्ठयुग्म तु पार्श्वयो सम्प्रसार्य च ॥२४०॥
दर्शयेदर्घपात्रे तु मत्स्यमुद्रेयमीरिता ।

नारदीये—

वीक्षणं नेत्रमन्त्रेण न चेन्मूलेन मन्त्रवित् ॥२४१॥

मूलेनेति पञ्चाङ्गपर तत्र नेत्रमन्त्राभावात् । अत्रापि सर्वत्र तत्तदङ्ग-मन्त्राणामेवोपादान हृदयादिपदैरिति ।

अगस्त्य —

कवचेनावगुण्ठ्येति तन्मुद्रयेति शेष ।

सारसग्रहे—

तच्छङ्खस्थ जल किञ्चित् कुम्भतोये विनिक्षिपेत् ।

शारदातिलके—

अर्घस्योत्तरत. कार्यं पाद्य साचमनीयकम् ।

शौनकः—

अर्घस्योत्तरदिग्भागे पाद्य साचमनीयकम् ।
मधुपर्कं च सस्थाप्य त्रिकोणेषु यथाक्रमम् ॥ २४२ ॥
एकैकपात्र मन्त्रेण ह्यष्टकृत्वोऽभिमन्त्रयेत् ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

मधुपर्कं तु सक्षौद्र दधि प्रोक्त मनीषिभिः ।[1]
दध्यभावे पयः कार्यं मध्वभावे तथा गुडः ॥ २४३ ॥
घृतप्रतिनिधिर्नास्ति तत्र यत्नं समाचरेत् ।

---

१. ख पुस्तकेऽतो विशेषः—

फेत्कारीतन्त्रे—माक्षिक शर्करासर्पिर्दधिक्षीरयुत तथा ।
मधुपर्कं कल्पयित्वा प्रदद्याद्विधिपूर्वकम् ॥१॥ इति-

उत्तरतन्त्रे तु—दधि सर्पिर्जल क्षौद्र सितैलाभिस्तु पञ्चभि ।
प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवौघतुष्टये ॥ २ ॥
जन्तु सर्वतः स्वल्पं सितादधिघृतं समम् ।
सर्वेषामधिकं क्षौद्र मधुपर्कं प्रयोजयेदिति ॥३॥

[1]मधुपर्के पात्रमुक्तम्

उत्तरतन्त्रे—

तद्द्यात्कास्यपात्रेण रौक्मश्वेतभवेन वा ।

श्वेत रूप्यम्[2]

वराहपुराणे—

परमं यत्पद राम मधुसज्ञ तदुच्यते ।
तदाप्यते यदा तेन मधुपर्कस्ततः स्मृतः ॥२४४॥

शारदातिलके—

दक्षिणे प्रोक्षणीपात्रमाधायाद्भिः प्रपूरयेत् ।
किञ्चिदर्घाम्बु संगृह्य प्रोक्षण्यम्भसि योजयेत् ॥२४५॥

नारदपञ्चरात्रे—

पुनराचमनीयार्थं पात्र सस्थापयेत्तत ।

प्रपञ्चसारे—

गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपाः ।
दूर्वा चेति क्रमादर्घद्रव्याष्टकमुदीरितम् ॥२४६॥

अक्षतास्तण्डुला. । अत्र केचिदक्षतशब्देन यवा उच्यन्त इत्याहु । तत्र प्रमाण चिन्त्यम् । वस्तुतस्तु गन्धपुष्पाक्षतयवा इति यवग्रहणादक्षतशब्देन तण्डुला एव ग्राह्या. । अत एव नारदपञ्चरात्रे 'सयवा सिततण्डुला' इत्युक्तम् । एवमेव-लिङ्गपुराणेऽपीति 'नाक्षतैरर्चयेद्विष्णु' मिति वचनविरोधस्तस्य केवलाक्षतार्चानि-षेधात् ।

नारदपञ्चरात्रे श्रीविष्णोरर्घे—

सिद्धार्थकास्तिला दूर्वा सयवाः सिततण्डुलाः ।
तोयक्षीरघृतोपेतमिदमर्घमुदाहृतम् ॥२४७॥

इत्युक्तत्वात् तन्त्रान्तरे पुष्पाभावे तण्डुलै पूजनमपि श्रीविष्णोरुक्त यथा—

पुष्पाभावे जलेनापि दूर्वया तण्डुलेन च ।
नित्य पूजा हरे कार्या भक्तिभावेन सुन्दरि ॥२४८॥

---

१ इतः पूर्वं ख पुस्तके विशेषः—
निबन्धे—घृतालाभे तु सुश्रोणि लाजैश्च सह मिश्रयेत् ।
विष्णुधर्मोत्तरे तु—घृताभावे तु सुश्रोणि जलैस्तु सह मिश्रयेदिति. ॥

२. ख पुस्तकेऽधिकोऽयमश —
आदिवाराहे—दधि सर्पिर्मधुसम पात्रे चौदुम्बरे मम ।

[1]सिद्धार्थाः सर्षपाश्चैव[2] दूर्वाः पत्रत्रयान्विताः ।
पत्रत्रयान्विता दूर्वा, प्रशस्ता अर्घकर्मणि ॥२४९॥

इति सोमशम्भुवचनात् ।

प्रपञ्चसारे—

पाद्य श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरुच्यते ।
जातीलवङ्गकक्कोलैर्मतमाचमनीयकम् ॥ २५० ॥

जाती जातीफलम् ।

तथाचमनपात्रेऽपि दद्याज्जातीफल मुने ।

इत्यगस्तिसहितावचनात् जातीफलादीनि चूर्णितानि देयानि ।

चूर्णयित्वा यथान्याय क्षिपेदाचमनीयके ।

इति फेत्कारीतन्त्रवचनात् ।

लिङ्गपुराणे—

कुशाग्राण्यक्षताश्चैव यवव्रीहितिलानि च ।
आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसित चार्घपात्रके ॥२५१॥
कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकम् ।
दापयेत् प्रोक्षणीपात्रे भसित प्रणवेन च ॥२५२॥
उसीर चन्दन चैव पाद्ये च परिकल्पयेत् ।
जातीकक्कोलकर्पूरबहुमूलतमालकम् ॥२५३॥
चूर्णयित्वा यथान्याय क्षिपेदाचमनीयके ।

प्रपञ्चसारे—

शुद्धाभिरद्भिर्विहित पुनराचमनीयकम् ॥२५४॥

शुद्धाभिरित्युक्तेर्जात्यादि न देयमित्यवगम्यते । अर्घादिद्रव्यालाभे तु—

शौनकः—

एषामभावे पुष्पादि तत्तद्भावनया न्यसेत् ।

---

१. इतः पूर्वं ख· पुस्तके विशेष·—
वैशाखमाहात्म्ये—अलाभे पत्रपुष्पाणामन्नाद्येनापि पूजयेत् ।
शालितण्डुलगोधूमैर्यवैर्वापि हरं सदा ॥

२. ख. 'चैव' इति नास्ति ।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशेऽपि—

द्रव्याभावे प्रदातव्याः क्षालितास्तण्डुला शुभा ।

भसित तु शिवपूजायामेव । [पूजामध्ये स्थापितशङ्खादिपत्रस्खलने प्रणव जपित्वा पुनर्यथाविधि पात्रं स्थापनीयम् । तदुक्तम्—

त्रैपुरपद्धत्याम्—

शङ्खादिपात्रस्खलने पूर्ववत्पूर्वं शोधयेत् ।
निष्कल शतधा जप्त्वा शेष याग समाचरेत् ॥२५५॥][1]

शारदातिलके—

आत्मान यागवस्तूनि मण्डल प्रोक्षयेद्गुरुः ।
प्रोक्षणीपात्रतोयेन मनुनान्यान्यपि क्रमात् ॥२५६॥

श्रीकुलार्णवे—

पूजाद्रव्याणि सम्प्रोक्ष्य मूलाखाम्या विधानवित् ।
दर्शयेद्धेनुमुद्रा च द्रव्यशुद्धि. प्रकीर्त्तिता ॥२५७॥

रुद्रयामले—

अप्रोक्षित नैव दद्यान्नाप्रोक्षित समर्चयेत् ।

शारदातिलके—

न्यासक्रमेण देहे स्वे धर्मादीन् पूजयेत्ततः ।
पुष्पाद्यै पीठमन्वन्त तस्मिश्च परदेवताम् ॥२५८॥

पञ्चकृत्व पुन. कुर्यात्पुष्पाञ्जलिमनन्यधी. ।
उत्तमाङ्गे हृदाधारे पादे सर्वाङ्गके क्रमात् ॥२५९॥

विना निवेद्य गन्धाद्यैरुपचारै समर्चयेत् ।
गुरूपदिष्टविधिना शेषमन्यत्समापयेत् ॥२६०॥
सर्वमेतत्प्रयुञ्जीत प्रोक्षण्यद्भि समाहित ।

धर्मादीनित्युपलक्षणम् । तेन मण्डूकादिपीठमन्त्रान्ता योगपीठदेवता योगपीठन्यासस्थानेषु पूज्या इत्यर्थ । शेष जपादिकम् ।

---

१. [—] कोष्ठान्तर्गतोऽश क. पुस्तके नास्ति ।

सारसङग्रहे—

मूलाधारगते कुण्डे पूर्वोक्ते चतुरस्रके ।
पूर्ववज्जुहुयान्मन्त्री धर्माधर्मादिकं हविः ॥ २६१ ॥

प्रकाशोदये—

अथ चाभ्यन्तरे कार्यमग्निकार्यं ब्रवीमि तत् ।
चिदग्निमण्डले दण्डमूले कुण्डलिरूपिणि ॥ २६२ ॥

त्र्यस्रकुण्डे हुनेदुद्यत्सूर्यमण्डलवर्चिषि ।
वासनेन्धनसन्दीप्ते पञ्चभिश्च समीरणै ॥ २६३ ॥

सन्धुक्षिते प्रजुहुयादक्षवृत्तीरनन्तरम् ।
मूलविद्या समुच्चार्य हुनेत्सप्ताहुतीस्ततः ॥२६४॥

मन्त्ररूप पठञ् श्लोकम्पर गुरुतर परात् ।
धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ॥२६५॥

सुषुम्णावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ।
स्वाहान्तेनाहुति दत्वा हुनेत्पूर्णाहुति गुरु. ॥२६६॥

मूलविद्या समुच्चार्य श्लोकमन्य पठन्नमुम् ।
प्रकाशामर्षहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम् ॥२६७॥

धर्माधर्मकलास्नेह पूर्णवह्नौ जुहोम्यहम् ।
स्वाहान्तेनाहुति दत्वा प्राणापाननिरोधत ॥२६८॥
निरस्तनिखिलोपाधिमात्मान चिन्मय स्मरेत् ।

ज्ञानार्णवे—

पुण्यपापे हविर्देवि कृत्याकृत्ये हवि. प्रिये ।
सङ्कल्पश्च विकल्पश्च धर्माधर्मौ हवि. प्रिये ॥२६९॥

हवनप्रकारस्तु प्रयोगे वक्ष्यते ।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

अष्टोत्तरसहस्र तु कृत्वान्तर्यागमादरात् ।
जपेत् प्रतिदिन मन्त्री.......... ....॥२७० ।

इत्यन्त देहे याग पूजा ।

सारसङ्ग्रहे—

आत्मपूजा विधायेत्थ यथाशक्ति मनु जपेत् ।
स्वेष्टदैवतमात्मान भावयन्यतमानस. ॥२७१॥

अष्टोत्तरसहस्र तु शक्तपरम् ।

अथ योगपीठपूजा । तत्र

श्रीसारसङ्ग्रहे—

अर्घोदकेन सम्प्रोक्ष्य मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ।
पूजाचक्र ततस्तत्र पीठपूजां समाचरेत् ॥२७२॥

देवस्योत्तरत. पूज्या गुरुपक्तिस्तत परम् ।
महागणपति. पूज्यो दक्षिणे चन्दनादिभि ॥२७३॥

उत्तरत उत्तरदिशि, तेन देवस्य दक्षिणभुजसमीप इत्यायातम् । उत्तरत्र तथा वक्ष्यति--

रुद्रयामले—

सर्वाधो मण्डूकाधारे रुद्रः कालानलो विभु ।
रक्षा करोतु मे नित्य या मूलप्रकृति सदा ॥२७४॥

ततश्चाधारशक्तिर्या मम रक्षा करोतु सा ।
कूर्मस्तु सतत पायादनन्तो रक्षयेत्सदा ॥२७५॥

तस्य मूर्ध्नि स्थितश्चक्री वराहः परिरक्षतु ।
दन्ते तस्य स्थिता पृथ्वी पातु नित्य वसुन्धरा ॥२७६॥

समुद्र सवदा पातु सुरत्नैरमृतैर्जलै. ।
रत्नद्वीपश्च मे रक्षा करोतु स्वर्णपर्वत ॥२७७॥

पातु मा न न्दनोद्यानं रक्षन्तु कल्पपादपा ।
अधस्तेषा सदा पातु विचित्रा रत्नभूमिका ॥२७८॥
श्रीरत्नमन्दिरं पातु सतत पातु वेदिका । इति ।

भैरवयामले—

रत्नवर्णं महाकाय मण्डूक प्रथम यजेत् ।
तत्र कालाग्निरुद्र च दशबाहुसमन्वितम् ॥२७९॥

पञ्चवक्त्र रक्तकृष्णवर्णंदक्षापराङ्ग कम् ।
तदूर्ध्वे मूलप्रकृति बन्धूकाभा वराभयाम् ॥२८०॥

सारसंग्रहे—

अधः पीठस्य रक्ताभां पाशाङ्कुशवराभयान् ।
हस्ताब्जैर्दधती सम्यग्यजेदाधारशक्तिकाम् ॥२८१॥

तस्या उपरि सम्पूज्य. कूर्मः स्वर्णरुचिर्दृढः ।
सहस्रशिरस तत्र शुक्लवर्णमलङ्कृतम् ॥२८२॥

नीलवस्त्र महाकायमनन्त सम्यगर्चयेत् ।
पीताम्बरधर तत्र नीलवर्णं सुभूषणम् ॥२८३॥

शखचक्रगदापद्मधारिणां पोत्रिण यजेत् ।
व्रीह्यग्रशुकहस्ताब्जा वराभयधरा शुभाम् ॥२८४॥
तद्दंष्ट्रोपरि नीलाभां धरा धीर. समर्चयेत् ।

रत्नद्वीप. नवरत्नमयद्वीप । उक्त च—

तन्त्रराजे—

नवरत्नमय द्वीप नवखण्डविराजितम् ।
पुष्प नील च वैदूर्यं[1] विद्रुमं मौक्तिक तथा ॥२८५॥
ईशान्मरकत वज्रं गोमेद पद्मरागकम् ।

ईशात् ईशे ईशानकोणे मरकतरत्नखण्डं यथा भवति तथा पश्चिमादिविलोमेन नवरत्नमयानि खण्डानि मध्यान्तानि ध्येयानीत्यर्थः । तत्रैव—

कुरुकुल्लापटले—

पश्चिम पुष्पराग तु सम्प्राप्यावतरेत्ततः ।

इत्युक्तत्वात् ।रत्नमन्दिर नवरत्नमय माणिक्यमय वा स्वर्णप्राकारवेष्टित विचित्रमण्डपमिति **सारसङ्ग्रहात्** ।

अमृताब्धौ मणिद्वीपे कल्पवृक्षवनोज्वले ।
स्वर्णप्राकारसवीत स्मरेन्माणिक्यमण्डपम् ॥२८६॥

इति **देवीयामलवचनाच्च** । वेदिका स्वर्णमयी ।

विचित्रमण्डप तत्र पूजयेत् स्वर्णवेदिकाम् ।

इति **सारसङ्ग्रहात्** ।

सारसङ्ग्रहे—

रत्नसिंहासनं तत्र पूजयेन्मण्डलान्वितम् ॥२८७॥

मण्डलान्वित तत्तत्पूजाचक्ररूप मण्डलसमन्वितमित्यर्थ ।

---

१. ख. वैडूर्यं ।

तत्पादेषु यजेत्सम्यगाग्नेयादिशिवान्तकम् ।
धर्मं वृषतनु रक्तवर्णमादौ समर्चयेत् ॥२८८॥

सिंहाकार ततो ज्ञानं श्यामवर्णं समाहितः ।
भूताकार च वैराग्य पीतवर्णं यजेत्ततः ॥२८९॥

कृष्णवर्णं गजाकारमैश्वर्यं साधु पूजयेत् ।
अग्रदेश समारभ्य चतुर्दिक्षु समर्चयेत् ॥२९०॥
अधर्मादींश्च पीठस्य चित्रगात्रधिया बुधः ।

वामकेश्वरतन्त्रे—

मध्ये माया तथा विद्या पूजयेत्साधकोत्तम ।

सारसङ्ग्रहे—

तल्पाकार ततोऽनन्त पीठमध्ये समर्चयेत् ।
तस्य मूर्ध्नि यजेत्पद्मं सर्वलक्षणसयुतम् ॥२९१॥

आनन्दकन्दमभ्यर्च्य सविन्नालमनन्तरम् ।
प्रकृत्यात्मकपत्राणि विकारात्मककेसरान् ॥३९२॥
तत्वरूपा कर्णिका च मातृकावर्णविग्रहाम् ।

लिङ्गपुराणे—

तस्य पूर्वदल साक्षादणिमामयमक्षरम् ।
लघिमा दक्षिणं चैव महिमा पश्चिम तथा ॥२९३॥

प्राप्तिश्चैवोत्तर पत्र प्राकाम्य पावकस्य तु ।
ईशित्व नैर्ऋत पत्र वशित्व वायुगोचरम् ॥२९४॥

सर्वज्ञत्व तथैशान कर्णिका सोम उच्यते ।
सोमस्याधस्तथा सूर्यस्तस्याधः पावकः स्वयम् ॥२९५॥

सारसङ्ग्रहे—

पत्रकोशेषु पद्मस्य सत्वादीन् क्रमतो यजेत् ।
सत्वपूर्वान् गुणान् सूर्य्येन्द्वग्नीना मण्डलानि च ॥२९६॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यानात्मादींस्त्रीन्यथाक्रमम् ।

सम्मोहनतन्त्रे—

बोधरूपः सत्वगुणो रजः प्रकृतिरूपकम् ।
तमोगुणो मोहरूपः प्रोक्ता ह्येवं गुणास्त्रयः ॥२९७॥

वामकेश्वरतन्त्रे—

ज्ञानतत्त्वात्मकं चैव क्रमेण परिपूजयेत् ।
चतुर्दिक्षु च मध्ये च·········· ····॥२९८॥ इति ।

प्रपञ्चसारे—

मध्येऽनन्तं पद्ममस्मिंश्च सूर्यं सोमं वह्निं तारवर्णैर्विभक्तैः ।
सत्त्वादींश्च त्रीन् गुणानात्मयुक्तान् शक्तीः किञ्जल्केषु मध्ये यजेच्च ॥२९९॥

सारसङ्ग्रहे—

केसरेषु ततो मध्ये पूर्वादिषु यथाक्रमम् ।
तत्तन्मन्त्रोक्तपीठस्य नवशक्तीः प्रपूजयेत् ॥३००॥
पीठमन्त्रेण गन्धाद्यैः पीठं मध्ये ततो यजेत् ।

सनत्कुमारः—

प्रागाद्यष्टसु पत्रेषु कर्णिकाया यजेन्मुने ।
चतुर्थ्या नमसा युक्तैः स्वैः स्वैरेव तु नामभिः ॥३०१॥
मध्ये पुष्पाञ्जलिं दद्यात्पीठमन्त्रेण मन्त्रवित् ।

यजेत्प्रादक्षिण्येन । 'एताः प्रदक्षिणं पूज्या' इति मन्त्रतन्त्रप्रकाशवचनात् । पूर्वादिष्वत्यत्र पश्चिमस्यैव पूर्वत्वम् ।

स्वराः षोडश देवेशि युग्मयुग्मप्रभेदतः ।
दलाष्टके तु[1] सलेख्याः पश्चिमादि प्रदक्षिणम् ॥३०२॥

इति ज्ञानार्णवे यन्त्रे[2] वर्णविन्यासदर्शनादावरणार्चाया देवाग्रे प्राच्यभिधानाच्च तथा कल्पनात् । 'दक्षिणे च तथा गुरु'मिति सङ्कर्षणवचनाच्च ।

नारदपञ्चरात्रेऽपि गुर्वर्चायाम्—

मण्डले देवदेवस्य दक्षिणे मण्डलोपरि ।

गुरून् समर्चयेदिति । अत एव देवस्योत्तरतः । इति पूर्वोक्तस्यापि पूजामण्डलस्योपर्येव पूजा ज्ञेया । धर्मादिपूजायामप्येवमेव देवाग्रे कल्पितप्राच्यनुसारेणैवाग्नेयादि कल्पयेत् । अत्र भाविनि भूतवदुपचारः । 'आवाह्य मन्त्रेण मुने' इत्यनन्तरमावाहनोक्तेः । भूताकारमिति, भूताः देवयोनिः । 'भूतोऽमी देवयोनयः' इति कोशात् । तत्स्वरूपं तु—

---

१. ख. पु । २. 'तन्त्रे' इत्यपि पाठः ।

रक्तवस्त्रधरा कृष्णा नखदंष्ट्रा सुदंष्ट्रका ।
कर्त्रीखट्वाङ्गहस्ताश्च राक्षसा घोररूपिण ॥३०३॥
भूतास्तथैव दीनास्या............ ।

इति भूतडामरतन्त्रोक्तस्वरूपा.। पीठशक्तय पीठमन्त्राश्चाग्रे तत्तत्प्रकरणे वक्ष्यन्ते ।

सारसङ्ग्रहे—

पीठशक्तीर्नवाभ्यर्च्चेत्केसरेषु च मध्यत. ।
वरदाभयधारिण्य. पीठ पीठाणुना यजेत् ॥३०४॥

मूलमन्त्र समुच्चार्य षष्ठ्यन्त देवनाम च ।
मूर्त्ति च कल्पयामीति मूर्त्तिमध्ये विनिक्षिपेत् ॥३०५॥

पुनर्मूल समुच्चार्य देवनाम च पूर्ववत् ।
मूर्त्ति च पूजयामीति ता पुष्पेण समर्चयेत् ॥३०६॥

पूजामूर्त्ते शिर कुर्यात्कुसुमोपहित सदा ।
पूजाकाल विना तस्या नोपरि भ्रामयेत्करम् ॥३०७॥

अथ मध्यस्थापितमूर्त्तौ स्वेष्टदेवतामावाह्य पूजयेत् । तत्र मूर्त्तिस्तु तत्तद्ध्यानोक्तरूपा । सा तु शिवलिङ्गसालग्रामादावपि भावनीया । शिवलिङ्गादीना सर्वदैवतपूजाधिकरणत्वात् । एतद्विषयकानि वचनानि पूर्वमेवोपन्यस्तानि सालग्रामशिलाया विष्णोरावाहन न कार्यमिति केचिद्वदन्ति—

सालग्रामे स्थावरे वा नावाहनविसर्जनम् ।
सालग्रामशिलादौ यन्नित्य सन्निहितो हरि ॥३०८॥
उद्वासावाहने न स्त स्थिरायामुद्धवार्चने ।
अस्थिराया विकल्प स्यात्स्थण्डिले तु भवेद् द्वयम् ॥३०९॥
शालग्रामार्चने नैव ह्यावाहनविसर्जने ।

वस्तुतस्तु स्कन्दपुराणादिदर्शनादावाहन कार्यम् । यथा—

स्कन्दपुराणे—

विप्र पूर्वं निजे देहे स्मृत्युक्तेन न्यसेद्बुध ।
ततस्तु प्रतिमायाश्च सालग्रामे विशेषत ॥३१०॥

क्रमेण च ततः पश्चात्कुर्यादावाहनादिकम् ।
आवाहयेच्च पुरतो ध्यानसेव्य द्विजोत्तम ॥३११॥

इति । *अत एवावाहनाद्युद्वासनान्तमर्चनमभिधायोक्तं **बौधायनेन**— 'सालग्रामे प्रतिमास्वस्वाग्नावप्यावाहनविसर्जनमिति' । तथा **त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्रेऽपि**—'सालग्राम' इत्युपक्रम्य 'विसर्जनान्ता' पूजोक्ता । अत्र—

शालग्रामशिलाया तु प्रतिष्ठा नैव कारयेत् ।

इति प्रतिष्ठामात्रनिषेधादावाहनमवश्य विष्णोरन्यदेवताना वा अविरुद्धमिति

'आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्ताङ्ग मा प्रपूजयेत्' ।

इति **भागवतेऽपि** भगवता स्वयमभिधानात् । आदिपदेन सालग्रामयन्त्रादयो गृह्यन्ते । आवाहनस्वरूपमुक्तम् ।

सिद्धान्तशेखरे—

स्वत एवाभिपूर्णस्य तत्वस्येहार्चनादिषु ।
सादर सम्मुखीभावस्तदावाहनमिष्यते ॥३१२॥

इति तत्पर्यायमाह—

शारदातिलके—

मूलमन्त्र समुच्चार्य सुषुम्णावर्त्मणा सुधीः ।
आनीय तेजः स्वस्थानान्नासिकारन्ध्रनिर्गतम् ॥३१३॥

करस्थमातृकाम्भोजे चैतन्य पुष्पसञ्चये ।
सयोज्य ब्रह्मरन्ध्रेण मूर्त्तावावाहयेत्सुधीः ॥३१४॥

सुषुम्णावर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रेण दक्षिणनासारन्ध्रनिर्गतमिति ।

वैहायसीमन्त्रकोशे—

अथार्क्कतो वा हृदयारविन्दादावाहयेन्नन्दसुत सुवेषम् । इति ।

अन्यत्रापि—

आवाहयेन्महादेवी हृदयाम्बुजगह्वरात् ।
सूर्यमण्डलतो वापि स्वीयाद्वा द्वादशान्ततः ॥३१५॥ इति।

गरुडपुराणे—

आगच्छेति प्रयोगेण मूलमन्त्रेण शङ्कर ।
आवाहनं प्रकर्त्तव्य ·· ····· ॥३१६॥ इति ।*

१ अस्याग्रे 'नृसिंहपुराणे' इत्यारभ्य एकोनचत्वारिंशदधिकत्रिशतश्लोकान्तः [—] कोष्ठकान्तर्गतोंऽशो नास्ति क. पुस्तके ।

[नृसिंहपुराणे—आगच्छ नरसिंहेति ।

मन्त्रमहोदधावावाहनश्लोका.—

आत्मसंस्थमजं शुद्धं त्वामहं परमेश्वरम् ।
अरण्यामिव हव्याशं मूर्त्तावावाहयाम्यहम् ॥३१७॥

तवेयं महिमामूर्त्तिस्तस्यां त्वां सर्वगं प्रभो ।
भक्तिस्नेहसमाकृष्टं दीपवत्स्थापयाम्यहम् ॥३१८॥

ऊह. कार्यो भवान्यादौ श्लोकेष्वावाहनादिषु ।
मूलश्लोकौ पठन् कुर्यादासनं चोपवेशनम् ॥३१९॥

सर्वान्तिर्यामिणे देव सर्वबीजमयं शुभम् ।
स्वात्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम् ॥३२०॥

अस्मिन् परासने देव सुखासीनोऽक्षरात्मकः ।
प्रतिष्ठितो भवेश त्वं प्रसीद परमेश्वर ॥३२१॥

अनन्या तव देवेश मूर्त्तिशक्तिरियम्प्रभो ।
सान्निध्यं कुरु तस्यां त्वं भक्तानुग्रहतत्पर ॥३२२॥

अज्ञया तव देवेश कृपाम्भोधे गुणावधे ।
आत्मानन्दैकतृप्तं त्वां निरुणध्मि पितर्गुरो ॥३२३॥

अज्ञानाद् दुर्मनस्त्वाच्च वैकल्यात्साधकस्य च ।
यदपूर्णं भवेत्कृत्यं तदप्यभिमुखो भव ॥३२४॥

दृशा पीयूषवर्षिण्या पूरयन् यज्ञविष्टरम् ।
मूर्त्तौ वा यज्ञसम्पूर्त्तेः स्थितो भव महेश्वर ॥३२५॥

अभक्तवाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रदूरापतद्युते ।
स्वतेजःपञ्जरेणाशु वेष्टितो भव सर्वतः ॥३२६॥

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवा. स्वाभीष्टसिद्धये ।
तस्मै परेशाय स्वागतं स्वागतं प्रभो ॥३२७॥

कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम ।
आगतो देवदेवेश सुस्वागतमिदम्पुन. ॥३२८॥

यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः ।
तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्य शुद्धाय कल्पये ॥३२९॥

वेदानामपि वेदाय देवाना देवतात्मने ।
आचाम कल्पयामीश शुद्धाना शुद्धिहेतवे ॥३३०॥

तापत्रयहर दिव्य परमानन्दलक्षणम् ।
तापत्रयविनिर्मुक्त तवार्घं कल्पयाम्यहम् ॥३३१॥

सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुखात्मने ।
मधुपर्कमिम देव कल्पयामि प्रसीद मे ॥३३२॥

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रत ।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥३३३॥

स्नेह गृहाण स्नेहेन लोकनाथ महाशय ।
सर्वलोकेषु शुद्धात्मन् ददामि स्नेहमुत्तमम् ॥३३४॥

परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्त्तये ।
साङ्गोपाङ्गमिद स्नान कल्पयाम्यहमीश ते ॥३३५॥

मायाचित्रपटच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे ।
निरावरणविज्ञानवासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥३३६॥

यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहनी सदा ।
तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥३३७॥

यस्य शक्तित्रयेणेद सम्प्रोतमखिल जगत् ।
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्र प्रकल्पये ॥३३८॥

स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयात्मने ।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमरार्चित ॥३३९॥]

सारसङ्ग्रहे—

आवाहन स्थापन च सन्निधापनमेव च ।
सन्निरोधमित्युक्त सम्मुखीकरण तत ॥३४०॥
[1]अथवाऽवगुण्ठन प्रोक्त सकलीकरण तत. ।
अमृतीकरण चैव परमीकरण तथा ॥३४१॥
विधाय स्वस्वमुद्राभिः प्राणस्थापनमाचरेत् ।

---

१. क अथावगुण्ठन ।

सकलीकरणस्वरूप च—

सिद्धान्तशेखरे—

अपि भिन्नस्वभावाना यदभिन्नप्रयोजनम् ।
अङ्गानामङ्गिना सार्द्धं सकलीकरण त्विदम् ॥३४२ इति ॥

आवाहनादिमुद्रालक्षणानि

लक्षणसङ्ग्रहे—

हस्ताभ्यामञ्जलिं बद्ध्वाऽनामिकामूलपर्वणो ।
अङ्गुष्ठौ निक्षिपेत्सेय मुद्रा त्वावाहनी स्मृता ॥३४३॥

अधोमुखी त्विय चेत्स्यात्स्थापनीति निगद्यते ।
उच्छ्रिताङ्गुष्ठमुष्ट्योस्तु सयोगात्सन्निधापनी ॥३४४॥

अन्त.प्रवेशिताङ्गुष्ठा सैव संरोधिनी मता ।
उत्तानमुष्टियुगला सम्मुखीकरणीभवेत् ॥३४५॥

देवताङ्गे षडङ्गानां न्यास. स्यात्सकलीकृति. ।
सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी ॥३४६॥

अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता मता ।
अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टकनिष्ठाऽनामिका पुन ॥३४७॥

तथैव तर्जनी मध्या धेनुमुद्रेयमीरिता ।
अमृतीकरण कुर्यात्तया साधकसत्तमः ॥३४८॥

अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकरांगुली[1] ।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे प्रिये ॥३४९॥
प्रयोजयेदिमा मुद्रा देवताह्वानकर्मणि ।

श्रीकुलार्णवे—

पीठे देव प्रतिष्ठाप्य सकलीकृत्य मन्त्रवित् ।
मूलमन्त्रेण दीपन्या मालिन्याऽर्घोदकेन च ॥३५०॥

त्रिवार प्रोक्षयेद्विद्वान् देवशुद्धिरिय प्रिये ।
पञ्चशुद्धि विधायेत्थ पश्चाद्यजनमारभेत् ॥३५१॥
सा पूजा सफला देवि चान्यथा निष्फला भवेत् ।

---

१ क. प्रसारिसकराङ्गुली ।

तथा—

वाग्भव वद-युग्मान्ते वाग्वादिनि च वाग्भवम् ।
कामराज ततः क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदयेति च ॥३५२॥

महाक्षोभ कुरुयुग कामराजमतः परम् ।
तार्त्तीय मोक्षशब्दान्ते कुरुयुग्मं वदेत्ततः ॥३५३॥

स्यात्प्रासादपरा चान्ते सप्तत्रिंशद्भिरक्षरैः ।
दीपनीमनुरित्युक्तः सर्वसिद्धिकरः प्रिये ॥३५४॥

चकारात्कुरुयुग्मान्ते तार्त्तीयादनु पराप्रासादबीजमित्यर्थः, सप्तत्रिंशदक्षर-इत्युक्ते । वाग्भवकामराजतार्त्तीया बालाविद्याया एव । सा त्वग्रे वक्ष्यते । पराप्रासादबीज तु पुरस्तात्प्रयोगेऽस्यैव मन्त्रस्यान्ते द्रष्टव्यम् ।

तथा—

सकलीकृत्य तत्प्राणास्तदीयानीन्द्रियाणि च ।
प्रतिष्ठाप्याऽर्चयेद्देवमन्यथा निष्फल भवेत् ॥३५५॥

सारसङ्ग्रहे—

मुद्राः प्रदर्श्य विधिवदुपचारान्प्रकल्पयेत् ।

मुद्रास्तु पूर्वमेवोक्ता ।

कुलमूलावतारे—

मुद स्वरूपलाभाभ्या देहद्वारेण चात्मन ।
याद्यर्पयन्त्ययत्नेन मुद्रास्ताः शक्तयो मताः ॥३५६॥

मोचयन्ति ग्रहादिभ्यः पापौघं द्रावयन्ति च ।
मोदन द्रावणं यस्मान्मुद्रा शास्त्रेषु वर्णिता ॥३५७॥

इति मुद्राशब्दनिरुक्तिः ।

अथोपचाराः—

उपचारशब्दार्थो ज्ञानमालायामुक्तः—

भक्त्या चैते कृता देवे साधक देवसन्निधिम् ।
चारयन्ति यतस्तस्मादुच्यन्ते ह्युपचारका ॥३५८॥

समीपे चारणाद्वापि फलानां ते तथोदिता । इति ।

तत्रैव—

आसन प्रथम तेषामावाहनमुपस्थितिः ॥३५९॥

सान्निध्यमाभिमुख्यं च स्थिरीकृतिः प्रसाधनम् ।
अर्घं पाद्याचमने मधुपर्कमुपस्पृशम् ॥३६०॥

स्नान नीराजन वस्त्रमाचम चोपवीतकम् ।
पुनराचमभूपे च दर्प्पणालोकन ततः ॥३६१॥

गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्य च ततः क्रमात् ।
पानीय तोयमाचाम हस्तवासस्तत परम् ॥३६२॥

ताम्बूलमनुलेप च पुष्पदान पुनः पुन. ।
गीत वाद्य तथा नृत्य स्तुति चैव प्रदक्षिणाम् ॥३६३॥
पुष्पाञ्जलिनमस्कारावष्टत्रिंशत्समीरिता इति ।

निबन्धे—

आसनावाहने चार्घं पाद्यमाचमनीयकम् ।
स्नानं वस्त्र चोपवीत भूषणानि च सर्वतः ॥३६४॥

गन्ध पुष्प तथा धूप दीपमन्नेन तर्प्पणम् ।
माल्यानुलेपन चैव भूषणानि च सर्वशः ॥
अष्टादशोपचारैस्तु नित्य पूजा समाचरेत् ॥३६५॥

प्रपञ्चसारे—

आसनस्वागते सार्घपाद्ये साचमनीयके ।
मधुपर्काचमस्नानवसनाभरणानि च ॥३६६॥

सुगन्धसुमनोधूपदीपनैवद्यवन्दना ।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारास्तु षोडश ॥३६७॥

अर्घपाद्ये साचमने मधुपर्काचमान्यपि ।
गन्धादयो निवेद्याता उपचारा दश क्रमात् ।

प्रयोगसारे—

अर्घ्यं गन्ध ततः पुष्पमक्षत धूपमेव च ।
दीपो निवेद्य सम्राज्ञी सपर्येत्यपरे जगुः ॥३६८॥ इति ।

पदार्थादर्शे—

गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्य पञ्च सस्मृता ।
अत्र पञ्चोपचारपूजापक्षे त्वर्घादिपात्रस्थापनं नास्ति प्रयोजनाभावात् ।

भैरवीतन्त्रे—

एकैकस्यान्ततो मन्त्री प्रणम्य तु निवेदयेत् ।

तन्निवेदनप्रकारमाह—

नारदपञ्चरात्रे—

प्रणवान्ते त्रिधा कृत्वा प्राणं व्योमविभूषितम् ।
इदमिदमिद पश्चात्पद दद्यात् षडक्षरम् ॥३७०॥

गृहाण च तत स्वाहा मन्त्र पञ्चदशाक्षर ।
योज्य सर्वोपचारेषु पाद्यादिषु सदैव हि ॥३७१॥

प्राणो हकार , व्योम बिन्दु. । अत्र तृतीयहकारोपरिस्थबिन्दोरिकारेण सह सन्धि. कार्यं तदा मि भवति ।

सारसङ्ग्रहे—

मूलेनैवासन दद्यात्तेन स्वागतमीरयेत् ।
ततोऽर्घं मूर्ध्नि दद्याच्च स्वाहामन्त्रेण मन्त्रवित् ॥३७२॥

पादाब्जे देवतायास्तु हृदा पाद्य प्रकल्पयेत् ।
दद्यादाचमन वक्त्रे देवताया· सुधाणुना ॥३७३॥
सुधामन्त्रेण दद्याच्च मधुपर्कं मुखाम्बुजे ।

अत्रार्घाचमनीयमधुपर्कपुष्पेष्वपि शूद्रैर्नम.पदमेव स्वाहादिस्थाने प्रयोक्तव्यम् अथात्र—

वैदिको मिश्रितो वापि विप्रादीना विधीयते ।
तान्त्रिको विप्रभक्तस्य शूद्रस्यापि प्रकीर्त्तित. ।३७४॥

इति । **पद्मपुराणवचनाद्** ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैर्गणेशादिपञ्चदेवतानां वा पूजा कार्या । केवलतान्त्रिकयजनस्य शूद्रविषयत्वात् । उक्तवचनात्—तत्र वैदिकमन्त्रास्तु 'गणाना त्वे' ति गणपते, 'गौरीर्मि माये' ति भुवनेश्वर्यादिगौरीभेदाना, 'यद्वागि' ति भारत्याः, श्रीसूक्त लक्ष्म्या , 'जातवेदसे सुनवाम' इति दुर्गायाः, विष्णो पुरुषसूक्त, रवे 'राकृष्णेने'ति, शिवस्य 'नमः शम्भवे'ति 'त्र्यम्बक यजामह' इति वा । गणाना त्वेति मन्त्रस्य गृत्समदो ऋषि , जगती छदः । गौरीर्मिमायेति मन्त्रस्य दीर्घतमा ऋषि', उमा जगती छन्द. । आकृष्णेनेति मन्त्रस्य हिरण्यस्तूप ऋषि सविता, त्रिष्टुप् ।

अथोपचारकल्पना तत्रादावासनानि ।

सारसङ्ग्रहे—

देवस्य वामभागे तु दद्यान्मूलेन चासनम् ।
पौष्प दारुमय वास्त्र चार्म कौश च तैजसम् ॥३७५॥
षड्विध चासन प्रोक्त..................। इति ।

उत्तरतन्त्रे—

पौष्प पुष्पादिरचित कुशसूत्रादिसयुतम् ।
अतिप्रीतिकर देव्या ममाप्यन्यस्य भैरव ॥३७६॥

यज्ञदारुसमुद्भूतमासन चात्रण शुभम् ।
अन्यदारुभव वापि दद्यादासनमुत्तमम् ॥३७७॥

सकण्टकक्षीरयुत दारु सारविवर्जितम् ।
चैत्य श्मशानसम्भूत वर्जयित्वा बिभीतकम् ॥३७८॥

चैत्य. ग्रामप्रसिद्धिभूतो महावृक्ष. । दारुमयासने विशेषमाह—

रुद्रयामले—

शाण्डिल्यभद्रसारस्य चासन हस्तमात्रकम् ।
सप्ताङ्गुलोच्छ्रित दद्याद्विष्टर वा विचक्षण· ॥३७९॥

शाण्डिल्यो बिल्वः ।

विल्वे शाण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि ।

इत्यमर । भद्रसारश्चन्दन ।

भद्रसारो मलयजो भद्रश्रीश्चन्दनोऽस्त्रियाम् ॥३८०॥

इत्यमरकोशाद् । विष्टरो दर्भमुष्टि ।

डामरे—

सप्तविंशतिदर्भाणा वेण्यग्रे ग्रन्थिभूषिता ।
विष्टरे सर्वयज्ञेषु लक्षण परिकीर्त्तितम् ॥३८१॥

इति । यद्वा विष्टरशब्दस्त्वासनमात्रवाची ।

विष्टरो विटपी दर्भमुष्टि पीठाद्यमासनम् ॥३८२॥

इति हि कोश ।

उत्तरतन्त्रे—

यच्चासन कुशमय तदासनमनुत्तमम् ।
योगपीठस्य सदृशमासनं कौशमुच्यते ॥३८३॥

तथा—

सर्वेषा तैजसाना चाप्यासन श्रेष्ठमुच्यते ।
वर्जयित्वा लोहमयं कांस्यं सीसकमेवच ॥३८४॥

इति अत. परमर्घ्यंदानम् । तच्च देवस्य शिरोऽर्हणायैव देयम् ।

सोमशम्भुः—

आगताय तथार्च्चाया स्नातुमासनगाय च ।
पूजातो गन्तुकामाय दद्यादर्घ्यं विचक्षणः ॥३८५॥

आगते स्नानकाले च नैवेद्योपक्रमे तथा ।
पाद्यस्यापि समुद्दिष्टः समयस्त्रिविधो बुधैः ॥३८६॥

पाद्ये च मधुपर्के च स्नाने वस्त्रोपवीतयो. ।
भोजने चाचमं दद्यात्............॥३८७॥ इति

[1]तूर्णायागे—

सुगन्धतैलैरभ्यज्य सुगन्धामलकादिभिः ।
उद्वर्त्तन विधायाथ स्नापयित्वोष्णवारिणा ॥३८८॥
गन्धोदकैश्च मूलेन यथाशक्त्यभिषेचयेत् ।

महाकपिलपञ्चरात्रे—

रजनी सहदेवी च शिरीपो लक्ष्मणाऽपि च ।
सदा भद्रा कुशाग्राणि उद्वर्त्तनमिहोच्यते ॥३८९॥

मन्त्रप्रकाशे—

शुद्धतोयाद् गन्धतोय श्रेष्ठ शतगुणोत्तमम् ।
गङ्गादितीर्थतोयाना फल शास्त्रप्रणोदितम् ॥३९०॥

---

१. इतः पूर्वं निम्नांशो विशेषः ख. पुस्तके—

कालिकापुराणे—धर्मार्थकाममोक्षाणां स्थानं पाद्यमिहोच्यते ।
अर्घ्येण लभते कामानर्घेण लभते धनम् ॥१॥
पुत्रायु सुखमोक्षाणि दानादर्घस्य वै लभेत् ।
आयुर्बल यशोवृद्धि दद्यादाचमनीयकम् ॥२॥
लभते साधको नित्यं कामांश्चै व हृदुत्थितान् ।

नाहरेन्मलिन तोय केशकीटादिदूषितम् ।
मलिनेनाऽपि भाण्डेन व्यङ्गेनाऽशुचिना तथा ॥३९१॥

तूर्णयागे—

महाभिषेक सर्वत्र शङ्खेनैव प्रकल्पयेत् ।
सर्वत्रैव प्रशस्तोऽब्ज' शिवसूर्यार्चन विना ॥३९२॥

अब्ज शङ्ख ।

अगस्त्यः—

स्नानं पुरुषसूक्तेन शुद्धशङ्खोदकेन च ।
क्षीरदध्याज्यमधुभि खण्डेन च पृथक् पृथक् ॥३९३॥

नालिकेरोदकेनापि तथा तालफलाम्बुना।
गन्धद्रव्यैश्च वहुभिस्तथा गन्धोदकेन च ॥३९४॥

ऐक्षवेणोदकेनापि सकर्पूरादिगन्धिना ।
कदलीपनसाम्रोत्थजलेनाऽपि सुगन्धिना ॥३९५॥

शत सहस्रमयुतं शक्त्या वाप्यभिषेचयेत् ।
शङ्ख सम्पूर्य तेनैव सपुष्पेण रघूत्तम ॥३९६॥

सकृष्णागुरुधूपेन धूपयेदन्तरान्तरा ।
तत शुद्धजलेनैव स्नापयेत्तमनन्यधी' ॥३९७॥

तन्त्रान्तरे—

प्रतिमापटपात्राणा नित्यस्नान न कारयेत् ।
कारयेत्पर्वदिवसे तथा मलनिवारणम् ॥३९८॥

यामले—

पीतकौशेयवसन विष्णुप्रीत्यै प्रकीर्त्तितम् ।
रक्त शक्त्यर्कविघ्नाना शिवस्य च सित प्रियम् ॥३९९॥
मलहीन तथाऽच्छिद्र क्षौमं कार्पासमेव च ।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

तैलादिदूषिताद्रोगः सच्छिद्राद्वाच्यता भवेत् ।
जीर्णाद्दरिद्रता कर्त्तुर्मलिनात्कान्तिहीनता ॥४००॥

कालिकापुराणे—

निर्दंश मलिनं जीर्णं छिन्नं गात्रावलम्बितम् ।
परकीयं चाखुदग्धं सूचीविद्धं तथाऽसितम् ॥४०१॥

उत्प्रकेशमधौतं च श्लेष्ममूत्रादिदूषितम् ।
प्रदाने देवताभ्यश्च दैवे पित्रे च कर्म्मणि ॥४०२॥
वर्जयेत्स्वोपयोगे च यज्ञादावुपयोजने ।

सारसङ्ग्रहे—

यज्ञोपवीतं दत्वाऽथ भूषणानि समर्पयेत् ।
तानि नानाविधानि स्युर्मुकुटादिप्रभेदतः ॥४०३॥
स्त्रीपुम्प्रभेदतश्चापि विज्ञेयानि विचक्षणैः ।

तत्वसारे—

यावत् सूर्यश्च चन्द्रश्च यावत्तिष्ठन्ति देवताः ।
न निर्माल्यं भवेत्तावत्स्वर्णरूप्यविभूषणम् ॥४०४॥
वस्त्रमभ्युक्षणाच्छुध्येदपरं च दिने दिने ।

योगिनीतन्त्रे

गन्धः पुष्पं तथा धूपो दीपो नैवेद्यमेव च ।
यस्य यद्दीयते वस्त्रमलङ्कारादिकाञ्चनम् ॥४०५॥

तेषां दैवतमुच्चार्य कृत्वा प्रोक्षणपूजने ।
उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनाम्ना निवेदयेत् ॥४०६॥

वरुणस्य तु वीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत् ।
अन्नस्य देवता लक्ष्मीरथवाऽपि प्रजापतिः ॥४०७॥

सुवर्णं चाग्निदैवत्यं रजतं चन्द्रदैवतम् ।
हीरकं वारुणं ज्ञेयं रसानां पृथिवी तथा ॥४०८॥

जलस्य वरुणो देवः पेयानां वरुणस्तथा ।
कृसरस्य स्मृता[1] देवी परमान्नस्य चैव हि ॥४०९॥

घृतप्रदीपके विष्णुस्तैलयोगे वनस्पतिः ।
गन्धर्वश्च तथा धूपो ह्याज्यं चैवाग्निदैवतम् ॥४१०॥

---

१ ख रमा ।

मधु वै वारुण ज्ञेय दधि क्षीर च वैष्णवम् ।
वानस्पत्य तथा पुष्प वैष्णवो गन्ध ईरित. ॥४११॥
मालायाश्च तथा दुर्गा सर्वं वा विष्णुदैवतम् ।

अत्र पूजन एव दैवतोच्चारः ।
तेषा दैवतमुच्चार्य पूजयेत्तु विचक्षण. ॥४१२॥

स्वयमभिधानात् उत्सर्गस्तु मूलमन्त्रेण ।

इष्टेन मूलमन्त्रेण तथोत्सर्गनिवेदने ।

इति स्वयमभिधानात् ।

इति श्रीगोस्वामिश्रीजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ तृतीयस्तरङ्गः ॥३॥



चतुर्थस्तरङ्गः

कालिकापुराणे—

चूर्णीकृतो वा घृष्टो वा दाहकर्षित एव वा ।
रसः सम्मर्दजो वापि प्राण्यङ्गोद्भव एव वा ॥१॥

गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो देवानाम्प्रीतिदायकः ।
गन्धचूर्णं गन्धपत्रचूर्णं सुमनसस्तथा ॥२॥

प्रशस्तगन्धयुक्ताना पत्रचूर्णानि यानि च ।
तानि गन्धाह्वयानि स्युश्चूर्णजः प्रथमः स्मृतः ॥३॥

घृष्टो मलयजो गन्धः सरलश्च नमेरुणा ।
अगुरुप्रभृतिश्चैव यस्य पङ्कः प्रदीयते ॥४॥
घृष्टेन घृष्टो गन्धोऽय द्वितीयः परिकीर्त्तितः ।

शारदातिलके—

गन्धश्चन्दनकर्पूरकालागुरुभिरीरितः ।[1]

तथा—

देवदार्वगुरुब्रह्मसानसारात्तु चन्दनात् ।
प्रियादीना च यो दग्ध्वा गृह्यते दाहजो रसः ॥ ५॥

सदाहकर्षितो गन्धस्तृतीयः परिकीर्त्तितः ।
सुगन्धकरवीराढ्य सुगन्धलतिका तथा ॥६॥

सुगन्धान्यरसो योऽसौ निष्पीड्य परिगृह्यते ।
स सम्मर्दोद्भवो गन्धः सम्मर्दज इतीष्यते ॥७॥

मृगनाभिसमुद्भूतस्तत्कोशोद्भव एव वा ।
गन्धः प्राण्यङ्गजः प्रोक्तो मोददः स्वर्गवासिनाम् ॥८॥

पदार्थादर्शे—

शङ्खपात्रस्थितं गन्धं मन्त्रैर्दद्यात्कनिष्ठया ।

---

१. ख पुस्तके विशेषः—

गन्धेभ्यश्चन्दनं पुण्यं चन्दनादगुरुर्वरः ।
कृष्णागरुस्ततः श्रेष्ठः कुङ्कुमञ्च ततो वरम् ॥

तन्त्रान्तरे विशेषः—

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरङ्गुल्यग्रेण पार्वति ।
दद्याच्च विमलं गन्ध मूलमन्त्रेण साधक. ॥९॥

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

पुष्प पञ्चविध प्रोक्त मुनिभिर्नारदादिभिः ।
परापरोत्तम चैव मध्यम च तथाधमम् ॥१०॥

सौवर्णं परमित्युक्तमपर चित्रवस्त्रजम् ।
वृक्षगुल्मलतापुष्पमुत्तम परिकीर्त्तितम् ॥११॥

अधम पत्रतोयादि मध्यम तु फलात्मकम् ।
उत्सृष्टं न क्रियायोग्य सदा योग्ये परापरे ॥१२॥

सारसङ्ग्रहे—

शुक्ला कृष्णा च तुलसी शुक्ल रक्त च पङ्कजम् ।
केतकीयुगल जातीद्वय द्वन्द्व हयारिजम् ॥१३॥

पुष्पाना दशक ह्येतत् प्रशस्त परिकीर्तिम्
[1]रक्तनीलोत्पले शस्ते मल्लिकाकुमुद तथा ॥१४॥

कुन्द कह्लारक चैव मन्दार तगर पुन ।
अर्जुन किंशुक रक्तमन्दार नागचम्पकम् ॥१५॥

अशोकविल्वपुष्पाणि पाटला नवमल्लिका ।
चम्पक कर्णिकार च पारिजाततरूद्भवम् ॥१६॥

शतवर्गोद्भव पुष्प कोरण्टकुसुमानि च ।
इत्यादीनि सुपुष्पाणि गन्धवन्ति लसन्ति च ॥१७॥

तत्तन्मन्त्रविधानेषु विहितानि समर्पयेत् ।
म्लानानि चाङ्गलग्नानि शीर्णानि क्ष्मागतानि च ॥१८॥

यानि पर्युषितानि स्युः कृमिभिर्भक्षितानि च ।
कोरकानि च दुष्टानि समाघ्रातानि नार्पयेत् ॥१९॥[2]

---

१. ख. रत्न० । २. ख. पुस्तकेऽनः पर विशेष·—

अगस्तिसंहितायाम्—

मुकुलै. पतितैश्चैव खण्डितै· शोषितैरपि ।
अनर्हैरपि पुष्पैश्च दलैः पत्रैश्च नार्चयेत् ॥

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

पत्रेषु तुलसी श्रेष्ठा बिल्व दामनक शुभम् ।
मरुको देवकल्हारी विष्णुक्रान्ता तथैव च ॥२०॥

श्रपामार्गोऽथ गान्धारी पत्री सुरभिसञ्ज्ञिका ।
नागवल्लीदल दूर्वा कुशपत्र तथा मतम् ॥२१॥
पत्र चागस्त्यवृक्षस्य पुष्प धात्रीदल तथेति ।

भविष्यत्पुराणे—

जाती शमी कुशा' कङ्कुमल्लिकाकरवीरजम् ।
नागपुन्नागकाशोकरक्तनीलोत्पलानि च ॥२२॥

चम्पक वकुल चैव पद्म वा विल्वपत्रकम् ।
एतानि सर्वदेवाना विहितानि समानि च ॥२३॥

कङ्कु कुब्जकम् । नागो नागकेसरम् ।

ज्ञानमालायाम्—

गणेशाय च सूर्याय रक्तपुष्पमतिप्रियम् ।

श्रथ सूर्यस्य विहितानितत्र—

भविष्यत्पुराणे—

मालती मल्लिका चैव दूर्वा काशोऽतिमुक्तकः ।
पाटला करवीराणि जपा जयन्तिरेव च ॥२४॥

चम्पको रोतक कन्दोषाणो बर्बरमल्लिका ।
श्रशोककर्णिकारौ च तथैव चाटरूषकः ॥२५॥

शतपत्राणि चान्यानि वकुल च विशेपत. ।
श्रगस्तिकिंशुकौ तद्वत्पूजार्थं भास्करस्य च ॥२६॥

विहितानीति शेषः ।

॥ श्रथ पत्राणि ॥

विल्वपत्र शमीपत्र भृङ्गराजस्य पत्रकम ।
तमालपत्र च हरेसद्यस्तुष्टिकर हरे ॥२७॥

तुलसी कालतुलसी तथा रक्त च चन्दनम् ।
केतकीपत्रकुसुम सदैव तपनप्रियम् ॥२८॥

हरिपदद्वय सूर्यविष्णुपरम् । अथ विष्णोः ।

नरसिंहपुराणे—

मल्लिका मालती जाती केतक्यशोकचम्पकैः ।
पुन्नागनागवकुलै. पद्मकैरुत्पलादिभि. ॥२९॥
एतैरन्यैश्च कुसुमै. प्रशस्त पूजन हरे. ।

वामनपुराणे—

जाती शताह्वा सुमना. कुन्द चाम्बुपुटस्तथा ।
वाणं चम्पकाशोक करवीर च यूथिका ॥३०॥

पारिभद्र पाटला च वकुल गिरिशालिनी ।
तीलक[1] जासुवनज पीतज स्वगर त्वपि ॥३१॥

एतानि हि प्रशस्तानि कुसुमान्यच्युतार्चने ।
सुरभीनि तथान्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम् ॥३२॥

केतकी [2]धत्तूरमिति केचित्, वनकेतकीत्यपरे। शताह्वा शोफ इति प्रसिद्धा। सुमनाःसुवर्णजाती, अम्बुपुट कर्णिकार, जसुवनज जपा, गिरिशालिनी-श्वेतकुटजम् ।

अथ पत्राणि—

अपामार्गस्य प्रथम भृङ्गराजमत परम् ।
तस्माच्च खादिर श्रेष्ठ शमीपत्र तत. परम् ॥३४॥

दूर्वापत्र तथा श्रेष्ठ ततोऽपि कुशपत्रकम् ।
तस्माद्दामन श्रेष्ठं ततो विल्वस्य पत्रकम् ॥३४।

विल्वपत्रादपि हरेस्तुलसीपत्रमुत्तमम् ।
एतेपा तु यथालाभ पत्रैर्यश्चार्चयेद्धरिम् ॥३५॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।

विल्वपत्रस्य निपेध —

---

१. ख तिलक। २. ख. धत्तूर०।

गौतमीये—

न रक्तचन्दनं जातु गृह्णीयाद्रक्तपुष्पकम् ।
बिल्वपत्रैस्तत्प्रसूनैर्नार्चयेद्देवकीसुतम् ॥३६॥

नरसिंहपुराणे—

कृष्णमूर्द्धनि विन्यस्ता तुलसीपत्रमञ्जरी ।
सुवर्णकोटिपुष्पाणां पुण्यं यच्छत्यतोऽधिकम् ॥३७॥

अगस्तिकुसुमैर्देवं योऽर्चयेच्च जनार्दनम् ।
दर्शनात्तस्य देवर्षे नरकान् को नु यास्यति ॥३८॥

वक वकुलम् ।

द्रोणपुष्पं खादिरं च शमी बिल्ववकं तथा ।
नन्द्यावर्त्तं करवीरं तथा श्वेतं च किंशुकम् ॥३९॥

कुशपुष्पं तमालं च चम्पकाशोककेतकी ।
त्रिसन्ध्यं मालतीपुष्पं त्रिसन्ध्यं श्वेतजा तु या ॥४०॥

कुन्दं च शतपुष्पं च मल्लिकाजातिपुष्पकम् ।
पूर्वपूर्वसहस्रेभ्योऽधिकं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥४१॥

जातीपुष्पसहस्रेण यच्छेन्मालां सुशोभनाम् ।
विष्णवे विधिवद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥४२॥

कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
वसेद्विष्णुपुरं श्रीमान् विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥४३॥

मञ्जरीं सहकारस्य केशवोपरि नारद ।
यच्छन्ति ते महात्मानो गोकोटिफलभागिनः ॥४४॥

पुरन्ध्रिपुष्पं यो दद्यादेकमप्यथ पण्डितः ।
तिलपात्रप्रदानस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥४५॥

पुरन्ध्रिः पूर्वदेशे पङ्गुरिति प्रसिद्धा ।[1]

मदनपारिजाते—

पद्मेनैकेन देवेशमभ्यर्च्य कमलापतिम् ।
वर्षायुतसहस्रस्य पापस्य कुरुते क्षयम् ॥४६॥

---

१. ख. प्रत. परमयमशो विशेष.—

दमनेनापि गोविन्दं पूजयित्वा च माधवम् ।
कपिलाशतस्य च मुने दानस्य लभते फलम् ॥

अगस्तिवृक्षसम्भूतैः कुसुमैरसितैः सितैः ।
येऽर्चयन्ति च देवेश तैः प्राप्तं परम पदम् ॥४७॥

सुवर्णकेतकीपत्र यो ददाति जनार्दने ।
कोटिजन्मार्जित पाप दहते गरुडध्वजः ॥४८॥

सकृत्कदम्बपुष्पेण हेलया हरिरर्चितः ।
सप्त जन्मानि देवर्षे 'तस्य लक्ष्मीर्न दूरगा'[1] ॥४९॥

कुम्भीपुष्प तु देवर्षे य. प्रयच्छति केशवे ।[2]
सुवर्णपलमात्र हि पुष्पे पुष्पे भवेन्मुने ॥५०॥

गारुडपुराणे—
धात्रीफलेन यत्पुण्य जयन्त्या समुपोषणे ।
खगेन्द्र यल्लभेन्मर्त्यस्तुलसीपूजनेन तत् ॥५१॥

यथाकथचिदाहृत्य कुसुमैः पूजयेद्धरिम् ।
नाकपृष्ठमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥५२॥

[3]अथ शिवस्य विहितानि—

भविष्यत्पुराणे—
करवीरो वकश्चैव अर्क उन्मत्तकस्तथा ।
पाटला वृहती चैव तथा च गिरिकर्णिका ॥५३॥
तथा काणस्य पुष्पाणि मन्दारश्चापराजिता ।
शमीपुष्पाणि चान्यानि कुञ्जक शिखिनी तथा ॥५४॥

---

१ '—' ख य प्रयच्छति केशवे । २. ख. पादद्वय नास्ति । ३. ख इत. पूर्वमयमशो विशेष —
गारुडे—नार्क नोन्मत्तकं किञ्चित्तथैव गिरिकर्णिकाम् ।
न कण्टकारिकापुष्पमच्युताय निवेदयेत् ॥१॥
कुटज शाल्मलीपुष्प शिरीष च जनार्दने ।
निवेदित भय शोक निःस्वता च प्रयच्छति ॥२॥
निबन्धे—काञ्चनारमयैः पुष्पैर्येऽर्चयन्त्यसुरद्विषम् ।
दारिद्र्यं दु खबहुल तेभ्यो विष्णु प्रयच्छति ॥३॥
गिरिकर्णिकया विष्णु येऽर्चयन्त्यबुधा नरा ।
तेषा कुलक्षय घोर कुरुते मधुसूदनः ॥४॥
नरसिंहस्य पूजाया निषिद्ध केतकीद्वयम् ।

अपामार्गस्तथा पद्म शमीपत्र सरोचकम् ।
चम्पकोशीरतगर तथा वै नागकेसरम् ॥५५॥

पुन्नाग किंकिरात च द्रोणपुष्पन्तथा शुभम् ।
शिग्पोदुम्बरश्चैव जपा मल्ली तथैव च ॥५६॥

पुष्पाणि यक्षवृक्षस्य तथा बिल्व प्रिय शुभम् ।
कुङ्कुमस्य च पुष्पाणि तथा वै कङ्कतस्य च ॥५७॥

नील च कुमुद चैव तथा रक्तोत्पलानि च ।
सुरभीणि च सर्वाणि स्थलजान्यौदकानिच ॥५८॥
गृह्णामि शिरसा देवि यो भक्त्या विनिवेदयेत् ।

शिखिनी मयूरशिखा ।

नीलोत्पलसहस्रस्य यो माला सम्प्रयच्छति ॥५९॥

शिवाय विधिवद्भक्त्या तस्य पुण्यफल शृणु ।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥६०॥
वसेच्छिवपुरे श्रीमान् शिवतुल्यपराक्रम. ।[1]

अथ दुर्गायाः

देवीपुराणे—

शृणु शुक्र प्रवक्ष्यामि पुष्पाध्याय समासत ।
ऋतुकालोद्भवै पुष्पैर्मल्लिकाजातिपुष्पकै ॥६१॥

सितरक्तैस्तथा पुष्पै पद्मैश्च पाण्डुरैस्तथा ।
किंशुकैस्तगरैश्चैव किंकिरातैश्च चम्पकै. ॥३२॥

वकुलैश्चैव मन्दारै कुन्दपुष्पैस्तिरीटकै ।
करवीरार्कपुष्पैश्च शैशिपैश्चापराजितै ॥६३॥

---

१. इत. पर ख पुस्तके विशेष.—

लिङ्गपुराणे सूतसंहितायाञ्च बिल्वपत्रसमर्पणे विशेष —

वामपत्रे वसेद्ब्रह्मा पद्मनाभश्च दक्षिणे ।
मध्यपत्रे वसेत् साक्षात् साम्ब सर्वार्थदायक ॥१॥
इन्द्रादयो लोकपाला वृन्ताग्रे परिकीर्त्तिता ।
यक्षाः पिशाचा रक्षाश्च पृष्ठभागे प्रकीर्त्तिता ॥२॥
तस्माद्वै पूर्वभागेन अर्चयेद् गिरिजापतिम् ।

सितरक्तैस्तथा पीतैः कृष्णैश्चैव चतुर्विधैः ।
धत्तूरकातिपुष्पैश्च बन्धूकागस्तिसम्भवैः ॥६४॥
दमनैः[2] सिन्दुवारैश्च सुरभिमरुवकैस्तथा ।
लताभिर्ब्रह्मवृक्षस्य दूर्वाकुन्दैः सुशोभनैः ॥६५॥
मञ्जरीभिः कुशानां च विल्वपत्रैः सुशोभनैः ।
रक्तान्वितैस्तथा सर्वैर्जलजैः स्थलसम्भवैः ॥६६॥
पत्रैः पुष्पैर्यथान्याय सर्वौषधिमयैः शुभैः ।
धान्यानां सर्वपत्रैश्च पुष्पैश्चैव प्रपूजयेत् ॥६७॥

विल्वपत्रैः पूजनेन राजसूयफलम्, करवीरस्रजा अग्निष्टोमफलम्, बकुलस्रजा वाजपेयफलं, द्रोणस्रजा राजसूयफलम् ।

योगिनीतन्त्रे—

तुलसीश्वेतमन्दारैः कह्लारैश्च तमालकैः ।
नार्चयेत्तु महालक्ष्मीं कुशकाशोद्भवेन च ॥६८॥

देवीमधिकृत्य तत्रैव—

नार्चयेज्झिण्टिपुष्पेण पीतेन तगरेण च ।
श्वेतोद्भवेण च कृष्णेन वर्जयेत्पूजने तथा ॥६९॥

त्रिपुरामधिकृत्य—

वाराहीये—

पलाशकाशपुष्पैस्तु नार्चयेद्दूरतस्त्यजेत् ।
धात्रीतमालजैः पत्रैः तुलसीद्वितयैस्तथा ॥७०॥
पूजनात्पातकी च स्यान्मृत्युश्चापि श्रियं हरेत् ।
त्रिपुरापूजने वर्ज्या तुलसी सर्वदा बुधैः ॥७१॥
तुलसीगन्धमात्रेण क्रुद्धा भवति सुन्दरी ।

कुलावलीये—

यत्रापराजितापुष्पं जपापुष्पं च विद्यते ।
करवीरे शुक्लरक्ते द्रोणं वा यदि तिष्ठति ॥७२॥
तत्र देवी वसेन्नित्यं.................. इति ।

ज्ञानमालायाम्—

फलेऽप्यामलकं श्रेष्ठं बादरं तिन्तिडीफलम् ।
दाडिमं मातुलुङ्गं च जम्बीरं पनसोद्भवम् ॥७३॥

---

२ ख. मदनैः ।

कदलीचूतसम्भूत श्रेष्ठं जम्बूफलं तथा ।
यजेदेतैः सदा विष्णु पत्रैः पुष्पैः फलैरपि ॥७४॥

विष्णुमित्युपलक्षणम् ।

दिवसे दिवसोत्फुल्लैः पुष्पैः पूजा तथा निशि ।
पुष्पाभावे प्रवालैर्वा कारयेच्च न कोरकैः ॥७५॥

पत्र वा यदि वा पुष्पं फल नेष्टमधोमुखम् ।
दुःखद तत्समाख्यात यथोत्पन्न तथार्पणम् ॥७६॥

चित्रपूजासु सर्वासु न विरुद्धस्य दूषणम् ।
अधोमुखार्पणं नेष्ट पुष्पाञ्जलिविधौ न सः ॥७७॥

लक्षपूजासु सर्वासु पुष्पमेकैकमर्पयेत् ।
समुदाये न चेत्पूजा लक्षपुष्पार्पण न तत् ॥७८॥

भविष्यत्पुराणे—

मुकुलैर्नार्चयेद्देवमपक्व न निवेदयेत् ।
फल च कृमिवद्ध च प्रयत्नात्तद्विवर्जयेत् ॥७९॥

अलाभे तु सुपुष्पाणां पत्राण्यपि निवेदयेत् ।
पत्राणामप्यलाभे तु फलान्यपि निवेदयेत् ॥८०॥

फलानामप्यलाभे तु तृणगुल्मौषधीरपि ।
औषधीनामलाभे तु भक्त्या भवति पूजितः ॥८१॥

प्रत्येकमुक्तपुष्पेण दशसौवर्णिकं फलम् ।
स्रग्भिश्च नृपशार्दूल तदेव द्विगुणं भवेत् ॥८२॥

अथ निषिद्धानि—

ज्ञानमालायाम्—

नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम् ।
न दूर्वया यजेद् दुर्गां बिल्वपत्रैर्दिवाकरम् ॥८३॥

उन्मत्तमर्कपुष्प च विष्णौ वर्ज्यं सदा बुधैः ।
देवीनामर्कमन्दारावादित्ये तगर तथा ॥८४॥

शिवे कुन्द मदन्ती च यूथीं वन्धूककेतके ।
जपां रक्ता त्रिसन्ध्ये द्वे सिन्दूर कुटजानि च ॥८५॥

मालती घुसृण रक्तहयारिं बर्बरी त्यजेत् ।
उग्रगन्धमगन्ध च कृमिकेशादिदूषितम् ॥८६॥

अशुद्धपात्रपाण्यङ्गवासोभि कुत्सितात्मभिः ।
आनीत नार्पयेच्छम्भोः प्रमादादपि दोषकृत् ॥८७॥

कलिकाभिस्तथा नेज्य विना चम्पकपङ्कजे ।
शुष्कैर्न पूजयेच्छम्भु पत्रैः पुष्पैः फलैरपि ॥८८॥
वर्जयेद्बृहतीपुष्प काञ्चनार कुरण्टकम् ।

लिङ्गपुराणे—
केतकी शखतोय च रक्तपुष्प जपादिकम् ।
वर्जयेच्छिवपूजाया तेन पाप महद्भवेत् ॥८९॥

विष्णौ तु विष्णु । नोग्रगन्धानि, न कण्टकितम्, कण्टकितमपि शुक्ल-सुगन्ध्यपि दद्यात् । न रक्त दद्यात् । रक्तमपि कुङ्कुमज जलज च दद्यात् । अजलजमपि पाटलानि सन्ध्याकरवीरपरिभद्रशमीपत्रपलाशाशोककुशवर्जं न दद्यात् ।

विष्णुधर्मोत्तरे—कुटजशाल्मलीपुष्पशैरीषक्रकचधत्तूरकृष्णपुष्पार्कं च विष्णौ निषिद्धम् ।

ज्ञानमालायाम्—
सर्वपुष्पै. सदा पूजा विहिताविहितैरपि ।
कर्त्तव्या सर्वदेवाना भक्तिरेवात्र कारणम् ॥९०॥

धर्मार्जितधनक्रीतैर्य. कुर्यात्केशवार्चनम् ।
उद्धरिष्यत्यसन्देहात्सप्त पूर्वांस्तथा परान् ॥९१॥

इति विप्रातिरिक्तपरम् ।

समित्पुष्पकुशादीनि ब्राह्मण स्वयमाहरेत् ।
शूद्रानीतै. क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन् पतत्यधः ॥९२॥

इति भविष्ये ब्राह्मणग्रहणात् । लक्षपुष्पार्चनादौ तु क्रयक्रीतमिति **मन्त्रकोशकारः** ।

सारसङ्ग्रहे—
परारोपितवृक्षेभ्य. पुष्पाण्यानीय चार्चयेत् ।
अविज्ञाय च तैर्यस्तु निष्फल तस्य पूजनम् ॥९३॥

परोपवनादपि ग्रहणे तत्स्वामिन्यज्ञातेऽपि न चौर्यदोषः ।

'देवतार्थे च कुसुममस्तेय मनुरब्रवीत्'

इति वचनात् पूजार्थं पुष्पादि न याचेत ।

याचितैः पत्रपुष्पाद्यैर्यः करोति ममार्चनम् ।

इति वाराहे तस्यापराधिषु गणितत्वात् ।

भूगतैर्नार्चयेत्पुष्पैः शेफाली वकुल वि

ज्ञानमालायाम्—

स्नात्वानीतैः पर्युषितैर्याचितैः कृष्णवर्णकैः ।
स्वय विकासितैः पुष्पैः स्वय च पतितैर्भुवि ॥९४॥

पूजन कार्यमित्यर्थः । अत्र स्नात्वानीतैर्मध्याह्नस्नानोत्तरमानीतैरित्यर्थः।

प्रातरुत्थानादि प्रथमप्रहरकृत्यमुक्त्वा—

ततः पुष्पफलादीनामुत्थायार्जनमाचरेत् ।

इति द्वितीयप्रहरकृत्यत्वेन नारदपञ्चरात्रे पुष्पाहरणस्योक्तत्वात् ।

योगिनीतन्त्रे—

मलिन भूमिसस्पृष्ट कृमिकेशादिदूषितम् ।
पर्युषितानि पुष्पाणि वर्जयेद्देवतार्चने ॥९५॥

विष्णुक्रान्ता जपा नागकेसरं नागवल्लभम् ।
वन्धूकं चैव मन्दारं सवृन्तेन समर्चयेत् ॥९६॥

न स्पृशेद्वृन्तवर्जं च भूगत च न सस्पृशेत् ।
शेफालि वकुल भद्रे भूगते न समर्चयेत् ॥९७॥
मालूर भूगतं देय तस्य काष्ठस्य चन्दनम् ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

देवोपरि धृत यच्च वामहस्ते धृतं च यत् ।
अधोवस्त्रधृत यच्च जलेऽन्तःक्षालित च यत् ॥९८॥
देवतास्तन्न गृह्णन्ति पुष्पं निर्माल्यतां गतम् ।

निबन्धे—

ताम्रपात्रे तथा भूमौ पुष्प नैव तु रक्षयेत् ।
स्थापयेद्यदि मोहेन देवता न प्रसीदति ॥९९॥

ज्ञानार्णवे—

पुष्पैः पर्युषितैर्देवि नार्चयेत्स्वर्णजैरपि ।
निर्माल्यभूतैः कुसुमैरुच्छिष्टैः परमेश्वरि ॥१००॥

इति । उच्छिष्टैः पूजावशिष्टैः ।

भविष्यत्पुराणे—

प्रहरं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् ।
तुलस्यां विल्वपत्रेषु जलजेषु च सर्वशः ॥१०१॥
न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेषु च ।

निबन्धे—

न पर्युषितदोषोऽस्ति जलजोत्पलचम्पके ।
तुलस्यगस्तिवकुले विल्वे गङ्गाजले तथा ॥१०२॥

पदार्थादर्शे—

सद्य. पर्युपिता वापि निर्माल्या नैव दुष्यति ।
तथान्यैर्न हरेस्तुष्टिस्तुलस्या तुष्यते यथा ॥१०२॥

[1]स्मृतिरत्नावल्याम्—

जलजाना तु सर्वेषा पत्राणां दमनस्य च ।
कुशपुष्पस्य रजतसुवर्णकृतयोरपि ॥१०४॥
न पर्युषितदोषोऽस्ति तीर्थतोयस्य चैव हि ।

वृहन्नारदीये—

वर्ज्यं पर्युषितं नैव विल्व तु त्रिदिनावधि ।
पद्म पञ्चदिनात्त्याज्य शेषं पर्युषितं विदुः ॥१०५॥

स्कन्दे[2]—

पलाश दिनमेक तु चम्पकं तु दिनत्रयम् ।
पञ्चाह विल्वपत्र च दशाह तुलसीदलम् ॥१०६॥

विल्वस्य खदिरस्यैव तथा धात्रीदलस्य च ।
तमालस्य च पद्मस्य छिन्नभिन्न न दुष्यति ॥१०७॥

तन्त्रान्तरे—

अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु चक्रे पुष्प निवेदयेत् ।

अतः परमावरणपूजा तत्र पुष्पोपचारान्ते—

---

१. ख. इत पूर्वमयमशो दृश्यते—

तत्वसागरसंहितायाम्—

यद्वा पर्य्युषितैश्चापि पुष्पाद्यैरविकारिभिः ।
गन्धोदकेन चैतानि त्रि. प्रोक्ष्यैव तु पूजयेत् ॥

२. ख. नास्ति ।

सारसङ्ग्रहे—

मन्त्रसम्पुटितैर्वर्णैर्मातृकायाः सविन्दुकैः ।
क्रमेण गन्धपुष्पाद्यैर्देवस्याङ्गे समर्चयेत् ।।१०८।।
लयाङ्गमर्चयेद्देहे देवस्य मनुवित्तमः ।

ज्ञानार्णवेऽपि—

लयाङ्गमर्चयेद्देहे ·········· ···इति ।

पञ्चवाहिन्यामपि लयाङ्गमर्चयेद्देहे न्यासस्थानेषु मन्त्रविदिति ।—

शारदातिलके—

अङ्गादि लोकपालान्त यजेदावारणान्यपि ।
केसरेष्वग्निकोणादि हृदयादीनि पूजयेत् ।।१०९।।

नेत्रमग्रे दिशास्वस्त्रं ध्यातव्याश्चाङ्गदेवता. ।
तुषारस्फाटिकश्यामली(नी)लकृष्णारुणार्चिष ।।११०।।
वरदाभयधारिण्य. प्रधानतनव स्त्रिय ।

अगादीति विशेषानभिधाने । लोकपालशब्देन तदस्त्राणामप्यादानम् । अत्राग्निकोणादीत्यादिपदस्य क्रमग्राहित्वादग्निराक्षसवायव्येशानकोणेष्वङ्गचतुष्टय यजेदिति वदन्ति । तन्न । अग्नीशासुरवायव्यमध्यदिक्ष्वङ्गपूजनमिति ज्ञानार्णव-दक्षिणामूर्त्तिसहितयोर्वचनात् ।

हृदय चाग्निदिग्भागे ईशान्या च शिरो यजेत् ।
शिखा निर्ऋतिदिग्भागे वायव्ये कवच तथा ।।१११।।
अस्त्रमन्त्र यथा दिक्षु नेत्रमग्रे प्रपूजयेत् ।

इति दक्षिणामूर्त्तिवचनात् ।

वह्नौ हृदयमीशान्या शिरो रात्रिञ्चरे शिखाम् ।
वायौ वर्म पुरो नेत्रमस्त्र दिक्षु चतुर्ष्वपि ।।११२।।

इति कपिलपञ्चरात्रवचनात् । चतुर्ष्वपीति दिग्यत्वात् चतसृष्वित्यर्थः ।

इष्ट्वा हृदयमाग्नेय्यामीशान्या च शिरो यजेत् ।
नैर्ऋत्या च शिखा पूज्या वायव्यां कवच यजेत् ।।११३।।
अभ्यर्च्य पुरतो नेत्रमस्त्र दिक्षु समर्चयेत् ।

इति सोमशम्भुवचनात् ।

पूर्वयाम्यान्तरे[1] विष्णोर्हृदयं विनिवेदयेत्[2] ।
शिरः पूर्वोत्तरे दद्याच्छिखां पश्चिमदक्षिणे ॥११४॥

पश्चिमोत्तरदिङ्मध्ये कवचं विन्यसेद्धरेः ।
अग्रतः केसरोद्देशे नेत्रं दिक्ष्वस्त्रराट् तथा ॥११५॥

इति नारदपञ्चरात्रवचनाच्चेति । अत्र पूर्वोक्तवचनैर्देवाग्रं प्राची परिकल्प्य तदनुसारेणाग्नेयादिकं कल्पयित्वाङ्गानि पूजयेत् । आवरणदेवताश्चैवमेव पूजयेत् ।

महाकपिलपञ्चरात्रे—

शिरःप्रभृतिमन्त्रेषु पूजायां तु नमोऽन्तता ।
शिरोभिन्नेषु मन्त्रेषु होमे स्वाहान्तता भवेत् ॥११६॥

आवरणदेवतास्तत्तत्कल्पे वक्ष्यन्ते ।

विजयमालिनीतन्त्रे—

स्वे स्वे स्थाने स्वाभिमुखान् पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः ।

अभिमुखान् देवस्य श्रीविद्यावरणपूजायां दक्षिणामूर्त्तिसंहितायां 'श्रीविद्या सम्मुखीः स्मरेत्' इत्युक्तेः । तथा—

सिद्धेश्वरीतन्त्रे—

अधृष्यश्च समर्थश्च मार्त्तण्डः स्वमरीचिभिः ।
तद्वदङ्गैर्निजैर्देवो ध्यातव्यः स्वमरीचिभिः ॥११७॥

तूर्णयागे—

देवीं ध्यात्वा तच्छरीरान्मयूखनिकरं बहिः ।
विनिःसृत्य स्थिरीभूतं परिवारं विचिन्तयेत् ॥११८॥

अभ्यर्च्यावरणं त्वाद्यं मूलमुच्चार्य मन्त्रवित् ।
सम्पूज्य देवीं सम्बोध्य वदेन्मन्त्रमिमं ततः ॥११९॥

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यम्प्रथमावरणार्चनम् ॥१२०॥

---

१. ख पूर्वयाम्यन्तरे । २ ख विनिवेशयेत् ।

इति पुष्पाञ्जलि दत्वा प्रणमेदतिभक्तितः ।
प्रत्यावरणमेवन्तु तत्तन्नाम्ना समर्पयेत् ॥१२१॥

इत्थमावरण सम्यगभ्यर्च्य मनुवित्तमः ।
अन्ते यजेल्लोकपालास्तेषामस्त्राणि च क्रमात् ॥१२२॥

इन्द्र सुराधिपम्पीतं वज्रहस्त सवाहनम् ।
अग्नि तेजोऽधिप रक्त शक्तिहस्त सुभूषणम् ॥१२३॥

यम प्रेताधिप कृष्ण दण्डहस्त समर्चयेत् ।
रक्षोधिप च निर्ऋति खड्गहस्त सुधूम्रकम् ॥१२४॥

पाशहस्त सुशुभ्राङ्ग वरुण यादसाम्पतिम् ।
वायुम्प्राणाधिप धूम्रमङ्कुशाढ्यकर यजेत् ॥१२५॥

[1]यक्षःपति कुबेर च शुक्लवर्णं गदाकरम् ।
विद्याधिप तथेशान स्वच्छ शूलकर यजेत् ॥१२६॥

नागाधिप तथानन्तं गौर चक्रकर यजेत् ।
लोकाधिप विधातार रक्त पद्मकरं यजेत् ॥१२७॥

ऐरावत तथा मेष महिष मृतपूरुषम् ।
मकर मृगमत्स्यौ च वृष च विपहसकौ[3] ॥१२८॥

इन्द्रादिलोकपालानां वाहनानि विदुर्बुधा ।
वज्रं पीत सिता शक्ति[2] दण्ड कृष्णं समर्चयेत् ॥१२९॥

खड्गमाकाशसङ्काशं पाश विद्युन्निभ यजेत् ।
अङ्कुश रक्तवर्णं च शुक्लवर्णां गदा यजेत् ॥१३०॥

त्रिशूल नीलवर्णं च यजेन्मन्त्री तत परम् ।
रथाङ्गं करवन्दाभ पद्मं रक्त समर्चयेत् ॥१३१॥
लोकपालायुधान्येव क्रमेण परिपूजयेत् ।

अत्र केचित्—

अन्ते यजेल्लोकपालान्मूलपारिषदान्वितान् ।
हेतिजात्यविपोपेतान् दिक्षु पूर्वादित. क्रमात् ॥१३२॥

---

१ ख वक्षःपति । २. ख: सिक्ति । ३. अत्र 'विप' स्थाने 'विष' अथवा 'द्विप' शब्दोऽपि संभाव्य ।

इतिशारदातिलकवचनात् । यथास्थितपूर्वादिदिक्ष्विन्द्रादिपूजनमिति वदन्ति । तन्न । चतुरायतनदेवतास्थापनप्रकरणोक्तः[1] सर्वेषामावरणाना देवताग्रत आरम्भाल्लोकपालावरणस्याप्यावरणत्वाच्च । कल्पितप्राच्यनुसारेणैव पूजन युक्तमिति प्रतिभाति विचारत इति ।

पुनर्मूल समुच्चार्य साङ्गायै सपरीति च ।
वारायै नाम देव्याश्च चतुर्थ्यन्तमुदीर्य च ॥१३३॥

*नम इत्यर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैः साधकस्त्रिधा ।
ततो यजेद्धूपदीपनैवेद्यैः सुमनोहरैः ॥१३४॥

प्रपञ्चसारे—

सगुग्गुल्वगुरुशीरसिताज्यमधुचन्दनैः ।*
सारांगारविनिक्षिप्तैर्मन्त्री नीचैः प्रधूपयेत् ॥१३५॥

कुलमूलावतारे—

शैलेय मलयोद्भव जतुनख सर्ज च कुष्ठ सम,
[2]सल्पास्यागुरुयुक् जटा द्विगुणिता प्रत्येकसंचूर्णितम् ।
षड्भागा वरमाक्षिकस्य सुसिता चाथाष्टभागान्विता,
धूपोऽय भुवि शङ्करेण कथित श्रीसुन्दरीवल्लभ ॥१३६॥

[मुस्ता तथेन्दुर्भूतेश शर्कराया ददेत्त्रयम् ।
इत्येषोऽनन्तधूपश्च कथितो देवसत्तम ॥१३७॥

तथा—

कृष्णागुरुं सिल्लकं च वालकं वृषणं तथा ।
चन्दन तगर मुस्ता प्रबोधः शर्करान्वित ॥१३८॥

तथा—

कर्पूर चन्दन कुष्ठमुशीर सिह्लक तथा ।
ग्रन्थिक वृषण भीमा कुङ्कुम गृञ्जनं तथा ॥
हरीतकी यथोशीर यक्षधूप उदाहृतः ।

१. ख० प्रकरणोक्तयुक्ते । *—* चिह्नान्तःस्थोंऽशो नास्ति ख पुस्तके । २.ख.सिल्पास्या० ।

तथा—

वृषणं सिह्लक बिल्व श्रीखण्डमगुरुं तथा ।
कर्पूर च तथा मुस्ता शर्करा सत्वचा द्विज ॥१४०॥
इत्येष विजयो धूप. स्वय देवेन निर्मितः ।

वृषण कस्तूरिकेति **समयप्रदीपः** ।

तिथितत्वे कालिकापुराणे—

मधु मुस्ता घृत गन्धो गुग्गुल्वगुरुशैलजम् ।
सरल सिद्धसिद्धार्थौ दशाङ्गो धूप इष्यते ॥१४१॥

मदनरत्ने—

षड्भागकुष्ठ द्विगुणो गुडश्च,
लाक्षात्रय पञ्च नखस्य भागाः ।
हरीतकी सर्जरसश्च मासी,
भागैकमेक त्वथ शैलजस्य ॥१४२॥
घनस्य चत्वारि पुरस्य चैक,
धूपो दशाङ्गः कथितो मुनीन्द्रै. ।

भविष्ये—

अगुरु चन्दनं मुस्ता सिह्लकं वृषणन्तथा ।
समभागं तु कर्त्तव्यं धूपोऽयममृताह्वयः ॥१४३॥

तथा—

[श्रीखण्डं ग्रन्थिसहितमगुरु सिह्लक तथा ।]

शैवागमे—

धूपभाजनमस्त्रेण प्रोक्ष्याभ्यर्च्य हृदाणुना ।
अस्त्रेण पूजितां घण्टां वादयन् गुग्गुलुं दहेत् ॥१४४॥

अन्यत्रापि—

ततः समर्पयेद्धूप घण्टावाद्यजयस्वनैः ।

नारदपञ्चरात्रे—

आवाहनेऽर्घे धूपे च पुष्पनैवेद्ययोजने ।
नित्यमेव प्रयुञ्जीत तन्मन्त्रामन्त्रितामपि ॥१४५॥

[—] कोष्ठवर्द्धोऽश. क. पुस्तके नास्ति ।

चकाराद् दीपेऽपि ।[1]

तथा—

पूजाकाल विनाऽन्यत्र हितं नास्याः प्रचालनम् ।
नानया च विना पूजा कारयेत्सिद्धिलालसः ॥१४६॥

दद्यात्तारावसाने च जगद्ध्वनिपद ततः ।
मन्त्रमताः पदं चैव स्वाहाक्षरसमन्वितम् ॥१४७॥
एकादशाक्षरो मन्त्रो घण्टाया. सर्वसिद्धिदः ।

उद्धार. सुगमः ।

ज्ञानमालयाम्—

सर्वनादप्रिया देवा नैक. कर्त्तुं च तान् क्षमः ।
सर्वनादमयी घण्टा रवात्मा सर्वनादकृत् ॥१४८॥

[2]पदार्थादर्शे—

धूपस्थानं समभ्यर्च्य तर्ज्जन्या वामया स्पृशन् ।
सङ्कल्प्यैव तत. पुष्पाञ्जलिं दत्वा प्रसम्पठेत् ॥१४९॥

बह्वृचपरिशिष्टे—

धूपस्तु व्यजनेनैव धूपेनाङ्गविधूपनम् ।

कालिकापुराणे—

वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे ।
न धूप वितरेद्भूमौ नासने न घटे तथा ॥१५०॥

यथा तथाधारगत कृत्वा त विनिवेदयेत् ।
मेदोमज्जासमायुक्तान्न धूपान्विनिवेदयेत् ॥१५१॥
न यक्षधूप वितरेन्माधवाय कदाचन ।

यक्षधूपस्तु राल इति लोके प्रसिद्धः । विष्णुः-धूपार्थे न जीवजातमिति ।

---

१. इत. परं ख. पुस्तके विशेष:—
विष्णुधर्मे—यस्तु वादयते घण्टा वैनतेयेन चिह्निताम् ।
धूपे नीराजने स्नाने पूजाकाले विलेपने ॥

२. इतः पूर्वमंशोऽयं विशेष ख. पुस्तके—
सर्ववाद्यमयी घण्टा देवदेवस्य वल्लभा ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन घण्टानाद तु कारयेत् ॥
शब्दब्रह्ममयी घण्टा हस्तोत्सेधप्रमाणिका ।

तन्त्रान्तरे—

मध्यमानामिकाभ्यान्तु मध्यपर्वणि देशिकः ।
अङ्गुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा धूप निवेदयेत् ॥१५२॥

प्रपञ्चसारे—

गोसर्पिषा वा तैलेन वर्त्या च लघुगर्भया ।
दीपित सुरभि शुभ्र दीपमुच्चैः प्रदर्शयेत् ॥१५३॥

वा शब्देनोभयोरमिश्रणमुक्तम् ।

न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपे स्नेहान् घृतादिकान् ।
कृत्वा मिश्रीकृत स्नेहं तामिस्र नरकं व्रजेत् ॥१५४॥

इति कालिकापुराणवचनात् ।

प्रयोगसारे—

तैलेन कपिलाज्येन सिक्थकेनापरेण च ।
स्नेहेन वर्त्तिसयुक्त दीपमुच्चैः प्रदर्शयेत् ॥१५५॥

तूर्णयागे—

पारावतभ्रमाकार दीप नेत्रादि दर्शयेत् ।
दक्षिणे सर्पिषा दीप तिलतैलेन वामतः ॥१५६॥
सिता वर्त्तिर्दक्षिणतो रक्ता वर्त्तिस्तु वामतः ।

कालिकापुराणे—

वृक्षेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन ।
कुर्वंस्तु पृथिवीताप यो दीपमुत्सृजेन्नरः ॥१५७॥
स ताम्रताप नरकमाप्नोत्येव शत समाः ।

रुद्रयामले—

नैव निर्वापयेद्दीप साधकस्तु कदाचन ।
यस्तु निर्वापयेद्दीपं तस्य लक्ष्मीर्विनश्यति ॥१५८॥

कूष्माण्डच्छेदिका नारी दीपनिर्वापकः पुमान् ।
विधवा च दरिद्रश्च भवेत् सप्तसु जन्मसु ॥१५९॥

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

पाद्यमाचमनीयं च दत्वा नैवेद्यमर्पयेत् ।

नैवेद्यदानपात्राणि तु—

यामले—

तैजसेषु तु पात्रेषु सौवर्णे राजते तथा ।
ताम्रे वा प्रस्तरे वापि पद्मपत्रेऽथवा पुनः ॥१६०॥

यज्ञदारुमये वापि नैवेद्य कल्पयेद्बुधः ।
सर्वाभावे च माहेय स्वहस्तघटितं यदि ॥१६१॥[1]

सनत्कुमारकल्पे—

इत्थ कृष्णं समभ्यर्च्य पञ्चावरणसयुतम् ।
कदलीदलसयुक्त पायस विनिवेदयेत् ॥१६२॥

सारसङ्ग्रहे—

सघृत पायस शुद्ध सुपक्व श्रद्धया सह ।
शर्करादधिसयुक्त सोपदंश समोचकम् ॥१६३॥
सुसस्कृत्य विधानेन नैवेद्य तु समर्पयेत् ।

ज्ञानार्णवे—

शुद्धस्फटिकश(स)काश चन्द्ररश्मिसमप्रभम् ।
लसत्सुवर्णजे पात्रे चारु मृद्वोदन प्रिये ॥१६४॥

हिङ्गुजीरमरीचाद्यैराद्रकै रचितः शुभः ।
वटक कुङ्कुमाकारः पायस हेमसन्निभम् ॥१६५॥

दुग्धमावर्त्तित सम्यक् शर्करामारपूरितम् ।
कपिलाघृतसयुक्त भूर्जत्वक्शोभिमण्डका ॥१६६॥

शर्करा [1]फाणिताश्चैव सूप मुद्गोद्भव तथा ।
नानाविधानि पेयानि व्यंजनानि बहूनि च ॥१६७॥

सारसङ्ग्रहे—

निवाय स्वर्णजे पात्रे साधार तच्च मण्डले ।
सस्थाप्य चतुरश्रे च[2] सस्कुर्याच्छास्त्रमार्गतः ॥१६८॥

---

१. ख अत परमय विशेषः—पात्रप्रमाणन्तु—
देवीपुराणे—षट्त्रिंशदङ्गुलं पात्रमुत्तमं परिकीर्त्तितम् ।
मध्यमं तु त्रिभागोनं कनिष्ठ द्वादशाङ्गुलम् ॥
चत्वङ्गुलविहीन तु न पात्र कारयेत् क्वचित् ।

१. ख. फणिताश्चैव । २. ख. य ।

अस्त्रमन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य चक्रमुद्राभिरक्षितम् ।
वायुबीजेन संशोष्य वह्निबीजेन तं दहेत् ॥१६९॥
स्पृशन् दक्षकराग्रेण सुधाबीजेन मन्त्रवित् ।
अमृतीकृत्य तत्सर्वं मूलमन्त्रेण तत्पुनः ॥१७०॥
स्पृशन् कराभ्यां विधिवदष्टधा चाभिमन्त्रयेत् ।
धेनुमुद्रां प्रदर्श्याथ गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ॥१७१॥
देवमभ्यर्च्य कुर्यात्तु पुष्पाञ्जलिमनन्यधीः ।
हेमपात्रस्थित दिव्य परमान्न सुसंस्कृतम् ॥१७२॥
पञ्चधा षड्रसोपेत गृहाण मम सिद्धये ।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य स्वाहान्तं जलमर्पयेत् ॥१७३॥
कराभ्या तत्समुद्धृत्य पूजित च सुधात्मकम् ।
निवेदयामि भवते सानुगाय जुषाण तत् ॥१७४॥
सर्वपूजासु तन्नाम्ना नैवेद्यस्य मनुस्त्वयम् ।
प्राणसज्ञस्तथाऽपानो व्यानोदानमनू तत. ॥१७५॥
समानो ङेयुता. सर्वे प्रणवाद्या द्विठान्तकाः ।
पञ्चमन्त्रा भवन्तीह क्रमेण परिकीर्त्तिताः ॥१७६॥

प्राणादीना मुद्रास्तु वक्ष्यन्ते । नैवेद्यसस्कारस्तन्निवेदनप्रकारश्चाग्रे प्रयोगे वक्ष्यते ।

स्मृतिसमुच्चये—

त्रिषु वर्णेषु दातव्य विष्णवे पाकभोजनम् ।
खण्डाज्यादिकृतं पाक न दूष्येच्छूद्रजन्मनः ॥१७७॥

श्राद्धकल्पे—

शूद्रैस्त्वामान्नेनैव दशाहिक पिण्ड देयमित्युक्तं, तेन देवतानैवेद्यमप्यामान्नेनैव देय तुल्यन्यायादिति ।

अथासनादिमुद्राः । तत्र

लक्षणसङ्ग्रहे—

आसने पद्ममुद्रा स्यद्धस्तद्वयमधोमुखम् ।
मुद्रैषा कुशलप्रश्ने तदेवोर्द्ध्वमुख पुनः ॥१७८॥
मुद्रा स्यात्स्वागते पाद्यमुद्रा चाञ्जलिरुच्यते ।
अनामाङ्गुष्ठयोगात्सा प्रोक्ता चार्घस्य मुद्रिका ॥१७९॥

उत्तान दक्षहस्त तु कृत्वा निम्नतल सुधीः ।
कनिष्ठहीनाः सयुक्ताश्चतस्रोऽगुल्य उन्नताः ॥१८०॥

मुद्रैषाऽऽचमने प्रोक्ताऽधोमुखी सा त्वनामया ।
स्पृष्टाङ्गुष्ठा भवेन्मुद्रा मधुपर्के वरानने ॥१८१॥

अधोमुखी दक्षहस्तकृता मुष्टिः कनिष्ठया ।
विमुक्ता स्नानमुद्रैषा गदिता परमेश्वरि ॥१८२॥

उत्तान दक्षिण हस्त कृत्वा तन्मध्यमां पुनः ।
अङ्गुष्ठेन स्पृशेदेषा मुद्रा वस्त्रस्य कीर्त्तिता ॥१८३॥

एषैवाऽनामिकास्पर्शान्मुद्रा भूषणसज्ञिका ।
कनिष्ठास्पर्शतो ह्येषा उपवीतस्य मुद्रिका ॥१८४॥

ज्येष्ठाग्रेण कनिष्ठाग्र स्पृशेद् गन्धस्य मुद्रिका ।
अधोमुख कर कृत्वा तर्जन्यग्रे तु योजयेत् ॥१८५॥

अङ्गुष्ठाग्र तु मुद्रेय पुष्पाख्या परमेश्वरि ।
अङ्गुष्ठाग्रेण तर्जन्या. स्पृशेदग्र महेश्वरि ॥१८६॥

धूपमुद्रेयमाख्याता सर्वदेवप्रिया शिवे ।
ज्येष्ठाग्रेण स्पृशेदग्र मध्यमाया. सुरार्चिते ॥१८७॥

दीपमुद्रेयमुदिता सर्वदेवप्रिया शिवे ।
अनामाग्र स्पृशेद्देवि ज्येष्ठाग्रेण तु देशिकः ॥१८८॥
नैवेद्यमुद्रा कथिता देवानां तृप्तिदायिनी ।

नारदपञ्चरात्रे—

ग्रासमुद्रा सव्यहस्ते प्रफुल्लकमलाकृतिम् ।
दर्शयेत्पञ्चवायूनामन्यहस्तेन दर्शयेत् ॥१८९॥

कनिष्ठानामिके सम्यगङ्गुष्ठाग्रेण योजयेत् ।
प्राणमुद्रा समाख्याता प्रथम दर्शयेदिमाम् ॥१९०॥

योजयेत्तर्जनीमध्यामपानस्याथ मुद्रिका ।
मध्यमानामिके तद्वद्व्यानमुद्रा प्रकीर्त्तिता ॥१९१॥

तर्जनीमध्यमानामास्तद्वन्मुद्रा तुरीयका ।
सर्वाभिरङ्गुलीभिश्च पञ्चमी मुद्रिका मता ॥१९२॥

स्वकीयैर्मनुभिर्युक्ता. पञ्चमुद्राः प्रकीर्त्तिता. ।
प्राणसञ्ज्ञस्तथाऽपानो व्यानोदानमनुस्तत. ॥१९३॥

समानसयुता. सर्वे प्रणवाद्या द्विठान्तिका. ।
पञ्चमुद्रा भवन्तीह क्रमशैव समीरिताः ॥१९४॥

ज्ञानार्णवे—

सकल्प्य परमेशान्यै नित्यहोमविधि चरेत् ।

सकल्प्य नैवेद्यम् ।

सारसङ्ग्रहे—

इत्थ तु सस्कृते वह्नौ देवमावाह्य मन्त्रवित् ।
सम्पूज्य मूलमनुना पञ्चविंशतिमाहुती ॥१९५॥

हुनेदाज्येन हविषा तिलैर्वा पायसै. शुभै. ।
तण्डुलैस्तिलमिश्रैर्वा केवलैर्वाथ पुष्पकै. ॥१९६॥

[1]अङ्गावरणदेवानामेकैकामाहुतिं हुनेत् ।
उद्वास्य देव वह्नि च पूजास्थान यजेत्तत. ॥१९७॥

उपविश्यासने मन्त्री दद्याद् भूतबलिं तत' ।
ईशाने मण्डल कृत्वा साधार तत्र निक्षिपेत् ॥१९८॥

अन्नव्यञ्जनतोयाढ्यपात्र पुष्पादिपूजितम् ।
ध्यात्वा भूतानि सम्पूज्य ततस्तेभ्यो बलिं हरेत् ॥१९९॥

भूताना ध्यान प्रागेव पीठपूजाप्रकरणे प्रोक्तम् । बलिमन्त्रो बल्युत्सर्गप्रकारश्च प्रयोगे वक्ष्यते । 'उद्वास्य पूजाचक्रे देव स्वात्मनि वह्नि चे'ति अग्निसस्कारो दीक्षाप्रकरणे वक्ष्यते । ततोऽपि सक्षेपप्रकार' प्रयोगे वक्ष्यते—

वसिष्ठ —

अग्न्याधानादिक कर्म नित्यहोमे न विद्यते ।

नारदीये—

पुनराचमन दद्यात् करोद्वर्त्तनमेव च ॥२००॥

पुनराचमन, उत्तरापोगन, चकाराद् गण्डूदन्तशोधनादीन्युक्तानि—

---

१. ख. इत. पूर्वमय पाठो विशेष:—
तन्त्रराजे—सर्वत्र नित्यहोमन्तु कुर्यादन्नाज्यतोऽपि वा ।
तिलतण्डुलैर्वापि प्रोक्तद्रव्यानुदीरणे ॥

प्रपञ्चसारे—

पुनर्निवेद्यमुद्धृत्य पुरोवत् परिपूज्य च ।
सुमुखवासादिकं दत्वा…………॥२०१॥ इति ।

नारायणीये—

सकर्पूरं च ताम्बूल दद्यान्नीराजनं तथा ।
समर्प्य मुकुटादीनि भूषणानि विचक्षणः ॥२०२॥
आदर्शयेत्तथाऽऽदर्श कल्पयेच्छत्रचामरे ।

अगस्त्यः—

कर्पूरशकलोन्मिश्र नागवल्लीदलैर्युत ।
सुधाविन्दुसमायुक्त पूगीफल मनोहरम् ॥२०३॥
ताम्बूल रघुनाथाय दत्वा कामानवाप्नुयात् ।

सुधाविन्दुश्चूर्णम् । नीराजनमाह—

सोमशम्भुः—

शिवस्यारोप्य देवस्य दूर्वाक्षतपवित्रकम् ।

इति । अत्र नीराजनशब्देनारात्रिकमप्युच्यते । तत्र

ज्ञानार्णवे—

आरात्रिक ततः कुर्यात्सर्वकामार्थसिद्धये ।
सौवर्णे राजते कांस्ये लोकनेत्रमनोरमम् ॥२०४॥

कुङ्कुमेन लिखेत्पद्मं वसुपत्र वरानने ।
दीपमेक कर्णिकाया वसुपत्रेऽष्टदीपकान् ॥२०५॥

यवगोधूमरचिताञ्छर्करादुग्धसयुतान् ।
वलयाञ्चितशोभाभि, शोभितान् घृतपूरितान् ॥२०६॥

अभिमन्त्र्य ततो मन्त्री रत्नेश्वर्या ततः परम् ।
मूलमन्त्रेण चाभ्यर्च्य ततश्चारात्रिक चरेत् ॥२०७॥

तत्पात्र तु समुद्धृत्य मस्तकान्त पुनः पुनः ।
नववार महादेव्यास्ततो नीराजन चरेत् ॥२०८॥

आरात्रिके महादेव्याश्चक्रमुद्रा प्रदर्शयेत् ।
श्रीवीज च परावीज सलिखेन्मन्त्रवित्तमः ॥२०९॥

गसौचमपनान् पश्चादिन्द्रस्थान् क्रमतो लिखेत् ।
वामकर्णसमायुक्तान् विन्दुनादविभूपितान् ॥२१०॥

बीजपञ्चकमेतद्धि पञ्चरत्नमुदीरितम् ।
पूर्वबीजे विलोमेन रत्नेशीय नवाक्षरी ॥२११॥

पराबीज भुवनेश्वरीबीजम्, गसौचमपना इति गकार-सकार-मकार-थकार-नकाराः । एते प्रत्येकं लकारोपरि स्थिताः । ऊकारबिन्दुनादयुक्ताः पञ्चरत्नबीजानि भवन्ति । तानि तु—

"ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं न्लूं" इति । पूर्वबीजे विलोमेन मायाश्रीक्रमेण ।

पदार्थादर्शे—

आरात्रिकं तु विषम बहुवर्त्तिसमन्वितम् ।[1]

कात्यायनीतन्त्रे—

इत्थमारात्रिकं कृत्वा प्रणम्य परदेवताम् ।
प्राणायामत्रय कृत्वा मूलमन्त्रेण साधकः ॥२१२॥

न्यास कृत्वा यथापूर्व ध्यात्वा देवी हृदम्बुजे ।
मूलमन्त्र यथाशक्ति जपेत्तद्गतमानसः ॥२१३॥

श्रीकुलार्णवे—

ग्रथित्वा मातृकावर्णैर्मूलमन्त्राक्षराणि च ।
क्रमोत्क्रमात्त्रिरावृत्या मन्त्रशुद्धिरितीरिता ॥२१४॥

शारदातिलके—

सहस्रकृत्वः सजप्य[2] मूलमन्त्रमनन्यधीः ।
तं जप सर्वसम्पत्त्यै देवतायै समर्पयेत् ॥२१५॥

नित्यहोमकालान्तरमाह—

दक्षिणामूर्त्तिः—

यथाशक्ति जपं कृत्वा नित्यहोमं समाचरेत् ।

---

१. स. अयमशो विशेष.—
मन्त्रमहोदधौ—ततो लवणमुत्तार्य कुर्यादारात्रिकं सुधीः ।
२. स. संजप्य ।

सेवागमे—

अष्टोत्तरसहस्रं तु तदर्द्धं त्रिशतं तु वा ।
अष्टोत्तरशतं वापि जपेन्नित्यमतन्द्रितः ॥२१६॥

जपो जपसमर्प्पणप्रकारश्च पुरश्चरणप्रकरणे वक्ष्यते ।

तथा—

इत्थं जपं समर्प्याथ घण्टावादनपूर्वकम् ।
स्तुवीत स्तुतिभिः सम्यक् साधको भक्तिसंयुतः ॥२१७॥

उत्तरतन्त्रे—

पौराणिकैर्वैदिकैश्च मूलमन्त्रेण चैव हि ।
प्रदक्षिणां प्रणामं च कुर्याद्धर्मार्थसाधकम् ॥२१८॥

[1]एकां चण्ड्यां रवौ सप्त तिस्रो दद्याद्विनायके ।
चतस्रः केशवे दद्यात् शिवे त्वर्द्धंप्रदक्षिणम् ॥२१९॥

पूर्वं प्रदक्षिणं प्रणामं च कुर्यादिति वाक्ये प्रणाम उक्तः स द्विविधः—अष्टाङ्गः पञ्चाङ्गश्च । तथा च—

सारसङ्ग्रहे—

सोऽष्टाङ्गश्चाथ पञ्चाङ्गः पूजाकर्मसु सम्मतः ।
हस्ताभ्यां चरणाभ्यां च जानुभ्यां वक्षसा तथा ॥२२०॥

मूर्द्ध्ना दृष्ट्या तथा वाचा चित्तेनाऽष्टाङ्ग ईरितः ।
हस्तजानुशिरोवाक्यधीभिः पञ्चाङ्ग ईरितः ॥२२१॥

उत्तरतन्त्रे—

ततः क्षमापयेन्मन्त्रैर्वक्ष्यमाणैर्महेश्वरीम् ।

क्षमापनमन्त्राः प्रयोगे वक्ष्यन्ते । अत्र पौराणिकैर्वैदिकैरिति त्रैवर्णिकपरं, मूलमन्त्रेणेति शूद्रपरं ज्ञेयं, शूद्राणां पौराणिकादिस्तवपाठेऽपि निषेधात् । यदुक्तम्—

कालिकापुराणे—

मोहाद्वा कामतः शूद्रः पुराणं संहितां स्मृतिम् ।
पठन्नरकमाप्नोति पितृभिः सह पापकृत् ॥२२२॥

इति । पञ्चरात्राणां तु श्रवणेऽपि नाधिकारः । यदुक्तम्—

---

१. ख. "तन्त्रान्तरे" इत्ययं विशेषः ।

नारदपञ्चरात्रे—

ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्पञ्चरात्रं विधीयते ।
शूद्रादीनां न तच्छ्रोत्रपदवीमधिरोहति ॥२२३॥

शैवागमे—

अर्घ्यपात्रं समुद्धृत्य मूलमुच्चार्य मन्त्रवित् ।
साधु वाऽसाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया ॥२२४॥

तत्सर्वं भगवञ्शम्भो गृहाणाराधनम्परम् ।
इत्यर्घोदकमुत्सृज्य किञ्चिद्देवस्य दक्षिणे ॥२२५॥
करे समर्प्पयेद्विद्वान् कृतमाराधनं शिवे ।

श्रीकुलार्णवे—

कृतार्चनादिकं सर्वं समन्त्रोदपुरःसरम् ॥
इतः पूर्वादिमनुना देवतायै समर्पयेत् ॥२२६॥

सारसंग्रहे—

वदेदितः परं पूर्वं प्राणबुद्धि ततो वदेत् ।
देहधर्माधिकारं चातो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिति ॥२२७॥

वदेत् प्यवस्थासु मनसा वाचा पदमुच्चरेत् ।
कर्मणा चैव हस्ताभ्यां पद्भ्यामुक्त्वोदरेण च ॥२२८॥

वदेच्छिश्ना च यच्छब्दं स्मृतं यत्पदमुच्चरेत् ।
उक्तं च यत्कृतं तच्च सर्वं ब्रह्मार्पणम्भवतु ॥२२९॥
स्वाहान्तश्चैव सम्प्रोक्तो ब्रह्मार्पणमनूत्तमः

मन्त्रः प्रयोगे स्पष्टयितव्यः ।

सनत्कुमारः—

उद्वासयेत्ततो देवं परिवारगणैः सह ॥२३०॥

प्रपञ्चसारे—

स्तुत्वेन्दुखण्डपरिमण्डितमौलिमेव-
मुद्वासयेत्पुनरमुं हृदयाम्बुजे स्वे ॥

शिवरहस्ये—

रश्मिरूपा महेशस्य पूजिता याश्च देवता ।
श्रीशिवाङ्के विलीनास्ताः सन्तु सर्वशुभावहा ॥२३१॥

इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा प्रणम्य परिभावयेत् ।
देवस्याङ्गे विलीनं तद्रश्मिवृन्दमशेषत. ॥२३२॥
तेजोरूप शिव ध्यात्वा क्षमस्वेति पुनः पुनः ।
क्षमाप्याऽरोपयेत्स्वीयहृदम्भोजे महेश्वरि ॥२३३॥
गच्छ गच्छ पर स्थान स्वस्थानम्परमेश्वर ।
यत्र व्रह्मादयो देवा न विदुः परमम्पदम् ॥२३४॥
विसृज्याऽनेन मन्त्रेण ततः पूरकवायुना ।
ध्यायस्तु मन्त्रेणानेन नत्वा त स्थापयेद्धृदि ॥२३५॥
तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वर ।
यत्र व्रह्मादय. सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥२३६॥

विसृजेत्सहारमुद्रया ।

सहारमुद्रां वद्ध्वाऽथ तेजोरूपां महेश्वरीम् ।
विभाव्य पुष्पेनोद्वृत्य वहछ्वासाध्वना शिवे ॥२३७॥
प्रवेश्य द्वादशान्तस्थसहस्रारसरोरुहे ।
विश्राम्य मध्यनाड्या तामानीय हृदयाम्वुजे ॥२३८॥
सस्थाप्य सम्यक् सम्पूज्य स्वात्मान तन्मय स्मरेत् ।

इतिहसपारमेश्वरवचनात् ।

कूलमूलावतारे—

ऐशान्या मण्डल कुर्याद् द्वारपद्मविवर्जितम् ।
विसर्जनार्थं निर्माल्यधारिण्याः पूजनाय वै ॥२३९॥
निक्षिप्य तस्मिन्निर्माल्य मन्त्रेण तु समर्चयेत् ।
चण्डेश्वरी महादेवि निर्माल्यैश्चन्दनादिभिः ॥२४०॥
लेह्यचोष्यान्नपानादिनिर्माल्यस्रग्विलेपनम् ।
निर्माल्यभोजिन्यै तुभ्य ददामि श्रीशिवाज्ञया ॥२४१॥
इति नैवेद्यशेष तु दत्वा नत्वा विसर्जयेत् ।

गणेश्वरपरामर्शिन्याम्—

लम्वोदराय निर्माल्यमैशान्यां मण्डले न्यसेत् ।

सम्मोहनपञ्चरात्रे—

विष्वक्सेनाय निर्माल्यं नैवेद्यं च निवेदयेत् ॥२४२॥

शैवागमे—

पूर्वोत्तरदिशि प्राज्ञश्चण्डेशं मण्डलेऽर्चयेत् ।
देवदेवस्य निर्माल्यैर्द्धचायस्तं चन्द्रशेखरम् ॥२४३॥

वामदेवतन्त्रे—

तेजश्चण्डोऽस्य निर्माल्यभोक्ता देवेशि तत्ततः ।
तस्मै समर्पयेन्नित्य नाजिघ्रेन्नाक्रमेच्च तत् ॥२४४॥

उत्तरतन्त्रे—

ततो भास्करवीजेन सहितेनामुना पुनः ।
मन्त्रेण भास्करायार्घमच्छिद्रार्थं निवेदयेत् ॥२४५॥

ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे ।
जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥२४६॥

ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा पठित्वा मन्त्रमीरितम् ।
एकाग्रमनसा वाग्भिराच्छिद्रमवधारयेत् ॥२४७॥

ॐ यज्ञच्छिद्र तपश्छिद्र यच्छिद्र पूजने मम ।
सर्वं तदच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादतः ॥२४८॥

भास्करवीज त्र्यक्षरमन्त्रः, स मन्त्रस्तत्प्रकरणे वक्ष्यते ।

विजयमालिनीतन्त्रे—

अर्घतोयेन देवेशि गन्धं पूजावशेषितम् ।
आलोड्य किञ्चिन्मूलेन मन्त्रयेदष्टधा शिवे ॥२४९॥

प्रोक्षयेत्तेन तोयेन स्वात्मानं मूलमन्त्रत. ।
निर्माल्यं मस्तके धार्यं मूलमन्त्रेण मन्त्रिणा ॥२५० ।

प्राश्य पादोदकं देवि नैवेद्य विभजेत्प्रिये ।
तद्भक्तेभ्यः स्वयं भुक्त्वा तन्मयो विहरेत्सुखम् ॥२५१॥

ननु शिवादिप्रसादस्वीकारे निषेधः श्रूयते[1]—

पवित्र विष्णुनैवेद्यं सुरसिद्धर्षिभिः स्मृतम् ।
अन्यदेवस्य नैवेद्य भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२५२॥

---

१. ख. 'बह्वृचपरिशिष्टे' इत्यंशो विशेषः ।

अग्राह्यं शिवनिर्माल्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
सालग्रामशिलास्पर्शात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥२५३॥

इति । अस्य निर्माल्यस्याऽशुचिपरत्वाच्छुचिना ग्राह्य एव । तथा च—
स्कन्दपुराणे—

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत् ।
तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते ॥२५४॥

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् ।
त्रिः पिबेत्त्रिविधम्पापं तस्येहापि प्रणश्यति ॥२५५॥

लिङ्गस्नपनवार्भिर्यः कुर्यान्मूर्ध्न्यभिषेचनम् ।
गङ्गास्नानफलं तस्य जायतेऽत्र विपाप्मनः ॥२५६॥ इति ।

तथा—

निर्माल्यं हि तु यो भक्त्या शिरसा धारयिष्यति ।
अशुचिर्भिन्नमर्यादो नरः पापसमन्वितः ॥२५७॥

नरके पतते घोरे तिर्यग्योनौ प्रजायते ।

इति च । किञ्च, अभेदज्ञानवतां न कोऽपि दोषः । तथा च—
वराहपुराणे—

विष्णुरुद्रान्तरं ब्रूयाच्छ्रीगौर्योरन्तरं तथा ।
नास्तिकानां हि मूर्खाणां वाक्यं शास्त्रविगर्हितम् ॥२५८॥

भविष्यत्पुराणे—

यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा ह्युमा ।
उमा यथा तथा गङ्गा चतूरूपं न भिद्यते ॥२५९॥

विष्णुरुद्रान्तरं यच्च श्रीगौर्योरन्तरं तथा ।
गङ्गागौर्योरन्तरं च यो ब्रूते मूढधीस्तु सः ॥२६०॥
रौरवादिषु घोरेषु नरकेषु पतत्यधः ।

भविष्योत्तरे—

यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः ।
महेश्वरः स्मृतः सूर्यः सूर्यः पावक उच्यते ॥२६१॥
पावकः कार्त्तिकेयोऽसौ कार्त्तिकेयो विनायकः ।
गौरी लक्ष्मीश्च सावित्री शक्तिभेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥२६२॥

देवं देवीं समुद्दिश्य यः करोति व्रतं नरः ।
न भेदस्तत्र मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत् ॥२६३॥

पद्मपुराणे—

सौराश्च शैवा गाणेशा वैष्णवा. शक्तिपूजकाः ।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षापः सागरं यथा ॥२६४॥

एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडया नामभिः किल ।
देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः ॥२६५॥

इति विष्णुवचनम्—

गीतासु—

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।

कालिकापुराणे—

फलं पुष्पं च ताम्बूलमन्नपानादिकं च यत् ।
अदत्वा तन्महादेव्यै न भोक्तव्यं कदाचन ॥२६६॥

पथि वा पर्वताग्रे वा सभायामपि साधकः ।
तथा तस्यै निवेद्यैव स्वमर्थमुपकल्पयेत् ॥२६७॥

नारदपञ्चरात्रे—

यत्किञ्चित्त्वनयमश्नीयात् पुरो विप्रानिवेदितम् ।
विष्णोर्वाक्कायमनसा मूलं साष्टशतं जपेत् ॥२६८॥

इत्यनिवेदितभक्षणे प्रायश्चित्तमपि । तस्मादिष्टदेवतायै निवेद्यैव भक्षणीय-मित्यलम् ।[1]

तन्त्रान्तरे—

विक्षेपादथवाऽलस्याज्जपहोमर्चनान्तरा ।
उत्तिष्ठति तदा न्यासं षडङ्गं विन्यसेत्पुनः ॥२६९॥

तन्त्रान्तरे—

अबुद्धिपूर्वं विहिते निषिद्धे कर्मणि द्रुतम् ।
विद्यां जपेच्छतं तेन तत्पापान्मुच्यते ध्रुवम् ॥२७०॥

नित्यातिक्रमदोषाणां शान्त्यै विद्यां शतं जपेत् ।
नैमित्तिकातिक्रमणे सहस्रं प्रजपेत्तदा ॥२७१॥

---

१. निम्नांशोऽयमत परं विशेषः ख. पुस्तके—

मन्त्रमहोदधौ—एवं यः पूजयेदेवं त्रिकालं धर्ममाचरेत् ।
न जातु वैरिभिर्दु.खं. पीड्यते हरिरक्षित' ॥१॥
हरिरित्युपलक्षणम् ।
त्रिकालपूजनाशक्तै' कार्यं द्वि' सकृदप्यदः ।
विशेषेणार्चयेद्देवं सङ्क्रान्त्यादिषु पर्वसु ॥२॥
दशभि पञ्चभिर्वापि पूजयेदुपचारकै. ।

याज्ञवल्क्यः—

विधिदृष्टं तु यत्कर्म करोत्यविधिना नरः ।
फलं न किञ्चिदाप्नोति क्लेशमात्रं हि तस्य तत् ॥२७२॥

नित्यपूजाया संक्षेपप्रकारस्तु प्रयोगे वक्ष्यते ।

उत्तरतन्त्रे—

प्रवासे पथि दुर्गे वा स्थानाप्राप्तौ जलेऽपि वा ।
कारागारनिबद्धो वा प्रायोवेशगतोऽपि च ॥२७३॥

मनोभये समुत्पन्ने सिंहव्याघ्रसमाकुले ।
परचक्रागमे चैव कुर्यान्मानसपूजनम् ॥२७४॥

मनसा हृदयस्यान्तर्ध्यात्वा योगाख्यपीठकम् ।
तत्रैव पृथिवीमध्ये पूजां तत्र समाचरेत् ॥२७५॥

मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनकर्म वै ।
अन्यच्च सर्वं मनसा ध्यात्वा कुर्याच्च पूजनम् ॥२७६॥

यथा पुष्पादिभिः पूजा बहिर्देहे विधीयते ।
तथा हृद्यपि कर्त्तव्या सर्वाश्च प्रतिपत्तयः ॥२७७॥

जले प्रवहणादौ, प्रायोवेशगतः गृहीतानशनव्रतः, अन्यच्च सर्वमिति मैत्रप्रसाधनव्यतिरिक्तमित्यर्थः, मैत्रादीनां मनसाऽसम्भवात्, मैत्रं शौचम् ।[1]

तत्वसारसंहितायाम्—

आतुरी सौतकी चैव त्रासी दौर्बोधकी तथा ।
साधना भाविनी चेति पञ्चधा भिद्यते पुनः ॥२७८॥

यदि लङ्घनपर्यन्तो व्याधिरात्मनि दृश्यते ।
तदा पूजा न कर्त्तव्या स्थण्डिले प्रतिमासु च ॥२७९॥

न स्नानं दन्तकाष्ठं वा कुर्याद्धोममथापि वा ।
रविमण्डलमालोक्य प्रतिमामथवा पुनः ॥२८०॥

---

१. ख. अतः परमयमंशो विशेषः—

शैवागमे—अत्यन्तरोगयुक्तेऽङ्गे राजचौरभयादिषु ।
गुर्वग्निदेवकृत्येषु नित्यहानौ न पापभाक् ॥१॥

प्रयोगपारिजाते—देशभङ्गे प्रवासे च व्याधिषु व्यसनेष्वपि ।
रक्षेदेव स्वमात्मानं पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ॥२॥

मूलमन्त्रं सकृज्जप्त्वा पुष्प साक्षतमुत्क्षिपेत् ।
श्रान्तो व्याधिभिरत्युग्रैः क्रान्तश्चैवोपवासकैः ॥२८१॥

निजसामयिकैर्वापि स्वकर्त्तव्य समापयेत् ।
स्नात्वा देवमथाग्नीश्च गुरून् विप्रान्प्रपूज्य चं ॥२८२॥

एतावत्कालविच्छिन्ना पूजा युष्मत्प्रसादत. ।
न दोषोऽस्त्विति सम्प्रार्थ्य पुनः पूर्ववदाचरेत् ॥२८३॥

सम्प्रार्थ्य जपहोमादिक च कार्यम् ।

यस्तु रोगवशान्मोहवशाद्दोप उपागतः ।
जपेन क्षालनीय. स्याद्दानेन हवनेन च ॥२८४॥
ध्यानेनापि मुनिश्रेष्ठ ज्ञात्वा कर्म वलावलम् ।

इति नारदपञ्चरात्रवचनात् ।

तथा—

अथ सूतकिन पूजां वदाम्यागमवोधिताम् ।
स्नात्वा नित्य च निर्वर्त्य मानस्या क्रियया तु वै ॥२८५॥

वाह्यपूजाक्रमेणैव स्थानयोगेन पूजयेत् ।
यदि कामी न चेत्कामी नित्य पूर्ववदाचरेत् ॥२८६॥

त्रासिनो वक्ष्यते पूजा यथैवागमवोधिता ।
लब्ध वा यदि वाऽलब्धमर्घपात्रादिसाधनम् ॥२८७॥

पूजोदकेन कर्त्तव्या न चेत्तोय च विद्यते ।
तदा सम्पूजयेद्देव भावनाकुसुमादिभि ॥२८८॥

दौर्वोधकों प्रवक्ष्यामि पूजामागमवोधिताम् ।
मूर्खस्त्रीवालवृद्धाद्या दुर्वोधा इति भाविता ॥२८९॥

रत्नमण्डपधर्मादिचतुष्कमुरगोऽम्बुजम् ।
मूलमूर्त्तिः षडङ्गानि तेषा पूजा विधीयते ॥२९०॥

अन्येषामपि सर्वेपा प्रोक्ता संक्षेपकर्मणि ।
सर्वेषामेव वस्तूनामलाभे भावनैव हि ॥२९१॥

निर्मलेनोदकेनाथ पूर्णतेत्याह नारदः ।[1]
तथा पुनस्त्रिधा पूजा उत्तमाऽधममध्यमा ॥२९२॥

अधिकारिनिमित्ताभ्यां भिद्यते शतधा पुनः ।
यागोपकरणैः कृत्स्नैः क्रियमाणोत्तमा मता ॥२९३॥

यथालब्धैर्विनिष्पाद्या द्रव्यैः पूजा तु मध्यमा ।
पत्रपुष्पाम्बुनिष्पाद्या पूजा चाधमसञ्ज्ञका ॥२९४॥

विदिताखिलवेदार्थैर्ब्रह्मर्षिभिरकल्मषैः ।
क्रियमाणा तु या पूजा सात्विकी सा विमुक्तिदा ॥२९५॥

राजर्षिभिस्तपोनिष्ठैर्भगवत्तत्ववेदिभिः ।
या पूजा क्रियते सम्यग्राजसी सा सुखप्रदा ॥२९६॥

स्त्रीबालवृद्धमूर्खाद्यैर्भक्तैरक्षुद्रमानसैः ।
या पूजा क्रियते नित्यं तामसी सा प्रकीर्त्तिता ॥२९७॥

तथा सारसङ्ग्रहे—

आराधनासमर्थश्चेद्द्द्यादर्चनसाधनम् ।
दातुं नैव शक्नोति कुर्यादर्चनदर्शनम् ॥२९८॥

नैकं तु यस्य विद्येत सोऽधो यात्येव नान्यथा ।
यस्तु भक्त्या प्रयत्नेन स्वयं सम्पाद्य चाखिलम् ॥२९९॥

साधनं चार्चयेद्विद्वान् स समग्रफलं भजेत् ।
योऽर्चयेद्विधिवद्भक्त्या परानीतैश्च साधनैः ॥३००॥
पूजाफलार्द्धमेवास्य न समग्रफलं लभेत् ।

कुम्भसम्भवः—

सुस्थः समर्थः कुर्वीत चोत्तमैरेव साधनैः ।
मध्यमो मध्यमैरेव न्यूनो न्यूनैस्तपोधन ॥३०१॥

आपन्नश्चेत्समर्थोऽपि न्यूनैरेव समाचरेत् ।
पूजाकर्म विशेषेण देशकालानुसारतः ॥३०२॥

---

१. ख. अतोऽग्रे निम्नांशोऽयं विशेषः—
प्रयोगपारिजाते—पुष्पाद्यसम्भवे देवं पूजयेत् सिततण्डुलैः ।
व्रीहिभिर्वा यवैर्वापि तिलैः कृष्णैर्विशेषतः ॥१॥
यद्वा पर्युषितैश्चापि पुष्पाद्यैरविकारिभिः ।

भविष्यपुराणे—

विभवे सति यो मोहान्न कुर्याद्विधिविस्तरम् ।
न तत्फलमवाप्नोति प्रलोभाक्रान्तमानसः ॥२०३॥

शिवयामले—

शिवपितृवनलिङ्गवृक्षशुद्ध—
ह्रदजलसङ्गमचत्वरे स्वदेशे ।
अपि शिवगदित विमुच्य शस्तं,
निजगृह एव तु पूजनं मुमुक्षोः ॥३०४॥

अरण्ये स्वल्पकामाना सिद्ध्यर्थं पूजन हितम् ।
निष्कामाना मुमुक्षूणा गृहे शस्त सदार्चनम् ॥३०५॥

तत्वसारसंहितायाम्—

अनिर्माल्य सनिर्माल्यमर्चन द्विविध मतम् ।
दिव्यैर्मनोभवैर्द्रव्यैर्गन्धपुष्पै स्रगादिभि. ॥३०६॥

यदर्चनमनिर्माल्यं दिव्यभोगापवर्गदम् ।
ग्राम्यारण्यादिसम्प्रेतैर्यागद्रव्यैर्मनोरमैः ॥३०७॥

भक्तैर्यत् क्रियते सम्यक् सनिर्माल्य तदर्चनम् ।
जातमात्राणि पुष्पाणि घ्रातान्येव निसर्गत. ॥३०८॥

पञ्चभिश्च महाभूतैर्भानुना शशिना तथा ।
प्राणिभिश्च द्विरेफाद्यैः पौष्पैरेव न सशयः ॥३०९॥

अतो निर्माल्यमित्युक्तमिति ।

अत्र चादौ यतीनामधिकारः । यदाह—

अगस्त्यः—

द्विविध स्याल्लब्धमनोर्बाह्यान्तरमुपासनम् ।
सन्यासिनामान्तर प्रोक्तम्·····,·········॥३१०॥ इति ॥

यत्तु—

मनसा पूजयेद्योगी पुष्पैर्वारण्यसम्भवै. ।
शिवार्थं पुष्पहिंसाया न भवेत्स तु हिंसकः ॥३११॥

इति शिवरहस्यवचनम् । तदजितेद्रिययतिपर वस्तुतस्तु—

परिव्राड् ज्ञानमात्रेण होमदानादिभिर्विना ।
सर्वदु.खपिशाचेभ्यो मुक्तो भवति नान्यथा ॥३१२॥

परिव्राडविरक्तश्च विरक्तश्च तथा गृही ।
कुम्भीपाके तु मज्जेते तावुभौ कमलानने ॥३१३॥

पुण्या' स्त्रियो गृहस्थाश्च मङ्गलैर्मङ्गलार्थिन ।
पूजोपकरणै' कुर्यु र्दद्युर्दानानि चार्हणाम् ॥३१४॥

वानप्रस्थाश्च यतयो यद्येव कुर्युरन्वहम् ।
ससारान्न विवर्त्तन्ते विध्यन्ति क्रमदोपत.[1] ॥३१५॥
आरूढपतिता ह्येते भवेयुर्दु:खभाजनम् ।

इति । कुम्भसम्भववचनादेव यतीनामसंय्यतेन्द्रियत्व दो षायैव, अतस्तेषा मानसपूजनमेव विहितमिति । यद्वा सर्वेपामेवाधिकार. । यदुक्तम्—

पद्मपुराणे—

स्मरणे कीर्त्तने विष्णोस्तथा मानसपूजने ।
सदाधिकार सर्वेपा महापातकिनामपि ॥३१६॥

इति । अन्यत्र तु गृहस्थानामेवाधिकारः । यदुक्त अगस्त्येन—

'अन्येपामुभय तथेति' । अन्येषा गृहस्थानाम्, उभय आभ्यन्तर बाह्य च । अत्राभ्यन्तरयजन बाह्यार्चनस्यागत्वेनोक्त केवलमानसार्चने निषेधदर्शनात् ।

यदाह स्वयमेव—

न गृही ज्ञानमात्रेण परत्रेह च मङ्गलम् ।
प्राप्नोति चन्द्रवदने दानहोमादिभिर्विना ॥३१७॥

गृहस्थो यदि दानादि दद्यान्न जुहुयादपि ।
पूजयेद्विधिना नैव कः कुर्यादितदन्वहम् ॥३१८॥

न ब्रह्मचारिणो दातुमधिकारोऽस्ति भामिनि ।
नारण्यवासिनां शक्तिर्न ते सन्ति कलौ युगे ॥३१९॥

गुरुभ्योऽपि च सर्वेभ्य' को वा दद्यादपेक्षितमिति ।
घ्रातपुष्पात्फल सिद्ध्येदल्प नो मानसाद्यथा ॥३२०॥

---

१. ख ० तोषत' ।

तस्मादपरिहार्यत्वादन्यथा चानुपायतः ।
अल्पबुद्धित्वतो नृणां वाह्यपुष्पैर्भवेत्क्रिया ॥३२१॥

इति । यत्तत्त्वसारसहितावचनं तत्तदङ्गभूतस्याभ्यन्तरयजनस्यात्यन्तमावश्यकत्वं गृहस्थानामुपपादयतीति । तस्माद् गृहस्थानां वाह्यपूजैव मुख्या सा, च पञ्चविधा । यदुक्तम्—

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

पूजा पञ्चविधा प्रोक्ता पञ्चरात्रादितन्त्रके ।
ताश्चाभिगमनं चोपादानेज्याध्याययोगकाः ॥३२२॥

तत्राभिगमनं नाम मन्त्रिभिः परिकीर्त्यते ।
सम्मार्जनोपलेपादिसंस्कारो देवमन्दिरे ॥३२३॥

उपादानं भवेद्देवपूजासाधनमेलनम् ।
ततश्चापि भवेदिज्या गन्धपुष्पादिभिः पुनः ॥३२४॥

पीठपूजा च देवस्य साङ्गावरणपूजनम् ।
मन्त्रार्थभावना पूर्वं जपो मन्त्रस्य कीर्त्तनम् ॥३२५॥

तच्छास्त्राध्ययनं सम्यक् स्वाध्यायो मन्त्रिभिः स्मृतः ।
गुरुदेवात्मनामैक्यभावना योग उच्यते ॥३२६॥

सालोक्यमपि सारूप्यं सामीप्यं सार्ष्टिनामकम् ।
सायुज्यमपि पञ्चानां फलान्येव विदुः क्रमात् ॥३२७॥

इति । सार्ष्टिः समानैश्वर्यम् ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मजगोस्वामि-
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ
चतुर्थस्तरङ्गः ॥४॥

पञ्चमस्तरङ्गः

॥अथ नित्यपूजाप्रयोग ॥

तत्र श्रीमान् साधकः प्रमाणोक्तलक्षणे ब्राह्मे मुहूर्त्ते दक्षिणावयवेन शय्यायाः समुत्थाय, स्वेष्ट देव स्मृत्वा, वामचरण विन्यस्योत्थाय, स्वभवनाद्बहिर्निर्गत्यावश्यक विधाय, हस्तपाद प्रक्षाल्य, निशापरिहित वसन परित्यज्य, प्रक्षालिते वस्त्रे धृत्वाऽचम्य, यागमन्दिर सम्माज्ज्र्य, गोमयेनोपलिप्य, वितानादिभिरलङ्कृत्य, तत्र निजविष्टरे समुपविश्य, सपर्यामूर्त्तेर्निर्माल्यमपकृष्य, मूर्त्ति प्रक्षाल्य, पुरत. पीठे सस्थाप्य, प्राणायामत्रयऋष्यादिन्यासत्रयपूर्वक पूर्वदिवसपूजावशिष्टपुष्पपत्रादिना ता मूर्त्ति मूलमन्त्रेण त्रि. सम्पूज्य, पाद्याचमनीये दत्वा, परदेवतायै घनसारखण्डैर्द्दन्तधावन कारयित्वा, सुगन्धिजलैर्गण्डूपास्यप्रक्षा लनादिक च कारयित्वा, पुनराचमनीय दत्वा, पाणिवदनप्रोञ्छनाय निर्म्मल शुभ्रवस्त्र दत्वा, स्वमूर्द्धनि शुभ्रसहस्रदलसरोजकर्णिकायां श्रीगुरु शुभ्रवसन भूपणभूषित श्वेतपुष्पमालिकालङ्कृतमिन्दुकान्तसन्निभ वराभयज्ञानमुद्रापुस्तककर सुप्रसन्न वामाङ्कोपविष्टया शोणवर्णया शोणवसनभूषणगन्धमाल्यालङ्कृतया वामपाणिधृतलीलापद्मया देव्या दक्षिणभुजेनाश्लिष्ट त्रिलोचन शान्तमन्तर्म्मुख श्रीशिवरूपिण ध्यात्वा तत्पदपयोजयुगलस्र ुतामृतधारया स्वशरीर सिक्त सञ्चिन्त्य 'श्रीअमुकानन्दनाथश्रीपादुका पूजयामीति' स्वगुरुसङ्केतनाम्ना तदज्ञाने "श्रीगुरुभ्योनम, श्रीगुरुपादुकाभ्यो नम" इति मन्त्रेण वा गन्धाद्यैरुपचारैर्बाह्यैर्म्मानसैर्वाभ्यर्च्य—

आनन्दमानन्दकरम्प्रसन्न,
ज्ञानस्वरूप निजभावयुक्तम् ।
योगीन्द्रमीड्य भवरोगवैद्य,
श्रीमद्गुरु नित्यमहं नमामि ॥१॥

इति प्रणम्य हृन्मन्त्रेण स्वहृदि लय भावयेत् । ततो मूलाधारादिब्रह्मरन्ध्रान्तमुदितसहस्राशुसहस्रप्रभ सुषुम्णान्तस्तेजोदण्डसन्निभ मूलमन्त्र ध्यात्वा, तन्महसा व्याप्त स्वदेह सञ्चिन्त्य, स्वमूलमन्त्रेण प्राणायामत्रय ऋष्यादिकरषडङ्गन्यास च विधाय, हृदयारविन्दे यथोक्तरूप निजेष्टदेव ध्यात्वा, मानसोपचारैरभ्यर्च्य, मूलमन्त्र यथाशक्ति जपित्वा, जप समर्प्य, स्तुत्वा, प्रणम्य—

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव श्रीदेव युष्मच्चरणाज्ञयैव ।
प्रात. समुत्थाय तव प्रियार्थं ससारयात्रामनुवर्त्तयिष्ये ॥२॥

इति मन्त्रेण चात्मानमभ्युक्ष्य—

यन्मे केशेषु दौर्भाग्य सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु वो नमः ॥१३॥

इति प्रणम्य, मूलेन स्वाहान्तेन त्रिराचम्य, मूलेन च त्रिः सन्तर्प्य, देव विसृज्य, तटमागत्य, धौत वस्त्रयुगल परिधायोरू करौ च मृत्तिकयाऽङ्घ्रीश्च प्रक्षाल्याऽऽचम्य, स्ववर्णविहित तिलकमादौ विधाय, गणेशसूर्यशक्त्युपासकः कुङ्कुमेन त्रिपुण्ड्रधारण कृत्वा, वैष्णव ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणं कृत्वा, शैवो भस्म-त्रिपुण्ड्रधारण कृत्वा, वैदिकसन्ध्यामादौ विधाय, तान्त्रिकसध्या कुर्यात् ।

भस्मधारणविधिस्त्वयम्—

अग्निहोत्रोद्भवमावसथ्याग्न्युद्भवं वा प्रमाणोक्तविधिनान्तरिक्षगृहीत-कपिलागोमयपिण्ड शुष्क मूलमन्त्रेण दग्ध देवोद्वासनात्पूर्वमेव गृहीतमपक्वाति-पक्वरहित वस्त्रेण शोधित कर्पूरादिसुवासित वा भस्म संगृह्य, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रय कृत्वा—

'शिरसि—पिप्लाद ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—श्रीरुद्राय देवतायै नमः, गुह्ये—अग्निबीजाय नमः, पादयोः—भस्मशक्तये नमः, मम मोक्षार्थे भस्मधारणे विनियोगः'

इति ऋष्यादिन्यास विधाय—

'अङ्गुष्ठयोः—कालाय नमः, हृदयाय नमः । तर्ज्जन्योः—कलविकरणाय नमः, शिरसे स्वाहा । मध्यमयोः—बलविकरणाय नमः, शिखायै वषट् । अना-मिकयोः—बलप्रमथनाय नमः, कवचाय हुं । कनिष्ठयोः—सर्वभूतदमनाय नमः, नेत्राय वौषट् । करतलपृष्ठयोः—मनोन्मनायास्त्राय फट्' ।

इति विन्यस्य हृदयशिरःशिखाकवचनेत्रेषु प्रागुक्तान्पञ्चमन्त्रान्विन्यस्याऽ-स्त्रमन्त्रेण तालत्रय दशदिग्बन्धन च कृत्वा—

विभूते भूतिमानासीद्वामदेव सदाशिवः ।
रक्षाबन्धस्त्वया देवि रक्ष मामनघे सदा ॥१४॥

इति विभूतिम्प्रणम्य —

'ॐ सद्योजातमित्यादि पञ्चानुवाकाना साहिकीर्देवतोपनिषद ऋषयः प्रथमद्वितीयचतुर्थानुवाकानामनुष्टुप्, अघोरेभ्य इत्यस्य स्वराडनुष्टुप्, अन्त्यो गायत्री, सर्वेषा रुद्रो देवता'

इति ऋष्यादिक स्मृत्वा, विन्यस्य—

ॐसद्योजात प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ।
भवे भवे नातिभवे भवस्व मा भवोद्भवाय नमः ॥१॥

वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय ॥२॥

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥३॥

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥४॥

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ॥५॥

इति मन्त्रपञ्चपठित्वा, विभूतिमादाय, वामकरेनिधाय, भस्माभिमन्त्रण— मन्त्रस्य ऋष्यादिन्यास कुर्यात्—

तत्र 'शिरसि अथर्वऋषये नम', मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्रीरुद्राय देवतायै नमः' । इति विन्यस्य—

'अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म सर्वं ह वा इद भस्म मन इत्येतानि चक्षूंषि भस्मानि' । इत्यभिमंत्र्य—

'ॐ आपो वा' इत्यस्य प्रजापति ऋषिर्यजुः छन्द, आपो देवता" इति ऋष्यादिक स्मृत्वा, विन्यस्य 'ॐ आपो वा इद सर्वं विश्वाभूतान्यापः प्राणा वा आप. पशव आपोऽमृतमापोऽन्नमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापश्छन्दांस्यापो ज्योतीष्याप सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुव. सुवरापः ॥"

इति मन्त्रेणाद्भिः संसिच्य—

"मानस्तोक' इति मन्त्रस्य भगवानृषि, जगतीछन्द, हिरण्यगर्भो देवता" इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, विन्यस्य—

ॐ मानस्तोके तनये मान आयुषि मानो
गोषु मान अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मानो रुद्रभामितोवधी—
र्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते ॥

ससारयात्रामनुवर्त्तमानं त्वदाज्ञया श्रीपरदेवदेव ।
स्पर्धातिरस्कारकलिप्रमादभयानि मा मऽभिभवन्तु नाथ ॥३॥
जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्ज्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति. ।
त्वयेन्द्रियाणामधिदैवतेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥४॥

इति श्लोकत्रय पठित्वा, देवाज्ञामादाय, अत्रैते श्लोकाः साधकैर्देवादिपदस्थाने निजाराध्यदेवतानामोच्चार्य पठनीया । ततः—

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्य पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥५॥

इति भूमि प्रार्थ्य, प्रवहच्छ्वासानुसारेण [तस्या चरण निधाय 'श्रीपरदेवते' इत्युक्त्वोत्थाय, पदे पदेऽस्त्रमन्त्र स्मरन् ग्रामाद्बहिर्नैर्ऋत्या याम्या वा दिशि शरप्रक्षेपमात्रा भूमिमतीत्य—][1]

उत्तिष्ठन्त्वृषयो देवा गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ।
परितस्त्यज्यता स्थान विण्मूत्रोत्सर्जनाय मे ॥६॥

इति मन्त्र पठित्वा तृणलोष्ठप्रक्षेपेण तत्र स्थितदेवादीनुद्वास्य, प्रमाणोक्तविधिना मूत्रमलोत्सर्गशौचाचमनादिक विधाय, दन्तकाष्ठमादाय, "क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नम" इति मन्त्रेण दन्तधावन विधाय, दन्तकाष्ठ प्रक्षाल्य, पुरत शुद्धदेशे परित्यज्य, मूलेन मुख प्रक्षाल्य, कुशतिलयवगन्धाक्षतकुसुमधौतवस्त्राण्यादायाऽस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितशङ्कुना शुचिस्थानान्मृत्तिकां गृहीत्वा, जलाशयं गत्वाऽस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितनीरेण तटम्प्रक्षाल्य, तत्रास्त्राभिमन्त्रित कुशादिक निधाय, निष्कासितसलिलेन तीर्थाद्बहि. कटिशौच विधाय, स्वशाखोक्तविधिना वैदिक स्नान तदङ्गभूत तर्प्पण च कृत्वा, तट गत्वाऽस्त्रमन्त्रेण मृदमादाय तेनैवाभिमन्त्र्य, शिखामन्त्रेण तत्रस्थ तृणादिक दूरीकृत्य, मूलेन त्रिरभिमन्त्र्य, तया मृदा मूर्द्धादिचरणान्त विलिप्य—

आधारः सर्वभूतस्य विष्णोरतुलतेजस ।
तद्रूपाश्च ततो जाता आपस्ताः प्रणमाम्यहम् ॥७॥

इति तीर्थजल प्रणम्य, यथोक्तलक्षणा सम्मुखीकरणमुद्रा बद्ध्वा,

---

१. [—] कोष्ठगतोंऽशो नास्ति ख पुस्तके ।

प्राणवायुं निरुन्धन् जलान्तः प्रविश्य, तूष्णीं निमज्ज्योन्मज्ज्य, नाभिमात्रे जले स्थित्वा, 'अद्येत्यादिमासतिथ्याद्युल्लेखनपूर्वकं श्रीपरदेवताप्रीत्यर्थं तान्त्रिकस्नानमहं करिष्ये' इति सङ्कल्पं कृत्वा, मूलमन्त्रेणप्राणायामत्रयं ऋष्यादिकर—षडङ्गन्यासं च कृत्वा, स्वपुरतो जले हस्तमात्रं चतुरस्रं तीर्थं परिकल्प्य—

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे!।
तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकर! ॥८॥

इति दिवाकरात्तीर्थं प्रार्थ्य, 'क्रों' इत्यङ्कुशमुद्रया सूर्यबिम्बं भित्त्वा—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥९॥

इति सूर्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य, पुरःकल्पिते तीर्थमण्डले संयोज्य —

"ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः सर्वानन्दमये तीर्थशक्ति एह्येहि स्वाहा" इति मन्त्रेण तीर्थशक्तिमावाह्य तत्र तां ध्यायेत्—

सर्वानन्दमयीमशेषदुरितध्वंसां मृगाङ्कप्रभां,
त्र्यक्षां चोर्ध्वकरद्वयेन दधतीम्पाशं सृणिं च क्रमात्।
दोर्भ्यां चामृतपूर्णहेमकलशं मुक्ताक्षमालां वरं,
गङ्गासिन्धुसरिद्द्वयादिसहितां श्रीतीर्थशक्तिम्भजे ॥१०॥

इति तीर्थशक्तिं ध्यात्वा, तन्मन्त्रमुच्चार्य्य, "श्रीतीर्थशक्त्यै नमः" इति सम्पूज्य—

"ॐ नमो भगवति अम्बे अम्बालिके अम्बिके महामालिन्येह्येहि भगवति अशेषतीर्थालवाले ह्रीं श्रीं शिवजटाधिरूढे गङ्गे गङ्गाम्बिके स्वाहा"।

इति मन्त्रेणाष्टवारमभिमन्त्र्य, तज्जलं 'ह्रीं' कारेणालोड्य, 'वं' इति—धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, कवचमन्त्रेणावगुण्ठनमुद्रयाऽवगुण्ठ्याऽस्त्रमन्त्रेण तत्र सचक्रं साङ्गावरणं देवं ध्यात्वा, जलमयैः पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, मूलमन्त्रेणाष्टवारमभिमन्त्र्य तत्र मूलमन्त्रं जपन्, हृदि परदेवतां स्मरन्, त्रिर्निमज्ज्योन्मज्ज्य, कुम्भमुद्रां बद्ध्वा, मूलेन स्वमूर्ध्नि त्रिरभिषिच्य—

ॐ वं सिसृक्षोर्निखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजापतेः।
मातरः सर्वभूतानामापो देव्यः पुनन्तु माम् वं ॐ ॥११॥

इति स्वशिरः प्रोक्ष्य—

अलक्ष्मीं मलरूपां याः सर्वभूतेषु संस्थिताम्।
क्षालयन्ति निजस्पर्शादापो देव्यः पुनन्तु माम् ॥१२॥

इति मन्त्रेण सम्मर्द्य—

"तस्माद्ब्रह्म तदेतत्पाशुपत पशुपाशविमोक्षाये" ति मन्त्रेणैकादशवारमभिमन्त्र्य, द्विधा कृत्वा, एकेन भागे 'नेशान. सर्वविद्यानामि'ति प्रागुक्तमन्त्रेण शिरसि, 'तत्पुरुषाये'ति मन्त्रेण मुखे, 'अघोरेभ्य' इति मन्त्रेण बाह्वोः, 'वामदेवाये'ति मन्त्रेण कण्ठादिनाभ्यन्त, 'सद्योजातमि'ति मन्त्रैणोरूमूलादिपादाग्रद्वयपर्यन्तमित्थि सर्वाङ्गेषु भस्मोद्धूलनं कृत्वा, हस्तौ प्रक्षाल्य, द्वियीयभागमादाय —

"शिरसि—ॐ ऐं ह्रीं हर हर ॐ नमः शिवाय, ललाटे—ब्रह्मणे नमः, हृदये—हव्यवाहनाय नमः, कण्ठे—पूष्णे नमः, दक्षिणबाहुमूले—रुद्राय नमः, बाहुमध्ये—आदित्याय नमः, मणिबन्धे—चन्द्राय नमः, वामबाहुमूले—वामदेवाय नमः, बाहुमध्ये—प्रजनाय नमः, मणिबन्धे—वसुभ्यां नमः, पृष्ठे—हराय नमः, ककुदि—शम्भवे नमः, ब्रह्मरन्ध्रे—परमात्मने नमः।"

॥ इति भस्मधारणविधिः ॥

एव विधिस्त्रयाणामेव वर्णानाम्। अन्यैस्तु पञ्चाक्षरेण मूलमन्त्रेण वा त्रिपुण्ड्रधारणं कार्यम्।

॥ अथ तान्त्रिकसन्ध्या ॥

तत्र मूलेनाचम्य तेनैव शिखां बद्ध्वा प्राणायामत्रयपूर्वकं मूलमन्त्रस्य ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान्विधाय, जल 'व' इति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, मूलेनाष्टवारमभिमन्त्र्य कुशोत्थतज्जलबिंदुभिः सबिंदुभिरकारादिक्षकारान्तैरेकपञ्चाशदक्षरैः प्रत्यक्षर स्वशिरः प्रोक्ष्य, मूलेन च त्रिः प्रोक्ष्य, भानुमण्डले यथोक्तरूपां परदेवतां ध्यात्वा, दक्षहस्तेन जल गृहीत्वा, वामहस्ताग्रेण स्पृशन् 'ल व र यं ह' इति पाञ्चभौतिकवीजैः सप्तवारमभिमन्त्र्य, मूलेन च त्रिरभिमन्त्र्य, तज्जल वामपाणौ निधाय, तद्बिन्दुभिर्मूलेन दक्षिणहस्ताग्रेण निजमस्तके त्रिः प्रोक्ष्याऽवशिष्ट वामहस्तस्थजल वामघ्राणान्तिकं नीत्वा, तेजोरूप वामघ्राणरन्ध्रेण स्वशरीरान्त.प्रविष्टं ध्यात्वा तेन जलेन स्वशरीरमध्यस्थ निखिलदुरित प्रक्षाल्य, श्यामवर्णं तज्जल दक्षनासाविवरेण विनिर्गत विभाव्य, दक्षिणपाणिनाऽऽदय निजवामभागे वज्रशिला ध्यात्वा "ॐ श्लीं पशु हुं फट्" इति पाशुपताऽस्त्रमन्त्रेण तस्यामास्फाल्य, करौ प्रक्षाल्य, मूलेन त्रिराचम्याऽञ्जलिना जलमादायोत्थाय, स्वेष्टदेवतागायत्री तदभावे मूल वा समुच्चार्य्य, 'श्रीपरदेवते एष तेऽर्घ्यं स्वाहे' ति त्रिरर्घाञ्जलिं सूर्याभिमुखमुत्क्षिप्य, मूलमुच्चार्य्य 'श्रीपरदेवतां तर्प्ययामि नमः' इति त्रिः सन्तर्प्य,

पूर्ववत्प्राणायामादिकं कृत्वा, भानुमण्डले निजेष्टदेवं ध्यायन् स्वेष्टदेवतागायत्री यथाशक्ति जपित्वा, मूलमन्त्रं चाष्टोत्तरशतं जपित्वा, जपं समर्प्य, स्तुत्वा, प्रणम्य, सूर्यमण्डलाद्देवं स्वहृदि विसृज्य, श्रीगुरुं प्रणमेत् ।

इति कालत्रयेऽपि **सन्ध्याविधिः** ।

अत्र परदेवतास्थाने स्वाराध्यदेवतानामोच्चारो विधेयः । तत्तद्गायत्री तत्तत्कल्पे प्रदर्शनीया । सन्ध्यात्रयमवश्यमेव कर्त्तव्यम् ।

ततः प्रकृते वैदिकतर्प्पणं कृत्वा **तान्त्रिकतर्प्पणं** कुर्यात् । तद्यथा—

मूलेन प्राणायामत्रयं ऋष्यादिन्यासं च कृत्वा, 'वं' इति धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य, तत्र सचक्रं साङ्गावरणं निजेष्टदेवं ध्यात्वा, मूलमुच्चार्य्य, 'श्रीपरदेवतां तर्पयामि नमः' इत्यष्टोत्तरशतवारं तदर्द्धमष्टाविंशतिवारं वा देवताया मुखपद्मे पीयूषधिया तत्तीर्थजलैः सन्तर्प्याऽङ्गावरणदेवताश्चामुकं तर्प्पयामि नमः' इति प्रत्येकमेकैकाञ्जलिना सन्तर्प्य, देवं स्वहृदि विसृज्य, तीर्थं च सूर्य्ये विसृज्य, गुरुदिक्पतिग्रहान्प्रणम्य, शुद्धोदकपूर्णं पात्रमादाय, हृदि स्वेष्टदेवतां स्मरन् मौनी स्वपदमात्रदृष्टिः स्तोत्रादिकम्पठन् स्वगृहं गच्छेत् । ततो द्वारि स्थित्वा स्वपापं मनसा सञ्चिन्त्य—

देव त्वं प्रकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम ।
तन्निःसारय चित्तान्मे पापं फट् फट् ते नमः ॥१५॥
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च ।
एते शुभाशुभस्येह कर्म्मणो न च साक्षिणः ॥१६॥

इति पठित्वा, 'हूँ फट्' इति क्रोधदृष्ट्या पार्श्वद्वयमूर्ध्वमधश्चावलोक्य, सुमना भूत्वा, गृहान्तः प्रविश्याऽङ्गणे स्थित्वा, पादौ प्रक्षाल्याऽचम्याऽङ्गणभूमौ गोमयेनोपलिप्तायां सिन्दूरादिना रचितवृत्तमण्डलमध्ये स्वासनमास्तीर्य्य— 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' इत्यासनं सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुख उपविश्य, वक्ष्यमाणसूर्य्यमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा—

"शिरसि—अजाय ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—श्रीसूर्य्याय देवतायै नमः, इति विन्यस्य सूर्यार्घदाने विनियोगः।" इति कृताञ्जलिर्वदेत् । ततः—

"अङ्गुष्ठयोः—ह्रां हृदयाय नमः, तर्ज्जन्योः—ह्रीं शिरसे स्वाहा, मध्यमयोः—ह्रूं शिखायै वषट्, अनामिकयोः—ह्रैं कवचाय हुं, कनिष्ठयोः ह्रौं नेत्राय वौषट् करतलपृष्ठयोः—ह्रः अस्त्राय फट् ।"

इति करयोर्विन्यस्यैतानेव मन्त्रान्हृदयशिर शिखाकवचनेत्रस्थानेषु विन्यस्याऽस्त्रमन्त्रेण तालत्रय दशदिग्बन्धन च कृत्वा—

रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धु,
भानु समस्तजगतामधिपम्भजामि ।
पद्मद्वयाभयवरान्दधत कराब्जै—
र्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचि त्रिनेत्रम् ॥१७॥

इति सूर्यं ध्यात्वा, स्वपुरतस्तत्प्रकरणे वक्ष्यमाणप्रयोजनतिलकाख्य त्र्यक्षरमन्त्रोक्तविधिना साङ्ग सावरण सूर्यं सम्पूज्य, तदशक्तौ तन्मण्डले साङ्गावरण ध्यात्वा, सम्पूज्य, स्वपुरतश्चतुरस्रत्तत्रिकोणात्मक मण्डल विरच्य, 'श्रीसूर्यार्घाधारमण्डलाय नम.' इति मण्डल सम्पूज्य, तत्र साधार प्रस्थचलग्राहिताम्रपात्र निधाय, सूर्य्यमन्त्रेण शुद्धोदकेनापूर्य्य, तिलयवसर्षपश्यामाककुशाग्रगन्धाक्षतरक्तपुष्पाणि रक्तचन्दन च निक्षिप्य, कुशैराच्छाद्य, तत्पात्रं कराभ्यामाच्छादयन्सूर्यमन्त्रमष्टोत्तरशतं जपित्वा, जानुभ्यामवनी गतस्तत्पात्र कराभ्यामामस्तकमुद्धृत्य पूर्वोक्तरूप सूर्य्यं निजेष्टदेवताऽभेदेन ध्यायन् 'ह्रा ह्री सः सग्रहराशिनक्षत्रयोगकरणापरिवृत्तासनसस्थित श्रीसूर्य्य एष तेऽर्घ स्वाहा' इति सूर्य्यायार्घं दत्वा, तदर्घाम्बुप्लुत सूर्यं ध्यायन् तन्मन्त्र यथाशक्ति जपित्वा, सूर्यं स्तुत्वा, प्रणम्य, स्वपुर. पूजापक्षे त विसृज्य, पूजामण्डपद्वार गत्वा, तत्र वक्ष्यमाणविधिना सामान्यार्घं सस्थाप्य, तदशक्तौ ताम्रादिपात्रस्थजल धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, तेन जलेन वा पूजामण्डपस्य द्वार प्रोक्ष्य, द्वारस्योर्द्ध्वशाखायाम्—

"मध्ये—ॐ विघ्नाय नमः, तद्दक्षिणे—महालक्ष्म्यै नम , वामे—सरस्वत्यै नम', पुनर्म्मध्ये—द्वारश्रियै नमः, द्वारस्य वामदक्षिणशाखयो.– ग गणपतये नमः, क्ष क्षेत्रपालाय नम., श शखनिधिवसुधाराभ्या नम , प पद्मनिधिवसुमतीभ्यां नमः, मां मायाशक्तये नम , चिं चिच्छक्त्यै नमः, ग गङ्गायै नम', य यमुनायै नमः, घ धात्रे नम., विं विधात्रे नम., इति द्वंद्वक्रमेणाऽधोऽध सम्पूज्य, अध'—दे देहल्यै नम., तस्याः वामदक्षिणयो. स्वाराध्यगणेशादेर्द्वारपालौ सम्पूज्योत्तर—द्वार गत्वा, तदर्घाम्बुनाऽभ्युक्ष्य, प्राग्वद् विघ्नादिदेहल्यन्त पुरोक्तक्रमेण सम्पूज्य, द्वारपार्श्वयोर्द्वारपालौ सम्पूज्य, पूर्वद्वारं गत्वा, तथैवाऽभ्युक्ष्य, विघ्नादिदेहल्यन्तमभ्यर्च्य, द्वारपार्श्वयोर्द्वारपालौ सम्पूज्य दक्षिणद्वार गत्वा, तथैवार्घाम्बुभिरभ्युक्ष्य, विघ्नादिदेहल्यन्तमभ्यर्च्य, द्वारपार्श्वयोर्द्वारपालौ पूजयेत् ।

अत्र गणेशमन्त्रोपासकैर्वक्रतुण्डैकदष्ट्रमहोदरगजाननलम्बोदरविकटविघ्नराजधूम्रवर्णा अष्टौ द्वारपाला. प्रतिद्वार द्विद्विक्रमेण सम्पूज्या. ।

शक्तिसूर्यमन्त्रोपासकैस्तु ब्राह्म्याद्यष्टमातर प्राग्वत्पूज्या ।

शिवमन्त्रोपासकैस्तु नन्दिमहाकालगणेशवृषभभृङ्गिरिटिस्कन्दोमाचण्डेश्वरा अष्टौ प्राग्वत्पूज्या. ।

विष्णुमन्त्रोपासकैर्नन्दसुनन्दौ चण्डप्रचण्डौ बलप्रबलौ भद्रसुभद्रौ इत्यष्टौ द्वारपाला' प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेण सम्पूज्या. ।

तत पुनः पश्चिमद्वार गत्वाऽस्त्रमन्त्रेण तालत्रयपूर्वकमुद्घाटच, सर्षपाक्षतभस्मकुशकुसुमान्यादायाऽस्त्रमन्त्रेण सप्तधाऽभिमन्त्र्य—

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः प्रेतगुह्यकाः ।
ये चात्र निवसन्त्यन्ये देवता भुवि सस्थिताः ॥१८॥
अपसर्प्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि सस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥१९॥

इत्यन्तेऽस्त्रमन्त्र जपन् नाराचमुद्रया मण्डपान्तः प्रक्षिप्य, तस्मान्निर्गच्छतां विघ्नसघाना स्ववामाङ्गसङ्कोचेन मार्गं दत्वाऽस्त्रमन्त्र स्मरन् वामपार्ष्णिघातत्रयेण भौमानूर्ध्वोर्ध्वतालत्रयेणान्तरिक्षगास्तिर्यग्दृष्टयवलोकनेन दिव्यान्विघ्नानुत्सार्य्य, दक्षिणपादपुर.सर देहलीमुल्लङ्घ्यान्त प्रविश्य, वाससा द्वारमाच्छाद्य, पञ्चगव्यार्घतोयाभ्या घण्टावादनपूर्वकं मण्डपाभ्यन्तर प्रोक्ष्य, मण्डपस्य नैर्ऋतकोणे 'वास्तुपुरुषाय नम.', तत्रैव 'वास्त्वधीशाय ब्रह्मणे नम.' इति सम्पूज्य मण्डपस्येशानकोणे 'रक्तवर्णाय रक्तद्वादशशक्तिसहिताय श्रीदीपनाथाय नम' इति दीपनाथ सम्पूज्य—

अतितीक्ष्ण महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥२०॥

इति भैरवाज्ञा गृहीत्वा, 'अ' फट् इति मण्डपस्य मध्यस्था पूजावेदी गत्वा—

"शिरसि—मेरुपृष्ठऋषये नम , मुखे—सुतलच्छन्दसे नम , हृदि—पृथिव्यै देवतायै नम , इति विन्यस्य पृथिवीप्रार्थने विनियोग" इति कृताञ्जलिरुक्त्वा—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्व विष्णुना धृता ।
त्व च धारय मा नित्य पवित्र कुरु चासनम् ॥२१॥

इति पृथिवी प्रार्थ्य, स्वासनस्थान मूलमन्त्रेण वीक्ष्याऽस्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्य, तेनैव मन्त्रेण कुशैस्त्रि. सन्ताडच, कवचमन्त्रेणाऽभ्युक्ष्य, तत्र मण्डूकादिकान्ता.[1]

---

१ ख 'मण्डूकादिवेदिकान्तः ।

पीठदेवताः सम्पूज्य, तत्र चैलाजिनकुशोत्तरं हस्तद्वयमात्रं चतुरस्रं चतुरङ्गुलोच्छ्रितं स्वासनमास्तीर्य्य, मूलमन्त्रेण दशधाऽभिमन्त्रितजलेनाऽभ्युक्ष्य, 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' इति स्वासनं सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा पद्मस्वस्तिकवीरसिद्धान्यतमेनासनेनोपविश्याऽऽसनस्य स्वदक्षिणाग्रकोणादिचतुष्कोणेषु प्रादक्षिण्येन "गं गणपतये नमः, दुं दुर्गायै नमः, सं सरस्वत्यै नमः, क्षं क्षेत्रपालाय नमः।" इति सम्पूज्य, गन्धपुष्पाक्षतादीनि पूजाद्रव्याणि स्वदक्षिणभागे निधाय, 'हां हूं फट्' इति तानि दिव्यदृष्ट्या विलोक्य, कर्पूरादिवासितशुद्धोदकपूर्णं वामभागस्थं कुम्भं 'आं' इति वामपाणिना संस्पृशन् दक्षिणकराङ्गुल्यग्रेण 'क्ष्रौं'[1] इति कुम्भस्थं जलं संस्पृश्य, 'रं' इति दीपशिखां स्पृष्ट्वा करं प्रक्षाल्य, कृताञ्जलिः 'वामे—गुरुभ्यो नमः, दक्षिणे—गणपतये नमः, अग्रे—श्रीपरदेवतायै नमः' इति प्रणम्य, चन्दनसुगन्धपुष्पाणि 'ह्स्रैं' इति मन्त्रेणादायाऽस्त्रमन्त्रेण मर्दयित्वा, करौ सुरभीकृत्य, तत्पुष्पं वामकरेण स्वमूर्द्धानं परितो 'रों' इति भ्रामयित्वाऽऽघ्राय—

ॐ ह्रीं ते सर्वे विलयं यान्तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः।
मृत्युरोगभयक्लेशाः पतन्तु रिपुमस्तके ॥२२॥

इति पठित्वाऽस्त्रमन्त्रेण नाराचमुद्रया ऐशान्यां दिशि दूरे प्रक्षिप्याऽस्त्रमन्त्रेण पुनः करावन्योन्यमर्द्दनेन संशोध्याऽस्त्रमन्त्रेणोर्ध्वोर्ध्वतालत्रयमङ्गुष्ठतर्ज्जन्युत्थशब्देन दशदिग्बन्धनं च कृत्वा, त्रिशूलमुद्रामुद्रितौ व्यत्यस्तौ मणिबन्धेनान्योन्यं सम्पृक्तौ करौ स्वमूर्द्धानं परितोऽस्त्रमन्त्रं स्मरन् प्रादक्षिण्येन त्रिर्भ्रामयन्नग्निप्राकारत्रयं विधाय, तन्मध्यगतमात्मानं सञ्चिन्त्य वक्ष्यमाणविधिना मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा भूतशुद्धिं कुर्यात्।

तत्र पादादिजानुपर्यन्तं पृथिवीस्थानं चतुरस्रं वज्रलाञ्छितं पीतवर्णं ब्रह्मदैवतं निवृत्तिकलाधिष्ठितं 'लं' बीजयुक्तं ध्यात्वा, जान्वादिनाभिपर्यन्तमपां स्थानमर्धचन्द्राकारं शुक्लवर्णं शृङ्गद्वयेऽपि पद्मलाञ्छितं विष्णुदैवतं प्रतिष्ठाकलाधिष्ठितं 'वं' बीजयुक्तं ध्यात्वा, नाभ्यादिकण्ठपर्यन्तं वह्निस्थानं स्वस्तिकोपेतत्रिकोणाकारं रक्तवर्णं रुद्रदैवतं विद्याकलाधिष्ठितं 'रं' बीजयुक्तं ध्यात्वा, कण्ठादिभ्रूमध्यपर्यन्तं वायुस्थानं षट्कोणाकारं षड्बिन्दुलाञ्छितवृत्तवेष्टितं कृष्णवर्णमीश्वरदैवतं शान्तिकलाधिष्ठितं 'यं' बीजयुक्तं ध्यात्वा, भ्रूमध्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तमाकाशस्थानं वृत्ताकारं ध्वजलाञ्छितं धूम्रवर्णं सदाशिवदैवतं शान्त्यतीतकलाधि-

---

१. ख. 'क्ष्रौं'।

स्थितं 'हं' वीजयुक्तं ध्यात्वा, तत्र पञ्चभूतमये देहे धर्मकन्दसमुद्भूत ज्ञाननालकमैश्वर्य्याष्टदलोपेत परवैराग्यकर्णिकं स्वहृदयारविन्दं विभाव्य, तत्कर्णिकाया जीवात्मानमाराग्रमात्रं प्रदीपकलिकाभासुरमनादिमलसञ्च्छन्नं परचिद्रूपं सञ्चिन्त्य, प्रागुक्तकल्पेण मूलाधारात्कुण्डलिनीमुत्थाप्य, सुषुम्णावर्त्मना मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतचक्रगतवर्णवर्णाधिदेवता ग्रसन्ती हृदयकमलमानीय, तया कवलीकृतं जीवात्मानं ध्यायन् सुषुम्णावर्त्मना विशुद्धयाज्ञाचक्रस्थवर्णवर्णाधिदेवता ग्रसन्ती ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा, तत्र स्थितसहस्रदलकमलकर्णिकामध्यवर्त्तिनि परमात्मज्योतिषि वर्णवर्णाधिदेवताकदम्बसहितं जीवात्मानं 'हंसः' इति मन्त्रेण संयोज्य, कुण्डलिनीं स्वस्थानमानीय, तत्वसंहारं कुर्यात् ।

तत्र पृथिवीस्थाने पादेन्द्रियगमनक्रियागन्तव्यगन्धघ्राणपृथिवीब्रह्मनिवृत्तिसमानवायून्संस्मृत्य—"ॐ ह्राँ ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा" इति मन्त्रेण तान्सर्वान्कुण्डलिनीद्वारा अपां मध्ये संहरेत् ।

ततोऽपां स्थाने हस्तादानदातव्यरसरसनाजलविष्णुप्रतिष्ठोदानान्सञ्चिन्त्य—"ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने हुं फट् स्वाहा" इति तान् सर्वान्कुण्डलिनीद्वारा वह्नितत्वे संहरेत् ।

ततो वह्निस्थाने पायुविसर्गविसर्ज्जनीयरूपचक्षुर्वह्निरुद्रविद्याव्यानान् संस्मृत्य "ॐ ह्रूं रुद्राय तेजोऽधिपतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा" इति मन्त्रेण तान्सर्वान्वायुमण्डले संहरेत् ।

ततो वायुस्थाने उपस्थानन्दतद्विषयस्पर्शस्प्रष्टव्यवाय्वीश्वरशान्त्यपानान् संस्मृत्य "ॐ ह्रैं ईश्वराय वाय्वधिपतये शान्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा" इति तान्सर्वानाकाशस्थाने संहरेत् ।

तत आकाशस्थाने वाग्वदनवक्तव्यशब्दश्रोत्राकाशसदाशिवशान्त्यतीतप्राणान्संस्मृत्य "ॐ ह्रौं सदाशिवायाकाशाधिपतये शान्त्यतीतकलात्मने हुं फट् स्वाहा" इति तान्सर्वान्कुण्डलिन्या संहृत्य, तां बिन्दुशक्तौ, बिन्दुशक्तिं[1] परशक्तौ प्रणवेन संहृत्य "ॐ ह्रीं हुं फट् स्वाहा" इति तां परशक्तिं पूर्वोक्तपरमात्मनि संयोज्य, केवलशरीरे वामकुक्षौ पापपुरुषं चिन्तयेत् । तद्यथा—

वामकुक्षिस्थितं पापपुरुषं कज्जलप्रभम् ।
ब्रह्महत्याशिरस्कन्धं स्वर्णस्तेयभुजद्वयम् ॥२२॥

---

१ ख. प्रत. परमयमस्रो विशेषः—"नादशक्तौ नादशक्तिं" इति ।

सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम् ।
तत्संसर्गिपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ॥२३॥

उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम् ।
खङ्गचर्म्मधरं क्रुद्धं कुक्षौ पापं विचिन्तयेत् ॥२४॥

इति पापपुरुषं सञ्चिन्त्य, वामनासारन्ध्रेण वायुबीजेन सह वायुमापूर्य्य, नाभिस्थषट्कोणाकारे वायुमण्डले संयोज्य, तत्र 'य' इति वायुबीजं कृष्णवर्णं सञ्चिन्त्य कुम्भकेन 'यं' बीजमावर्त्तयंस्तदुद्भूतेन प्रचण्डवायुना सपापपुरुषं स्वदेहं संशोष्य, तं वायुं दक्षिणनासया विरेच्य, पुनर्दक्षिणनासया 'र' बीजेन सह वायुमापूर्य्य, मूलाधारे संयोज्य, तत्रस्थवह्निमण्डले 'र' इति वह्निबीजं रक्तवर्णं विचिन्त्य, कुम्भकेन 'रं' इति बीजमावर्त्तयंस्तदुत्थितेन महावह्निना सपापपुरुषं स्वदेहं संदह्य, पापपुरुषभस्मना सह तं वायुं वामनासया विरेच्य, पुनर्वामनासया 'व' बीजेन सह वायुमापूर्य्य, ब्रह्मरन्ध्रे संयोज्य, तत्रस्थितचिच्चन्द्रमण्डले 'व' इत्यमृतबीजं शुक्लवर्णं सञ्चिन्त्य, कुम्भकेन 'वं' बीजमावर्त्तयंस्तन्निःसृतामृतधारया स्वदेहभस्म संसिच्य, तं वायुं दक्षिणनासया विरेच्य, पुनर्दक्षिणनासया 'ल' बीजेन सह वायुमापूर्य्य, मूलाधारस्थपार्थिवमण्डले संयोज्य, तत्र 'ल' इति पृथिवीबीजं पीतवर्णं सञ्चिन्त्य कुम्भकेन 'लं' बीजमावर्त्तयंस्तदुद्भूतेन तेजसाऽमृतप्लावितं भस्म घनीकृत्य, तं वायुं वामनासया विरेच्य, पुनर्वामनासया मायाबीजेन सह वायुमापूर्य्य, मूलाधारस्थबिन्दुमध्ये मायाबीजं स्फुरद्बालार्कवर्णं सञ्चिन्त्य, कुम्भकेन मायाबीजमावर्त्तयंस्तेन करचरणाद्यवयवसमेतं स्वदेहं निष्पन्नं विभाव्य, तं वायुं दक्षिणनासया विरेचयेदिति स्थूलशरीरं निष्पाद्य सूक्ष्मशरीरं निष्पादयेत् । तद्यथा—

तत्र पूर्वोक्तसहस्रारकमलस्थितपरमात्मनः सकाशात्सकलजगत्सिसृक्षाविजृम्भितपरब्रह्मेच्छारूपिणीं परशक्तिं—"ॐ ह्रीं नमः" इति स्वस्थानमानीय, ततो नादशक्तिं, ततो बिन्दुशक्तिं प्रणवेन सृष्ट्वा, बिन्दुशक्तेः सकाशात्सकलजगत्सृष्टिहेतुभूतां कुण्डलिनीं प्रणवेन निःसार्य्य, ततः "ॐ हौं सदाशिवाय आकाशाधिपतये शान्त्यतीतकलात्मने नमः" इति प्राणशान्त्यतीतसदाशिवाकाशश्रोत्रशब्दवक्तव्यवदनवाचः आकाशस्थाने स्थापयेत् ।

ततः आकाशमण्डलात् "ॐ हें ईश्वराय वाय्वधिपतये शांतिकलात्मने नमः" इति मन्त्रेणापानशान्तीश्वरवायुस्पृष्टव्यस्पर्शतद्विषयानन्दोपस्थान्वायुस्थाने स्थापयेत् ।

ततो वायुमण्डलात्—"ॐ ह्रू रुद्राय तेजोऽधिपतये विद्याकलात्मने नम." इति मंत्रेण व्यानविद्यारुद्रतेजश्चक्षूरूपविसर्ज्जनीयविसर्गपायूनग्निस्थाने स्थापयेत्।

ततोऽग्निमण्डलात् "ॐ ह्री विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने नम" इति मन्त्रेणोदानप्रतिष्ठाविष्णुजलरसनारसदातव्यादानहस्तानपा स्थाने स्थापयेत्।

ततो जलमण्डलात् "ॐ ह्रौं ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्तिकलात्मने नम." इति मन्त्रेण समाननिवृत्तिपृथिवीघ्राणगन्धगन्तव्यगमनक्रियापादेन्द्रियाणि पृथिवीस्थाने स्थापयित्वा, नादशक्तिविन्दुशक्तिपरशक्तीना प्रणवेन स्वदेहे व्याप्ति विभाव्य, ब्रह्मरन्ध्रस्थपरमात्मन. सकाशात्कुण्डलिन्या जीवात्मान संहृतवर्णवर्णाधिदेवतासहितमाज्ञादिचक्रेषु तत्तद्वर्णवर्णाधिदेवताः स्थापयन्हृदयकमलमानीय, हृदयकमले जीवात्मान 'सोह' इति मन्त्रेण स्थापयित्वा, कुण्डलिनी सुषुम्णामार्गेण मणिपूरकादिचक्रेषु तत्तद्वर्णवर्णाधिदेवताः स्थापयन्मूलाधार नीत्वा, तत्र ता स्थापयेत्।

तत' स्वशरीर निरस्तसकलकलुष तेजोरूप देवताराधनयोग्य विभाव्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। सा यथा—

"शिरसि—ब्रह्मविष्णुशिवेभ्य ऋषिभ्यो नम, मुखे—ऋग्यजु सामभ्यः छन्दोभ्यो नम, हृदये—पराप्राणशक्त्यै देवतायै नम, गुह्ये—आ बीजाय नमः, पादयो—ह्रीं शक्तये नमः, नाभौ—क्रो कीलकाय नम, इति विन्यस्य मम प्राणप्रतिष्ठार्थे विनियोग" इति कृताञ्जलिर्वदेत्।

तत "ॐ आ ह्री क्रों अं कं खं गं घं ङं आकाशवाय्वग्निसलिलपृथिव्यात्मने आ हृदयाय नम। ॐ आ ह्री क्रों इ च ४ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ई शिरसे स्वाहा। ॐ आ ह्री क्रो उ ट ४ श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊ शिखायै वषट्। ॐ आ ह्री क्रो ए तं ४ वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐ कवचाय हुँ। ॐ आ ह्री क्रो ओ प ४ वचनादानविसर्गगमनानन्दात्मने औ नेत्राय वौषट्। ॐ आं ह्री क्रो अ य ६ मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट्।" इति मन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्त करयोर्विन्यस्य हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत्। ततो नाभ्यादिपादद्वयाग्रान्त—'आं नम', कण्ठादिनाभ्यन्त—'ह्री नम.', मूर्द्धादिकण्ठान्त-'क्रों नम.'। ततो हृदयकमले वायव्यदले—'य नम' आग्नेये—'रं नम', पूर्वे—'ल०', पश्चिमे—'व०,' ईशाने—'श०', नैऋते 'ष०', उत्तरे—'सं०', दक्षिणे—'ह०', कर्णिकाया—'क्ष नम' इति विन्यस्य ततो ध्यानम्—

रक्ताब्धिपोतारुणपद्मसंस्था,
पाशाङ्कुशाविक्षुशरासबाणान् ।
शूलं कपाल दधतीं कराब्जै
रक्तां त्रिनेत्रां प्रणमामि देवीम् ॥२५॥

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये [1]तदाद्यधस्थयोरपरे । इत्यायुधध्यानम् । शरासो धनुः ।
इति ध्यात्वा हृदि हस्त निधाय—

"ॐ आं ह्रीं क्रों य र ल व श षं सं हों ह स सों ह मम प्राणा इह प्राणाः, आमित्यादि मम जीव इह स्थित', आमित्यादि मम सर्वेन्द्रियाणि, आमित्यादि मम वाङ्मनःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुख चिर तिष्ठन्तु स्वाहा ॐ" इति प्राणप्रतिष्ठामन्त्र जपित्वा, निजवपुर्ज्योतीरूप ध्यायेत् । **इति प्राणप्रतिष्ठाविधिः ।**

॥ अथ मातृकान्यासः ॥

तत्र मातृकायाः प्राणायामत्रय कृत्वा मातृकान्यासं कुर्यात् । तत्र स्वरैः पूरकः, कादिभिः कुम्भकः, यादिभी रेचक इति प्राणायामक्रमो ज्ञेयः ।

इति प्राणायामत्रय कृत्वा "शिरसि—ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे—गायत्र्यै छन्दसे नमः, हृदये—श्रीमातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः, गुह्ये—हल्भ्यो बीजेभ्यो नम , पादयोः—स्वरेभ्य शक्तिभ्यो नम , नाभौ—व्यक्तये कीलकाय नम', इति विन्यस्य मातृकान्यासे विनियोगः" इति कृताञ्जलिर्वदेत् ।

ततो दक्षकरतले—"अ नमः, तत्पृष्ठे—आ, तत्करभे—इं०", तदङ्गुष्ठादिवामाङ्गुष्ठान्तासु दशस्वङ्गुलीषु तुर्यस्वराद्योकारान्त विन्यस्य, स्ववामकरभतत्पृष्ठतलेषु औकारादिविसर्गान्त न्यसेत् । अय **केवलो न्यासः** ।

ततो वामकरतलादिदक्षकरतलान्तं विसर्गाद्यकारान्तान्स्वरान्सबिन्दुकान्न्यसेत् । अयं **संहारन्यासः** ।

दक्षकरतलादिवामकरतलान्तं सविसर्गान्स्वरान्न्यसेत् । अय **सृष्टिन्यासः** ।

वामकनिष्ठादितत्तलान्तमष्टौ स्वरान् बिन्दुविसर्गसहितान् लृकारादीन्विन्यस्य दक्षकरतलादितत्कनिष्ठान्तमकारादिऋकारान्तानष्टौ स्वरान्बिन्दुविसर्गयुक्तान्न्यसेदिति **स्थितिन्यासः** ।

---

१ ख इत प्रागयमशो विशेष—"तदाद्यधःस्थयोरन्ये" ।

इति मातृकास्वरान्विन्यस्य, तकारादीन् शान्तान् वामकनिष्ठामूलादि-तदङ्गुष्ठाग्रपर्यन्तेषु पञ्चदशस्थानेषु विन्यस्य, दक्षाङ्गुष्ठादितत्कनिष्ठाग्रान्तेषु कादिणान्तान्विन्यस्य,करद्वयेऽप्यङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्त युगपदेव षादिक्षान्तान्पञ्चवर्णान् व्यापकत्वेन न्यसेत् ।

इति मातृकावर्णै करशुद्धिं विधायाङ्गुष्ठयोः-"अ कं ख ग घ ङं आं हृदयाय नम, तर्ज्जन्योः--इ च छं ज झ ञ ईं शिरसे स्वाहा, मध्यमयोः--उ ट ठ ड ढ ण ऊ शिखायै वषट्, अनामिकयोः—ए त थ द ध नं ऐ कवचाय हु, कनिष्ठयोः—ओ प फ ब भ म औं नेत्राय वौषट्, करतलपृष्ठयो —अ य र ल व श ष स ह क्ष अः अस्त्राय फट् ।" इति करयोर्विन्यस्यैतानेव मन्त्रान् हृदयशिरश्शिखाकवचनेत्रेषु विन्यस्याऽस्त्रमन्त्रेण तालत्रय दशदिग्बन्धन च कृत्वा—

व्योमेन्द्वौ रसनार्णकर्णिकमचा द्वन्द्वै स्फुरत्केसर,
पत्रान्तर्गतपञ्चवर्गयशलार्णादित्रिवर्गं क्रमात् ।
आशास्वश्रिषु सान्तलाङ्गलियुजा क्षोणीपुरेणावृत,
वर्णाब्जं शिरसि स्थित विषगदप्रध्वंसि मृत्युञ्जयम् ॥२६॥

ध्यायेदिति शेषः । इति ब्रह्मरन्ध्रे वर्णारविन्द वक्ष्यमाणरूपं ध्यात्वाऽन्तर्न्यासपूर्वक बहिर्न्यास कुर्य्यात् । तत्र—

मूलाधारध्वनिं श्रुत्वा प्रवुद्धा शक्तिकुण्डली ।
ज्वलत्पावकसङ्काशा सूक्ष्मा तेज.स्वरूपिणी ॥२७॥

मूलाधाराच्छिरःपद्म स्पृशन्ती विद्युदाकृति. ।
तया स्पृष्टशिर पद्मादमृतौघस्वरूपिणः ॥२८॥

निर्गतान्मातृकावर्णान् सुषुम्णावर्त्मना तनुम् ।
व्यापयित्वा स्थितान्सर्वानेव ध्यात्वा प्रविन्यसेत्॥२९॥

इति सूक्ष्मरूपां वर्णतन् ध्यात्वा, कण्ठे विशुद्धिचक्रे षोडशदलकमलमूर्ध्वमुख ध्यात्वा, तद्दलेषु पूर्वादिप्रादक्षिण्येन "ॐ अ नम, ॐ आ नम, ॐ इं नम, ॐ ई नम, ॐ उ नम, ॐ—ऊ नम, ॐ ऋं नम., ॐ ॠं नम, ॐ लृ नम, ॐ ॡ नम, ॐ ए नम, ॐ ऐं नम, ॐ ओ नम, ॐ औ नम, ॐ अं नम, ॐ अः नम," इति विन्यस्य—

हृदये अनाहतचक्र द्वादशदलकमल ध्यात्वा, तद्दलेषु पूर्वादिप्रादक्षिण्येन ॐ कं नम, ॐ ख नम, एव ग०, घ०, ङ०, चं०, छ०, ज०, झ०, ञ०, ट०,

ठ नमः, ततो नाभिमण्डले दशदलकमलं मणिपूरकचक्रं प्राग्वद्ध्यात्वा, तद्दलेषु पूर्वादिप्रादक्षिण्येन—"ॐ ङ नमः, एवं ढ०, ण०, त०, थ०, द०, धं०, न०, प०, फ नमः" इति विन्यस्य ।

लिङ्गमूले स्वाधिष्ठानचक्रं षड्दलकमलं ध्यात्वा, तद्दलेषु प्रादक्षिण्येन "ॐ ब नमः, एवं भ०, म०, य०, र०, ल नमः"। ततो मूलाधारचक्रं चतुर्दलकमलं ध्यात्वा 'ॐ व नमः', एवं श०, ष०, स नमः", ततो भ्रूमध्ये आज्ञाचक्रं द्विदलकमलं ध्यात्वा तद्दलेषु "ह नमः, क्ष नमः" इत्यन्तर्मातृकां विन्यस्य बहिर्मातृकान्यासं कुर्य्यात् । अत्र मातृकान्यासो मनसैव कार्यः ।

पुष्पैरनामया वापि मनसा वा न्यसेदणून् ।

इति श्रीदक्षिणामूर्त्तिसंहितावचनात् । "एवमन्तः प्रविन्यस्य मनसाऽतो बहिर्न्यसेत्" इति कुम्भसम्भववचनाच्च । अत्र 'समुच्चये अणून्मन्त्रान्' अत्रैव व्यवस्था—पुष्पैर्देवतामूर्त्तौ, अनामया स्वदेहे, मनसा मूलाधारादिचक्रेषु तत्र करस्पर्शाऽसम्भ—वात् । अनामया साङ्गुष्ठया—

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु न्यासः सर्वत्र सम्मतः ।

इति पञ्चवाहिनीवचनात् । इति ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासव्यतिरिक्तेष्वियं व्यवस्था ज्ञेया । तत्रानङ्गुष्ठानां सर्वाङ्गुलीनां विहितत्वात्तथैव सम्प्रदायात्तु षडङ्गमुद्राणामपि पृथक् पृथक् प्रतिपादनाच्चेति ।

अथ बहिर्न्यासः । तत्र ध्यानम्—

पञ्चाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदोःपादयुक्कुक्षिवक्षो—
देशां भास्वत्कपर्द्दाकलितशशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम् ।
अक्षस्रक्कुम्भचिन्तालिखितवरकरां त्रीक्षणां पद्मसंस्था—
मच्छाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामि ॥३०॥

चिन्तालिखितं पुस्तकम् । दक्षिणोर्ध्वकरमारभ्य दक्षिणाधःकरपर्यन्त-मायुधध्यानम् । इति पूर्वोक्ते ब्रह्मरन्ध्रस्थवर्णारविन्दे मातृकासरस्वतीं ध्यात्वा—

"शिरसि—अ नमः, मुखवृत्ते—आ नमः, दक्षिणनेत्रे—इ नमः, वामे—ई नमः, दक्षिणकर्णे—उ नमः, वामकर्णे—ऊ नमः, दक्षिणनासापुटे—ऋ नमः, वामे—ॠ नमः, दक्षिणगण्डे-ऌ नमः, वामे—ॡ नमः, ओष्ठे—ए नमः, अधरे—ऐ नमः, ऊर्ध्वदन्ते—ओ नमः, अधोदन्ते—औ नमः, तालुमूले—अं नमः, जिह्वाग्रे—अः नमः, दक्षिणबाहुमूले—क नमः, मध्ये—ख नमः, मणिबन्धे—ग नमः, अङ्गुलिमूले—घ नमः, अङ्गुल्यग्रे—ङ नमः, वामबाहुमूले—च नमः, मध्ये—छ नमः, मणिबन्धे—ज

नम , अङ्गुलिमूले—भं नम , अङ्गुल्यग्रे—ञ नमः, दक्षोरुमूले—ट नमः, जानुनि —ठ नम., गुल्फे—ड नमः, अङ्गुलिमूले—ढ नमः, अङ्गुल्यग्रे—णं नम , वामोरुमूले—त नम , जानुनि—थ नम', गुल्फे—द नम , अङ्गुलिमूले—ध नम., अङ्गुल्यग्रे—न नम', जठरे—प नम , हृदये—य नम , दक्षिणांसे—रं नम , ककुदि—ल नम', वामासे—व नम., हृदयादिदक्षिणकराग्रपर्यन्त—शं नमः, हृदयादिवामकराग्रपर्यन्त—ष नम, हृदयादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तं—स नम', हृदयादिवामपादाग्रपर्यन्त—हं नम., हृदयादिनाभ्यन्त—ल नम, हृदयादिमूर्द्धान्त—क्ष नम" ।

इति **केवलमातृकान्यासः** ।

अत्र केवलेऽपि विन्दुयुक्तत्वमक्षराणा वीर्ययोजनार्थमिति सम्प्रदाय ।

॥ अथ बिन्दुमातृकान्यासः ॥

तत्र ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासास्तु प्रागुक्ता एव । ध्यान तु—

अक्षस्रज हरिणपोतमुदग्रटङ्कं,
विद्या करैरविरत दधतीं त्रिनेत्राम् ।
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दवासा,
वर्णेश्वरी प्रणमत स्तनभारनम्राम् ॥३१॥

विद्यापुस्तक दक्षाद्यूर्द्ध्वयोराद्ये तदाद्यस्थयोरन्ये । इति वर्णारविन्दे ध्यात्वा-"मूर्द्धादिहृदयान्त—क्ष नम , नाभ्यादिहृदयान्त—"स[1] नम', इत्यादि शिरसि—अ नम", इत्यन्त संहारक्रमेण यस्य वर्णस्य यत् स्थान तत्र तत्र तदक्षर न्यसेत् ।

॥ अथ विसर्गमातृकान्यासः[2] ॥

तत्र ऋष्यादिध्यानान्त केवलमातृकान्यासोक्तमेव "अ नमः आ नम" इत्यादिविसर्गान्तान्केवलमातृकान्यासस्थानेष्वेव न्यसेदिति **सविसर्गः सृष्टिमातृकान्यासः** ।

॥ अथ विन्दुविसर्गयुक्तस्थितिमातृकान्यास' ॥

तत्र ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासा. केवलमातृकान्यासवदेव । ध्यान तु—

सिन्दूरकान्तममिताभरणं त्रिनेत्रं,
विद्याक्षसूत्रमृगपोतवर दधानम ।
पार्श्वस्थिता भगवतीमपि काञ्चनाभा,
ध्यायेत्कराब्जधृतपुस्तकवर्णमालाम् ॥३२॥

---

१. ख. ल । २. ख. विसर्गयुक्तमातृकान्यास ।

वामाद्यध:करयोराद्ये तदाद्यूर्द्ध्वयोरन्ये इत्यायुधध्यानं शिवस्य, देव्यास्तु वामादि । इति वर्णारविन्दे ध्यात्वा "दक्षिणगुल्फे—ड. नमः, अङ्गुलिमूले—ढः नमः, अङ्गुल्यग्रे—णं नमः, वामोरुमूले—त नमः, इत्यादि हृदयादिमूर्द्धान्त—क्षः नमः इत्यन्त केवलमातृकान्यासस्थानेष्वेव न्यसेत् । इति स्थितिमातृकान्यासः ।

अत्र यतिवानप्रस्थैरादौ सृष्टिस्तत. स्थितिस्ततः संहार इति क्रमेण कार्यः । गृहस्थैस्तु प्रथम संहारस्ततः सृष्टिस्तत. स्थितिः कार्यः । ब्रह्मचारिभिरादौ स्थितिस्तत सहारस्तत सृष्टिरिति। अत्र केचिद्गृहस्थैः सृष्टिस्थितिसहारानन्तर पुनः सृष्टिस्थिती कार्ये तेन स्थित्यन्तता स्यात् । एव ब्रह्मचारिभि सृष्टिस्थितिसंहारानन्तर पुन सृष्टिन्यास. कार्य । एवं कृते स्थित्यन्तता, सृष्ट्यन्तता, सहारान्तता भवतीत्याहु । अत्र यथागुरूपदेश कार्य्यमिति ।

॥ अथ तारोत्थैकपञ्चाशत्कलामातृकान्यास ॥

तत्र "शिरसि—प्रजापतये ऋषये नमः, मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—कलारूपिण्यै मातृकासरस्वत्यै देवतायै नम, इति विन्यस्य न्यासे विनियोग" इति कृताञ्जलिर्वदेत् ।

"अ ॐ आ हृदयाय नम., इ ॐ ई शिरसे स्वाहा, उ ॐ ऊ शिखायै वषट्, ए ॐ ऐ कवचाय हु, ओ ॐ औं नेत्राय वौषट्, अ ॐ अ अस्त्राय फट् ।" इति कराङ्गन्यास । ततो ध्यानम्—

हस्तैः पद्मं रथाङ्ग गुणमथ हरिण पुस्तक वर्णमाला,
टङ्कं शुभ्रं कपाल दरममृतलसद्धेमकुम्भ वहन्तीम् ।
मुक्ताविद्युत्पयोदस्फटिकनवजपाबन्धुरैः पञ्चवक्त्रै—
स्त्र्यक्षैर्वक्षोजनम्रां सकलशशिनिभा शारदा ता नमामि ॥३३॥

दर शङ्ख, गुण. पाशः, वामाद्यध. करयोराद्ये, तदाद्यूर्द्ध्वयोरन्ये, तदाद्यूर्द्ध्वयोरपरे, तदाद्यूर्द्ध्वयोरितरे इत्यायुधध्यानम् ।

इति वर्णारविन्दे ध्यात्वा न्यसेत् । तद्यथा—"ॐ अ निवृत्यै नमः, ॐ आ प्रतिष्ठायै नम, ॐ इं विद्यायै नम., ॐ ई शान्त्यै नम., ॐ उ इन्धिकायै नम, ॐ ऊ दीपिकायै नम., ॐ ऋ रेचिकायै नम, ॐ ॠ मोचिकायै नम, ॐ ऌ परायै नम, ॐ ॡ सूक्ष्मायै नम., ॐ एं सूक्ष्मामृतायै नम, ॐ ऐ ज्ञानामृतायै नम, ॐ ओ आप्यायिन्यै नम., ॐ औ व्यापिन्यै नम, ॐ अ व्योमरूपिण्यै,

नम., ॐ अ. अनन्तायै नमः, ॐ क सृष्ट्यै नम., ॐ ख ऋद्ध्यै नम., ॐ ग स्मृत्यै नम., ॐ घ मेधायै नम, ॐ ङ कान्त्यै नम., ॐ च लक्ष्म्यै नम., ॐ छ द्युत्यै नम., ॐ ज स्थिरायै नमः, ॐ झ स्थित्यै नम , ॐ ञ सिद्ध्यै नम , ॐ ट जरायै नमः, ॐ ठ पालिन्यै नम., ॐ ड शान्त्यै नमः, ॐ ढ ऐश्वर्य्यायै नमः, ॐ ण रत्यै नम., ॐ त कामिकायै नम , ॐ थ वरदायै नमः, ॐ द ह्लादिन्यै नमः, ॐ ध प्रीत्यै नमः, ॐ न दीर्घायै नम , ॐ प तीक्ष्णायै नम, ॐ फ रौद्र्यै नम ; ॐ बं भयायै नम., ॐ भ निद्रायै नम., ॐ म तन्द्रायै नमः, ॐ य क्षुधायै नम., ॐ र क्रोधिन्यै नम , ॐ ल क्रियायै न०., ॐ व उल्कार्य्यै नम , ॐ श मृत्युरूपायै नमः, ॐ ष पीतायै नम., ॐ स श्वेतायै नम., ॐ ह् अरुणायै नम., ॐ ल असितायै नमः ॐ क्ष अनन्तायै नम ।" इति शुद्धमातृकास्थानेषु न्यसेत् ।

अत्र नादात्मन सदाशिवात् सम्भूताः स्वरकलाः श्वेता अक्षस्रक्पुस्तकपाशकपालकरा ध्येया । कचवर्गकला अकाराद् ब्रह्मण उत्पन्नाः पीता अक्षस्रक्पङ्कजाभयकमण्डलुकरा ध्येया । टतवर्गजा उकाराद् विष्णोरुत्पन्ना. श्यामा अभयशङ्खचक्रवरहस्ता ध्येया. । पयवर्गजा मकाराद्रुद्रादुत्पन्ना शरच्चन्द्रनिभा अभयशूलकपालवरहस्ता ध्येया. । पादिपञ्चवर्णजा ईश्वराद् बिन्दोरुत्पन्ना रक्ता अभयहरिणटङ्कवरहस्ता ध्येया इति तारोत्थकलामातृकान्यासः ।

॥ अथ केशवादिमातृकान्यासः ॥

तत्र "साध्यनारायणऋषिर्गायत्रीछन्द श्रीलक्ष्मीनारायणो देवता न्यासे विनियोग." इति ऋष्यादिक स्मृत्वा मूर्द्धादिषु प्राग्वच्चतुर्थीनमोऽन्तेन विन्यस्य ॐ अ क ख ग घ ङ आ क्लां हृदयाय नमः, इ च छ ज झ ञ ई क्लीं शिरसे स्वाहा, उ ट ठं ड ढ ण ॐ क्लू शिखायै वषट्, ए त थ द ध न ऐं क्लैं कवचाय हुम्, ओं प फ ब भ म औ क्लौं नेत्राय वौषट्, ॐ अ य र लं व श ष सं ह् ल क्ष अ. क्लः अस्त्राय फट्" इति मन्त्रै. प्राग्वत्करषडङ्गन्यास कृत्वा—

विद्यारविन्दमुकुरामृतकुम्भपद्म-
कौमोदकीदरसुदर्शनशोभिहस्तम् ।
सौदामिनीमुदिरकान्ति विभाति लक्ष्मी-
नारायणात्मकमखण्डितमात्ममूर्त्ते ॥३४॥

वपुरिति शेषः। वामाद्यध करमारभ्य दक्षिणाध करपर्यन्तमायुधध्यानमिति ध्यात्वा—"ॐ क्लीं अं केशवाय कीर्त्यै नमः, क्लीं आं नारायणाय कान्त्यै नमः, क्लीं इं माधवाय तुष्ट्यै नमः, क्लीं ईं गोविन्दाय पुष्ट्यै नमः, क्लीं उं विष्णवे धृत्यै नमः, एवं ऊं मधुसूदनाय शान्त्यै नमः, ऋं त्रिविक्रमाय क्रियायै नमः, ॠं वामनाय दयायै०, लृं श्रीधराय मेधायै०, ॡं हृषीकेशाय हर्षायै०, एं पद्मनाभाय श्रद्धायै०, ऐं दामोदराय लज्जायै नमः, ओं वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमः, औं सङ्कर्षणाय सरस्वत्यै नमः, अं प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नमः, अः अनिरुद्धाय सरस्वत्यै नमः, कं चक्रिणे जयायै नमः, खं गदिने दुर्गायै नमः, गं शार्ङ्गिणे प्रभायै नमः, घं खड्गिने सत्यायै नमः, ङं शङ्खिने चण्डायै नमः, चं हलिने वाण्यै नमः, छं मुसलिने विलासिन्यै नमः, जं शूलिने विजयायै नमः, झं पाशिने विरजायै नमः, ञं अङ्कुशिने विश्वायै नमः, टं मुकुन्दाय विनदायै नमः, ठं नन्दजाय सुनन्दायै नमः, डं नन्दिने स्मृत्यै नमः, ढं नराय ऋद्ध्यै नमः, णं नरकजिते समृद्ध्यै नमः, तं हरये शुद्ध्यै नमः, थं कृष्णाय भुक्त्यै नमः, दं सत्याय बुध्यै नमः, धं सात्वताय मत्यै नमः, नं शौरये क्षमायै नमः, पं शूराय रमायै नमः, फं जनार्द्दनायामोघायै नमः, बं भूधराय क्लेदिन्यै नमः, भं विश्वमूर्त्तये क्लिन्नायै नमः, मं वैकुण्ठाय वसुदायै नमः, यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधायै नमः, रं असृगात्मने बलिने परायै नमः, लं मांसात्मने बलानुजाय परापरायै[1] नमः, वं मेदआत्मने बलाय सूक्ष्मायै नमः, शं अस्थ्यात्मने वृषघ्नाय सध्यायै नमः, षं मज्जात्मने वृषाय प्रज्ञायै नमः, सं शुक्रात्मने हंसाय प्रभायै नमः, हं प्राणात्मने वराहाय निशायै नमः, ळं शक्त्यात्मने विमलायामोघायै नमः, क्षं परमात्मने नृसिंहाय विद्युतायै नमः।" इत्येकपञ्चाशन्मूर्त्तिशक्तीः केवलमातृकास्थानेषु न्यसेत्।

केशवाद्या इमे श्यामाश्चक्रगङ्खलसत्कराः।
शक्तयस्तु प्रियाङ्केषु निषण्णाः सस्मितानना ॥ ३५॥
विद्युद्दामसमानाङ्ग्यः पङ्कजाभयबाहवः।

इति ध्येयाः। इति केशवादिमातृकान्यासः।

॥ अथ श्रीकण्ठादिमातृकान्यासः ॥

तत्र "दक्षिणामूर्त्तिरृषिर्गायत्रीच्छन्दः श्रीअर्द्धनारीश्वरो देवता न्यासे विनियोगः" इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, विन्यस्य करषडङ्गन्यासं कुर्यात्। तद्यथा—

---

१. क. परायणायै।

"अ क ख ग घ ङ आ ह्स्रां हृदयाय नमः, इ च छ ज झ ञ ईं ह्स्रीं शिरसे स्वाहा, उ ट ठ ड ढ ण ऊ ह्स्रूं शिखायै वषट्, ए त थ द ध न ऐ ह्स्रैं कवचाय हुं, ओ प फ ब भ म औ ह्स्रौं नेत्राय वौषट्, अं य र ल व श ष स ह ल क्ष अः ह्स्रः अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्त करयोर्विन्यस्य हृदयादिष्वपि षडङ्गेषु न्यसेत् । ततो ध्यानम्—

बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां,
पाशाङ्कुशौ च वरदं निजबाहुदण्डैः ।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्द्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामः ॥३६॥

दक्षाधःकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् । इति ध्यात्वा न्यसेत् । तद्यथा—"ह्स्रौं अं श्रीकण्ठेशाय पूर्णोदर्य्यै नमः, ह्स्रौं आं अनन्तेशाय विरजायै नमः, ह्स्रौं इं सूक्ष्मेशाय शाल्मल्यै नमः, ह्स्रौं ईं त्रिमूर्त्तीशाय लोलाक्ष्यै नमः, ह्स्रौं उं अमरेशाय वर्त्तुलाक्ष्यै नमः, ह्स्रौं ऊं अर्घीशाय दीर्घघोणायै नमः, ह्स्रौं ऋं भारभूतीशाय दीर्घमुख्यै नमः, ह्स्रौं ॠं तिथीशाय गोमुख्यै नमः, ह्स्रौं लृं स्थाणवीशाय[1] दीर्घजिह्वायै नमः, ह्स्रौं ॡं हरेशाय कुण्डोदर्य्यै नमः, ह्स्रौं एं झिण्टीशायोर्द्ध्वकेश्यै नमः, ह्स्रौं ऐं भौतिकेशाय विकृतमुख्यै नमः, ह्स्रौं ओं सद्योजातेशाय ज्वालामुख्यै नमः, ह्स्रौं औं अनुग्रहेशायोल्कामुख्यै नमः, ह्स्रौं अं अक्रूरेशाय श्रीमुख्यै नमः, ह्स्रौं अः महासेनेशाय विद्यामुख्यै नमः, ह्स्रौं कं क्रोधीशाय महाकाल्यै०, ह्स्रौं खं चण्डेशाय सरस्वत्यै०, ह्स्रौं गं पञ्चान्तकेशाय सर्वसिद्धिगौर्य्यै०, ह्स्रौं घं शिवोत्तमेशाय त्रैलोक्यविद्यायै०, ह्स्रौं ङं एकरुद्रेशाय मन्त्रशक्त्यै०, ह्स्रौं चं कूर्मेशायात्मशक्त्यै० ह्स्रौं छं एकनेत्रेशाय भूतमात्रे०, ह्स्रौं जं चतुराननेशाय लम्बोदर्य्यै०, ह्स्रौं झं अजेशाय द्राविण्यै०, ह्स्रौं ञं सर्वेशाय नागर्य्यै० ह्स्रौं टं सोमेशाय खेचर्य्यै०, ह्स्रौं ठं लाङ्गलीशाय मञ्जर्य्यै०, ह्स्रौं डं दारुकेशाय[2] रूपिण्यै०, ह्स्रौं ढं अर्द्धनारीशाय वीरिण्यै०, ह्स्रौं णं उमाकान्तेशाय काकोदर्य्यै०, ह्स्रौं तं आषाढीशाय पूतनायै०, ह्स्रौं थं दण्डीशाय भद्रकाल्यै०, ह्स्रौं दं अत्रीशाय योगिन्यै०, ह्स्रौं धं मीनेशाय शङ्खिन्यै०, ह्स्रौं नं मेषेशाय गर्ज्जिन्यै०, ह्स्रौं पं लोहितेशाय कालरात्र्यै०, ह्स्रौं फं शिखीशाय कुर्दिन्यै०, ह्स्रौं बं छगलण्डेशाय कपर्द्दिन्यै०, ह्स्रौं भं द्विरण्डेशाय रेवत्यै०, ह्स्रौं मं महाकालेशाय जयायै०, ह्स्रौं यं त्वगात्मने

१ ख शारावीशाय । २. ख. दारुकेशाय ।

वालीशाय सुमुख्यै०, ह्स्रौ र असृगात्मने भुजङ्गेशाय रेवत्यै०, ह्स्रौः लं मासात्मने पिनाकीशाय माधव्यै०, ह्स्रौ व मेदआत्मने खड्गीशाय वारुण्यै०, ह्स्रौ श अस्थ्यात्मने वकेशाय वायव्यै०, ह्स्रौ ष मज्जात्मने श्वेतेशाय रक्षोवधारिण्यै०, ह्स्रौः स शुक्रात्मने भृग्वीशाय सहजायै०, ह्स्रौ ह प्राणात्मने नकुलीशाय महालक्ष्म्यै०, ह्स्रौ ल शक्त्यात्मने शिवेशाय व्यापिन्यै०, ह्स्रौ क्ष परमात्मने सवर्त्तेशाय महामायायै नम ।" इति केवलमातृकान्यासस्थानेषु न्यसेत् ।

अत्र रुद्रा स्मृता रक्ता धृतशूलकपालका ।
शक्तयो रुद्रपीठस्थाः सिन्दूरारुणविग्रहा ॥३७॥
रक्तोत्पलकपालाभ्यामलङ्कृतकराम्बुजा ।

इति मूर्त्तिशक्तीना ध्यानम्[1] । इति श्रीकण्ठादिन्यासः ।

॥ अथ भुवनेश्वरीमातृकान्यासः ॥

तत्र "शक्तिऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीमातृकामयी भुवनेश्वरी देवता न्यासे विनियोग." इति ऋष्यादिक स्मृत्वा, मूर्द्धादिषु चतुर्थीनमोऽन्तेन विन्यस्य—

"अ कं खं ग घं ङं आ ह्रां हृदयाय नम, इं च छं ज झ ञं ई ह्रीं शिरसे स्वाहा, उ ट ठं ड ढ णं ऊ ह्रूं शिखायै वषट्, ए त थ द ध न ऐ ह्रैं कवचाय हु, ओ प फ ब भ म औ ह्रौं नेत्राय वौषट्, अ य र ल व श ष सं ह ल क्ष अः ह्रः अस्त्राय फट्" इति षड्ङ्गमन्त्रैः करषडङ्गन्यासं विधाय—

उद्यत्कोटिदिवाकरप्रतिभटा तुङ्गोरुपीनस्तनी,
बद्धार्द्धेन्दुकिरीटहाररसनामञ्जीरसशोभिता ।
बिभ्राणा करपङ्कजैर्जपवटी पाशाङ्कुशौ पुस्तकं,
दिश्यान्नो जगदीश्वरी त्रिनयना पद्मे निषण्णा सुखम् ॥३८॥

दक्षाध.करमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् । इति वर्णारविन्दे ध्यात्वा, "ह्रीं अ नमः, ह्रीं आ नम, ह्रीं इ नम," इत्यादि "ह्रीं क्ष नम." इत्यन्त केवलमातृकास्थानेष्वेव न्यसेत् ।

॥ अथ बीजादिन्यास ॥

तत्र "भृगुऋषिर्गायत्रीछन्द, मातृकारूपिणी लक्ष्मीर्देवता न्यासे विनियोग" इति ऋष्यादिक स्मृत्वा, प्रागुक्तविधिना विन्यस्य—

१ क. 'ध्यान' नास्ति ।

"अ क ख ग घ ङ आ श्री हृदयाय नमः, इ च छ ज झ ञ ई श्री शिरसे स्वाहा, उ ट ठ ड ढ णं ऊ श्रू शिखायै वषट्, ए त थ द ध न ऐ श्रै कवचाय हु, ओ प फ ब भ म औं श्रौं नेत्राय वौषट्, अं य र लं व श ष स ह ल क्षं अ श्र अस्त्राय फट्।" इति षडङ्गमन्त्रैः करषडङ्गन्यासान् विधाय—

विद्युद्दामसमप्रभा हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजैः,
शुण्डादण्डसमुद्धृतामृतघटैरासिच्यमानामिमाम्।
बिभ्राणा करपङ्कजैर्जपवटीं पद्मद्वय पुस्तक,
भास्वद्रत्नसमुज्ज्वला कुचनता ध्यायेज्जगत्स्वामिनीम् ॥३९॥

दक्षाध करमारभ्य वामाध करपर्यन्तमायुधध्यानम्। इति वर्णारविन्दे ध्यात्वा "श्री अ नमः, श्री इ नमः" इत्यादि मातृकान्यासस्थानेषु न्यसेत्। **इति श्रीबीजादिमातृकान्यासः।**

॥ अथ कामबीजादिमातृकान्यासः ॥

तत्र "सम्मोहन ऋषिर्गायत्रीछन्दो मातृकामयी सम्मोहनी देवता न्यासे विनियोगः" इति ऋष्यादिक स्मृत्वा, विन्यस्य, प्रागुक्तविधिना दीर्घस्वरस्वर-सम्पुटितषड्वर्गैः षड्दीर्घयुक्तकामबीजान्वितैः करषडङ्गन्यास विधाय—

बालार्ककोटिरुचिरा स्फटिकाक्षमाला,
कोदण्डमिक्षुजनित स्मरपञ्चबाणान्।
विद्या च हस्तकमलैर्दधती त्रिनेत्रा,
ध्यायेत्समस्तजननी नवचन्द्रचूडाम् ॥४०॥

वामाद्यूर्ध्वयोः पुस्तककोदण्डौ दक्षोर्ध्वाध.करयोः पञ्चबाणाक्षमाले इत्यायुधध्यानम्। इति वर्णारविन्दे ध्यात्वा "क्ली अ नमः, क्ली आ नमः" इत्यादि मातृकास्थानेषु न्यसेत्। **इति श्रीकामबीजादिमातृकान्यासः।**

॥ अथ शक्तिश्रीकामबीजादिमातृकान्यासः ॥

तत्र "महासम्मोहन ऋषिर्गायत्रीछन्दो मातृकामयी महासम्मोहनी देवता न्यासे विनियोगः" इति ऋष्यादिक स्मृत्वा, प्राग्वद्विन्यस्य, "अ क ख ग घ ङ आ ह्री हृदयाय नमः, इ च छ ज झ ञ ई श्री शिरसे स्वाहा, उ ट ठ ड ढ ण ऊ क्ली शिखायै वषट्, ए त थ द ध न ऐ ह्री कवचाय हु,

ओ प फ ब भ म औं श्री नेत्राय वौषट्, अ य र ं ल व श ष स ह् ल क्ष अः क्ली अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रैः करषडङ्गन्यासं विधाय—

ध्यायेयमक्षवलयेक्षुशरासपाग-
पद्मद्वयाङ्कुशशरान्नवपुस्तकं च ।
आबिभ्रती निजकरैररुणा कुचार्त्ता,
सम्मोहिनी त्रिनयना नवचन्द्रचूडाम् ।।४१।।

वामाधःकरमारभ्य दक्षिणाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् । इति वर्णारविन्दे ध्यात्वा "ह्रीं श्रीं क्लीं अं नमः, ह्रीं श्रीं क्लीं आं नमः" इत्यादि मातृका-न्यासस्थानेषु न्यसेत् । इति त्रिबीजादिमातृकान्यासः ।

॥ अथ प्रपञ्चयागमातृकान्यासः ॥

तत्र महागणपतिमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा "शिरसि—गणकऋषये नमः, मुखे—[1]निवृद्गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये—श्रीमहागणपतये देवतायै नमः, गुह्ये—गं बीजाय नमः, पादयोः—स्वाहा शक्तये नमः, मम प्रपञ्चयागाङ्गत्वेन जपे विनियोगः" इति ऋष्यादिन्यासं विधाय—

"अङ्गुष्ठयोः—ॐ गां हृदयाय नमः, तर्जन्योः—श्रीं गीं शिरसे स्वाहा, मध्यमयोः—ह्रीं गूं शिखायै वषट्, अनामिकयोः—क्लीं गैं कवचाय हुम्, कनिष्ठयोः-ग्लौं गौं नेत्राय वौषट्, करतलपृष्ठयोः—गं गः अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रान-ङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयशिरःशिखाकवचनेत्रेषु च विन्यस्याऽस्त्रमन्त्रेण तालत्रयं कृत्वा तर्जन्यङ्गुष्ठशब्दैर्दशदिग्बन्धनं च विधाय—

हस्तीन्द्राननमिन्दुचूडमरुणच्छायं त्रिनेत्रं रसा-
दाश्लिष्टं प्रियया सपद्मकरया स्वाङ्कस्थया सन्ततम् ।
बीजापूरगदाधनुस्त्रिशिखयुक्चक्राब्जपाशोत्पल[2]—
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशान् हस्तैर्वहन्तं भजे ।।४२।।

गण्डाभित्तिगलद्दानपूरलालसमानसान् ।
द्विरेफान् कर्णतालाभ्यां वारयन्तं मुहुर्मुहुः ।।४३।।

कराग्रधृतमाणिक्यकुम्भवक्त्रविनिर्गतैः ।
रत्नवर्षैः प्रीणयन्तं साधकान्मधुविह्वलम् ।।४४।।

१. ख. निचृद्गायत्री० । २. क. ० पाश्योत्पल ।

माणिक्यमुकुटोपेतं रत्नाभरणभूषितम् ।
युगपत्सेवित देवैरसुरैश्च मुहुर्मुहुः ॥४५॥

वामाध करमारभ्य दक्षाध करपर्यन्तमायुधध्यानम् । रत्नघटं शुण्डाग्रे । इति गणपतिं ध्यात्वा—ॐ श्री ह्री क्ली ग्लौं ग गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा" इति मन्त्रमष्टधा जपित्वा—

"गणपतिवीजस्य गणकऋषिर्नृ चिच्छद., विघ्नेश्वरो देवता, प्रपञ्चयागाङ्गत्वेन जपे विनियोग" इनि ऋष्यादिक स्मृत्वा, "गां गी गू गै गौं ग." इति मन्त्रै करषडङ्गन्यास विधाय—

सिन्दूराभ त्रिनेत्र पृथुतरजठरं हस्तपद्मै र्दधान
दन्त पाशाङ्कुशेष्टानुरुकरविलसद्बीजपूराभिरामम् ।
बालेन्दुद्योतिमौलि करिपतिवदन दानपूरार्द्रगण्ड,
भोगीन्द्रावद्धभूष भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम् ॥४६॥

वामाध करमारभ्य दक्षाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम् । इष्ट वर, उरुकर[1] शुण्डादण्ड. । इति ध्यात्वा 'ग' इति गणपतिवीज चतुश्चत्वारिंशद्वार जपित्वा—

"ॐ गणाना त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपव.श्रवस्तम, ज्येष्ठराज ब्रह्मणा ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्" इति गणपतिमन्त्र वैदिकमेकवार जपित्वा, "ह्री क्रो ॐ ग नमः सर्वविघ्नाधिपाय सर्वार्थसिद्धिदाय सर्वदु.खप्रशमनाय एह्येहि भगवन्सर्वं खादय स्तम्भय स्तम्भय ह्री ग गा नम स्वाहा क्रों ह्री' इति मालामन्त्र चतुरावृत्ति जपित्वा, तत पूर्वोक्ता शुद्धमातृका ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासध्यानपूर्वक वारत्रय विन्यस्य,—

"मुखे—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः आदित्याय नम, दक्षिणबाहुमूलादग्रान्त—य र ल व सोमाय नम, वामबाहुमूलादग्रान्त—क ख ग घ ङ भौमाय नमः, दक्षिणोरुमूलादिपादाग्रान्त—च छ ज झ ञ शुक्राय नम, वामोरुमूलादिपादाग्रान्त—ट ठ ड ढ ण बुधाय नम, जठरे—त थ द ध न बृहस्पतये नम., हृदये—प फ ब भ म शनैश्चराय नम" इति सप्तग्रहान्विन्यस्य—

१ ख उरुकर ।

"प्रपञ्चयागमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीछन्दः सकलपदार्थानुगतपरिपूर्णस्वप्रकाशसच्चिदानन्दपरज्योतिः परमात्मा देवता प्रपञ्चयागमातृकान्यासे विनियोगः" इति ऋष्यादि स्मृत्वा, चतुर्थीनमोऽन्तान्मूर्द्धादिषु ऋष्यादीन्विन्यस्य—

"ॐ ह्रीं अ क ख ग घ ङ आ स्वाहा हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं इ च छ ज झ ञ ईं सोहं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रीं उ ट ठ ड ढ ण ऊ हं सः शिखायै वषट्, ॐ ह्रीं ए त थ द ध न ऐं ह्रीं कवचाय हुं, ॐ ह्रीं ओ प फ ब भ मं औं ॐ नेत्राय वौषट्, ॐ ह्रीं अं य र ल व श ष स ह ल क्ष अः हरिहर अस्त्राय फट्" इति षडङ्गमन्त्रैः करषडङ्गन्यासं कृत्वा—

तारादिपञ्चमनुभिः परिचीयमानं,
मानैरगम्यमनिशं जगदेकमूलम् ।
सञ्चितसमस्तगमनश्वरमच्युतं त—
त्तेजः परं भजत सान्द्रसुधाम्बुराशिम्[1] ॥४७॥

इति सकलप्रपञ्चातिरिक्तं परिपूर्णं सच्चिदानन्दोऽहमिति स्वात्मानं ध्यात्वा, परमात्मवह्नौ तत्तत्स्थानयुक्तान्वर्णान् जुहोमीति धिया "ॐ ह्रीं क्ष हं सः सोहं स्वाहा, ॐ ह्रीं ल हं सः सोहं स्वाहा, इत्यादि ॐ ह्रीं अं हं सः सोहं स्वाहा" इत्यन्तं संहारक्रमेण विन्यस्य पुनः "ॐ ह्रीं अः हं सः सोहं स्वाहा" [2]इत्यन्तान्सविसर्गान् वर्णान् केवलमातृकान्यासस्थानेष्वेव न्यसेत् ।

॥ इति प्रपञ्चयागन्यासः ॥

अथ मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा **योगपीठन्यासं** कुर्यात् ।

॥ अथ प्राणायामप्रयोगः ॥

तत्र बद्धपद्मासनः ऋजुकायः समुपविश्य, दक्षिणाङ्गुष्ठेन दक्षिणनासापुटं निरुद्ध्य, वामनासापुटेन वायुमाकृष्य, स्वोदरं पूरयित्वा, कनिष्ठानामिकाभ्यां वामनासापुटं च निरुद्ध्य, हृदि देवं ध्यायन्मूलमन्त्रं च जपन् यावच्छक्यं वायुं कुम्भकेन धृत्वा, पुनः दक्षिणनासापुटेन शनैः शनैस्तं वायुं त्यजेदित्येकः प्राणायामः । पुनर्दक्षिणनासापुटेन वायुमाकृष्य, तथैव कुम्भयित्वा तथैव वामनासारन्ध्रेण वायुं त्यजेदित्यन्यः । पुनर्वामनासारन्ध्रेण प्राग्वद्वायुमापूर्य्य तथैव कुम्भयित्वा तथैव दक्षिणनासारन्ध्रेण वायुं त्यजेदित्यपरः । इत्थं प्राणायामत्रयं कृत्वा—

---

१. क. रासिम् । २. इतः पूर्वं ख पुस्तके "इत्यादि ॐ ह्रीं क्ष हं सः सोहं स्वाहा" इति पाठो विशेषः ।

"मूलाधारे मण्डूकाय नमः, स्वाधिष्ठाने कालाग्निरुद्राय नमः, मणिपूरे मूलप्रकृत्यै नमः, हृदये आधारशक्त्यै नमः, हृदये एव कूर्माय नमः, अनन्ताय नमः, वराहाय नमः, पृथिव्यै नमः, समुद्राय नमः, रत्नद्वीपाय नमः, स्वर्णपर्व्वताय नमः, नन्दनोद्यानाय नमः, कल्पवृक्षेभ्यो नमः, विचित्ररत्नभूम्यै नमः, स्वर्णप्राकाराय नमः, रत्नमण्डपाय नमः, स्वर्णवेदिकायै नमः, रत्नसिंहासनाय नमः," इत्येतत्सर्वं तत्तत्स्थानभावनया विन्यस्य, स्वशरीरांसद्वयोरूद्वयोपकल्पितपादचतुष्टयं मुखनाभिपार्श्वद्वयकल्पितगात्रचतुष्टयं रत्नसिंहासनं ध्यात्वा, "दक्षिणांसे धर्माय नमः, वामांसे ज्ञानाय नमः, [वामोरौ वैराग्याय नमः, दक्षिणोरौ ऐश्वर्य्याय नमः, मुखे अधर्माय नमः, वामपार्श्वे अज्ञानाय नमः, नाभौ अवैराग्याय नमः,][1] दक्षिणपार्श्वे अनैश्वर्याय नमः," इति विन्यस्य, पुनर्हृदये "मायायै नमः, विद्यायै नमः," इति मायाविद्ये प्रोक्तरूपे विचिन्त्य, तदुपरि सिंहासनमध्ये "अनन्ताय नमः, पद्माय नमः, आनन्दकन्दाय नमः, संविन्नालाय नमः, प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः, विकारमयकेसरेभ्यो नमः, पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै नमः, अं अर्कमण्डलाय नमः, उं सोममण्डलाय नमः, मं वह्निमण्डलाय नमः, सं प्रबोधात्मने सत्त्वाय नमः, रं प्रकृत्यात्मने रजसे नमः, तं मोहात्मने तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परात्मने नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः," सिंहासनस्य चतुर्दिक्षु मध्ये च "ज्ञानतत्त्वात्मने नमः, मायातत्त्वात्मने नमः, कलातत्त्वात्मने नमः, विद्यातत्त्वात्मने नमः, परतत्त्वात्मने नमः," इति विन्यस्य, ततस्तत्तद्देवतापीठमन्त्रोच्चारपूर्वकं "योगपीठाय नमः" इति मूर्द्धादिपादपर्यन्तं व्यापकं न्यस्येत् ।

॥ इति योगपीठन्यासः ॥

अत्र योगपीठन्यासे गणेशोपासकैरिक्षुरससमुद्रो, विष्णुसूर्योपासकैः क्षीरसमुद्रः, शिवशक्त्युपासकैः सुधासमुद्रश्च न्यस्तव्यः ।

॥ अथ मूलमन्त्रन्यासः ॥

स चाग्रे तत्तत्कल्पेषु वक्ष्यते । ततस्तत्तद्देवतामुद्रां विरच्य, स्वेष्टदेवतां तत्तत्कल्पोक्तरूपां स्वाभेदेन ध्यात्वा, स्वशिरसि मूलेन पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, पुनर्हृदयारविन्दे ध्यात्वा, वक्ष्यमाणयोगपीठपूजापुरःसरं मानसोपचारैः साङ्गां

1. ख. पुस्तके कोष्ठबद्धोऽंशो नास्ति ।

सावरणां स्वेष्टदेवतां सम्पूज्य, मानसमेव नैवेद्यं दत्वा, देवं भुञ्जानं ध्यायन्, मूलाधारे आत्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मेत्यात्मचतुष्टयाकारचतुरस्रकुण्डमध्ये चिच्छक्तिं कुण्डलिनीं वह्निरूपां ध्यात्वा, मूलमन्त्रमुच्चार्य्य 'अहं तां जुहोमि स्वाहा' पुनर्म्मूलं 'असत्यं जुहोमि०' इत्थं अहन्तासत्यपैशुन्यकामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्याणि क्रमेण सुषुम्णास्रुच्युक्तमनःस्रुचेण[1] हुत्वा प्राणायामऋष्यादिकरषडङ्गन्यासं कृत्वा, मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतवारं जपित्वा, वक्ष्यमाणविधिना जपं समर्प्य, श्रीगुरुं प्रणम्य, स्वपुरतश्चन्दनानुलिप्ते श्रीपर्णादिपीठे सौवादिनिर्मिते स्थण्डिले वा कुंकुमादिना वक्ष्यमाणं तत्तत्कल्पोक्तं पूजाचक्रं निर्माय तत्र मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ।

यद्वा स्वर्णादिभिः शिल्पिवर्रैर्निर्मितं पूजाचक्रं चन्दनादिमण्डितं प्राग्वत्पीठे संस्थाप्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । अत्र स्वर्णरूप्यादिधातुनिर्मितस्य पूजाचक्रस्याम्लरसादिना संशुद्धस्यादौ वैदिकमन्त्रेणाग्न्युत्तारणं कारयित्वा, मधुघृतगोदुग्धनालिकेरजलैः पृथक्पृथगभिषिच्य, पञ्चाशद्वर्णौषधिक्वाथजलैस्तत्तन्मन्त्रवर्णौषधिक्वाथजलैर्वाभिषिञ्चेत् । अत्र मन्त्रवर्णौषधिग्रहणे मन्त्रवर्णेषु पुनरुक्तवर्णानामौषध्यो यस्य वर्णस्य यावत्य आवृत्तयो मन्त्रे दृश्यन्ते तस्या औषध्यास्तावन्तो भागा ग्राह्याः । तास्तु प्रागेवोक्ताः । ततः शुद्धजलैः प्रक्षाल्य, चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमादिपङ्कैरालिप्य, पुरतः शुभे पीठे संस्थाप्य, तच्चक्रं स्पृष्ट्वा, मूलमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं जपित्वा, संशुद्धस्य तस्य चक्रस्य प्रागुक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण 'मम' पदस्थाने 'अमुकपूजाचक्रस्ये' त्यादि तत्तद्देवतानामपूर्वकं चक्रपदं प्रयोजयश्चक्रं स्पृशन्प्राणप्रतिष्ठामन्त्रं जपन् प्रागुक्तप्राणशक्तिध्यानपूर्वकं प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा, तत्र पीठपूजापूर्वकं देवमावाह्य, साङ्गं सावरणं सम्पूज्य, वक्ष्यमाणमहानैवेद्यबलिदानादिपूर्वकं महोत्सवं प्रत्यहं दिनत्रयपर्यन्तं कुर्यात् । दिनत्रयमपि प्रथमदिने आवाहितं देवं न विसर्ज्जयेत् । चतुर्थदिने नित्यपूजान्ते देवं विसर्ज्जयेदिति प्रतिष्ठिते चक्रे नित्यनैमित्तिकादिपूजनं कुर्यात् । **अग्न्युत्तारणं तु ऋग्वेदोक्ताग्निसूक्तेन कार्यम् ।**

सूक्तं तु—

अग्निं सप्तिं वाजंभरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम् ।
अग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरन्धिम् ॥

---

१. ख. सुषुम्णास्रुग्युक्तमनःस्रुवेण ।

अग्नेरप्नसस्समिदस्तु भद्राग्निर्मही रोदसी आ विवेश ।
अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि ॥

अग्निर्ह त्य जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथ ।
अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तरग्निर्नृमेध प्रजयासृजत्स ॥

अग्निर्दाद्द्रविणं वीरपेशा अग्निरृषिं यः सहस्रा सनोति ।
अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥

अग्निमुक्थैरृषयो वि ह्वयन्तेऽग्निं नरो यामनि बाधितासः ।
अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम् ॥

अग्निं विश ईळते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः ।
अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्याग्नेर्गव्यूतिर्घृत आ निषत्ता ॥

अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्ति ।
अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥

अथैतस्य प्रयोगः—तत्रैभिर्मन्त्रैः प्रथमं प्रतिष्ठातव्यचक्रादिकमग्निशब्दरहितैः शतावृत्याऽभिषिचेदित्यग्न्युत्तारणविधिः ।

ततः प्रत्यहं त्वम्लादिभिः शुद्धजलेन प्रक्षालनं धातुमयचक्रस्य स्फटिकस्य जलेनैव क्षालनमिति । इत्थं प्रतिष्ठितं प्रक्षालितं चन्दनादिमण्डितं पुरतः प्रोक्तपीठे संस्थाप्य, तत्र मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दत्वा, स्वपुरतः किञ्चिद्वामाग्रे चतुरस्रवृत्तत्रिकोणात्मकं मण्डलं चन्दनानुलिप्ते भूतले मत्स्यमुद्रया विधाय, 'श्रीपरदेवताया अर्घमण्डलाय नमः' इति मण्डलं सम्पूज्य, तत्र वायव्यनैरृत्ये-शानाग्नेयकोणेषु "हृदयाय नमः, शिरसे नमः, शिखायै नमः, कवचाय नमः" इति सपूज्य, पुरतः 'नेत्राय नमः' स्वाग्रादि चतुर्दिक्षु 'अस्त्राय नमः,' इति तत्तत्कल्पोक्तानि षडङ्गानि सम्पूज्य, तत्र मूलमन्त्रेण प्रक्षालितमर्घपात्राधारं 'श्रीपरदेवताया अर्घपात्राधारं स्थापयामी, ति संस्थाप्य, 'मं रं धर्मप्रददशक-लात्मने वह्निमण्डलाय श्रीपरदेवताया अर्घाधाराय नमः' इति सम्पूज्य 'धूम्रा-र्चिरादिदशकला इहागच्छतेह तिष्ठते' ति तत्र वह्निकला आवाह्य, पूर्वोक्तप्राण-प्रतिष्ठामन्त्रे 'मम' पदस्थाने 'धूम्रार्चिरादीनामि' ति पदं दत्वा, तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय, स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन वृत्ताकारेण "यं धूम्रार्चिषे नमः, रं उष्मायै नमः, लं ज्वलिन्यै नमः, वं ज्वालिन्यै नमः, शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, षं सुश्रियै नमः,

स सुरूपायै नमः, ह कपिलायै नम, ल हव्यवहायै नमः, क्ष कव्यवहायै नमः," इति वह्निकलाः सपूज्याऽस्त्रमन्त्रेण स्वर्णादिनिर्मितं पात्र प्रक्षाल्य, श्रीपरदेवताया अर्घपात्र प्रतिष्ठापयामी, ति तस्मिन्नाधारे सस्थाप्य, "अ ह अर्थप्रदद्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय श्रीपरदेवतार्घपात्राय नम" इति तत्पात्र मपूज्य, तत्र भूमिस्थमण्डलवन्मण्डल विभाव्य, तथैव षडङ्गैः सपूज्य, तत्र प्राग्वत्सूर्यकलाः समावाह्य, प्राग्वत्तासां प्राणप्रतिष्ठा विधाय, वृत्ताकारेण प्रादक्षिण्येन "कं भ तपिन्यै नम., ख व तापिन्यै नमः, ग फ धूम्रायै नमः, घ प मरीच्यै नमः, ङ न ज्वालिन्यै नम, च ध रुच्यै नम, छ द सुषुम्णायै नम, ज थ भोगदायै नम, झ त विश्वायै नमः, ञ णं बोधिन्यै नम, ट ढ धारिण्यै नम, ठ ड क्षमायै नम" इति सम्पूज्य "क्ष ल ह सं ष श व ल र य म भ ब फ प न धं द थ त णं ढ ड ठ ट ञ झ ज छ च ङं घ गं ख क अ अः औ ओ ऐं ए लॄं लृं ॠं ऋं ऊ उं ईं इ आ अ" इत्यन्ते मूलमन्त्र त्रिर्जपन् शुद्धोदकं 'श्रीपरदेवताया अर्घपात्र पूरयामी' ति बिन्दस्रुतपीयूषभावनया सम्पूर्य तत्र गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपदूर्वा इत्यर्घद्रव्याष्टक निक्षिप्य, "उ सं कामप्रदषोडशकलात्मने सोममण्डलाय श्रीपरदेवतार्घपात्रामृताय नम." इति तज्जल सपूज्य तत्र प्राग्वद्भूमिस्थमण्डल विभाव्य तथैव षडङ्गैः सपूज्य, तत्र सोमकलाः प्राग्वत्समावाह्य तासां तथैव प्राणप्रतिष्ठा विधाय तत्र वृत्ताकारेण प्रादक्षिण्येन "अ अमृतायै नमः, आ मानदायै नम, इ पूषायै नमः, ई तुष्ट्यै नम, उ पुष्ट्यै नम., ऊ रत्यै नम, ऋं ऋद्ध्यै नमः, ॠं शशिन्यै नम, लृ चन्द्रिकायै नम, लॄ कान्त्यै नम, ए ज्योत्स्नायै नम., ऐं श्रियै नम, ओ प्रीत्यै नमः, औ अङ्गदायै नम, अ पूर्णायै नम., अ पूर्णामृतायै नम.," इति सम्पूज्य प्राग्वत्सूर्यमण्डलात्स्नानप्रकरणोक्तविधिना तीर्थमावाह्य, मूलमन्त्रेण तदर्घजले सयोज्य, शिखामन्त्रेण गालिनीमुद्रां प्रदर्श्य, 'व' इति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, तत्र देव ध्यात्वा, षडङ्गमन्त्रान्देवस्य देहे हृदयादिषु विन्यस्याऽवगुण्ठनमुद्रया कवचेनाऽवगुण्ठ्य तेन मन्त्रेण वीक्ष्याऽस्त्रेण सरक्ष्य, शङ्खमुद्रया तत्पात्रमवष्टभ्य, योनिमुद्रया तज्जल स्पृशन्, तेजोमयं भावयन्नुद्दीप्य, मूलमन्त्रेण देव गन्धादिभि सम्पूज्य, प्राग्वत्षडङ्गानि चतुरस्रं सम्पूज्य मूलमन्त्रेणाऽष्टवारमभिमन्त्र्य मत्स्यमुद्रया छादयेत् ।

इत्यर्घपात्रं सस्थाप्य तस्योत्तरत पङ्क्त्याकारेण त्रिकोणमण्डलत्रयं कृत्वा तेषु मण्डलद्वये साधार सजल पात्रद्वय, तृतीयमण्डले घृतदधिसयुक्तं कांस्यमधुपर्कपात्र चेति पात्रत्रय सस्थाप्य, मूलमन्त्रेण गन्धादिभिः पृथक् पृथगभ्यर्च्य, तेषु पात्रान्तरेणोद्धृत्यार्घजल किञ्चित्किञ्चिद्दत्वा मूलमन्त्रेण पृथक् पृथगष्टवारमभिमन्त्र्य मत्स्यमुद्रया छादयेत् ।

इति पाद्याचमनीयमधुपर्कपात्राणि संस्थाप्य, पाद्यपात्रे श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ता निःक्षिप्याऽऽचमनीयपात्रे जातीफललवङ्गकक्कोलचूर्णानि निःक्षिपेत्। मधुपर्कपात्रं पात्रान्तरेणाच्छादयेत्। अत्रार्घादिद्रव्यालाभे प्रक्षालितान् तण्डुलान् पुष्पाणि वा दद्यात्। अत्राऽन्यदेवतोपासकैरर्घादिस्थापने तत्तद्देवतानाम ग्राह्यम्। ततः पूजाचक्रस्य दक्षिणे त्रिकोणमण्डले साधारं सजलं पुनराचमनीयपात्रं निधाय, तत्रार्घपात्रजलं किञ्चित्पात्रान्तरेणोद्धृत्य, दत्वा, गन्धपुष्पाक्षतैरभ्यर्च्य, मूलमन्त्रेणाष्टवारमभिमन्त्र्य, तथैव तत्समीपे प्रोक्षणार्थं पात्रान्तरं संस्थाप्य, तज्जलं किञ्चित्पात्रान्तरेणोद्धृत्य, तेन जलेन स्वात्मानं, पूजाचक्रं, पूजाद्रव्याणि च मूलमन्त्रेण प्रोक्ष्य, तेषु धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, स्वदेहं गन्धादिभिरलङ्कृत्य, स्वेष्टदेवतारूपं सञ्चिन्त्य, स्वशिरसि श्रीगुरुं मूलाधारे गणपतिं च सम्पूज्य, प्रागुक्तयोगपीठदेवतास्तत्तन्न्यासस्थानेषु सम्पूज्य, हृदयकमलकेसरेषु वक्ष्यमाणतत्तत्पीठशक्तीश्च सम्पूज्य, तत्तत्पीठमन्त्रेण सर्वाङ्गे पुष्पाञ्जलिं दत्वा, स्वेष्टदेवतारूपं स्वात्मानं ध्यायन् मूलमन्त्रेण मूर्ध्नि, हृदये, गुह्ये, पादयोः, सर्वाङ्गे च पञ्चस्थानेषु पञ्चपुष्पाञ्जलीन् दत्वा, धूपदीपौ निवेद्य, प्राग्वन्मूलाधारे चतुरस्रं कुण्डं सञ्चिन्त्य, कुण्डल्यात्मपरमात्मवह्निं सञ्चिन्त्य, मूलमन्त्रमुच्चार्य—

"धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्णा वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिं जुहोम्यहम् ॥४६॥

पुण्यं जुहोमि स्वाहा०" पुनर्मूलं प्रागुक्तश्लोकमन्त्रं च पठित्वा 'पापं जुहोमि स्वाहा' इत्थं पुण्यपापे, कृत्याकृत्ये, सङ्कल्पविकल्पौ, धर्मं च पृथक् पृथक् हुत्वा, पुनर्म्मूलम्—

प्रकाशामर्शहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुचम्।
धर्माधर्मकलास्नेहं पूर्णवह्नौ जुहोम्यहम् ॥४७॥

इति धर्माधर्मात्मकं सकलप्रपञ्चं पूर्णाहुतित्वेन हुत्वा, निरस्तनिखिलोपाधितया निरतिशयसुखानन्दचिद्विलासात्मकं स्वात्मानं ध्यायन् प्राणायामऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतवारं जपित्वा, जपं समर्प्यार्घजलेन पूजाचक्रमभ्युक्ष्य, पूजाचक्रस्योत्तरभागे—'ऐं गुरुभ्यो नमः', दक्षिणे—'गणपतये नमः,' इति सम्पूज्य पूजाचक्रस्याधस्तादतलादिसप्तपातालभावनया "ॐ मण्डूकाय नमः, कालाग्निरुद्राय नमः, मूलप्रकृत्यै नमः, आधारशक्त्यै०, कूर्माय०, अनन्ताय०, वराहाय नमः." इति सम्पूज्य, वराहस्य दंष्ट्रोपरि—"पृथिव्यै नमः, समुद्राय नमः, तस्मिन्—नवरत्नमयद्वीपाय, तन्मध्ये-'स्वर्णपर्वताय०' तदुपरि नन्दनोद्यानाय०,

तन्मध्ये—कल्पवृक्षेभ्य:, तेषा मध्ये—विचित्ररत्नभूम्यै०, तन्मध्ये—स्वर्ण-प्राकाराय०, तन्मध्ये—रत्नमण्डपाय०, तस्यान्त:—स्वर्णवेदिकायै०, तदुपरि—रत्नसिंहासनाय नम.," इति तत्तद्भावनया सम्पूज्य, पूजाचक्राधारपीठ सिंहासनत्वेन परिकल्प्य, तस्य चाग्नेयादिकोणचतुष्टयस्थपादचतुष्टये "धर्माय नम, ज्ञानाय नम, वैराग्याय नम: ऐश्वर्याय नम:" इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, स्वाग्रादिपीठस्य गात्रचतुष्टये—"अधर्माय नम, अज्ञानाय नम, अवैराग्याय-नम., अनैश्वर्याय नम." इति प्रादक्षिण्येन पूजयेत् । तत सिंहासनस्य मध्ये—"मायायै नम, विद्यायै नम 'इति मायाविद्ये पट्टसूत्रमयपट्टिकारूपेण लौकिकमञ्चकवदोतप्रोतरूपेण ग्रथिते स्थिते ध्यात्वा, सम्पूज्य, तदुपरि—"अनन्ताय नम:" इति तल्पाकारमनन्त सम्पूज्य, तस्य मूर्ध्नि—"पद्माय नम, आनन्दकन्दाय नम, संविन्नालाय नम." तद्दलेषु—"प्रकृतिमयपत्रेभ्य," केसरेषु—"विकृतिमय-केसरेभ्य.," तत्कर्णिकाया—"षट्त्रिंशद्वर्णबीजाढ्यसर्वतत्वरूपायै कर्णिकायै०," केसरेषु—"अ अर्कमण्डलाय नम, कर्णिकाया—'उ सोममण्डलाय०' पत्रेषु—'म वह्निमण्डलाय०,' तथैव—"ब्रह्मणे नम, विष्णवे नम., रुद्राय नम," तत्रैव—"स प्रबोधात्मने सत्वापरप्रकृत्यात्मने रजसे०, त मोहात्मने तमसे०" आ आत्मने०, अ अन्तरात्मने०, प परमात्मने०, ह्रीं ज्ञानात्मने०" इति सम्पूज्य, सिंहासनस्य स्वाग्रादिचतुर्दिक्षु मध्ये च—"ज्ञानतत्वात्मने नम', मायातत्वात्मने नम, कलातत्वात्मने नम, विद्यातत्वात्मने०, परतत्वात्मने०," इति सम्पूज्य, तत्केसरेषु—स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन गणेशादितत्तत्पीठस्य नवशक्ती., पीठमन्त्रेण समस्त पीठ च सम्पूज्य, तत्तन्मूलमन्त्रमुच्चार्य 'श्रीगणेशादिमूर्त्ति कल्पयामी' ति पीठमध्ये पुष्पादिक निक्षिप्य, ध्यानोक्ता मूर्त्ति भावयन् मूलमन्त्र-मुच्चार्य्य, 'श्रीगणेशादिमूर्त्तये नम' इति कल्पिता मूर्त्तिम्पूजयेत् ।

अथ पञ्चायतनी चेत्स्वाराध्य गणेशादिक देव मध्ये संस्थाप्य, तदङ्गत्वे-नान्यांश्चतुरो देवान् प्रोक्तक्रमेण तत्तत्कोणे संस्थाप्य, तत्तत्कल्पोक्तविधिना तत्तत्पीठपूजापूर्वकमावाह्य, पृथक् पृथक् साङ्गावरणान् गन्धाद्यैरुपचारै पूजयेत् ।

गणेशस्य मध्ये स्थापने सूर्यमारभ्य, प्रादक्षिण्येन चतुरो देवान्सम्पूज्य, गणेशं पूजयेत् ।

गणेशव्यतिरिक्तान्यदेवस्य मध्ये स्थापने तु गणेशमारभ्य पूजा कार्या । वचनं तु प्रागुक्तमेव ।

तत पुनर्मूलेन प्राणायामत्रय ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासांश्च कृत्वा, हस्ताभ्या पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा, पद्ममुद्रां बद्ध्वा, मातृका- पद्मत्वेन ध्यात्वा,

पद्माद्यासनेनोपविश्य, ऋजुकायोऽन्तर्मुखो गुदमेढ्रयोरन्तराले सुषुम्णान्तश्चतुरस्रमध्यस्थ चतुर्द्दलपङ्कजदलेषु [1]विद्योतद्वशषसार्णचतुष्टय सकेसर पीतवर्णं मूलाधार सञ्चिन्त्य, तन्मध्ये—सोमसूर्याग्निमयमकथादित्रिरेख त्रिकोण विभाव्य, तन्मध्ये—सूर्यकोटिप्रतीकाश चन्द्रकोटिसुशीतल जपाकुसुमप्रभ ज्योतिर्लिङ्ग ध्यात्वा, तदुपरि चिद्रूपा तडित्कोटिप्रभादीप्तां बिसतन्तुतनीयसी प्रसुप्तभुजगीमिव सार्द्धत्रिवलयेन सर्वान्तिर्यामितया स्थिता परब्रह्माऽविनाभूता कुण्डलिनी शक्ति चिर विभाव्य गुरूपदिष्टविधिना गुदाकुञ्चनपूर्वक 'हूं' कारेण ता कुण्डलिनीमुत्थाप्य, सुषुम्णावर्त्मना मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरकानाहत—विशुद्धयाज्ञाख्यषट्चक्रभेदक्रमेण ब्रह्मरन्ध्र नीत्वा, तत्रस्थपरमामृताम्बुधौ परमात्मनि संयोज्य, शिवशक्त्यात्मक तत्तेजो वहन्नासाध्वना निःसार्य्य, करस्थपुष्पाञ्जलौ संयोज्य, मूलमुच्चार्य्य, 'श्रीपरदेवते इहागच्छागच्छे'ति चक्रमध्यस्थितमूर्त्ते शिरसि पुष्पाञ्जलिप्रक्षेपेण तत्तेज आवाहनमुद्रया समावाह्य, श्रीपरदेवतारूपेण परिणत ध्यायन्मूलमुच्चार्य्य 'श्रीपरदेवते इह तिष्ठ तिष्ठे'ति स्थापनमुद्रा प्रदर्श्य—

देवेश भक्तिसुलभ सर्वावरणसयुत. ।
यावत्त्वा पूजयिष्यामि तावत्त्व सुस्थिरो भव ॥४८॥

इति प्रार्थ्य पुनर्मूलमुच्चार्य्य 'श्रीपरदेवते इह सन्निधेहि सन्निधेही' ति सन्निधापनमुद्रया सन्निधाप्य, मूलमुच्चार्य, 'श्रीपरदेवते इह सन्निरुद्धा भव सन्निरुद्धा भव' पुनर्मूल 'श्रीपरदेवते इह सम्मुखीभव सम्मुखीभवे'ति तत्तन्मुद्रया विधाय, पुनर्मूल 'श्रीपरदेवते इहावगुण्ठिता भवाऽवगुण्ठिता भवे' त्यवगुण्ठनमुद्रयाऽवगुण्ठ्य देवताया हृदयादिषडङ्गन्यासस्थानेषु षडङ्गमन्त्रान्विन्यस्य, मूलमुच्चार्य्य, 'श्रीपरदेवते सकलीकृता भव सकलीकृता भवे'ति सकलीकृत्य, धेनुमुद्रा बद्ध्वा देवतायाः शिरसि पीयूषवृष्टि ध्यायन् मूलमुच्चार्य्य, 'श्रीपरदेवते अमृतीकृता भवाऽमृतीकृता भवे'त्यमृतीकृत्य, महामुद्रां बद्ध्वा, मूलमुच्चार्य्य, 'श्रीपरदेवते परमामृतीकृता भव परमामृतीकृता भवे'ति देवताया मूर्ध्नि परमामृतवृष्टि ध्यात्वा मूलमन्त्रमुच्चार्य्य, ततः 'ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभ कुरु कुरु क्लीं सौः मोक्ष कुरु कुरु सौः ह्सौ." इति दीपिनी अकारादिक्षकारान्ता मातृका चोच्चार्य्यार्घोदकेन देवता त्रि प्रोक्ष्य, देवताया हृदय स्पृशन् पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रे 'मम' पदस्थाने स्वदेवतानाम निक्षिप्य, प्राणप्रतिष्ठामन्त्र जपन्, देवतायाः प्राणप्रतिष्ठा विधाय, मूलमुच्चार्य, "श्रीपरदे-

१. ख. विद्योतमानवशषसार्ण० ।

वतायै नमः" इति त्रिःपुष्पाञ्जलिं दत्वा तत्तत्कल्पोक्ता मुद्रा प्रत्येकं कामबीजेन विरच्य, मूलमन्त्रेण प्रदर्श्य, 'हूँ'इति मुख्ये दिति प्रदर्श्य मूलमुच्चार्य्य, "श्रीपरदेवते एतत्ते आसनं नमः" इति वार्क्षं चार्मं वास्त्रं पौष्णं तैजसं वा यथासम्भवमासनं देवस्य वामभागे विन्यस्य "ॐ ह्रं ह्रं ह्रमिदमिदमिदं गृहाण स्वाहा" इति निवेद्य, मूलेन पद्ममुद्रां प्रदर्श्य, पुनर्मूलमुच्चार्य, "श्रीपरदेवतायै नमः" इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा मूलमुच्चार्य्य "श्रीपरदेवते कुशलं स्वागतं" मिति कुशलस्वागतप्रश्नं कृत्वा कुशलस्वागतपद्ममुद्रे प्रदर्श्य, पुनर्मूलमुच्चार्य्य "श्रीपरदेवते एष ते अर्घः स्वाहे" ति पूर्वस्थापितार्घपात्राद् गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपदूर्वान्वितजलं पात्रान्तरेणोद्धृत्य, देवस्य शिरसि दत्वा "ॐ ह्रं ह्रं ह्रमिदमिदमिदं गृहाण स्वाहे"ति निवेद्यार्घमुद्रां प्रदर्श्य, मूलमुच्चार्य, "श्रीपरदेवतायै नमः" इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा पुनर्मूलमुच्चार्य, "श्रीपरदेवते एतत्ते पाद्यं नमः" इति पाद्यपात्रात् श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्तान्वितं जलं पात्रान्तरेणोद्धृत्य, स्वदेवतायाः पादयोर्दत्वा, "ॐ ह्रं ह्रं ह्रमिदं"मित्यादिमन्त्रेण प्राग्वन्निवेद्य, पाद्यमुद्रां प्रदर्श्य, मूलमन्त्रेण प्राग्वत्पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। अत्र सर्वोपचारेषु प्रोक्तमन्त्रेण निवेदनं मूलमन्त्रेण पुष्पांजलिं च प्रत्युपचारं कुर्यादिति। ततः आचमनीयपात्रात् जातीफललवङ्गकक्कोलचूर्णयुतं जलं पात्रान्तरेणोद्धृत्य, मूलमुच्चार्य्य "श्री परदेवते एतत्ते आचमनीयं सुधे'ति स्वदेवतायाः मुखकमले दत्वा प्राग्वन्निवेद्याऽऽचमनीयमुद्रां प्रदर्श्य, पुष्पाञ्जलिं कृत्वा, मधुपर्कपात्रमुद्धृत्य, मूलमुच्चार्य्य "श्रीपरदेवते एष ते मधुपर्कः सुधे'ति देवतायाः मुखकमले दत्वा, प्राग्वन्निवेद्य, मधुपर्कमुद्रां प्रदर्श्य, पुष्पाञ्जलिं कृत्वा, पुनराचमनीयपात्रात्पात्रान्तरेण जलमुद्धृत्य, मूलमुच्चार्य्य "श्रीपरदेवते एतत्ते आचमनीयं सुधे'ति पुनराचमनीयं दत्वा, प्राग्वन्निवेद्य, आचमनीयमुद्रां प्रदर्श्य, पुष्पाञ्जलिं दत्वा, रत्नपादुके उपनीय—

पादुकायुगमारुह्य भगवन्रत्ननिर्मितम्।
स्नानमण्डपमायाहि स्नानार्थं शक्रदिग्गतम् ॥४६॥

इति प्रार्थ्य, पूर्वस्यां दिशि विरचितं स्नानमण्डपं नीत्वा, प्राग्वदासनं दत्वाऽर्घपाद्याचमनीयानि प्राग्वन्निवेद्य सुगन्धतैलादिकमुपनीय, मूलमुच्चार्य्य "श्रीपरदेवते एतत्ते सुगन्धतैलाभ्यङ्गसुगन्धामलकाद्युद्वर्त्तनं स्नानादिकं नमः" इति सुगन्धतैलाभ्यङ्गसुगन्धामलकाद्युद्वर्त्तनं च विधाय, महाराजोपचारवन्नानाविधैर्जलैरभिषिच्य, गङ्गादितीर्थादाहृतजलपूर्णकनककलशसहस्रैर्देवकन्याभिषिक्तं मत्वा, प्राग्वन्निवेद्य, स्नानमुद्रां प्रदर्श्य, मूलेन पुष्पाञ्जलिं दत्वा, प्राग्वदाचमनीयं दत्वा, जलापकर्षणार्थं वस्त्रं दत्वाऽङ्गप्रोञ्छनं परिकल्प्य, श्वेतदुकूलयुग्ममानीय, 'व'

इति वरुणबीजेनाऽभिमन्त्रितजलेनाऽस्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्य, 'बृहस्पतिदेवताभ्यां[1] वासोभ्यां नमः" इति सम्पूज्य, मूलमुच्चार्य्य "श्रीपरदेवते एते ते वाससी नमः" इति वाससी परिधाप्य, पूर्ववन्निवेद्य, वस्त्रमुद्रां प्रदर्श्य, पुष्पाञ्जलिं दत्वा, पूर्ववदाचमनीयं दत्वा, स्वर्णादिनिर्मितं यज्ञोपवीतमानीय, मूलमुच्चार्य्य "श्रीपरदेवते एतत्ते यज्ञोपवीतं नमः" इति यज्ञोपवीतं दत्त्वा, प्राग्वन्निवेद्य, पुष्पाञ्जलिं दत्वा, यज्ञोपवीतमुद्रां प्रदर्श्य, प्राग्वदाचमनीयं निवेद्य, रत्नपादुके उपनीय—

पादुकायुगमारुह्य भववत्रत्ननिर्मितम् ।
आगच्छ निर्मितं याम्यामलङ्कारस्य मण्डपम् ॥५०॥

इति दक्षिणदिग्गतमलङ्कारमण्डपं नीत्वा, रत्नसिंहासने उपवेश्य, नानाविधालङ्करणानि समुपनीय, प्राग्वत्प्रोक्ष्य, "नानादेवतेभ्यो मुकुटाद्याभरणेभ्यो नमः," इति सम्पूज्य, मूलमुच्चार्य "श्रीपरदेवते ऐतत्ते मुकुटं नमः, एतत्ते कुण्डलं नमः" इति नानाभरणानि तत्तन्नाम्ना समर्प्य, निवेद्याभरणमुद्रां प्रदर्श्य, पुष्पाञ्जलिं दत्वा रत्नपादुके उपनीय—

पादुके परिधायेश पञ्चवाद्यगुरःसरम् ।
यागमण्डपमायाहि परिवारगणैः सह ॥५१॥

इति प्रार्थ्य, प्रधानमण्डपं नीत्वा, तत्र प्राक्कल्पितयोगपीठे देवं समुपवेश्य, तत्र छत्रचामरादिनानाविधोपकरणव्यग्रहस्तपरिवारदेवतागणं सूर्योत्किरणसमूहमिव देवशरीराद्विनिर्गत्य, स्वे स्वे स्थाने समुपविष्टप्रधानदेवत्तासदृशाकाराभरणायुधादिशोभितं स्थिरीभूतं परितश्चक्रमध्ये ध्यात्वा, चन्दनागुरुकर्पूरादिनानागन्धं समर्प्य—

शरीरं तेन जानामि चेष्टां नैव च नैव च ।
मया निवेदितान् गन्धान् प्रतिगृह्य विलिप्यताम् ॥५२॥

इति प्रार्थ्य, प्राग्वन्निवेद्य, गन्धमुद्रां प्रदर्श्य, सपूज्य, पुष्पाणि प्राग्वत्प्रोक्ष्य, "वनस्पतिदैवतेभ्यः पुष्पेभ्यो नमः" इति पुष्पाणि सम्पूज्य, मूलमुच्चार्य्य, "श्रीपरदेवते इमानि ते पुष्पाणि वौषडि" ति नानाविधानि सुगन्धशुभ्रपुष्पाणि समर्प्य, प्राग्वन्निवेद्य, पुष्पमुद्रां प्रदर्श्य, देवतां सम्पूज्य, स्वदेवतायाः हृदयादिषु षडङ्गन्यासस्थानेषु षडङ्गानि लयाङ्गत्वेन सम्पूज्य, "श्रीपरदेवते परिवारदेवता-

1. ख. बृहस्पतिदेवताभ्याम् ।

पूजनार्थमनुज्ञां देही" ति स्वदेवतां प्रार्थ्य, तत्तत्कल्पोक्ताङ्गावरणदेवताः पूजयेत् ।

तत्रादौ स्वदेवताया देहे मस्तकादिषु मातृकाक्षरन्यासस्थानेषु मूलमन्त्र-पुटितैर्मातृकावर्णैः सम्पूज्य, पश्चाद्वाह्याङ्गदेवताः पूजयेत्। इत्थमङ्गावरणदेवताः सम्पूज्य, तद्वाह्ये-देवग्राद्यष्टमु[1] दिक्षु क्रमेण "लं इन्द्राय सुराधिपतये पीतवर्णाय वज्रहस्तायैरावतवाहनाय नमः, रं अग्नये तेजोऽधिपतये रक्तवर्णाय शक्तिहस्ताय मेषवाहनाय नमः, टं यमाय प्रेताधिपतये कृष्णवर्णाय दण्डहस्ताय महिषवाहनाय०, क्षं निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये धूम्रवर्णाय खड्गहस्ताय प्रेतवाहनाय०, वं वरुणाय जलाधिपतये शुक्लवर्णाय पाशहस्ताय मकरवाहनाय०, यं वायवे प्राणाधिपतये कृष्णवर्णायाङ्कुशहस्ताय मृगवाहनाय०, सं कुबेराय यक्षाधिपतये मौक्तिकवर्णाय गदाहस्ताय नरवाहनाय०, हं ईशानाय विद्याधिपतये स्फटिकवर्णाय वृषवाहनाय शूलहस्ताय नमः" इति सम्पूज्येन्द्रेशानयोर्मध्ये—"आं ब्रह्मणे रक्तवर्णाय पद्महस्ताय हंसवाहनाय०, निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये—ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये गौरवर्णाय चक्रहस्ताय गरुडवाहनाय नमः" इति सम्पूजयेत् । एवं विस्ताराशक्तौ "लं इन्द्राय नमः, रं अग्नये नमः, टं यमाय नमः, क्षं निर्ऋतये नमः, वं वरुणाय नमः, यं[2] वायवे नमः, सं सोमाय[3] नमः, हं ईशानाय नमः । इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्येन्द्रेशानयोर्मध्ये—"आं ब्रह्मणे नमः, निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये—ह्रीं अनन्ताय नमः" इति उदर्ध्वाधो बुध्या सम्पूज्येन्द्रादीनां समीपेषु—"ॐ वज्राय नमः, एवं शक्तये नमः, दण्डाय नमः, खड्गाय नमः, पाशाय नमः, अङ्कुशाय नमः, गदायै नमः, त्रिशूलाय नमः, पद्माय नमः, चक्राय नमः" इति लोकपालानामायुधानि च पूजयेत् । अत्र सर्वत्रावरणपूजायां प्रथमावरण-पूजान्ते मूलमन्त्रेण देवं सम्पूज्य मूलमूच्चार्य्य—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ।
भक्त्या समर्प्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥५३॥

इति देवतायाश्चरणयोरर्घोदकपुष्पादिकं दद्यात् । एवं द्वितीयावरणादि-ष्वप्यूहनीयम् ।

ततो मूलमुच्चार्य, साङ्गायै सावरणायै परदेवतायै नमः" इति त्रिः पुष्पा-ञ्जलिना सम्पूज्याऽस्त्रमन्त्रेण धूपभाजनं प्रोक्ष्य, हृदयमन्त्रेण गन्धादिभिर्धूपभाजन-

---

१. ख. देवताग्राद्यष्टसु । २ क 'यं' । ३ ख. कुबेराय ।

मभ्यर्च्य, तत्र साङ्गारान्निधाय 'व' इति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य "क्लीं सुरभितेजसे स्वाहा" इति मन्त्रेण गुग्गुल्वादिधूपं निक्षिप्य, "गन्धर्वदैवताय धूमाय नमः" इति सम्पूज्य मूलमुच्चार्य्य—

वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्धउत्तमः ।
आघ्रेयः[1] सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ५४ ॥

इति धूपमुत्सृज्य "घण्टायै नमः" इति वामभागे घण्टां निधायाऽस्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्य, तेनैव मन्त्रेण "घण्टायै नमः" इति त्रिरभ्यर्च्य "ॐ गजध्वनीमन्त्रमातः स्वाहे" ति घण्टामन्त्रेण तां त्रिरभिमन्त्र्य, वामकरेण तां घण्टां वादयन् "ॐ ह्र ह्र हमिदमिदमिदं गृहाण स्वाहे" ति मन्त्रेण नीचैर्धूपं निवेद्य, धूपभाजनं देवस्य वामभागे निवेश्य, धूपमुद्रां प्रदर्श्य, देवतां सम्पूज्य दीपग्राहिण्यां गोघृतं तिलस्नेहं वा निःक्षिप्य तत्र कर्पूरगर्भिणीं वर्त्तिं निधाय, 'ह्रीं' इति प्रज्वाल्य, "विष्णुदैवत्याय" घृतप्रदीपाय नमः" तैलदीपश्चेद्वनस्पतिदैवत्याय तैलदीपाय नमः" इति सम्पूज्य 'व' इति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य मूलमुच्चार्य्य—

सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥५५॥

इत्युच्चार्य्य "श्रीपरदेवते एष ते दीपो नमः" इति दीपमुत्सृज्य, प्राग्वत् घण्टां वादयन् देवतायाः पादादिमूर्द्धान्तिमुच्चैर्दीपं प्रदर्श्य, घृतदीपश्चेद्देवताया दक्षिणभागे, तैलदीपश्चेद्वामभागे निवेश्य, दीपमुद्रां प्रदर्श्य, देवतां सम्पूज्य प्राग्वद्देवतायाः पाद्याचमनीये दत्वा, स्वर्णादिपात्रे भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यपेयात्मकं पञ्चविधमन्नं कट्वम्ललवणतिक्तकषायमधुरात्मकषड्रसोपेतं नानाविधव्यञ्जनसमेतं नैवेद्यमानीय, "विष्णुदैवत्याय नैवेद्याय नमः" इति नैवेद्यं सम्पूज्य, स्वेष्टदेवतायाः पुरतश्चतुरस्रमण्डले साधारं तत्पात्रं निधाय, मूलमन्त्रेण वीक्ष्यास्त्रमन्त्रेण प्रोक्षणीजलेन प्रोक्ष्य, तेनैव मन्त्रेण कुशैस्त्रिः सन्ताड्य, कवचमन्त्रेणाऽभ्युक्ष्याऽधोमुखदक्षिणहस्तोपरि तादृशं वामहस्तं निधाय, 'य' इति वायुबीजेनाऽष्टवारमभिमन्त्र्य, नैवेद्यगतस्पर्शादिदोषान् शोषयित्वा पुनर्वामस्योपरि दक्षिणं करं प्राग्वन्निधायाऽधोमुखवामहस्तेनाच्छादयन् 'र' इति वह्निबीजेनाऽष्टवारमभिमन्त्र्य, तद्गतदोषान्दग्ध्वा, धेनुमुद्रां प्रदर्शयन् 'व' इत्यमृतबीजमष्टधा जपन् नैवेद्यममृतीकृत्याऽस्त्रमन्त्रेण नैवेद्यस्योपरि चक्रमुद्रां प्रदर्शयन् तत्संरक्ष्य, मूलमन्त्रेणाऽष्टवारमभिमन्त्र्य दक्षिणहस्ते जलं गृहीत्वा—

---

१. ख. आघ्रेयः ।

हेमपात्रगत दिव्य परमान्न सुसंस्कृतम् ।
पञ्चधा षड्रसोपेत गृहाण परमेश्वर ॥५६॥

इति नैवेद्यस्योपरि चुलुकोदक निःक्षिप्य, मूलमुच्चार्य्य, "श्रीपरदेवते एतत्ते नैवेद्य नम" इत्युत्सृज्य, कराभ्या तत्पात्र स्पृशन् पूर्वोक्तनिवेदनमन्त्रेण निवेद्य, पात्रान्तरे धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य देवताया दक्षिणहस्तेन तज्जल किञ्चिद्दत्वा, "अमृतोपस्त्ररणमसि स्वाहे" ति स्वेष्टदेवतामाचामयित्वा[1] वामहस्तेन विरुचोत्पल-सन्निभा ग्रासमुद्रा दर्शयन्दक्षिणकरस्य कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठयोगेन "ॐ प्राणाय स्वाहा, एव तर्ज्जनीमध्याङ्गुष्ठयोगेन अपानाय स्वाहा, पुनर्मध्यमानामिकाङ्गुष्ठयोगेन व्यानायस्वाहा, पुनस्तर्ज्जनीमध्यानामिकाङ्गुष्ठयोगेन-उदानाय स्वाहा, पुनः पञ्चाङ्गुलिभिः—सामानाय स्वाहे" ति प्राणादिपञ्चमुद्राभिः पञ्चग्रासान्ग्राहयित्वा, स्वर्णादिपात्रे धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य—

नमस्ते देवदेवेश सर्वतृप्तिकरम्परम् ।
अन्यानिवेदित शुद्धम्प्रकृतिस्थ सुशीतलम् ॥५७॥
परमानन्दसम्पूर्ण गृहाण जलमुत्तमम् ।

इति देवस्य वामभागे जलपात्र निवेशयन् जल निवेद्य, पुष्पाञ्जलि—मादाय—

सत्पात्र चिद्धवि.सौख्यविविधानेकभक्षणम् ।
निवेदयामि ते देय सानुगाय जुषाण तत् ॥५८॥

इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, अस्त्रमन्त्रेण दिग्बन्धन कुर्वन् निजदेवतां परितो जवनिका विभाव्य, 'व' अमृतात्मक नैवेद्य नम·' इत्यङ्गुष्ठानामिकायोगरूपा करद्वयेन नैवेद्यमुद्रा प्रदर्श्य, स्वेष्टदेवता भुञ्जाना ध्यायेत् । यथा—

ब्रह्मेन्द्राद्यैः सरसमभित सूपविष्टैः समेतो,
देव्या सिंजद्वलयकरया सादर बीज्यमानः ।
नर्मक्रीडाप्रसहनपरो हासयन्पङ्क्तिभोक्तॄन्,
भुङ्क्ते पात्रे कनकघटिते षड्रसान्देवदेवः ॥५९॥

इति ध्यायन् मूलमन्त्रं दशधा जपित्वा, जप समर्प्य, नित्यहोम कुर्यात् । तत्र पूजास्थानस्येशानभागे कुण्डस्थण्डिलवेदिकाद्यन्यतमे गोमयेनोपलिप्ते

१. ख. ०माचाम्य ।

वक्ष्यमाणवीक्षणादिचतु.सस्कारैः सस्कृते हृन्मन्त्रेण विष्णुरुद्रेन्द्रदेवताकाः प्रागग्रास्तिस्रो रेखा, ब्रह्मयमचन्द्रदेवताकाः उत्तराग्रास्तिस्रो रेखा. कुशमूलेन विलिख्य, मध्ये आवसथ्यं, पूर्वे सभ्य पश्चिमे आहवनीय, उत्तरे अन्वाहार्यं, दक्षिणे गार्हपत्यमिति पञ्चवह्निस्थानानि सञ्चिन्त्य, कुशाम्बुनाऽस्त्रमन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य, "ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः" इति तन्मध्ये योगपीठ सम्पूज्य, तत्र भुवनेशी ऋतुमती विचिन्त्य तद्योनावावसथ्य स्थाने शिववीजधिया सूर्यकान्तादिभवमग्निं प्रणवेन सस्थाप्य, "चित्पिगल हन हन दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा इति मन्त्रेण कुशैर्म्मुखफूत्कृत्याऽग्निम्प्रज्वाल्य, काष्ठैः पटूकृत्य—

अग्निम्प्रज्वलित वन्दे जातवेद हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णमनल समिद्ध सर्वतोमुखम् ॥६०॥

इति तिष्ठन् कृताञ्जलिरुपस्थायोपविश्य, लिङ्गे स्य्रूं हिरण्यायै नम, गुदे-प्य्रूं कनकायै नम, शिरसि-श्य्रूं रक्तायै नमः, मुखे-व्य्रूं कृष्णायै नमः, नासिकाया-ल्य्रूं सुप्रभायै नम, नेत्रयो-र्य्रूं अतिरिक्तायै नम, सर्वाङ्गे य्रूं बहुरूपायै नम," इति सप्तजिह्वा विन्यस्य, "सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, स्वस्ति पूर्णाय शिरसे स्वाहा, उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, धूमव्यापिने कवचाय हु, सप्तजिह्वाय नेत्राय वौषट्, धनुर्द्धरायास्त्राय फट्" इति षडङ्गसन्त्रीनङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत् । ततः "मूर्द्धिन-अग्नये जातवेदसे नम, वामांसे-अग्नये सप्तजिह्वाय नम, वामपार्श्वे-अग्नये हव्यवाहनाय नम, वामकट्या-अग्नये अश्वोदरजाय नम, लिङ्गे-अग्नये वैश्वानराय नमः, दक्षिणकट्या-अग्नये कौमारतेजसे नम, दक्षिणपार्श्वे-अग्नये विश्वमुखाय नमः, दक्षिणांसे-अग्नये देवमुखाय नम," इति मूर्त्तीरष्टौ विन्यस्य, गर्भरहितैर्दर्भैरग्निं प्रागादिक्रमेणोत्तराग्रैः पूर्वाग्रैश्च परिस्तीर्य, वह्नेर्मुखे षट्कोण विभाव्य, तत्र मध्ये षट्सु कोणेषु च मध्यादिप्रादक्षिण्येन प्रागुक्ता सप्तजिह्वा. सम्पूज्य, तद्बहिरष्टदलकमल विभाव्य, तत्केसरेषु अग्नीशाननिर्ऋतिवायुकोणेषु वह्नेरग्रे तदग्रादिचतुर्दिक्षु च षडङ्गानि प्रागुक्तानि सम्पूज्याष्टदलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येनाष्टमूर्त्ती प्रागुक्ता. सम्पूज्य चतुरस्रे दिक्पालास्तदायुधानि च सम्पूज्य मध्ये "ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्व कर्माणि साधय स्वाहा" इति मन्त्रेणाऽग्निं गन्धादिभि सम्पूज्याऽस्त्रमन्त्रेण क्षालितायामाज्यस्थाल्यामाज्य निःक्षिप्य, मूलमन्त्रेणाऽष्टवारमभिमन्त्र्य 'वं' इति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य कवचमन्त्रेण प्रदीप्तदर्भद्वयेन तद्घृत नीराज्याऽग्नौ दर्भद्वय निक्षिप्य, पुनर्दर्भान् प्रज्वाल्याऽस्त्रमन्त्रेण घृते प्रदर्श्याग्नौ तान्निःक्षिप्य, स्रुक्स्रुवौ तदभावे पलाशस्य मध्यपत्रद्वयमश्वत्थपत्रद्वय वा गृहीत्वाऽग्नौ प्रताप्य,

कवचमन्त्रेण दर्भैः सम्मार्ज्य, पुनः प्रताप्याऽस्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्य, दर्भेषु निवाय, मार्ज्जनदर्भानद्भिः सस्पृश्याऽग्नौ नि.क्षिप्य, स्रुवेणाज्यमादाय "अग्नये स्वाहे त्यग्ने" दक्षिणनेत्रे हुत्वा "ऽग्नय इद नव ममे" त्युद्देश्यत्यागं कुर्यात्। एव सर्वत्र तत्तन्नाम्नोद्देशत्याग ऊहनीयः। ततः पुनराज्यमादाय 'सोमायस्वाहे' ति वह्नेर्वामनेत्रे हुत्वा, पुनराज्यमादाया'ऽग्नीषोमाभ्या स्वाहा' इति वह्नेर्भाल-नेत्रे हुत्वा, पुनरादाया 'ग्नये स्विष्टिकृते[1] स्वाहे' तिवह्नेर्वक्त्रे जुहुयात्।

तत. "ॐ भू स्वाहा अग्नय इद न मम, ॐ भुव स्वाहा वायव इदं न मम, ॐस्वः स्वाहा सूर्यायेद न मम, ॐ भूर्भुव स्व स्वाहा प्रजापतय इद न ममे'त्याहुतिचतुष्टय हुत्वा, "ॐ वैश्वानर जातवेद इहावलोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहे"त्यग्नि मन्त्रेणाहुतित्रय हुत्वा 'ग्नेर्गर्भाधान सम्पादयामि स्वाहे' त्यादि गर्भाधानपुसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मान्नप्राशनचूडाकरणोपनयनसमावर्त्त-नविवाहाख्यान्संस्कारान् पृथक्पृथगष्टाहुतिभि. कृत्वा, पूर्वोक्तजिह्वादिमूर्त्यन्तदेव-ताना स्यू हिरण्यायै स्वाहे" त्यादि तत्तन्नामभिश्चतुर्थीस्वाहान्तैरेकैकामाहुतिं हुत्वा, "ॐ स्वाहा, ॐ श्री स्वाहा, ॐ श्री ह्री स्वाहा, ॐ श्री ह्री क्लीं स्वाहा, ॐ श्री ह्री क्ली ग्लौ स्वाहा, ॐ श्री ह्री क्लीं ग्लौं ग स्वाहा, ॐ श्री ह्री क्ली ग्लौं ग गणपतये स्वाहा, ॐ श्री ह्री क्ली ग्लौ ग गणपतये वर वरद स्वाहा, ॐ श्री ह्री क्ली ग्लौ ग गणपतये वरवरद सर्वजन मे स्वाहा, ॐ श्रीं ह्री क्ली ग्लौ ग गणपतये वरवरद सर्वजन मे वशमानय स्वाहा" इति महागणपतिमन्त्र दशधा विभज्य, हुत्वा, पुनः समस्तेन महागणपतिमन्त्रेण चतुर्वार जुहुयात्। इति च संस्कृतेऽग्नौ स्वेष्टदेवता ध्यात्वा, मूलमन्त्रेण गन्धादिभि सम्पूज्य, वह्निदेवतयोरैक्य विभावयन् मूलमन्त्रेण स्वाहान्तेनाऽऽज्यपायसतिलतण्डुलव्रीहि-यवभक्तानामन्यतमेन घृतव्यतिरिक्तद्रव्येषु त्रिमधुयोग केवलघृतयोग वा कृत्वा, पञ्चविंशत्याहुतीर्हुत्वा, "हृदयाय स्वाहा शिरसे स्वाहा, शिखायै स्वाहा, कवचाय स्वाहा, नेत्राय स्वाहा, अस्त्राय स्वाहे" ति तत्तत्कल्पोक्तैः षडङ्गमन्त्रै. षडाहुतीर्हुत्वाऽऽवरणदेवतानां तत्तन्नाममन्त्रेण स्वाहान्तेनैकामाहुतिं हुत्वा "ॐ भूरऽग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा, "ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा, ॐ सुवरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा, ॐ भूर्भुव स्वः चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च महते च स्वाहे" ति चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा, दीक्षाप्रकरणवक्ष्यमाणप्रकारेण प्रत्याहुतिं तत्तन्नाम्नोद्देशत्याग कृत्वा "ॐ इत. पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारजाग्र-

---

१. ख. स्विष्टकृते।

त्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्या पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्त यत्कृत तत्सर्व ब्रह्मार्पण भवतु स्वाहे" ति मन्त्रेणाष्टावा ज्याहुतीरेका वा हुत्वा, वह्नि प्राग्वत्सम्पूज्य—

"न्यूनातिरिक्तसिद्ध्यर्थं ददामि सघृत तिलम् ।
ॐ ह्रं साग कुरु कुरु स्वाहा" इति सघृततिलैरेकामाहुति हुत्वा,
ॐ सहस्रार्चिर्महातेजा नमस्ते बहुरूपधृक् ।
सर्वाशिने सर्वगतपावकाय नमोऽस्तु ते ॥६१॥

त्व रौद्रघोरकर्मा च घोरहा त्व नमोऽस्तु ते ।
विष्णुस्त्व लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे ॥६२॥

इत्यग्निम्प्रार्थ्य, घृतेन स्रुचमापूर्य्य, तदुपरि पुष्प दत्वाऽधोमुखेन स्रुवेण तन्मुख पिधाय, शखवत्कराभ्या सम्पुटाभ्या गृहीत्वोत्थाय, मूलमन्त्रेण वौषडन्ते नाहुतित्रय कृत्वा, प्रोक्षणीजलेन वह्नि परिषिच्य, मूलमन्त्रेण तत्र देव सम्पूज्य, सहारमुद्रया पूजाचक्रे विसृज्याऽग्नि सम्पूज्य—

भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक ।
कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सन्निधि कुरु सादरम् ॥६३॥

इत्यग्निम्प्रार्थ्य सहारमुद्रया स्वहृद्युद्वासयेदिति **नित्यहोमविधिः**

तत्रैव विस्ताराशक्तौ

अग्न्याधानादिक कर्म नित्यहोमे न विद्यत ।

इति वसिष्ठसंहितावचनाल्लौकिकाग्नावेव देव ध्यात्वा, सम्पूज्य मूलमन्त्रेण पञ्चविंशत्याहुती षडङ्गमन्त्रैश्च षडाहुतीरावरणदेवतानामेकैकामाहुतिं जुहुयात् । आवरणहोमाशक्तौ मूलमन्त्रेण षडङ्गमन्त्रैश्चोक्तसख्य जुहुयात् ।

इति नित्यहोम विधाय, पूजास्थान गत्वा, स्वासने उपविश्य, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रय कृत्वा, ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वक मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलित्रय दत्वा, पूजाचक्रस्येशानकोणे चतुरस्रवृत्तत्रिकोणमण्डल कृत्वा, तत्र साधारं सअन्नान्नोदकपूरित ताम्रादिपात्र निधाय, "सर्वभूतानीहागच्छतेह तिष्ठत" इत्यावाह्य "सर्वभूतेभ्यो नम." इति पुष्पादिभि सम्पूज्य—

ये रौद्रारौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः ।
योगिन्योऽप्युग्ररूपाश्च गणानामाधिपाश्च ये ॥६४॥

भूचराः खेचराश्चैव तथा चैवान्तरिक्षगा ।
सर्वे ते प्रीतमनसो भूता गृह्णन्त्विम बलिम् ॥६५॥

इति वामकराङ्गुलिभिरर्घपात्रात्पात्रान्तरेणोद्धृत्य जलधारा बलिपात्रे निक्षिपन् वलिमुत्सृज्य, पुष्पाञ्जलिमादाय—

भूतानि यानीह वसन्ति भूतले वलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् ।
सन्तोषमासाद्य व्रजन्तु सर्वे क्षमन्तु तान्यत्र नमोऽस्तु तेभ्य ॥६६॥

इति पुष्पाञ्जलि दत्वा, प्रणम्य, यथासुख विहरन्तु भूतानीति नाराचमुद्रया विसृज्यऽस्त्रमन्त्रेण शुद्धजलैः स्वात्मानम्प्रोक्ष्य, देवता तृप्ता ध्यात्वा, पात्रान्तरे 'व' इति धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्यऽ'मृतापिधानमसि स्वाहे' ति देवायोत्तरापोशन दत्वा, नैवेद्य गतसारमुद्धृत्य, नैर्ऋत्या नैवेद्यपात्र निधाय, गोमयाद्भिरस्त्रमन्त्रेण तत्स्थान शोधयित्वा तस्मात्किञ्चिच्छेषमादाय, "निर्माल्यभोजिने नमः" इत्यैशान्या निक्षिप्य, हस्त प्रक्षाल्य, देवाय करशोधनार्थं सुगन्धन्चूर्णादिक करक्षालनाय जल च दत्वा, कर क्षालयित्वा, दन्तशोधनार्थं कर्पुरशकलानि दत्वा, पुनर्गण्डूषजल दत्वा, पादौ प्रक्षाल्य, प्राग्वदाचमनीय दत्वा, सूक्ष्मवस्त्रेण पादौ हस्तौ च प्रोञ्छ्य, सुगन्धचूर्णादिभिः करौ सुरभीकृत्य, ताम्बूलमादाय, मूलमुच्चार्य्य श्रीपरदेवते—

तमालदलकर्पुरपूगभागतरङ्गितम् ।
सशोधित सुगन्ध च ताम्बूलम्प्रतिगृह्यताम् ॥६७॥

एतत्ते ताम्बूलं नमः" इति ताम्बूल समर्प्य, प्रागुक्त निवेदनमन्त्रेण निवेद्य, मूलमन्त्रमुच्चार्य्य, 'सुप्रसन्नायै श्रीपरदेवतायै नम.' श्रीपरदेवतायै एष गन्धो नमः' एव गन्धपुष्पधूपदीपैराराधयेदिति प्रसन्नपूजा कृत्वा, मुकुट परिधाप्य दर्श दर्शयित्वा,छत्रचामरव्यजनादिनानाविधराजोपचारान्परिकल्प्य,दूर्वाक्षतकुशजलान्यादाय, मूलमुच्चार्य्य 'श्रीपरदेवते एतत्ते नीराज नम.' इति देवस्य मुकुटोपरि दूर्वादिक निक्षिपेत। तत्कांस्यादिवृहत्स्थाल्यां चन्दनादिनाऽष्टदल कमल कृत्वा तत्र मध्येऽष्टसु दलेषु च पिष्टमयान्नवदीपान् घृतपूर्णान्कर्पूगर्भवर्त्तिसहितान्निक्षिप्य, 'ह्री' इति प्रज्वाल्य क्वचिच्चतुरस्रमण्डले निधाय, 'व' इति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्याऽस्त्रमन्त्रेण चक्रमुद्रया सरक्ष्य, "श्री ह्री ग्लू स्लू म्लू प्लू न्लू ह्री श्री" इति रत्नेश्वरीविद्यया मूलमन्त्रेण च पृथक् पृथगभ्यर्च्य, तत्पात्र कराभ्यामादाय, मूलमुच्चरन् देवस्य चरणान्मूर्द्धान्त मूर्द्धादिचरणान्त च पुनर्भ्रामयन् नवकृत्वो नीराजयेदिति **नीराजनविधिः** ।

इति त्रि पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य पुनर्मूलमुच्चार्य "सुप्रसन्नायै." ।

ततः प्रणम्य, मूलमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं वक्ष्यमाणविधिना प्रतिष्ठितामक्षमालां वक्ष्यमाणविधिना सम्पूज्य वक्ष्यमाणप्रकारेण देवं भावयन्मूलमन्त्रं प्रणवोच्चारणपूर्वकमष्टोत्तरसहस्रं तदर्द्धं त्रिशतमष्टोत्तरसहस्रं[1] वा "ॐ" इति जपं समाप्य, पुनः प्राणायामऋष्यादिन्यासपूर्वकं जपमालां वक्ष्यमाणविधिना शिरसि निधायाऽर्घोदकमादाय—

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता ॥६८॥

इति परदेवताया दक्षिणहस्ते गृहीतोदकदानेन जपं समर्प्य, वक्ष्यमाणप्रकारेण जपमालां सम्पूज्य रहसि निधापयेत् । अत्र जपमालाभावे वक्ष्यमाणप्रकारेणाङ्गुलिभिर्वा जपगणना कार्या । इत्थं जपं विधाय, घण्टावादनपूर्वकं सहस्रनामशतनामस्तोत्रादिभिः स्वेष्टदेवतां स्तुत्वा, प्रदक्षिणनमस्कारैः परितोष्य—

ॐ यद्दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
निवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणानुकम्पया ॥६९॥

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्ज्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर ॥७०॥

कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम ।
अन्तश्चारेण भूतानां द्रष्टा त्वं परमेश्वर ॥७१॥

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युताऽस्तु सदा त्वयि ॥७२॥

देवो दाता च भोक्ता च देवः सर्वमिदं जगत् ।
देवो जयति सर्वत्र यो देवः सोऽहमेव हि ॥७३॥

इति कृताञ्जलिः प्रार्थ्य, पुनः पुनः प्रणम्य, स्वेष्टार्थप्रार्थनां कृत्वाऽर्घपात्रमुद्धृत्य—

साधु वाऽसाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया ।
तत्सर्वं भगवञ्शम्भो गृहाणाऽऽराधनम्परम् ॥७४॥

इति कृतमाराधनं किञ्चिदर्घोदकदानेन समर्प्य, पुनः प्राग्वदर्घं दत्वा, तत्पात्रं स्वस्थाने निवेश्य, पुष्पाञ्जलिमादाय—

---

१. ख० मष्टोत्तरशतं ।

"ॐ इत' पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारजाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृत यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा श्रीगुरुदेवसमर्पितमस्तु इति' देवस्य पादयोः पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, प्रणम्य, पुनः पुष्पाञ्जलिमादाय, मूलमुच्चार्य्य—

रश्मिरूपा महेशस्य पूजिता याश्च देवताः ।
श्रीशिवाङ्गे विलीनास्ता सन्तु सर्वसुखावहाः ॥७५॥

इति पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, द्वारदेवताश्चाङ्गावरणादिदेवताश्च[1] देवस्याङ्गे विलीना इति विभाव्य, देव तेजोमय विभाव्य, 'श्रीपरदेवते क्षमस्वे' ति तालत्रय दत्वा, सहारमुद्रा बद्ध्वा—

ॐ गच्छ गच्छ पर स्थानं स्वस्थानं परमेश्वर ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमम्पदम् ॥७६॥

इति पठित्वा निर्म्माल्यपुष्पेण सह तत्तेज. समुद्धृत्याऽऽघ्राय, वहन्नासाऽध्वना तत्तेजो ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा, सुषुम्णामार्गेण हृदयकमलमानीय—

ॐ तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वर ।
यत्र ब्रह्मादय. सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥७७॥

इति स्वहृदि सस्थाप्य, तत्र यथोक्तरूप देव ध्यात्वा, मानसैरुपचारै सम्पूज्य, स्वाभेदेन ध्यायन् प्राणायामत्रय ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान्विधायेशानकोणे चतुरस्रवेष्टित त्रिकोणमण्डल कृत्वा, तत्र पञ्चायतनी चेदीशानादिकोणचतुष्के प्रादक्षिण्येन—"लम्बोदराय चण्डेश्वर्यै विष्वक्सेनाय तेजश्चण्डाय नम." इति गणेशादीना निर्माल्येन सम्पूज्य, मध्ये—"चण्डेश्वराय नम." इति देवस्य निर्माल्यपुष्पादिकं निक्षिप्य, नैवेद्यशेषं किञ्चिदादाय—

लेह्यचोष्यान्नपानानि ताम्बूल स्रग्विलेपनम् ।
निर्माल्यभोजिने तुभ्य ददामि श्रीशिवाज्ञया ॥७८॥

इति तत्रैव निक्षिप्य, करम्प्रक्षालयेत् । अत्र तत्तद्देवतोपासकै. स्वेष्टदेवताङ्गत्वेन स्थापनक्रमेण गणेशादीनां निर्माल्यदेवता पूज्या । ततस्ताम्रादिपात्रे गन्धपुष्पान्वित जलमापूर्य, सूर्याभिमुख स्थित्वा—

---

१ ख द्वारदेवताश्चतुरायतनदेवताङ्गावरणादिदेवत श्च ।

ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे।
नम सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥७९॥

इति पठित्वा, "ह्रां ह्रीं सः श्रीसूर्य एष तेऽर्घः स्वाहा" इति सूर्यायार्घं दत्वा कृताञ्जलिः—

ॐ यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम।
सर्वं तदच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादतः ॥८०॥

इत्यच्छिद्रमवधार्य, पूजास्थानं गत्वा, पूजावशिष्टं गन्धं किञ्चित्स्ववामकरे निधाय, तत्रार्घपात्रोदकं किञ्चिन्निक्षिप्याऽलोड्य, मूलमन्त्रेणाऽष्टवारमभिमन्त्र्य, तेन जलेन स्वात्मानं प्रोक्ष्य, मूलमन्त्रेण निर्माल्यपुष्पं शिरसि निधाय, मूलेनैव चरणोदकं प्राश्य, नैवेद्यं निजेष्टदेवताभक्तेभ्यो विभज्य, दत्वा स्वयमपि भुक्त्वा, स्वेष्टदेवतारूपः सुखं विहरेत्। इति नित्यपूजाविधिः।

अथैवं विस्तारतो नित्यपूजां कर्त्तुमशक्तश्चेत् प्रातरुत्थाय, श्रीगुरुं स्मृत्वा, प्रणम्य, शौचादिकं विधाय, प्रोक्तविधिना स्नात्वा, स्नानेऽपि विस्ताराशक्तौ निर्म्मलादिकं स्नानान्तरं कुम्भमुद्रया स्वशिरसि त्रिरभिषिच्योक्तविधिना त्रिपुण्ड्रं विधाय, तत्रापि विस्ताराशक्तौ मूलमन्त्रेणैवाभिमन्त्रितभस्मना विधायोक्तविधिना सन्ध्यातर्प्पणसूर्यार्घदानानि कृत्वा, तर्प्पणेऽपि विस्ताराशक्तौ मूलमन्त्रेणाऽष्टाविंशतिवारं देवं सन्तर्प्य, सूर्यार्घदाने विस्ताराशक्तौ केवलसूर्यमन्त्रेणैवार्घं दत्वा, प्रागुक्तविधिना पश्चिमद्वारमेव सम्पूज्य, प्राग्वत् प्रविश्यासनं कल्पयित्वा, आसनेऽपि विस्ताराशक्तौ "ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः" इत्यासनं सम्पूज्योपविश्य, प्राग्वद्द्रव्याण्यासाद्य, भूतशुद्धिं विधाय, भूतशुद्धचामपि विस्ताराशक्तौ प्राग्वद्धृदये जीवात्मानं ध्यात्वा, तथैव ब्रह्मरन्ध्रे संयोज्य, प्राग्वत्पापपुरुषं ध्यात्वा, तथैव 'य' बीजेन संशोष्य, 'र' बीजेन सन्दह्य, 'व' बीजेनाप्लाव्य, पुनर्ब्रह्मरन्ध्राज्जीवात्मानं हृदयमानीय, प्राग्वत्प्राणप्रतिष्ठां मातृकान्यासाश्च कृत्वा, समस्तमातृकान्यासकरणाशक्तौ केवलमातृकान्यासं श्रीकण्ठादिन्यासं, तत्राप्यशक्तौ केवलमातृकान्यासमेव कृत्वा, प्राणायामयोगपीठन्यासमूलमन्त्रन्यासाश्च कृत्वा, ध्यानार्घस्थापनादि सर्वं प्राग्वत्समापयेत्। पाद्यादिपात्रस्थापनाशक्तौ अर्घपात्रं प्रोक्षणीपात्रं च संस्थाप्य, प्रोक्षणीजलेनैव पाद्यादीनि कल्पयेदिति। इतोऽपि संक्षेपप्रकारं शास्त्राद्गुरुमुखादवगन्तव्यः। इयं संक्षेपपूजा विस्तारतः कर्त्तुमशक्तानामेव, शक्तैश्चेदालस्यादिना विस्तारं त्यक्त्वा संक्षेपेण क्रियते तदा दोषाय भवति। इत्थं नित्यपूजाऽऽशौचसम्भवेऽपि विधीयते चेत्तदा न दोषः। तदुक्तं—

देवीयामले—

जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः ।
नास्ति पाप यतस्तेषा सूतकं वा यतात्मनाम् ॥८१॥

मृडानीतन्त्रे—

सूतके मृतके चैव धूमोद्गारादिके तथा ।
जप चार्घ्यं तथा कुर्यान्मिन्त्रन्यासपुरःसरम् ॥८२॥

विष्णुयामले—

शिवविष्ण्वर्च्चने दीक्षा यस्य चाग्निपरिग्रहः ।
ब्रह्मचारियतीना च शरीरे नास्ति सूतकम् ॥८३॥

नारदपञ्चरात्रे—

सूतके मृतके चैव नित्य विष्णुमयस्य च ।
सानुष्ठानस्य विप्रेन्द्र सद्यः शुद्धि. प्रजायते ॥८४॥

इति क्षत्रियादीना तु सूतके नाधिकारोऽस्तीति प्रतीयते । तथा च—

पराशरः—

उपासने तु विप्राणामङ्गशुद्धि प्रजायते ॥ इति ।

विष्णुवचनमपि—

ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं शुचेरप्यशुचेरपि ।
स्त्रीशूद्रकरसस्पर्शो वज्रपातात्सुदु.सह ॥८५॥

शिववचनमपि—

विप्रस्य तु सदैवाऽहं शुचेरप्यशुचेरपि ।
पूजा गृह्णामि शूद्रस्य पुनः स्वाचारवर्त्तिनः ॥८६॥ इति

लिङ्गपुराणेऽपि—

न चैवापूज्य भुञ्जीत शिवलिङ्गं महेश्वरम् ।
सूतके मृतके चापि न त्याज्य शिवपूजनम् ॥८७॥

इति । नैमित्तिककाम्यपूजाया तु सूतके विप्रादीनां सर्वेषामपि नाधिकार. । तदुक्तम्—

नारदपञ्चरात्रे—

सूतके मृतके चापि वर्त्तमाने तु नारद ।
कामतः पूजिते मन्त्रे शान्तिकादौ च कुत्रचित् ॥८८॥

जपेत्पञ्चशत मन्त्री सिद्धमन्त्रस्य भक्तितः ।
शतत्रयमकामाच्च प्रायश्चित्तविधौ जपेत् ॥८९॥

इति श्रीगोस्वामिजगच्छिवात्मज-
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिद्धसिद्धान्तसिन्धौ पञ्चमस्तरङ्गः ॥



॥ अथ दीक्षाविधि ॥ तत्र

श्रीसारसङ्ग्रहे—

अथ वक्ष्यामि दीक्षाणां विधानं मन्त्रिकाम्यया ।
याभिर्विना न लभ्यन्ते सर्वमन्त्रफलानि हि ॥१॥

ताश्च क्रमेण कथिताः क्रियामय्यर्णमय्यपि ।
कलामयी वेधमयी चतस्रो ज्ञानदाः शुभाः ॥२॥

प्रयोगसारे—

मन्त्रमार्गानुसारेण साक्षात् कृत्वेष्टदेवताम् ।
गुरुश्चोद्बोधयेच्छिष्यं मन्त्रदीक्षेति सोच्यते ॥३॥

षडन्वयमहारत्ने—

त्रिविधा सा भवेद्दीक्षा प्रथमा आणवी परा ।
शाक्तेयी शाम्भवी चान्या सद्योमुक्तिविधायिनी ॥४॥

मन्त्रार्चनासनस्थानध्यानोपायादिभिः कृता ।
दीक्षा सा त्वाणवी प्रोक्ता यथाशास्त्रोक्तरूपिणी ॥५॥

सिद्धः स्वशक्तिमालोक्य तया केवलया शिशोः ।
निरुपायकृता दीक्षा शाक्तेयी परिकीर्तिता ॥६॥

अभिसन्धिं विनाऽऽचार्यशिष्ययोरुभयोरपि ।
देशिकानुग्रहेणैव शिवताव्यक्तिकारिणी ॥७॥
सेयं तु शाम्भवी दीक्षा शिवादेशनकारिणी ।

वायवीयसंहितायाम्—

शाम्भवी चैव शाक्ती च मान्त्री चैव शिवागमे ।
दीक्षोपदिश्यते त्रेधा शिवेन परमात्मना ॥८॥

गुरोरालोकमात्रेण स्पर्शात्सम्भाषणादपि ।
सद्यः सज्ञा भवेज्जन्तोर्दीक्षा सा शाम्भवी मता ॥९॥

शाक्ती ज्ञानवती दीक्षा शिष्यदेहं प्रविश्य तु ।
गुरुणा योगमार्गेण क्रियते ज्ञानचक्षुषा ॥१०॥
मान्त्री क्रियावती दीक्षा कुम्भमण्डलपूर्विका ।

कुलमूलावतारे—

दीयते ज्ञानविज्ञानं क्षीयन्ते पापराशयः ।
तेन दीक्षा इति प्रोक्ता तासां तत्त्वविचारकैः ॥११॥

सारसंग्रहे—

आत्मलाभं ददत्येता. क्षिण्वन्ति दुरितान्यपि ।
तेन दीक्षा इति प्रोक्ता ....॥१२॥ इति

अन्यत्रापि—

ददाति यस्मादिह दिव्यभावं,
मायामले कर्म च सक्षिणोति ।
फलं चतुर्वर्गभवं च यस्मात्,
तस्मात्तु दीक्षेत्यभिधानमस्याः ॥१३॥

महाकपिलपञ्चरात्रनारायणीययोः—

मन्त्री यः साधयेदेकं जपहोमार्चनादिभिः ।
क्रियाभिर्भूरिभिस्तस्य सिध्यन्त्यन्येऽल्पसाधनात् ॥१४॥

सम्यक् सिद्धैकमन्त्रस्य नासाध्यमिह किञ्चन ।
बहुमन्त्रवतः पुंसः का कथा हरिरेव स. ॥१५॥

पदार्थादर्शे—

पुस्तके लिखितो मन्त्रो येन सुन्दरि जप्यते ।
न तस्य जायते सिद्धिर्हानिरेव पदे पदे ॥१६॥

कालोत्तरे—

द्विजानामनुपेतानां स्वकर्माध्ययनादिषु ।
यथाऽधिकारो नास्तीह स्याच्चोपनयनादनु ॥१७॥

तथा चादीक्षितानां च मन्त्रदेवार्चनादिषु ।
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्कृतम् ॥१८॥

नारायणीये—

यदृच्छया श्रुतं मन्त्रं छन्नेनापि छलेन वा ।
पत्रेक्षितं वा गाथावत्तज्जपेद्यद्यनर्थकृत् ॥१९॥

श्रीकुलार्णवे—

पुस्तके लिखितान्मन्त्रानालोक्य प्रजपन्ति ये ।
ब्रह्महत्यासमं तेषां पातकं परिकीर्त्तितम् ॥२०॥

अनेककोटिमन्त्राणा चित्तव्याकुलकारणम् ।
मन्त्र गुरुमुखात्प्राप्तमेक स्यात्सर्वसिद्धिदम् ॥२१॥

प्रविश्य विधिवद्दीक्षामभिषेकावसानिकाम् ।
श्रुत्वा तन्त्र गुरोर्लब्ध साधयेदीप्सित मनुम् ॥२२॥

अन्यत्र—

गुरुमुख्याः क्रियाः सर्वा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ।
तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्य मुक्त्यर्थं सुसमाहितैः ॥२३॥

गुर्वनुक्ताः क्रियाः सर्वा निष्फला स्युर्यतो ध्रुवम् ।
जपो देवार्चनविधि. कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः ॥२४॥
नास्ति पाप यतस्तेषां सूचकं वा यतात्मनाम् ।

नारदपञ्चरात्रे—

[1]नारायणपरं ब्रह्म तज्ज्ञानेनाऽवगम्यते ।
ज्ञानस्य साधनं शास्त्रं तच्छास्त्रं गुरुवक्त्रतः ॥२५॥

ब्रह्मप्राप्तिरतो हेतोर्गुर्वधीना सदैव हि ।
यस्माद्देवो जगन्नाथः कृत्वा मर्त्यमयी तनुम् ॥२६॥

मग्नानुद्धरते लोकान्कारुण्याच्छास्त्रपाणिना ।
तस्माद्भक्तिर्गुरौ कार्या ससारभयभीरुणा ॥२७॥

शास्त्रज्ञानेन योऽज्ञानतिमिरं विनिपातयेत् ।
शास्त्रे पापहर पुण्य पवित्रं भोगमोक्षदम् ॥२८॥
शान्तिद च महार्थं च वक्ति य. स जगद्गुरुः ।

---

१. इतः पूर्वं ख. पुस्तके पद्यानीमानी विशेषतोऽवलोक्यन्ते—

यो मन्त्रो (न्त्र.) स गुरु. साक्षाद्यो गुरुः स हरिः स्वयम् ।
गुरुर्यस्य भवेत्तुष्टस्तस्य तुष्टो हरिः स्वयम् ॥१॥

हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुरेव सदा गतिः ॥२॥

ये गुर्वाज्ञां न कुर्वन्ति पापिष्ठाः पुरुषाधमाः ।
न तेषां नरकक्लेशनिस्तारो मुनिसत्तम ॥३॥

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा ह्यनृणो भवेत् ॥४॥

कुलार्णवे—

विना दीक्षा न मोक्षः स्यान्नराणां शिवशासनम् ।
सा तु न स्याद्विनाचार्यमित्याचार्य्यपरम्परा ॥२६॥

इत्यादिवचनैर्दीक्षाया गुर्वधीनत्वाद्गुरुस्वरूपं निरूप्यते ।

तन्त्रराजे—

सुन्दरः सुमुखः स्वच्छः सुलभो बहुतन्त्रवित् ।
असंशयः संशयच्छिन्निरपेक्षो गुरुर्मतः ॥३०॥

सौन्दर्यमनवद्यत्वं रूपे सुमुखता पुनः ।
स्मेरपूर्वाभिभाषित्वं स्वच्छताऽजिह्मचित्तता ॥३१॥

सौलभ्यमप्यगर्वित्वं सन्तोषो बहुतन्त्रता ।
असंशयस्तत्त्वबोधे तच्छिष्ये प्रतिपादनात् ॥३२॥

नैरपेक्ष्यमचित्तेच्छा गुरुत्वं हितवादिता ।
एवंविधो गुरुर्ज्ञेयस्त्वितरः शिष्यदुःखदः ॥३३॥

श्रीकुलार्णवे—

श्रीगुरुः परमेशानि शुद्धवेषो मनोहरः ।
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वावयवशोभितः ॥३४॥

सर्वागमार्थतत्त्वज्ञः सर्वमन्त्रविधानवित् ।
लोकसम्मोहनाकारो देववत्प्रियदर्शनः ॥३५॥

सुमुखः सुलभः स्वच्छः शुद्धान्तश्छिन्नसंशयः ।
इङ्गिताकारचेष्टाविद् दूरतः कृतदुर्जनः ॥३६॥

अन्तर्मुखो बहिर्दृष्टिः सर्वज्ञो देशकालवित् ।
आज्ञासिद्धस्त्रिकालज्ञो निग्रहानुग्रहक्षमः ॥३७॥

वेदवेदाङ्गविच्छान्तः सर्वजीवदयापरः ।
स्वाधीनेन्द्रियसञ्चारः षड्वर्गविजयक्षमः ॥३८॥

अग्रगण्योऽतिगम्भीरः पात्रापात्रविशेषवित् ।
निर्ममो नित्यसन्तुष्टो निर्द्वन्द्वोऽनन्तशक्तिमान् ॥३९॥

सद्भक्तवत्सलो धीरः कृपालुः स्मितपूर्ववाक् ।
भक्तप्रियः सर्वसमो दयालुः शिष्यशासिता ॥४०॥

श्रेष्ठनिष्ठो गुरुः प्राज्ञो वनितापूजनोत्सुकः ।
नित्ये नैमित्तिके काम्ये रतः कर्मण्यनिन्दिते ॥४१॥

अलोलुपो हिंसकश्च पक्षपाती विचक्षणः ।
वित्तविद्यादिभिः पूर्णो मन्त्रयन्त्रादिपारगः ॥४२॥

निःसङ्कल्पविकल्पश्च निर्णीतार्थाभिधायकः ।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी निरपेक्षो नियामकः ॥४३॥

इत्यादिलक्षणोपेतः श्रीगुरुः कथितः प्रिये ।

शारदातिलके—

मातृतः पितृतः शुद्धः शुद्धभावो जितेन्द्रियः ।
सर्वागमानां सारज्ञः सर्वशास्त्रार्थतत्ववित् ॥४४॥
परोपकारनिरतो जपपूजादितत्परः ।[1]

महाकपिलपञ्चरात्रे—

नातिबालो न वृद्धश्च न खञ्जो न कृशस्तथा ।
नाधिकाङ्गो न हीनाङ्गो न खल्वाटो न दन्तुरः ॥४५॥

कृतज्ञं वाग्मिनं शूरं प्रतिष्ठागमपारगम् ।
वास्तुविद्याकृताभ्यासं शल्योद्धारविवेकिनम् ॥४६॥

क्रियानुक्रमवेत्तारं मुद्रातन्त्रविवेकिनम् । इति
शुचिस्सुवेषस्तरुणस्सर्वभूतसमानधीः ॥४७॥

धीमाननुद्धतमतिः कृतज्ञः शिष्यवत्सलः ।
श्रद्धावाननसूयश्च गृहस्थो गुरुरुच्यते ॥४८॥

संसारसागरे मग्नान् यस्तारयति देहिनः ।
तत्वप्लवप्रदानेन स एवेह गुरुः स्मृतः ॥४९॥

प्रतिष्ठासारस्वते तु विशेषः—

आर्यावर्त्तोद्भवोऽन्यो वा ककाराष्टकवर्जितः ।
शैवसिद्धान्तनिपुणः प्रतिष्ठामन्त्रपारगः ॥५०॥

---

१ अतः परं ख. पुस्तके विशेषः—

अमोघवचनः शान्तो वेदवेदार्थपारगः ।
योगमार्गानुसन्धायी देवताहृदयङ्गमः ॥१॥
इत्यादिगुणसम्पन्नो गुरुरागमसम्मतः ।

वीरागमे च—

कुमारीहिमवन्मध्ये स्वतः कृष्णमृगान्विते ।
देशे जातस्तु यो विद्वानाचार्यत्वमथार्हति ॥५१॥

योगशिवमतावपि—

मध्यदेशकुरुक्षेत्रनाभोज्जयनिसम्भवाः ।
अन्तर्वेदिप्रतिष्ठानादावन्त्याश्च गुरूत्तमाः ॥५२॥

गौडदेशोद्भवाश्चौला मागधा. कैरलास्तथा ।
कौशलाश्च दशार्णाश्च गुरव सप्त मध्यमा ॥५३॥

कार्णाटा. कौंकणा. कीरकच्छकश्मीरसम्भवा ।
कालिङ्गाः कामरूपाश्च काम्वोजाश्चाधमा स्मृता. ॥५४॥

शैवदीक्षायां अतीतागमे विशेष —

जटी मुण्डी शिखी वापि शस्तदेशसमुद्भव ।
शिवशास्त्रार्थतत्वज्ञः श्रुतवृत्तान्वितो द्विज. ॥५५॥

शिवमेवाश्रितो नित्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
आचार्य स सदोद्दिष्ट शिवदीक्षादिकर्मसु ॥५६॥

शान्तिके च—

अनूचान.[1] प्रसन्नात्मा शिवदीक्षाऽभिषेचितः ।
शिवागमज्ञो मतिमाञ्छिवपूजापरायण ॥५७॥

रुद्राक्षमालां विभ्राणस्त्रिशूलाङ्कितविग्रह ।
विशुद्धदेशकुलज शीलाचारसमन्वित ॥५८॥
वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो ज्ञानवान्गुरुरुच्यते ।

प्रतिष्ठापद्धतावपि—

लिङ्गाविलक्षणज्ञानो निपुण कर्मसन्ततौ ।
देवताव्याप्तितत्वज्ञ. षड्विधाऽध्वविशारद ॥५९॥

शुभाशुभनिमित्तज्ञस्त्वथवा विस्तरेण किम् ।
सम्यग् जातिपरिज्ञानवृत्तत्वाद्याख्ययोगुणा ॥६०॥
यस्यैते स गुरु. श्रेष्ठ सर्वकामफलप्रद ।

---

1 ख अनूचान ।

पौष्करे—

सर्वलक्षणहीनोऽपि ज्ञानवान् गुरुरुच्यते ।
ज्ञान च तत्वविज्ञान षडध्वज्ञानसश्रयम् ॥६१॥

सत्वसारे—

बह्वाशी दीर्घसूत्री च विषयादिषु लोलुप. ।
हेतुवादरतो दुष्टो वाग्वादी गुणनिन्दक' ॥६२॥

अरोमा बहुरोमा च निन्दिताश्रमसेवक. ।
कालदन्तोऽसितोष्ठश्च दुर्गन्धिश्वासवाहकः ॥६३॥

दुष्टलक्षणसम्पन्नो यद्यपि स्वयमीश्वरः ।
बहुप्रतिग्रहासक्त आचार्यः श्रीक्षयावहः ॥६४॥

शैवागमे—

भिक्षुभ्यश्च वनस्थेभ्यो वर्णिभ्यश्च महेश्वरि ।
गृहस्थो भोगमोक्षार्थी मन्त्रदीक्षा न चाचरेत् ॥६५॥

त्यक्ताग्नयः क्रियाहीना यतयो ह्यपरिग्रहा ।
वनस्थास्तादृशा एव वर्णी न्यूनाश्रमी यतः ॥६६॥

अतस्तेषा नाऽधिकारो दीक्षादाने महेश्वरि ।
न्यूनाश्रमी गृहस्थापेक्षया गार्हस्थ्य द्वितीयाश्रमत्वात् ॥

शिवसद्भावेऽपि—

दीक्षाया न गुरुत्वेन यतीन् वैखानसान् प्रिये ।
वृणुयाद्भोगमोक्षार्थी गृहस्थो वर्णिन तथा ॥६७॥
वैखानसान् वानप्रस्थान् वर्णिन ब्रह्मचारिणम् ।
क्वचिद्यतीनाम्ब्रह्मचारिणां च गुरुतोक्ता ।

मोहशूरोत्तरे—

चीर्णाचारव्रतो मन्त्री ज्ञानवान् सुसमाहितः ।
नित्यनिष्ठो यतिः ख्यातो गुरुः स्याद्भौतिकोऽपि वा ॥६८॥

भौतिको ब्रह्मचारी ।

हयशीर्षपञ्चरात्रे—

गृहस्थं ब्रह्मचर्यस्थ ककाराष्टकवर्जितं ।
गुरु कुर्वीत सततमुपवासव्रते रतम् ॥६९॥

ज्ञानोन्नयने—

निर्वीर्यं तु पितुर्मन्त्रं तथा मातामहस्य च ।
सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरिपक्षाश्रितस्य च ॥७०॥

कनिष्ठस्य स्वापेक्षया न्यूनवयस्कस्य । नैतत्सोदरविषयम्, भक्तियुक्ताय पुत्रायापि मन्त्रो देयो विशेषतो ज्येष्ठायेत्यप्युक्तम् तथा च—

फेत्कारिणीतन्त्रे—

कृतसुकृतसहस्रानेकजन्मप्रतानै—
र्यदि भवति मनुष्यो गुर्वधीनश्चिरायुः ।
कथमपि मनुमेन प्राप्य सद्देशिकेन्द्रा—
न्निजकुलतिलकाय ज्येष्ठपुत्राय दद्यात् ॥७१॥

एन तारामनुम् ।

प्रयोगसारे—

तत्रापि भक्तियुक्ताय पुत्राय वसुदाय च ॥ इति ॥

नारायणीयेऽपि—

कुर्वन्नाचार्यशुश्रूषा मनोवाक्कायकर्मभिः ।
शुद्धभावो महोत्साहो वोद्धा शिष्य इति स्मृतः ॥७२॥
सतूपदेश्यः पुत्रोऽपि व्यत्ययी वसुदस्तथा ॥इति॥

मत्स्यसूक्ते तु विशेषः—

निर्वीर्यं तु पितुर्मन्त्र शैवे शाक्ते न दुष्यति ।

वैशम्पायनसहितायां विष्णुमत्रमधिकृत्याप्युक्तम्—

साधु पृष्ट त्वया ब्रह्मन् वक्ष्यामि सकल तव ।
ब्रह्मणा कथित पूर्वं वसिष्ठाय महात्मने ॥७३॥
वसिष्ठोऽपि स्वपुत्राय मत्पित्रे दत्तवान् स्वयम् ।
प्रसन्नहृदय स्वच्छ पिता मे करुणानिधि ॥७४॥
कुरुक्षेत्रे महातीर्थे सूर्यपर्वणि दत्तवान् । इति ।

रुद्रयामले—

न पत्नी दीक्षयेद्भर्त्ता न पिता दीक्षयेत्सुताम् ।
न पुत्र च तथा भ्राता भ्रातर च न दीक्षयेत् ॥७५॥
सिद्धमन्त्रो यदि पतेस्तदा पत्नी स दीक्षयेत् ।

सिद्धियामले तु सिद्धमन्त्रलाभे गुरुविचारो न कार्यः । यथा—

यदि भाग्यवशेनैव सिद्धविद्यां लभेत्प्रिये ।
तदैव ता तु दीक्षेत त्यक्त्वा गुरुविचारणाम् ॥७६॥ इति।

नारदपञ्चरात्रे—

ब्राह्मणः सर्वकालज्ञः कुर्यात्सर्वेष्वनुग्रहम् ।
तदभावाद् द्विजश्रेष्ठः शान्तात्मा भगवन्मयः ॥७७॥

भावितात्मा च सर्वज्ञः शास्त्रज्ञः सत्क्रियापरः ।
सिद्धत्रयसमायुक्ते आचार्यत्वेऽभिषेचितः ॥७८॥

क्षत्रविट्शूद्रजातीना क्षत्रियोऽनुग्रहक्षमः ।
क्षत्रियस्यापि च गुरोरभावादीदृशो यदि ॥७९॥

वैश्य. स्यात्तेन कार्यः स्याद् द्वये नित्यमनुग्रहः ।
सजातीयेन शूद्रेण तादृशेन महामते ॥८०॥

अनुग्रहाभिषेकौ च कार्यौ शूद्रस्य सर्वदा ।
वर्णोत्तमे ऽथ च गुरौ सति वा विश्रुतेऽपि वा ॥८१॥

स्वदेशतोऽथवाऽन्यत्र नेद कार्यं शुभार्थिना ।
विद्यमाने तु यः कुर्याद्यत्र तत्र विपर्ययम् ॥८२॥

तस्येहाऽमुत्र नाशः स्यात्तच्छास्त्रोक्तमाचरेत् ।
क्षत्रविट्शूद्रजातीयः प्रातिलोम्य न दीक्षयेत् ॥८३॥

स्त्रिया अपि गुरुत्वमुक्तम्—

योगिनीतन्त्रे

साध्वी चैव सदाचारा गुरुभक्ता जितेन्द्रिया ।
सर्वमन्त्रार्थतत्वज्ञा सुशीला पूजने रता ॥८४॥

गुरुयोग्या भवेत्सापि विधवा च विवर्जिता ।
स्त्रियो दीक्षा शुभा प्रोक्ता मातुश्चाष्टगुणा स्मृता ॥८५॥

॥ अथ सच्छिष्यलक्षणानि ॥ तत्र—

तन्त्रराजे—

चतुर्भिराद्यैस्संयुक्त' श्रद्धावान्सुस्थिराशय' ।
अलुब्ध स्थिरगात्रश्च प्रेक्षाकारी जितेन्द्रिय. ॥८६॥

आस्तिको दृढभक्तिश्च गुरौ मन्त्रे सदैवते ।
एवं विधो भवेच्छिष्यस्त्वितरो दुखःकृद्गुरोः ॥८७॥

चतुर्भिराद्यैः सुन्दरादिभिर्लक्षणैः ।

गुरूच्यमाने वचने दद्यादित्थं वचस्तदा ।
प्रसीद नाथ देवेति तथेति च कृतादरम् ॥८८॥

प्रणम्योपविशेत्पार्श्वे तथा गच्छेदनुज्ञया ।
मुखावलोकी सेवेत कुर्यादादिष्टमादरात् ॥८९॥

असत्यं न वदेदग्रे न बहु प्रलपेदपि ।
कामं क्रोधं तथा लोभं मानं प्रहसनं स्तुतिम् ॥९०॥

चापलानि च जिह्मानि कार्याणि परिदेवनम् ।
ऋणादानं तथा दानं वस्तूनां क्रयविक्रयम् ॥९१॥

न कुर्याद्गुरुणा सार्द्धं शिष्यो भूष्णुः कदाचन ।
यतो गुरुः शिवः साक्षात्तं स्तुवन्प्रणमन्भजेत् ॥९२॥

यथा देवे तथा मन्त्रे यथा मन्त्रे तथा गुरौ ।
यथा गुरौ तथा स्वात्मन्येव भक्तिक्रमः प्रिये ॥९३॥

गुरोस्तु जन्मदिवसे कुर्यादुत्सवमादरात् ।
विशेषपूजां योगिभ्यो भोजनं तत्पदार्चनम् ॥९४॥

व्याप्ते दूरगते पूज्ये पूजयेदग्रजादिषु ।
एकदेशे नित्यसेवा दूरस्थे योजनक्रमात् ॥९५॥

एकादिऋतुसवृद्धया वर्षे षड्योजनान्तरे ।
ततो दूरगते सेवा तदाज्ञापरिपालनम् ॥९६॥

आसनं शयनं वस्त्रं भूषणं पादुकां तथा ।
छाया कलत्रमन्यच्च यत्तत्स्पृष्टं सुपूजयेत् ॥९७॥

एकग्रामे पृथक् पूजां न कुर्यादननुज्ञया ।
पूजामध्ये समायाते पूज्ये नत्वा स्थितिं वदेत् ॥९८॥

विधेहि शेषमित्युक्तः कुर्यान्नो चेत्तदाज्ञया ।
वर्त्तेत सोऽपि तच्छेषं कुर्यान्निश्चलमानसः ॥९९॥

आज्ञाकारी गुरौ शिष्यो मनोवाक्कायकर्मभिः ।
यो भवेत्स सदा ग्राह्यो नेतर शुभकाङ्क्षया ॥१०६॥
एतादृशगुणोपेतः शिष्यो भवति नापर. ।

तथा च कुलार्णवे—

सच्छिष्य त कुलेशानि सर्वलक्षणसयुतम् ।
शमादिसाधनोपेत गुणशीलसमन्वितम् ॥११०॥

शुद्धदेहानुबन्धाङ्ग धार्मिक शुद्धमानसम् ।
दृढव्रत सदाचार श्रद्धाभक्तिसमन्वितम् ॥१११॥

कृतज्ञ पापभीत च साधुसज्जनसम्मतम् ।
आस्तिक दानशील च सर्वभूतहिते रतम् ॥११२॥

विश्वासविनयोपेत वित्तशाठ्यविवर्जितम् ।
असाध्यसाधक शूर बलकान्तिसमन्वितम् ॥११३॥
अनुकूलक्रियायुक्तमप्रमत्त विचक्षणम् ।
हितसत्यमितस्निग्धभाषिण मुक्तदूषणम् ॥११४॥

सकृदुक्तगृहीतार्थं चतुरं बुद्धिविस्तरम् ।
गृहतल्पासनोत्सङ्गनिर्विकारमसेवकम् ॥११५॥

विमृश्यकारिण वीरं मनोदारिद्र्यवर्जितम् ।
सर्वकार्यातिकुशल धीर सर्वोपकारकम् ॥११६॥

स्वस्वार्थे परनिन्दाया विमुखं सुमुख प्रिये ।
जितेन्द्रिय सुसन्तुष्ट धीमन्त ब्रह्मचारिणम् ॥११७॥

त्यक्ताधिव्याधिचापल्य दु शङ्कातङ्कवर्जितम् ।
गुरुध्यानस्तुतिकथासेवनाभजनोत्सुकम् ११८॥

गुरुदैवतभक्त च कामिनीपूजनोत्सुकम् ।
नित्य गुरुसमीपस्थ गुरुसन्तोषकारिणम् ॥११९॥

वाङ्मन.कर्मभिर्नित्य गुरुकार्यसमुत्सुकम् ।
गुर्वाज्ञापालक देवि गुरुकीर्त्तिप्रकाशकम् ॥१२०॥

गुरुवाक्यप्रमाणज्ञ गुरुशुश्रूषणे रतम् ।
चित्तानुवर्त्तिन प्रेक्ष्यकारिणं कुलनायिके ॥१२१॥

इति निन्दितशिष्यपरिग्रहे दोषश्रवणादसच्छिष्यं न परिगृह्णीयात्। प्राय इति गुरुणा शिष्य सम्यग्बोधनीय । सम्यग्बोधितोऽपि तद्वाक्यमनादृत्य पाप चेदाचरति तदा तत्पाप गुरु न प्राप्नोति इत्यर्थः ।

वर्णाश्रमाणा सर्वेषामाचार. सद्गतिप्रदः ।
गुरुस्त्रिवारमाचार बोधयेत्कुलनायिके ॥१४८॥
न गृह्णाति हि शिष्यश्चेत्तदा पाप गुरोर्नहि ।

इति **श्रीकुलार्णववचनात्** । **इतिगुरुशिष्यलक्षणानि** ।

भुवनेशीपारिजाते--

अशिष्ये कथयेद्यस्तु स महापातकी भवेत् ।

नारदपञ्चरात्रे—

सर्वस्वमपि यो दद्याद्भक्तिश्रद्धाविवर्जितः ।
नयाचारविनिर्मुक्तो मानी शास्त्रार्थदूषकः ॥१४९॥
न तस्य शास्त्र वक्तव्यं ब्रूते वा य. स यात्यध ।

॥ अथ शिष्याणामधममध्यमोत्तमत्वं च ॥

श्रीकुलार्णवे—

आदिमध्यावसानेषु योग्या. शक्तिनिपातत: ।
अधमा मध्यमा. श्रेष्ठा. शिष्या देवि प्रकीर्तिता. ॥१५०॥
आदौ भक्तिर्भवेद्देवि दीक्षार्थं सवदन्ति ये ।
पुनर्विलुप्तभक्तयस्ते आदियोग्या इतीरिताः ॥१५१॥
दीक्षा समयसम्प्राप्ता ज्ञानविज्ञानवर्जिताः ।
भक्त्या प्रध्वस्तजाड्या ये मध्ययोग्या इति स्मृता. ॥१५२॥
आदौ भक्तिविहीना ये मध्ये भक्त्यस्तु वा न वा ।
अन्ते प्रभूतभक्तयश्चाप्यन्तयोग्या भवन्ति ते ॥१५३॥

अत्र भक्तय इति दिव्यत्वाद् भक्तिमन्त इत्यर्थ. ।

॥ अथ गुरुशिष्यपरीक्षा ॥

श्रीकुलार्णवे—

ज्ञानेन क्रियया चापि गुरु. शिष्य परीक्षयेत् ।
संवत्सर तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा प्रयत्नत ॥१५४॥
उत्तमानधमे कार्ये नीचानुत्तमकर्मणि ।
प्राणद्रव्यप्रदानाद्यैरादेशैश्च समाऽसमैः ॥१५५॥
तन्मर्मसूचकैर्वाक्यैर्मायाभि. क्रूरचेष्टितै. ।
पक्षपातैरुदासीनैरनेकैश्च मुहुर्मुहुः ॥१५६॥

आक्रुष्टस्ताडितश्चापि यो विषादं न याति च ।
गुरु कृपा करोतीति मुदा सञ्चिन्तयेत्सदा ॥१५७॥[1]

श्रीगुरोरत्र[2] योग्या स्युर्दीक्षासंस्कारकर्मसु ।
शिष्योऽपि लक्षणैरेतै कुर्याद्गुरुपरीक्षणम् ॥१५८॥

आनन्दाद्यैर्जपै. स्तोत्रैर्ध्यानहोमार्च्चनादिभि ।
ज्ञानोपदेशसामर्थ्यं मन्त्रसिद्धिमपीश्वरि ॥१५९॥
बोधकत्व च विज्ञाय शिष्यो भूयान्न चाऽन्यथा ।

॥ अथ वर्णानां दीक्षायोग्यताकालविशेषः ॥ तत्र—

शारदातिलके—

एकाब्देन भवेद्योग्यो ब्राह्मणस्तद्द्वयान्नृपः ।
वैश्यो वर्षैस्त्रिभिः शूद्रश्चतुर्भिर्वत्सरैर्गुरौ ॥१६०॥
सुश्रुश्रूषु परिग्राह्यो दीक्षायागव्रतादिषु ।

तन्त्रराजे—

एव द्वित्रिचतु पञ्चवर्षाण्यालोच्य योग्यताम् ।
भक्तियुक्तान् गुणाश्चापि क्रमाद्वर्णे ससङ्करे ॥१६१॥

अन्यत्र वत्सरमात्र सामान्यत उक्तम्—

गुरुता शिष्यता वापि तयोर्वत्सरवासतः ॥ इति ।

[3]उक्तिसारसङ्ग्रहेऽपि—

स गुरुः सश्रित शिष्य वर्षमेक परीक्षयेद् ॥ इति ।

केचनेद ब्राह्मणविषयमित्यूचु. ।

दशपटल्या तु—

अब्द परीक्ष्य चार्द्धं वा अन्यथा न कदाचन ॥ इति ।

प्रयोगसारे विशेष —

---

१. ख. पुस्तकेऽतः परमयमंशो विशेष —
श्रीगुरुस्मरणे चापि कीर्त्तने दर्शनेऽपि च ।
वन्दने परिचर्यायामाह्वाने प्रेषणे प्रिये ॥१॥
आनन्दकम्परोमाञ्चस्वरनेत्रादिविक्रिया ।

२ ख येषां स्युस्तेऽत्र । ३. ख. उक्त सारसङ्ग्रहेऽपि ।

वर्षेषु त्रिषु विप्रस्य षट्सु वर्षेषु भूभुजः ।
विशो नवसु वर्षेषु परीक्षा तत्र शस्यते ॥१६२॥
समास्वपि द्वादशसु तेषां ये वृषलादयः । इति ।

मनु—

न वेदः प्रणवं त्यक्त्वा मन्त्रो वेदसमुत्थितः ।
तस्माद्वेदः परो मन्त्रो वेदाङ्गश्चागमः स्मृतः ॥१६३॥

वश्याकर्षादिकं कर्म दृष्टादृष्टफलप्रदम् ।
वेदेन साध्यते सर्वं ग्रहयज्ञादिभिः किल ॥१६४॥

न वेदेन विना यज्ञा न वेदा यज्ञवर्जिताः ।
तस्याद्वेदः परो मन्त्रो न मन्त्रो वेद उज्झितः ॥१६५॥

न मन्त्रे चाधिकारोऽस्ति शूद्राणां नियमः परः ।
मन्त्राभावादमन्त्रेण भाषितं सर्वकर्म हि ॥१६६॥

इति महाकपिलपञ्चरात्रोक्तेः ।

यावन्त्यक्षराणि मन्त्राणां शूद्राय प्रतिपादयेत् ॥
यावत्यो ब्रह्महत्याः स्युः स्वयमाह प्रजापतिः ॥१६७॥

इति शातातपसंहितोक्तेश्च शूद्रेभ्यो मन्त्रो न देय इति नावगन्तव्यं, एतेषां वचनानामसच्छूद्रनिषेधपरत्वं, स्वाहाप्रणवसंयुक्तमन्त्रप्रदानानधिकारपरत्वं च । तथा च—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये शुचयोऽमलाः ।
तेषां मन्त्राः प्रदेया वै न तु सङ्कीर्णधर्मिणाम् ॥१६८॥

इति भविष्योत्तरवचने 'शूद्राः शुचयः' इत्युक्ते ।

ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा अर्चाया शुद्धबुद्धयः ।
गुरुदेवद्विजार्चासु रताः स्युरधिकारिणः ॥१६९॥

इति योगिनीतन्त्रे ।

वैदिको मिश्रितो वापि विप्रादीनां विधीयते ।
तान्त्रिको विप्रभक्तस्य शूद्रस्यापि प्रकीर्तितः ॥१७०॥

इति पद्मपुराणे च विशेषणविशिष्टस्यैवोक्तेः ।

स्वाहाप्रणवसंयुक्तं मन्त्रं शूद्रे ददद् द्विजः ।
शूद्रो निरयगामी स्याद्विप्रः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥१७१॥

इति देवीयामलवचने 'स्वाहाप्रणवसयुक्त' मिति विशेषणोक्तेः षडङ्ग-न्यासे 'स्वाहादि' पदस्थाने शूद्राणा 'नम.' पदोच्चार। नमस्कारोऽस्य मन्त्र इति गौनमेन यावदेकतान्त्रिकमन्त्रेषु 'नमो'मात्रविधानात्तस्यैव तत्तदपूर्वजनकत्वात्। शूद्रप्रकरणे स्मृतिरपि—

नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत्।

केषुचिद्वचनेषु केषचिन्मन्त्रविशेषेषु सामान्यतस्सर्वेषामपि शूद्राणा प्रति-लोमानुलोमजादीनामप्यधिकार. श्रूयते। तथा च—

रुद्रयामले—

स्त्रीशूद्राणामय मन्त्रो नमोऽन्तश्च शुभावह॰।
एतद् ज्ञात्वा महासेन चण्डालानपि दीक्षयेत् ॥१७२॥

इति। अथ प्रासादमन्त्रः।

अगस्त्योऽपि—

शुचिव्रततमा शूद्रा धार्मिका द्विजसेवका.।
स्त्रिय पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजा ॥१७३॥

लोकाश्चण्डालपर्यन्ता. सर्वेऽप्यत्राधिकारिण.।
स्वजातिधर्मनिरता भक्ता॰ सर्वेश्वरस्य च ॥१७४॥
उपदेश. समस्तेषा तत्तज्जात्यनुसारत॰।

अत्र राममन्त्रे।

याज्ञवल्क्यसहितायाम्—

न वैदिक जपेत् शूद्र स्त्रियश्चैव कदाचन।
नमोऽन्त शिवमन्त्र वा वैष्णव चेष्यते बुधैः ॥१७५॥

नमोन्तमित्यस्योभयत्र सम्बन्ध।

कुलमूलावतारे श्रीदेव्युवाच—

शाक्तशाम्भवसौराणा गाणेशे वैष्णवेषु च।
ब्रह्मक्षत्रादिवर्णाना सङ्कराणां विशेषतः ॥१७६॥

प्रवृत्ति श्रोतुमिच्छामि साधकानां हिताय च।
येषु येषु च ये मन्त्रास्तद्भेद वद शङ्कर ॥१७७॥

ईश्वर उवाच—

उमामहेश्वर चैव दक्षिणामूर्त्यघोरकम् ।
हयग्रीव च वाराहमष्टाक्षरमतः परम् ॥१७८॥

प्रणवाद्य वासुदेव लक्ष्मीनारायण तथा ।
वर्णत्रये च दातव्य नान्यवर्णे कदाचन ॥१७९॥

पाशुपत नारसिह तथा चैव सुदर्शनम् ।
वर्णद्वये च दातव्य नान्ययोश्चैव कर्हिचित् ॥१८०॥

अग्निमन्त्राश्च ये केचित्सूर्यमन्त्राश्च ये तथा ।
तारादिघृणिमन्त्राश्च दातव्याश्च त्रिवर्णके ॥१८१॥

आनुष्टुभ शक्तिमन्त्राश्च तथा विन्ध्यनिवासिनी ।
तथा नीलसरस्वती दातव्याश्चादिवर्णके ॥१८२॥

मातङ्गिन्युग्रतारा च कालिका श्यामला तथा ।
छिन्नमस्ता च बाला च दातव्या सर्ववर्णके ॥१८३॥

तारादिस्तु गणेशश्च हरिद्रासज्ञकस्तथा ।
त्रिवर्णेष्वेव दातव्य कथित. सर्वसिद्धिद. ॥१८४॥

त्रिपुरायाश्च ये मन्त्रा ये मन्त्रा वटुकादयः ।
सर्ववर्णेषु दातव्या. पुरन्ध्रीणा विशेषत ॥१८५॥

प्रणव माया लक्ष्मी च वाग्भव चान्यबीजकम् ।
एतद्बीजेन सयुक्त दातव्य चादिवर्णके ॥१८६॥

माया लक्ष्मी वाग्भवं च दातव्य क्षत्रियेष्वपि ।
लक्ष्मी च वाग्भव चैव कथित वैश्यवर्णके ॥१८७॥

वाग्भव चान्यबीज च शूद्राणा समुदीरितम् ।
हृदादि हुफट्कारादि सङ्कराणा प्रशस्यते ॥१८८॥ इति ।

पद्मपुराणे—

स्वागमोक्तेन मार्गेन स्त्रीशूद्रैश्चापि पूजनम् ।
कर्त्तव्य श्रद्धया विष्णोश्चिन्तयित्वा पतिं हृदि ॥१८९॥
स्त्रीणामप्यधिकारोऽस्ति विष्णोराराधनादिषु ।
पतिप्रियरतानां च श्रुतिरेषा सनातनी ॥१९०॥

इति । पतिप्रियेति सधवापरम् । चिन्तयित्वेति मृतभर्तृकापरमिति ज्ञेयम् ।

भविष्योत्तरे—

या स्त्री भर्त्रा वियुक्ता च शुभा स्वाचारसंयुता ।
सा च मन्त्रान्प्रगृह्णातु सभर्त्री तदनुज्ञया ॥१६१॥

कुलार्णवे—

विधवायाः सुतादेशात्कन्यायाः पितुराज्ञया ।
नाधिकारः स्वतो नार्या भार्याया भर्तुराज्ञया ॥१६२॥

दीक्षां दद्यादिति शेषः ।

॥ अथ मन्त्राणां ब्रह्मक्षत्रादिभेदः ॥ तत्र—

श्रीकुलार्णवे—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो भवति वै मनुः ।
अनुलोमेन देयः स्यात् प्रतिलोमेन न क्वचित् ॥१६३॥ इति ।

वामकेश्वरतन्त्रे तु 'ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा पौरस्त्यजातयः' इति पञ्च भेदा उक्ताः ।

सौत्रामणीतन्त्रे—

मायाबीजं ब्राह्मणः स्यात् श्रीबीजं क्षत्रियः स्मृतः ।
कामबीजं भवेद् वैश्यो वाग्भवं शूद्र ईरितम् ॥१६४॥
चतुर्मन्त्रपरित्यक्तो मन्त्रः पौरस्त्यसंज्ञकः ।
चतुर्बीजं ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां त्रिबीजकम् ॥१६५॥
बीजद्वयं तु वैश्यानां शूद्राणां त्वेकबीजकम् । इति ।

कुलप्रकाशतन्त्रे—

उत्पन्ना मनवः सर्वे पञ्चाशद्वर्णभेदतः ।
द्विविधास्ते च सम्प्रोक्ता विद्यामन्त्रविभागतः ॥१६६॥
विद्यामन्त्राः क्रमात् स्त्रीपुंदेवताश्च समीरिताः ।
स्त्रीनपुंसकपुंरूपा मनवस्त्रिविधाः प्रिये ॥१६७॥
स्त्रीमन्त्रा वह्निजायान्ता हृदयान्ता नपुंसकाः ।
शेषाः पुमांस इत्युक्ताः स्त्रीमन्त्राश्चापि शान्तिके ॥१६८॥
नपुंसकाः स्मृता मन्त्रा विद्वेषे चाऽभिचारके ।
पुमांसस्तु स्मृताः सर्वे वश्योच्चाटनकर्मसु ॥१६९॥

प्रयोगसारे तु—

वषट्फडन्ता पुल्लिङ्गा वौषट्स्वाहान्तगाः स्त्रियः ।
नपुंसका हुनमोऽन्ता इति मन्त्रास्त्रिधा मताः ॥२००॥

पदार्थादर्शे—

स्त्रीदैवता वैरिणः स्युः पुंदैवत्यस्य भूयसा ।
स्त्रीदैवत्येषु सौम्यानां क्रूराणां स्यात्परस्परम् ॥२०१॥

तथैव पुंदेवतानामिति ।

अग्नीषोमस्वरूपाः स्युर्मनवः सर्व एव हि ।
रेफौकारवियत्प्राया आग्नेयाः क्रूरकर्मणि ॥२०२॥
सौम्याश्चण्डसुधाप्रायाः सौम्यकर्मणि ते स्मृताः ।

नारायणीयेऽपि—

तारान्त्याग्निवियत्प्रायो मन्त्र आग्नेय इष्यते ।
शिष्टः सौम्यः प्रशस्तौ तौ कर्मणोः क्रूरसौम्ययोः ॥२०३॥
आग्नेयमन्त्रः सौम्यः स्यात्प्रायशोऽन्ते नमोऽन्वितः ।
सौम्यमन्त्रस्तथाग्नेयः फट्कारेणान्वितोऽन्ततः ॥२०४॥

तथा— पिङ्गलायां गते वायौ प्रबुद्धा ह्यग्निरूपिणः ।
इडागते तु पवने बुध्यन्ते सोमरूपिणः ॥२०५॥
पिङ्गलेडागते वायौ प्रबुद्धाः सर्व एव हि ।
प्रबुद्धा मनवः सर्वे साधकानां फलन्त्युमे ॥२०६॥

नारायणीये—

सुप्तः प्रबुद्धमात्रो वा मन्त्रः सिद्धिं न यच्छति ।
स्वापकालो वामवहो जागरो दक्षिणावहः ॥२०७॥
आग्नेयस्य मनोः सौम्यमन्त्रस्यैतद्विपर्ययः ।
प्रबोधकालं जानीयादुभयोरुभयोर्वहः ॥२०८॥
स्वापकाले तु मन्त्रस्य जपोऽनर्थफलप्रदः ॥इति॥

मन्त्राणां प्रबोधोपाय उक्तः—

शिवयामले—

सम्पुटीकृत्य यत्नेन लान्तानाद्यान्सबिन्दुकान् ।
पुनश्च सविसर्गांस्तान् क्षकारं केवलं पठेत् ॥२०९॥
एवं जप्त्वोपदिष्टश्चेत् प्रबुद्धः शीघ्रसिद्धिदः ॥इति॥

अयमर्थ.—मन्त्रोपदेशकाले प्रथममकारादिलकारान्तान् वर्णान् सबिन्दूनुच्चार्य, ततो मन्त्र पुनर्लकाराद्यकारान्तान्सबिन्दूनुच्चरन्नष्टोत्तरशतवार मन्त्र जपित्वा, पुनस्तथैव सविसर्गैर्वर्णैः सम्पुटीकृत्याऽष्टोत्तरशतवार मन्त्र जपित्वा, त मन्त्र गुरुः शिष्याय चेद्द्यात्स मन्त्र. सदा प्रबुद्ध. सर्वाभीष्टफलप्रदो भवतीति। वह्निजाया स्वाहाकारः, हृदय नमः, अभिचारके मारणे, वियत् हकार, चन्द्रः सकार, सुधा वकारः, पिङ्गला दक्षिणनाडी, पिङ्गलेडागते सङ्क्रमणकाले।[1]

॥ अथ मन्त्रेषु दोषाः ॥ तत्र—

मन्त्रराजे—

दग्धः षट्कर्णगो मन्त्रस्त्रस्तः स्यादधिकैर्जपात्।
गर्वितस्त्वविधिप्राप्तः शत्रवो वैरिकोष्ठगाः ॥२१०॥

बाला लघ्वक्षरप्राया वृद्धा गुर्वक्षरान्विताः।
निर्जिता. कर्मबाहुल्यादहसा. सत्ववर्जिताः ॥२११॥

अपूर्णरूपाश्छिन्ना स्यु स्तम्भिताः सानुनासिकाः।
अकालविनियोगेन मूर्च्छिता स्वापगा जपात् ॥२१२॥

मत्ताः पत्रेषु पठनादन्यवर्णास्तु कीलिताः।
रुद्धा विसन्धिकाः प्राप्तदु.खा वैरिसमन्विताः ॥२१३॥

खण्डीभूतास्त्ववशजापादङ्गहीनास्त्ववसवृताः।
अपूर्णेनोपदिष्टा ये क्षीणवीर्यास्तु ते मताः ॥२१४॥

सदा प्रयोगात्कुण्ठत्व श्लिष्टतातिबिलम्बनात्।
रुग्णाः प्रलपनैर्जापादन्यमन्त्रैः सहाविलाः ॥२१५॥

उपेक्ष्यानवस्थया जापाद्वैपस्यादवमानिताः।
पञ्चविंशतिरुद्दिष्टा दोषास्तान् शमयेद् गुरुः ॥२१६॥

---

१. ख. पुस्तकेऽतोऽग्रे विशेषः—

मन्त्रमहोदधौ—सिद्धिप्रदा कलियुगे ये मन्त्रास्तान्वदाम्यतः।
अर्णा एकाक्षरोऽनुष्टुप् त्रिविधो नरकेसरी ॥१॥

एकाक्षरोऽर्जुनोऽनुष्टुब् द्विविधस्तुरगानन.।
चिन्तामणि क्षेत्रपालो भैरवो यक्षनायक. ॥२॥

गोपालो गजवक्त्रश्च चेटका यक्षिणी तथा।
मातङ्गी सुन्दरी श्यामा तारा कर्णपिशाचिनी ॥३॥

अथैषा विषमपदव्याख्या—षट्कर्णगः स्वव्यतिरिक्तयोर्द्वयोर्युगपत्पठनात्, अधिकैर्जपात् अधिकदेवतामन्त्रैः सार्द्धं क्षुद्रदेवतामन्त्रजपात्, क्षुद्रस्य त्रासः अविधिः, वर्गचतुष्ककोष्ठगाः, कर्मबाहुल्यात् साधकस्य प्राग्जन्मदुष्कृतबाहुल्यात्; अहसाः हकार-सकाररहिताः, अपूर्णरूपाः वाच्यस्यापुष्कलाक्षराः। सानुनासिकाः स्पर्शवर्गेष्वन्त्याक्षरप्रायाः, अकालविनियोगेन मन्त्रस्वापकाले प्रयोगेन,[1] स्वापगाः सुप्तवत्साधकानभिमुखाः, अजपात् गुरोर्विद्याधिगमदिवसमारभ्य तदुक्तक्रमभजनानङ्गीकारात्, अत्र सन्धिर्दिव्यादचिन्त्यः; पत्रेषु पठनात् यथाविधि गुरुमुखादधिगममन्तरेण यतः कुतश्चित्पत्रेषु मन्त्रादीन् दृष्ट्वा जपात्; अन्यवर्णैर्मन्त्राक्षरेभ्यो बहिर्भूतैः; विसन्धिकाः अकृतसन्धिकाः; वैरिसमन्विताः वैरिमन्त्राद्यैः सहोपासिताः, अंशजपात् एकदेशजापात्; अपूर्णेन अपूर्णाभिषिक्तेन, उपेक्षा त्यागः; वैषम्यात् हीनाधिक्यतः। अथान्यमते दोषाः—

लक्षसागरे—

आदिमध्यावसानेषु यस्य मन्त्रस्य दृश्यते।
चतुर्द्धा पञ्चधा द्वेधा चैकवीरं स्वरान्वितम् ॥२१७॥
वायुबीजमसौ मन्त्रश्छेदितः परिकीर्तितः।

एकवीरं ह्लः इति वर्णः, स्वराक्रान्तो दीर्घस्वरयुक्तः, तेन ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं इति। वायुबीजं यकारः।

शारदातिलके—

मनोर्यस्यादिमध्यान्तेष्वानिलं बीजमुच्यते।
संयुक्तं वा वियुक्तं वा स्वराक्रान्तं त्रिधा पुनः ॥२१८॥
चतुर्धा पञ्चधा वाथ स मन्त्रश्छिन्नसञ्ज्ञकः।

आदिमध्यान्तेष्विति समुच्चयः। आनिलं यकारः बीजं मायाबीजमिति सम्प्रदायः।

मायाबीजस्य नामानि मालिनी शिववल्लरी।
वाता वर्तिः फला वाणी बीजं शक्तिश्च कुण्डली ॥२१९॥ इति।

शैवागमोक्तेः। आनिलं संयुक्तं अक्षरान्तरयुक्तं, वियुक्तं तद्रहितम्। मायाबीजे तु दीर्घस्वराक्रान्तम्। **ग्रन्थान्तरे** 'अर्द्धग्रहो मनुश्छिन्नः' इत्युक्तः। अर्द्धग्रह ऋचि श्लोके वा मध्ये विच्छिन्नः। अन्यत्र तु 'आदिमध्यान्तबीजानां लोपैश्छिन्ना' इति।

1. ख. प्रयोगेषु विनियोगेन।

लक्षसागरे—

द्विधा पूर्वं त्रिधा मध्ये द्विधान्ते च पुनः प्रिये ।
वज्रियुक्तस्तु यो मन्त्रः स निरुद्ध. प्रकीर्तित ॥२२०॥

वज्री लकार ।

पिङ्गलामतेऽपि—

आदौ द्विधा त्रिधा मध्ये पुनश्चान्ते द्विधा भवेत् ।
इन्द्रबीजमसौ मन्त्रो रुद्ध इत्यभिधीयते ॥२२१॥

सारसङ्ग्रहे—

मायाबीज न यत्रास्ति त्रितत्व रावमेव वा ।
श्रीगृह वापि मन्त्रोऽसौ शक्तिहीनः प्रकीर्त्तितः ॥२२२॥

त्रितत्व प्रणवः हुङ्कारो वा । रावः फेकारः । एकत्रैते सर्वे नापेक्षिताः ।

पिङ्गलामते—

मायाबीज त्रितत्व वा श्रीगृह नास्ति यत्र चेत् ।
शक्तिहीन इति ख्यातः सामर्थ्यं हन्ति मन्त्रिण ॥२२३॥

मायाबीज ह्री इति । श्रीगृहं श्रीबीजम् ।

लक्षसागरे—

यस्य कामकलाबीज मध्यस्थाने न विद्यते ।
आदौ मायाऽङ्कुशश्चान्ते विज्ञेयोऽसौ पराङ्मुख. ॥२२४॥

पिङ्गलामतेऽपि—

कामबीज न यन्मध्ये मायादावन्तिमोऽङ्कुशः ।
पराङ्मुख प्रोक्त······················॥२२५॥ इति ।

लक्षसागरे—

शून्य बिन्दुसमायुक्तमाद्यन्ते वाऽथ मध्यतः ।
न भवेज्जीवबीज वा यस्याऽसौ बधिर. स्मृतः ॥२२६॥

शून्य हकार. । जीवबीज सकारः ।

पिङ्गलामते—

पञ्चाक्षरस्तु यो मन्त्रः पावकेन्द्वर्कवर्जित. ।
नेत्रहीन इति ज्ञेयो दु.खशोकभयावह ॥२२७॥

पावको रेफ, इन्दु. सकारः, अर्को हकार. ।

शारदातिलके—

आदिमध्यावसानेषु हसः प्रासादवाग्भवौ ।
हकारो बिन्दुमान् जीवो राव वापि चतु कलम् ॥२२८॥

शारदातिलके—

आदौ मध्ये तथा मूर्ध्नि चतुरस्त्रयुतो मनु ।
ज्ञातव्यो हीन इत्येष यः स्यादष्टादशाक्षरः ॥२४४॥

सारसङ्ग्रहे—

एकोनविंशत्यर्णो यो यो मन्त्र. प्रणवान्वित. ।
महामायाऽङ्कुशैर्युक्तस्त प्रध्वस्त वदन्ति हि ॥२४५॥
सप्तवर्णो भवेद्वालः कुमारश्चाष्टवर्णक. ।
चत्वारिंशाक्षरः प्रौढस्तरुण. षोडशाक्षरः ॥२४६॥
त्रिंशदर्ण शतार्णो वा चतुःषष्ट्यक्षरस्तथा ।
चतुरूर्ध्वशतार्णो वा वृद्ध इत्यभिधीयते ॥२४७॥
नवाक्षरस्तु निस्त्रिंशो ध्रुवयुक्तोऽथ मृत्युदः ।
हृच्छिरोऽन्ते शिखा वर्म मध्ये नेत्रास्त्रकेऽथवा ॥२४८॥
शिवशक्त्यात्मकौ वर्णौ न स्तो यस्य स मन्त्रराट् ।
निर्बीज इति सम्प्रोक्तः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥२४९॥

इति । हृन्नमः, शिर. स्वाहाकारः, शिखा वषड्, वर्म हुकार., नेत्र वौषट्, अस्त्र फट्कार', शिववर्णो हकारः, शक्तिवर्ण. सकारः ।

लक्षसागरे—

निर्बीजस्तु समाख्यात आदावोंकारवर्जित. ।

शारदातिलके—

एषु स्थानेषु फट्कार. षोढा यस्मिन् प्रदृश्यते ।
स मन्त्रः सिद्धिहीनः स्यान्मन्दः पङ्क्त्यक्षरो मनु ॥२५०॥

एषु आदिमध्यावसानेषु । अत्र स्थानत्रयेऽपि मिलित्वा फट्कारषट्क ज्ञेयम् । पङ्क्त्यक्षरो दशाक्षरः । उक्तञ्च सारसङ्ग्रहे 'दशाक्षरो भवेन्मन्द' इति ।

शारदातिलके—

कूट एकाक्षरो मन्त्र. स एवोक्तो निरंशक. ।

बह्वक्षरात्मक बीज कूटः, स बह्वक्षरोऽपि एकाक्षर एव ज्ञेयः ।

द्विवर्णः सत्वहीनः स्याच्चतुर्वर्णस्तु केकर. ॥२५१॥

पिङ्गलामते तु—

ध्रुवहीनश्चतुर्बीजः षड्भिर्वा केकरो मत' ।

इति विशेष उक्तः ।

शारदातिलके—

षडक्षरो बीजहीनस्त्वर्द्धसप्ताक्षरो मनुः ।
सार्द्धद्वादशवर्णो वा धूमितः स तु निन्दितः ॥२५२॥

साद्धं बीजत्रयस्तद्वदेकविंशतिवर्णक ।
विंशत्यर्णस्त्रिंशदर्णो य स्यादालिङ्गितस्तु सः ॥२५३॥

अत्रार्द्धसप्ताक्षरताऽर्द्धद्वादशाक्षरता, सार्द्धबीजत्रयत्व चान्ते व्यञ्जन-योगेन ज्ञेयम् । उक्त च —

लक्षसागरे—

अर्द्धसप्ताक्षरो मन्त्रः सार्द्धद्वादशवर्णकः ।
घूमित स समाख्यात. सार्द्धवर्णत्रयोऽथवा ॥२५४॥

शारदातिलके—

द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो मोहित परिकीर्त्तितः ।
चतुर्विंशतिवर्णो य. सप्तविंशतिवर्णक. ॥२५५॥

क्षुधार्त्त. स तु विज्ञेयश्चतुर्विंशतिवर्णक. ।
एकादशाक्षरो वापि पञ्चविंशतिवर्णक ॥२५६॥

त्रयोविंशतिवर्णो वा मन्त्रो दृप्त उदाहृत. ।
षड्विंशत्यक्षरो मन्त्र षट्त्रिंशद्वर्णकस्तथा ॥२५७॥

त्रिंशदेकोनवर्णो वाऽप्यङ्गहीनोऽभिधीयते ।

लक्षसागरे तु—'अष्टत्रिंशाक्षर'श्चेति चतुर्थप्रकारोऽप्युक्तः ।

अष्टाविंशत्यक्षरो य एकत्रिंशदथापि वा ।
अतिक्रूर. स गदितो निन्दित सर्वकर्म्मसु ॥२५८॥

चत्वारिंशतमारभ्य त्रिषष्टिर्यावदक्षरम् ।
तावत्सख्या निगदिता मन्त्रा सव्रीडसञ्ज्ञकाः ॥२५९॥

चत्वारिंशद्वर्णमारभ्य त्रिषष्ट्यक्षरपर्यन्ता एकैकाक्षरवृद्ध्या चतुर्विंशति-विधाः सव्रीडा. ।

पञ्चषष्ट्यक्षरा ये स्युर्मन्त्रास्ते शान्तमानसाः ।
एकोनशतपर्यन्त पञ्चषष्ट्यक्षरादित. ॥२६०॥

ये मन्त्रास्ते निगदिता स्थानभ्रष्टाह्वया बुधैः ।

'पञ्चषष्ट्यक्षरा आदिर्येषा'[1] पञ्चषष्ट्यक्षरात् इति वा पदच्छेद ।

पञ्चषष्ट्युत्तरा ये च यावदेकोनक शतम् ॥२६१॥

इति सारसङ्ग्रहात् । तेनैकैकाक्षरवृद्ध्या चतुस्त्रिंशत्प्रकारा. स्थान-

१. '–' कोष्ठगतांशो नास्ति ख. पुस्तके ।

माया नमामि च पदं नास्ति यस्मिन् स कीलितः ।

हसः स्वरूपम्, प्रासादो ह्रौं, वाग्भव ऐं, जीवः सकार, स कीदृशः- हकारो विन्दुमान् हकारोकारविन्दुभिर्युक्तः, तेन स्हो इति वीजं सिद्धम् ।

तथा च पिङ्गलामते—

अष्टमस्वरसयुक्तो जीवारूढः सविन्दुकः ।
यस्यात्मा दृश्यते नैव किं वा रावश्चतुष्कल. ॥२२९॥
प्रासादो वाग्भवो हसो माया वा यत्र दृश्यते ।
आदिमध्यान्तदेशेषु कीलितं तम्प्रचक्षते ॥२३०॥

आत्मा हकार., अष्ठमस्वर ओकारः, ओकारस्याष्टमस्वरत्व तु ह्रस्वदीर्घ—योरेकत्वोक्त्या । यथा- अ क ठ व-चक्रे । रावः फ्रें । चतुःकलः हूँ । ग्रन्थान्तरे तु 'कीलिता वीजवर्जिताः' ।

पिङ्गलामते—

सकृन्मध्ये द्विधा प्रान्ते शक्रबीज भवेद्यदि ।
स्तम्भित त वदन्तीत्थ मन्त्रं मन्त्रविदो वुधाः ॥२३१॥

शक्रवीजं लकारः ।

सारसङ्ग्रहे—

द्विवा त्रिधा वा षोढा वा मन्त्रान्ते यस्य दृश्यते ।
महास्त्र स्तम्भितो मन्त्रः श्रीशिवेन प्रकीर्त्तितः ॥२३२॥

महास्त्रः फट्कारः ।

शारदातिलके—

वह्निर्वायुसमायुक्तो यस्य मन्त्रस्य मूर्द्धनि ।
सप्तधा दृश्यते तं तु दग्धं मन्येत मन्त्रवित् ॥२३३॥[1]

अन्यत्र तु—

'अग्निवीजाधिका दग्धा' इति ।[2]

शारदातिलके—

अस्त्रं द्वाभ्यां त्रिभिः षड्भिरष्टाभिर्दृश्यतेऽक्षरैः ।
त्रस्तः सोऽभिहितो यस्य मुखे न प्रणवः स्थितः ॥२३४॥
शिवो वा शक्तिरथवा भीताख्यः स प्रकीर्तितः ।

---

१. ख. पद्यमिद नास्ति । २. ख. पङ्क्तिरियं नास्ति ।

यस्येति। मुखे आदौ शिवो हकारः, शक्तिः सकारः। एतादृशदोषयुक्तस्य मातृकाहीन इति नामान्तर वदन्ति। तथा च—

पिङ्गलामते—

शिव शक्तिस्तथौंकारो यस्यादौ नास्ति तं मनुम्।
वदन्ति मातृकाहीन हीनसिद्धिप्रदायकम् ॥२३५॥ इति।

पिङ्गलामते—

आदिमध्यान्तदेशेषु चतुर्द्धा यत्र दृश्यते।
मकारो मलिन विद्यात्त मन्त्र मन्त्रवित्सदा ॥२३६॥

लक्षसागरे तु—

आदौ मध्येऽथ शिखरे त्रिधा यत्र तु दृश्यते।
मार्णो मन्त्रो महेशेन मलिन. स इतीरितः ॥२३७॥

पिङ्गलामते—

दकारः क्रोधवीज वा यस्य मध्ये व्यवस्थितम्।
फट्द्वय च स्थितं प्रान्ते यस्यार्णो स तिरस्कृतः ॥२३८॥

सारसङ्ग्रहे च—

यस्य मध्ये दकारस्तु क्रोधवीज हृदि स्थितम्।
द्विधा चान्ते च फट्कार· स्याद्यस्य स तिरस्कृतः ॥२३९॥

चकारो विकल्पार्थक., क्रोधवीजं 'हुँ' इति।

पिङ्गलामते—

अस्त्रमन्त्रद्वय मध्ये वषडन्ते तथादित.।
अउमा. स्युरसौ मन्त्रो भेदितः परिकीर्त्तितः ॥२४०॥

अस्त्र ह्ण', अउमाः ओकारः।

सारसङ्ग्रहे—

कर्णत्रयात्मको मन्त्रो यत्र हसविवर्जित।
सुषुप्त. स तु विज्ञेयः सर्वसिद्धिफलापहः ॥२४१॥

लक्षसागरे—

विद्या वा यदि वा मन्त्रो यद्यष्टादशवर्णकः।
पञ्चफट्कारपूर्व स्यान्मदोन्मत्त. स उच्यते ॥२४२॥

अत्र विशेषणद्वयविशिष्ट एव दुष्ट।

पिङ्गलामते—

अस्त्रमन्त्रो भवेद्यस्य मध्ये प्रान्ते च शम्भुना।
हीनवीर्यं इति ख्यात. स मन्त्रो नैव सिद्धिद. ॥२४३॥

भ्रष्टा इति ।

त्रयोदशाक्षरा ये स्युर्मन्त्राः पञ्चदशाक्षराः ।
विकलास्तेऽभिधीयन्ते शत सार्द्धशत तु वा ॥२६२॥

शतद्वय द्विनवतिरेकहीनाऽथवाऽपि सा ।
शतत्रय वा यत्सख्या निस्नेहास्ते समीरिता. ॥२६३॥

शतद्वय द्विनवतिश्चेति एक एव भेद । द्विनवत्यधिकशतद्वयमित्यर्थ । सा शतद्वयं द्विनवतिरेकहीना एकनवत्यधिकशतद्वयवर्णाः शतत्रयवर्णाश्चेति पञ्चप्रकाराः निस्नेहत्वदोषदुष्टा स्युरिति । अत्र केचित् शतद्वय त्वेकः प्रकारः, द्विनवतिरन्य', एकनवतिरपर इति वदन्ति, तदसङ्गतम् । षट्षष्ट्यक्षरमारभ्य एकोनशतवर्णपर्यन्ताना स्थानभ्रष्टा इत्युक्ते. । अत एव यत्सख्या इत्युक्तं, येषा येषा मन्त्राणा वर्णसख्या शताधिका ते निस्नेहा इत्यर्थः ।

चतु शतान्यथारम्य यावद्वर्णसहस्रकम् ।
अतिवृद्ध प्रयोगेषु परित्याज्य सदा बुधैः ॥२६४॥

सहस्रेणाधिका मन्त्रा दण्डकाः पीडिताह्वयाः ।
द्विसहस्राक्षरा मन्त्राः खण्डशः सप्तधा कृता. ॥२६५॥

ज्ञातव्या. स्तोत्ररूपास्ते मन्त्रा एते यथा स्थिताः ।
तथा विद्याश्च बोद्धव्या मन्त्रिभिः काम्यकर्मसु ॥२६६॥

दोषानिमानविज्ञाय यो मन्त्र भजते जडः ।
न सिद्धिर्जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥२६७॥ इति ।

सारसङ्ग्रहे—

यथा मन्त्रास्तथा विद्या भेदभिन्ना. परस्परम् ।
ज्ञातव्या देशिकेन्द्रैस्तु नानातन्त्रेषु भाषिताः ॥२६८॥ इति ।

अन्येऽपि मीलितादयो दोषाः पदार्थादर्शे यथा—

मीलिताः कर्मण्यतिजडा मन्त्रा मन्त्रिनियोजिताः ।
विपक्षस्था रिपो. पक्षमाश्रिता··········॥२६९॥ इति ।

आदिमध्यावसानेषु ध्रुवो यस्य न विद्यते ।
स दारित इति ख्यातस्तन्त्रेऽस्मिन्कृत्तिवाससा ॥२७०॥

न्यासं विना भवेन्मूकः·················।
पल्लवेन विना मन्त्रो नग्नः सम्परिकीर्तितः ॥२७१॥

ऋषिदैवतछन्दोभि परित्यक्तो भुजङ्गम ।
यस्य जाप शृणोत्यन्य स मन्त्र शून्य उच्यते ॥२७२॥
शिरोहीनो हत प्रोक्त .... ।

इति शिरोहीन स्वाहाहीन. । काम्यकर्मस्वित्युक्तेर्निष्कामानां छिन्नादिदुष्टमन्त्रजपे बाधकाभाव इति प्रतिभाति ।

अथोक्तदोषदुष्टाना मन्त्राणां तद्दोषनिरसनोपाय शारदातिलके—

इत्यादिदोपदुष्टांस्तान्मन्त्रानात्मनि योजयेत् ।
शोधयेद्रुद्धपवनो[1] वद्धया योनिमुद्रया ॥२७३॥

योनिमुद्रालक्षणमुक्तं—

रुद्रयामले—पश्चिमाभिमुख लिङ्ग योनिस्थ परिकीर्त्तितम् ।
हृद्ग्रन्थिविन्दुसस्थान स्वयम्भूवाणवाचकम् ॥२७४॥
इतर चान्तरालस्थ चिद्ग्रन्थिस्थ तथापरम् ।
महापद्मवन तद्वद्योगपीठ प्रकीर्तितम् ॥२७५॥
कदम्वगोलकाकार चक्रान्त विन्दुरूपिणम् ।
ब्रह्मरूप तु तत्रैव सुषम्णाधारमण्डलम् ॥२७६॥
पृथिव्यादीनि तत्वानि मुद्राणा वाचकानि तु ।
पूर्णाख्य वैन्दव तत्व कोदण्डद्वयमध्यगम् ॥२७७॥
[2]तदूर्ध्वे नादनाम्ना तु उड्याण च भवेत्तत ।
कामरूप भवेच्छक्ति शिवाख्यमकुल प्रिये ॥२७८॥
सहस्रार महापद्मं रक्तकिञ्जल्कशोभितम् ।
तत्रस्थो लभते सम्यग्वर्षन्त रक्तविन्दुकम् ॥२७९॥
तत्वव्यापकयोगेन स्वाधारे योजयेन्मनः ।
गुदमेढ्रान्तरे योनिस्तामाकुञ्च्य प्रवन्धयेत् ॥२८०॥
अमद्योनिगत ध्यात्वा काम वन्धूकसन्निभम् ।
ज्वलत्कालानलप्रख्य तडित्कोटिसमप्रभम् ॥२८१॥
तस्योर्ध्वे तु शिखा सूक्ष्मा विन्दूत्था परमा कला ।
तया सहितमात्मानमेकीभूत विचिन्तयेत् ॥२८२॥
गच्छन्ती ब्रह्ममार्गेण लिङ्गभेदक्रमेण तु ।
अमृत यदि[3] सर्गस्थ परमानन्दलक्षणम् ॥२८३॥

---

१. ख. ०बुद्धपवनो । २ ख. तदर्द्धे । ३. ख. यद्वि ।

द्रुतरक्तांशुतेजाढ्यां धारापातप्रवर्षिणीम् ।
पीत्वाऽकुलामृत दिव्य पुनरेव विशेत्कुलम् ।।२८४।।

पुनरेवाकुल गच्छेन्मात्रायोगेन नान्यथा ।
सा च प्राणः समाख्याता तन्त्रेऽस्मिन्परमेश्वरि ।।२८५।।

उद्धर्त्ता प्रोच्यते सो हि प्राणान्त विशते यदा ।
एवमभ्यस्यतस्तस्य ग्रहन्यहनि निश्चयात् ।।२८६।।

जरामरणदु.खाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् ।
चतुर्विधा तु या सृष्टिरस्या योनौ प्रवर्त्तते ।।२८७।।

पुन. प्रलीयते तस्या कालाग्न्यादिशिवान्तकम्
योनिमुद्रासमभ्यासात्तव बन्ध. प्रकीर्तितः ।।२८८।। इति ।

ग्रस्यार्थः—तत्र गुरुः सिद्धासनस्थो वामपार्ष्णिना गुदमेढ्रान्तर नि.पीड्य, तदुपरि दक्षिणपाद गुल्फग्रन्थ्योरन्योन्य समर्द्दो यथा भवति तथा दक्षिणपार्ष्णिना लिङ्गमूल नि पीड्य, स्थिरकायः स्रमुपविश्य, गुदमाकुञ्च्याऽऽपानवायुमुत्थाप्य, सरुद्धप्राणवायु प्राणापानयोः सघट्ट कुर्वन् एकचित्तो मूलाधारगतचित्स्वरूपे कुण्डल्यात्मके परमात्मनि स्वसाध्यमन्त्र ज्ञातदोष सञ्चिन्त्य तन्मन्त्राक्षराण्येकैकशः सुषुम्णामार्गेण मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकाऽनाहतविशुद्धयाज्ञाख्यषट्चक्रभेद-क्रमेण ब्रह्मरन्ध्र प्रापय्य, तत्रस्थसोममण्डलनिर्गताऽमृतस्रवसिक्तानि मन्त्राक्षराणि विभाव्य, पुन. सुषुम्णामार्गेणाऽऽज्ञाविशुद्धयनाहतमणिपूरकस्वाधिष्ठान-चक्रभेदक्रमेण मूलाधार प्रापयेदिति । ततस्त मन्त्र ऋष्यादिन्यासपूर्वकं यथोक्त-भावनयाऽष्टोत्तरसहस्रं मन्त्र जपेदित्यान्तरो **मन्त्रसस्कारः** ।

पदार्थादर्शे—

योनिं बद्ध्वा वीज बिन्द्वादिपथेन चोन्मनी प्राप्य ।
तत्र सहस्र मन्त्र जपेत्स मन्त्र प्रबुद्धः स्यात् ।।२८९।। इति ।

योनिमुद्रालक्षण यथा—

पार्ष्णिभागात्सुसम्पीड्य योनिमार्ग तथा गुदम् ।
ग्रपानमूर्ध्वमाकर्षेन्मूलबन्धो निगद्यते ।।२९०।।

गुदमेढ्रान्तर योनिस्तामाकुञ्च्य प्रबन्धयेत् ।
युवा भवति वृद्धोऽपि सतत मूलबन्धनात् ।।२९१।।

योनिस्थाने मुद्रणाद्योनिमुद्रात्वमस्याः ।

सेय मयोक्ता खलु योनिमुद्रा,
वन्धश्च देवैरपि दुर्लभोऽस्याः।
अनेन वन्धेन न साध्यते य—
न्नास्त्येव तत् साधकपुङ्गवस्य ॥२९२॥

छिन्ना रुद्धा कीलिताः स्तम्भिता ये,
सुप्ता मत्ता मूर्च्छिता हीनवीर्या.।
दग्धास्त्रस्ता. शत्रुपक्षे स्थिता ये,
वाला वृद्धा गर्विता यौवनेन ॥२९३॥

ये निर्बीजा ये च सत्वेन हीना,
खण्डीभूताश्चाङ्गमन्त्रैर्विहीनाः।
एते मुद्रावन्धनेनैव योन्या
मन्त्राः सर्वे वीर्यवन्तो भवन्ति ॥२९४॥

एव न ये योगिनो योनिमुद्रानभिज्ञा. पवनधारणाशक्ताश्च तान्प्रति दशसंस्कारै. शोधनमाह । तत्र—

शारदातिलके—

मन्त्राणा दश कथ्यन्ते संस्काराः सिद्धिदायिनः ।
जननं जीवन पश्चात्ताडन बोधन तथा ॥२९५॥

अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने पुनः ।
तर्प्पण दीपन गुप्तिर्दशैता मन्त्रसत्क्रिया. ॥२९६॥ इति ।

अथ दशाना संस्काराणां लक्षणानि च तत्रैव—

मन्त्राणा मातृकामध्यादुद्धारो जनन स्मृतम् ।
प्रणवान्तरितान् कृत्वा मन्त्रवर्णान् जपेत्सुधीः ॥२९७॥

एतज्जीवमित्याहुर्म्मन्त्रतत्वविशारदाः ।
भूर्जे सलिख्य मन्त्रार्णांस्ताडयेच्चन्दनाम्भसा ॥२९८॥

प्रत्येक वायुना मन्त्री ताडन तदुदाहृतम् ।
विलिख्य मन्त्र तं मन्त्री प्रसूनै करवीरजैः ॥२९९॥

तन्मन्त्राक्षरसख्यातैर्हन्यात्याद्यान्तेन बोधनम् ।
स्वतन्त्रोक्तविधानेन मन्त्री मन्त्रार्णसख्यया ॥३००॥

अश्वत्थपल्लवैर्मन्त्रमभिषिञ्चेद्विशुद्धये ।
सञ्चिन्त्य मनसा यन्त्र ज्योतिर्मन्त्रेण निर्दहेत् ॥३०१॥

मन्त्रे मलत्रय मन्त्री विमलीकरण त्विदम् ।
तार व्योमाग्निमनुयुग्दण्डी ज्योतिर्मनुर्यत ॥३०२॥

कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं प्रोक्षण मनो. ।
तेन मन्त्रेण विधिवदेतदाप्यायनम्मतम् ॥३०३॥

मन्त्रेण वारिणा पात्रे तर्पण तर्पणं स्मृतम् ।
तारमायारमायोगो मनोर्दीपनमुच्यते ॥३०४॥

जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपन स्वप्रकाशनम् ।
सस्कारा दश सम्प्रोक्ता. सर्वतन्त्रेषु गोपिताः ॥३०५॥
यान् कृत्वा सम्प्रदायेन मन्त्री वाञ्छितमश्नुते ।

अथ मत्राणामित्याद्यप्रकाशनमित्यन्तस्य सार्द्धश्लोकाष्टकस्यायमर्थः-तत्र प्रथमश्लोकस्य पूर्वार्द्धेनैतदुक्तं भवति—तत्र क्वचित् श्रीपर्णीचन्दनादिपीठे कुङ्कुमादिना वक्ष्यमाणपाञ्चभौतिकचक्र विरच्य, तत्र वक्ष्यमाणक्रमेणाकारादिक्षकारान्ता मातृका विलिख्य, तत्र मातृकासरस्वती वक्ष्यमाणविधिनाऽऽवाह्य, सम्पूज्याष्टोत्तरशत मातृका जपित्वा, तन्मध्यात् स्वाभीष्टमन्त्रस्वरव्यञ्जनविन्दुविसर्गसयोगाक्षराणि पृथक् पृथक् उद्धृत्यैकीकृत्य, स्वगुरूपदेशेन ज्ञात मन्त्र जनयेदिति, **जननम्** ।

अथ प्रथमश्लोकस्योत्तरार्द्धेन द्वितीयश्लोकस्य पूर्वार्द्धेन चैतदुक्त भवति-तत्र प्रागुद्धृतस्य मन्त्रस्यैकैकमक्षरं प्रणवान्तरित कृत्वाष्टोत्तरशतं जपेत् । यथा-नम. शिवायेति मन्त्र' । तस्य जपप्रकार .- ॐ न ॐ म. ॐ शि ॐ वा ॐ य ॐ । एव सर्वत्र चोन्नेयमिति **जीवनम्** ।

अथ द्वितीयश्लोकस्योत्तरार्द्धेन तृतीयश्लोकस्य पूर्वार्द्धेन चैतदुक्त भवति-तत्र भूर्जपत्रे कुङ्कुमादिद्रव्यैस्तं मन्त्र विलिख्य चन्दनमिश्रितजलेन 'य' इति वायुवीजमुच्चरन् प्रत्यक्षरं शतशतवार ताडयेदिति, **एतत्ताडनम्** ।

अथ तृतीयश्लोकस्योत्तरार्द्धेन चतुर्थश्लोकस्य पूर्वार्द्धेन चैतदुक्त भवति-तत्र प्राग्वत्पीठे मन्त्र विलिख्य तन्मन्त्राक्षरसंख्यातानि करवीरपुष्पाण्यादाय 'रं' इति वह्निवीजमुच्चरन् प्रत्यक्षरं तैः पुष्पै. शतशतवार हन्यादिति, **एतद्बोधनम्** ।

अथ चतुर्थश्लोकस्योत्तरार्द्धेन पञ्चमश्लोकस्य पूर्वार्द्धेन चैतदुक्त भवति-तत्र प्राग्वत्पीठे कुङ्कुमरोचनादिभिरष्टदलकमल कृत्वा, तत्कर्णिकाया कुङ्कु-

मादिद्रव्यैर्मालतीकलिकाभिस्तन्मन्त्राक्षरसंख्याभिरेकया कलिकयैकमेकमक्षरं लिखेदिति । तं मन्त्रं विलिख्य, तन्मन्त्राक्षरसंख्याकान्यश्वत्थपल्लवान्यानीय, तमेव मन्त्रमुच्चरन् 'अमुकमन्त्रमभिषिञ्चामि नमः' इत्यभिषेकं सुगन्धितजलेनैकैकपल्लवेनाष्टोत्तरशतवारं कुर्यात्, इत्यभिषेकः ।

अथ पञ्चमश्लोकस्योत्तरार्द्धेन षष्ठश्लोकस्य पूर्वार्द्धेन चैतदुक्तं भवति-तत्र स्वमूलाधारे वह्निमण्डले वक्ष्यमाणज्योतिर्मन्त्रं सञ्चिन्त्य, तदूर्ध्वे संस्कर्त्तव्यमन्त्रं विभाव्य, ज्योतिर्मन्त्रस्य तेजसा संस्कर्त्तव्यमन्त्रगतमाणवकार्मकमायीयमलत्रयं सहजागन्तुककामाख्यं मनसा पुनः पुनरेकमेकं निर्द्दह्य, तं मन्त्रं विगतमलत्रयं ध्यायेदिति विमलीकरणम् ।

अथ षष्ठश्लोकस्योत्तरार्द्धेन ज्योतिर्मन्त्रमुद्धरति । तत्र—तारः प्रणवः, व्योम हकारः, अग्नि रेफः, मनुश्चतुर्द्दशस्वर औकारः, दण्डी अनुस्वारः, इति ज्योतिर्मन्त्रः सिद्धः ।

अथ सप्तमश्लोकेनैतदुक्तं भवति—तत्र प्राग्वत्पीठादौ तं मन्त्रं कुङ्कुमादिना विलिख्य, ताम्रादिपात्रे कर्पूरादिवासितं शुद्धजलमापूर्य, विलिखितमन्त्रेणैवाष्टोत्तरशतवारमभिमन्त्र्य तेनैव मन्त्रेण तज्जलविन्दुभिः कुशैः प्रत्यक्षरं त्रिस्त्रिः प्रोक्षयेदिति, एतदाप्यायनम् ।

अथाष्टमश्लोकस्य पूर्वार्द्धेनैतदुक्तं भवति—तत्र ताम्रादिपात्रे प्राग्वन्मन्त्रं विलिख्य, पात्रान्तरे कर्पूरादिवासितं शुद्धजलमानीय, तमेव मन्त्रं पठन्नन्ते 'अमुकमन्त्रं तर्पयामि नमः' इत्यष्टोत्तरशतवारं लिखितमन्त्रस्योपर्यञ्जलिदानेन तर्पयेदिति, एतत्तर्पणम् ।

अथाष्टमश्लोकस्योत्तरार्द्धेनैतदुक्तं भवति-तत्र तारः प्रणवः, माया भुवनेश्वरीवीजं, रमा श्रीवीजं, योगलक्षणं तु आदौ योगो भवेदिति उक्तम् । अयमर्थः—प्रणवभुवनेश्वरीश्रीवीजान्ते साध्यं मन्त्रं कृत्वाष्टोत्तरशतवारं जपेदिति, एतद्दीपनम् । [1]अयोर्वरितश्लोकस्यार्थः स्पष्ट एव । इति दशसंस्काराः ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज—
गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ षष्ठस्तरङ्गः ॥६॥

---

१. ख. पुस्तके उपर्य्युल्लिखितटिप्पण्यामधःस्थोऽयमंशोऽपि दृश्यते—
तन्त्रान्तरे तु—जपेन्मायापुटं मन्त्रं सहस्रं गोपनं हितम् ।

सप्तमस्तरङ्गः

॥ अथ मन्त्रमेलनप्रकारः तत्रादौ नक्षत्रचक्रम् ॥

तत्र रुद्रयामले—

राज्यलाभोपकाराय प्रारभ्यारिखरं कुरून् ।
गोपालात्कुक्कुटिप्रायात्फुल्लावीत्युदिता लिपिः ॥१॥

अयमर्थः—रा २,[1] ज्य १, ला २, भो ४, प १, का १, रा २, य १, प्रा २, र २, भ्या १, रि २ । ख २, र २ । कु १, रून् २, गो ३, पा १, लात् ३, कु १, क्कु १, टि १, प्रा २, -यात् १, फु २, ल्ला ३, वि ४ ।

अथ तच्चक्ररचनाप्रकारः

तत्र दक्षिणोत्तरायताश्चतस्रो रेखा प्राक्प्रत्यगायता दशरेखाश्च, विलिख्य सप्तविंशतिकोष्ठकानि कृत्वा दक्षिणोत्तरायतपङ्क्तित्रये सर्वोर्ध्वपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठे-अ आ, द्वितीये—इ, तृतीये—ई उ ऊ, चतुर्थे—ऋ ॠ ऌ ॡ, पञ्चमे—ए, षष्ठे—ऐ, सप्तमे-ओ औ, अष्टमे-क, नवमे-ख ग इति विलिख्य, तदधःस्थ-द्वितीयपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठे-घ ङ, द्वितीये-च, तृतीये-छ ज, चतुर्थे-झ ञ, पञ्चमे-ट ठ, षष्ठे-ड, सप्तमे-ढ ण, अष्टमे-त थ द, नवमे-ध इति विलिख्य, तदधःस्थ-तृतीयपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठे—न प फ द्वितीये-ब, तृतीये—भ, चतुर्थे-म, पञ्चमे—य र, षष्ठे—ल, सप्तमे-व श, अष्टमे—ष स ह, नवमे-ल क्ष अ अः इति स्ववामादिदक्षिणान्त विलिख्य, सर्वोर्ध्वपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठमारभ्य सर्वाधःस्थतृतीयपङ्क्तेर्नवमकोष्ठपर्यन्तेषु सप्तविंशतिकोष्ठेषु एकादिसप्तविंशत्यन्तानङ्कानेकैकशः समालिख्य, तानङ्कानश्विन्यादिसप्तविंशतिनक्षत्राणि परिकल्प्य विचारयेत् । [तत्र यस्मिन् कोष्ठे साधकस्य नामाद्यक्षरं तिष्ठति तत्रस्थाङ्कवर्णांश्च विज्ञाय, तत्र यन्नक्षत्रमायाति तत्साधकस्य जन्मनक्षत्रं परिकल्प्य, तत्कोष्ठमारभ्य मन्त्रस्याद्यक्षरं यस्मिन् कोष्ठे तिष्ठति तावत्पर्यन्तं गणयित्वा, तत्रस्थमङ्कमक्षराणि च विज्ञाय तत्र यन्नक्षत्रं दृश्यते तन्मन्त्रनक्षत्रं परिकल्प्य,][2] साधकनक्षत्रमारभ्य मन्त्रनक्षत्रपर्यन्तम्—

नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्राद्यमक्षरम् ।
जन्मसपद्विपत्क्षेमप्रत्यरिः साधको वधः ॥२॥
मैत्रं परममैत्रं च जन्मादीनि पुनः पुनः ॥३॥

इति कुलार्णवोक्तप्रकारेण जन्मादिनवकं पर्यायत्रयेण विज्ञाय फलानि च निर्दिशेत् । तत्र फलानि च कुलार्णव एव—

---

१. ख ३ । २. [–] चिह्नगतांशस्थाने ख पुस्तके निम्नोऽयमंशो दृश्यते-'तत्र यस्मिन् कोष्ठे साधकस्य नामाद्यक्षरं कोष्ठे तिष्ठति तत्रस्थाङ्कवर्णांश्च विज्ञाय तत्र यन्नक्षत्रमायाति तत्साधकस्य जन्मनक्षत्रं दृश्यते तन्मन्त्रनक्षत्रं परिकल्प्य' ।

जनुषस्तारया मृत्युरायुर्नाशस्तृतीयया ।
मृत्यु पञ्चमतारायां सप्तमो घातको मतः ॥४॥
द्विचतु षडष्टनवगतास्तारा शुभा मता. ।
इति ताराफल ज्ञात्वा मन्त्र दद्याद्विशालधी ॥५॥

पदार्थादर्शे—

प्रादक्षिण्येन गणयेत्साधकाख्याक्षरात्सुधी ।
एकादिनवपर्यन्त स्वाख्याद्यर्णप्रपूर्वकम् ॥६॥
यावन्मन्त्राक्षर धिष्ण्य फल तावद्विचारयेत् ।
एव विभक्तवर्णेषु नक्षत्राणि प्रकल्प्य च ॥७॥
आरम्य जन्मनक्षत्र मन्त्रतारावसानकम् ।
रसाष्टनवभद्राणि युगयुग्मगतान्यपि ॥८॥
इतराणि नवभद्राणि ज्ञातव्य तन्त्रकोविदै ।

केचन आद्यमपि शुभमिच्छन्ति । तदुक्तम्—

विपद्वध. प्रत्यरिश्च परित्याज्या मनीषिभि. ॥९॥

अत्र तारामैत्रीविचारे योनिमैत्री गणमैत्री चावश्य विचारणीया । यतस्तयोरपि नक्षत्रात्मकत्वात् ।

तत्र योनिमैत्री यथा—

अश्वेभाजफणिद्वय श्ववृषभुक् मेषोतवो मूषकः,
साखुर्गौः क्रमशस्ततोऽपि महिषी व्याघ्र पुनः सैरिभी ।
व्याघ्रैणौ मृगमण्डलौ कपिरथो बभ्रुद्वय वानर,
सिंहोऽश्वो मृगराट् पशुश्च करटी योनिस्तु भानामियम् ॥१०॥
गोव्याघ्र गजसिंहमश्वमहिष श्वैण च बभ्रूरग,
वैर वानरमेषक च सुमहत्तद्वद्विडालोन्दुरुम् ॥

अत्र यत्साधकजन्मनक्षत्रयोन्या यन्मन्त्रनक्षत्रयोन्या च परस्पर विरोधस्तेन साधकेन स मन्त्रो न ग्राह्य इति विचार ।

अथ गणमैत्रीविचारः । तत्र कुलमूलावतारे—

अश्विनी मृगशीर्षं च तथा पुष्यपुनर्वसू ।
हस्तस्वाती अनूराधा रेवती विष्णुदैवतम् ॥११॥
भरणी रोहिणी चैव आर्द्रा पूर्वोत्तरा तथा ।
पूर्वाषाढोत्तराषाढपूर्वभाद्रोत्तरा नृज ॥१२॥
कृत्तिकाहिर्मघा चित्रा विशाखा ज्येष्ठका तथा ।
मूल धनिष्ठा शतभिषा च रक्षोगणा. प्रिये ॥१३॥

मरणं धर्म्मकर्मायव्यया द्वादश राशयः ।

विष्णु श्रवणनक्षत्रम् । दैवत देवगण इति । नृजः मनुष्यगणः ।

रुद्रयामले—

स्वगणे चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमा देवमानुषे ।
अधमा राक्षसे देवे मृत्युर्मानवराक्षसे ॥१४॥

अन्यत्रापि—

मनुष्यराक्षसाना तु विरोधो देवरक्षसाम् ।
प्रीतिर्देवमनुष्याणा स्वेन स्वेनापि सा मता ॥१५॥ इति ।

॥ अथ राशिचक्रम् ॥ तत्र कुलार्णवे—

वाल गौर खुर शोणं शमी शोभेति राशिषु ।
क्रमेण भेदिता वर्णा. कन्याया शादय. स्मृता. ॥१६॥

अयमर्थः—वा ४, ल ३, गौ ३, र २, खु २, र २ शो ५, णं ५, श ५, मी ५, शो ५, भा ४, कन्याया शादय स्मृता । इति षष्ठे राशौ श ष स ह ल क्ष अ अः इत्यष्टौ वर्णान् योजयेदित्यर्थ. ।

॥ अथैतच्चक्ररचनाप्रकारः ॥

तत्र प्राक्प्रत्यगायतरेखाद्वय दक्षिणोत्तरायतरेखाद्वय च, मध्ये-चतुरस्र यथा भवति तथा विलिख्य, मध्यस्थचतुरस्रस्य चतु कोणेषु वहिरेकैका रेखा कृत्वा, द्वादशखण्डानि निःपाद्य, तेषु खण्डेषु प्रागादिप्रादक्षिण्येन प्रथमखण्डे–अ आ इ ई, द्वितीये—उ ऊ ऋ, तृतीये–ॠ लृ लॄ, चतुर्थे—ए ऐ, पञ्चमे—ओ औ, षष्ठे–अं अः श ष स ह ल क्ष, सप्तमे—क ख ग घ ङ, अष्टमे–च छ ज झ ञ, नवमे—ट ठ ड ढ ण, दशमे—त थ द ध न, एकादशे—प फ ब भ म, द्वादशे—य र ल व इति मातृकावर्णान् विलिख्य, तेषु प्रागादिषु द्वादशखण्डेषु एकादिद्वादशपर्यन्तानङ्कानेकैकशः समालिख्य, यस्मिन् खण्डे साधकस्य नामाद्यक्षर तिष्ठति तदारभ्य यस्मिन् खण्डे मन्त्राद्यक्षरं तिष्ठति तत्पर्यन्त गणयेत् ।

॥ तत्र स्वलग्नादिद्वादशस्थानानां नामानि ॥

कुलार्णवे—

नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिवर्णकम् ।
लग्नो धनभ्रातृशत्रुबन्धुपुत्रकलत्रका ॥१७॥

॥ अथैतेषां फलानि ॥ रत्नसागरे—

एको वाप्यथ पञ्चमोऽथ नवमो राशेस्तु सद्बान्धवो
राशि स्याद्दशमो द्वितीयसहितः षष्ठो भवेत्सेवकः ।
रुद्राग्निस्वरसख्यया यदि मतो मन्त्रो भवेत्पोषकः,
स स्याद् द्वादशकाष्टकश्रुतिमितो मन्त्रः स्मृतो घातकः ॥१८॥

रुद्रा एकादश, अग्निः तृतीयः, स्वराः सप्त, श्रुतिमितश्चतुर्थः ।

॥ [1]अथ राशीनां वर्णभेदः ॥ प्रपञ्चसारे—

स्युः कर्कटो वृश्चिकमीनराशी,
विप्रा नृपा सिंहधनुश्च मेष. ।
तुला सकुम्भो मिथुनश्च वैश्याः
कन्या वृषोऽथो मकरश्च शूद्राः ॥१९॥

॥ इति राशिशोधनप्रकारः ॥

॥ अथ पाञ्चभौतिकचक्रम् ॥ तत्र

श्रीदक्षिणामूर्तिसहितायाम्—

उ ऊ ओ गजडा वर्णा दवला लश्च पार्थिव. ।
ऋ ॠ औ घ झ ढ ध व सा वर्णास्तु नीरजा. ॥२०॥
इ ई ऐ ख छ ठ फ र क्षाणश्चाग्निसञ्ज्ञका ।
अ आ ए क च ट त प य षा व र्णाश्चवायुजाः ॥२१॥
लृ ॡ अ ङ ञ ण न म श हार्णा नाभसा मता ।

इति श्लोकार्थ. स्पष्ट. ।

॥ अथैतच्चक्ररचनाप्रकारः ॥

तत्र दक्षिणोत्तरायता. षड्रेखा, प्राक्पश्चिमायताः एकादशरेखाश्च, विलिख्य, पञ्चाशत्कोष्ठानि कृत्वा दशदशकोष्ठैरेकैका पङ्क्तिरिति पङ्क्तिपञ्चकं परिकल्प्य, तासु पक्तिषु सर्वोर्ध्वगतप्रथमपङ्क्तौ वामादिदक्षिणान्त दशसु कोष्ठेषु—अ आ ए क च ट त प य ष, द्वितीयपङ्क्तौ—इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्ष, तृतीयपङ्क्तौ—उ ऊ ओ ग ज ड द व ल ळ, चतुर्थपङ्क्तौ—ऋ ॠ औ

---

१. ख. पुस्तकेऽतोऽग्रेऽयमशो विशेष.—
निवन्धे—जपेन बन्धु. सिद्धः स्यात् सेवकोऽधिकसेवया ।
मन्त्रः स पोषकोऽज्ञानाद्घातयेद्य. स घातकः ।
लग्नोऽतिक्लेशजनकः ... . ।

घ झ ढ ध भ व स, पञ्चमपङ्क्तौ—लृ लॄ ञ ङ ञ ण न म श ह इति वाय्वग्निभूजलाकाशात्मकान् पञ्चवर्गान् विसर्गरहितपञ्चाशद्वर्णविभागजनिताना-लिख्य, स्वनामाद्यक्षर यत्र पङ्क्तौ तिष्ठति तत्रैव चेन् मन्त्राक्षरमपि तिष्ठति, तदा त मन्त्रमेकभूतदैवत्य स्वकुल जानीयात् । अन्यत्र चेन्मन्त्राद्यक्षर तिष्ठति तदा तत्किम्भूतदैवत्यमिति विचार्य, तद्गुणदोषान् जानीयात् । आत्मनो नामाद्य-क्षराधिदैवतभूतभूतस्य विरुद्धभूतदैवत्य चेन्मन्त्राद्यक्षर भवति, तदा त मन्त्र न गृह्णीयात् । मित्रभूतदैवत्य वा तटस्थभूतदैवत्य वा मन्त्राद्यक्षरं स्यात् तदा त मन्त्र गृह्णीयात् ।

अत्र भूतानां वैरमैत्रतटस्थतास्वरूपमुक्तम्—

कुलार्णवे—

महीसलिलयोर्मैत्रमनलानिलयोरपि ।
सामान्यमग्निभूम्योस्तु सलिलानिलयोस्तथा ॥२२॥
शात्रव वैपरीत्येन मित्र सर्वत्र चापरम् ।
परस्परविरुद्धाना वर्णाना यत्र सङ्गतिः ॥२३॥
वर्जयेत्तादृश मन्त्र नाशकृत् तत् कुलेश्वरि ॥इति॥

वैपरीत्येन अग्निजलयोर्वायुभूम्योश्चेत्यर्थः । अपर आकाश. ।

अथ मन्त्राणां सिद्धसाध्यादिशोधनप्रकार । तत्रादौ द्वादशारचक्रम् । तत्र

कुलमूलावतारे—

द्वादशारे तथा चक्रे कूटपण्ढविवर्जितान् ।
आदिहान्तान् लिखेद्वर्णान्पूर्वतो यावदीश्वरम् ॥२४॥
अङ्कानेकादिभान्वन्तान् लिखेत्पूर्वादित क्रमात् ।
सिद्ध. साध्य. सुसिद्धोऽरिश्चतुर्वर्ग स्फुटो भवेत् ॥२५॥
स्वनामाद्यर्णमारभ्य सिद्धादीन् गणयेत्सुधीः ॥इति॥

कूट. क्षकारः, षण्ढाः ऋ ॠ लृ लॄ एते स्वरा ।

चक्ररचनाप्रकारस्तु—

प्रागुक्तराशिचक्रवद् द्वादशारचक्र विधाय, तस्य द्वादशसु खण्डेषु प्रागादि-प्रादक्षिण्यक्रमेण अ क ङ म, आ ख ढ य, इ ग ण र, ई घ त ल, उ ङ थ व, ऊ च द श, ए छ ध ष, ऐ ज न स, ओ झ प ह, औ ञ फ ल, अ ट ब, अ. ठ भ इति मातृकावर्णान्विलिख्य, तेषु प्राग्वदेकादिद्वादशान्तानङ्कानालिख्य, यस्मिन् खण्डे शिष्यनामाद्यक्षर तिष्ठति तदारभ्य मन्त्राद्यक्षरपर्यन्त सिद्धसाध्यसुसिद्धारि-क्रमेण गणयेत् । तत्र—

कुलमूलावतारे—

नवैकपञ्चमः सिद्धः साध्यः षड्दशयुग्मक ।
सुसिद्धो मुनिरुद्राग्निस्तुर्याष्टद्वादशो रिपुः ॥२६॥
इति ज्ञात्वा वरारोहे मन्त्र दद्याद्विशालधीः ।

पदार्थादर्शे—

अथवा मन्त्रनामार्णकृते राशौ चतुर्हृते ।
सिद्ध. साध्य. सुसिद्धोऽरिर्मन्त्रे एकादितो भवेत् ॥२७॥ इति ।

॥ अथ षोडशारचक्रे सिद्धसाध्यादिशोधनप्रकार· ॥

तत्र तन्त्रराजे—

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च सूत्रपञ्चकयोगत. ।
कोष्ठानि षोडशाऽत्र स्युस्तेषु वर्णान् क्रमाल्लिखेत् ॥२८॥
चतुश्चतुर्विभागेन कल्पयेत्तानि वै क्रमात् ।
प्रथमप्रथमे त्वाद्य द्वितीयप्रथमे तथा ॥२९॥
द्वितीयमन्यतश्चान्यत्तथान्यदपि कल्पयेत् ।
तत्तत्कोष्ठेषु विलिखेत्तत्तत्पञ्चममक्षरम् ॥३०॥
एव चतुर्षु वर्गेषु क्षान्तावधि समालिखेत् ।

एषामयमर्थः-प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च पञ्च पञ्च रेखा विलिख्य, षोडशकोष्ठानि कृत्वा, तानि प्रादक्षिण्येन चत्वारि वक्ष्यमाणसिद्धसाध्यसुसिद्धारिवर्गेषु प्रकल्प्य, प्रथमचतुष्कप्रथमकोष्ठे-प्रथममकार, द्वितीयचतुष्कप्रथमकोष्ठे-द्वितीयमकार, तृतीयचतुष्कप्रथमकोष्ठे—इकार, चतुर्थचतुष्कप्रथमकोष्ठे—ईकार विलिख्य, ततस्तत्तत्कोष्ठेषु उक्तचतुष्कचतुष्टयद्वितीयकोष्ठेषु तत्तत्पञ्चम, प्रथमप्रथमकोष्ठलिखिताक्षराणा पञ्चमाक्षराणि विलिखेदित्यर्थ. । एव प्राग्वत् । द्वितीयकोष्ठाक्षराणा पञ्चमाक्षराणि तृतीयकोष्ठेषु विलिखेत् । तृतीयकोष्ठाक्षराणा पञ्चमाक्षराणि चतुर्थकोष्ठेषु विलिखेत् । उक्तचतुष्कचतुष्के[1] प्रत्येक कोष्ठेषु पुन. पुन. पञ्चमाक्षरलेखनत क्षान्तावधि चतुष्कचतुष्टयेऽपि समालिखेत् ।

एव लिखिते सति—प्रथमचतुष्कप्रथमकोष्ठे—अ क थ ह इति चत्वार्यक्षराणि, तद्द्वितीयकोष्ठे—उ ङ प इति त्रीणि, तत्तृतीयकोष्ठे—लृ झ म इति त्रीणि, तच्चतुर्थकोष्ठे—ओ ड व इति त्रीणि । द्वितीयचतुष्कप्रथमकोष्ठे—

१. ख. उक्तचतुष्के ।

आ ख द ल इति चत्वारि, तद्द्वितीयकोष्ठे—ऊ च फ इति त्रीणि, तत्तृतीयकोष्ठे लृ ञ य इति त्रीणि, तच्चतुर्थकोष्ठे—औ ढ श इति त्रीणि। तृतीय—चतुष्कप्रथमकोष्ठे—इ ग ध क्ष इति चत्वारि, तद्द्वितीयकोष्ठे—ऋ छ व इति त्रीणि, तत्तृतीयकोष्ठे—ए ट र इति त्रीणि, तच्चतुर्थकोष्ठे—अ ण प इति त्रीणि। चतुर्थचतुष्कप्रथमकोष्ठे—ई घ न इति त्रीणि, तद्द्वितीयकोष्ठे—ॠ ज भ इति त्रीणि, तत्तृतीयकोष्ठे ऐ ठ ल इति त्रीणि, तच्चतुर्थकोष्ठे—अः त स इति त्रीणि दृश्यन्ते, एवं विलिख्य सिद्धसाध्यादिविचारं कुर्यात्।

तत्र तन्त्रराजे—

स्वनामाद्यक्षरं यत्र कोष्ठे सन्दृश्यते ततः।
सिद्धादीन् गणयेद्यावन्मन्त्राद्यक्षरदर्शनम् ॥३१॥
सिद्धसिद्धो जपात्सिद्ध्येद्द्विगुणात्सिद्धसाध्यकः।
सिद्धे सुसिद्धः सम्प्राप्त्या सिद्धारिर्हन्ति गोत्रजान् ॥३२॥
साध्यसिद्धोऽतिसक्नेशात्साध्यसाध्योऽतिदुःखकृत्।
साध्ये सुसिद्धो भजनात्साध्यारिः स्वां स्त्रियं हरेत् ॥३३॥
सुसिद्धसिद्धोऽध्ययनात्फलं दद्याद्यथेप्सितम्।
सुसिद्धसाध्यो जापाद्यैः सिद्धये स्यादतोऽन्यथा ॥३४॥
सुसिद्धे तु सुसिद्धस्तु पूर्वजन्मकृतश्रमः।
तस्मात्तं सर्वसिद्धीनां साधने योजयेन्मनुम् ॥३५॥
अभिचारे रिपोरेव यदि स्वात्मविपत्तये।
सुसिद्धारिरशेषेण स्वकुल्यान्नाशयेद् ध्रुवम् ॥३६॥
अरिसिद्धः सुतं हन्यादरिसाध्यः स्वयोषितम्।
अरिः सुसिद्धो मन्त्रस्तु कुलोत्सादनकृच्छनैः ॥३७॥
अर्यरिः स्वात्महा मन्त्रः सम्प्राप्त्यैव सुनिश्चितम्।

कुलमूलावतारे—

चतुरस्रां भुवं भित्वा कोष्ठानां षोडशालिखेत्।
अकारादिक्षकारान्तां मातृकामपि विन्यसेत् ॥३८॥
ईशानकोणादारभ्य वायव्यां विलिखेत्सुधीः।

प्रादक्षिण्यक्रमेणैवेति। तल्लेखनप्रकारमाह—

लक्ष्मीकुलार्णवे—

एकत्रिरुद्रनवनेत्रयुगार्कपङ्क्ति,—
षण्णागषोडशचतुर्दशपञ्चकेषु।

कोष्ठे लिखेन्मुनितिथी च तथाऽवशिष्टे,
वर्णान्हुताशनमितान् क्रमशोऽम्बिकाया ॥३६॥

इति । रुद्र ११, नेत्र २, युग ४, अर्क १२,पङ्क्ति १०, नाग ८, मुनि ७, तिथि १५, अवशिष्टे त्रयोदशे हुताशनमितान् त्रित्रिवर्णान्, अम्बिकाया· मातृकाया· ।

अथ तच्चक्ररचनाप्रकार.—

तत्र प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च पञ्च पञ्च रेखा विलिख्य, षोडश कोष्ठानि कृत्वा, तानि कोष्ठानि चतुश्चतु·कोष्ठैरेकैकचतुष्कमिति चतुष्कचतुष्टय-रूपेण[1] चतुर्द्धा विभज्य, तत्रैशानगतचतुष्कस्य कोष्ठचतुष्टये ईशानकोष्ठादिप्रादक्षिण्येन– अ क थ ह उ ङ प ऌ भ म ओ ड व, आग्नेयचतुष्के ईशानादिप्रादक्षिण्येन —आ ख द ल ऊ च फ ॡ ञ य औ श, निर्ऋतिचतुष्के ईशनादिप्रादक्षिण्येन इ ग ध क्ष ऋ छ ब ए ट र अ ण ष, चतुर्थचतुष्के ईशानादिप्रादक्षिण्येन—ई घ न ॠ ज भ ऐ ठ ल अ· त स इति समस्तमातृकावर्णान्विलिख्य, शिष्यनामाद्यक्षर यत्र कोष्ठे तिष्ठति तत्कोष्ठमारभ्य मन्त्राद्यक्षर-कोष्ठावधि गणयित्वा, सिद्धसाध्यसुसिद्धारीन् विचारयेत् ।

तत्र साधकमन्त्राद्यक्षरयोरेककोष्ठ एव स्थितिश्चेन्मन्त्र· सिद्धसिद्ध इति ज्ञेय । तच्चतुष्क एव द्वितीयकोष्ठे चेन्मन्त्राद्यक्षर तदा मन्त्र सिद्धसाध्य । तृतीये चेत् सिद्धसुसिद्ध इति चतुर्थे चेत् सिद्धारिः । द्वितीयचतुष्केऽपि समानकोष्ठे[2] प्रथमकोष्ठ परिकल्प्य, तदारभ्य प्रादक्षिण्येन गणयेत् ।

तत्र प्रथमकोष्ठे चेन्मन्त्राद्यक्षर तिष्ठति तदा स मन्त्र· साध्यसिद्ध । द्वितीये साध्यसाध्य· । तृतीये साध्यसुसिद्धः । चतुर्थे साध्यारि· । एव तृतीय-चतुष्केऽपि प्रथमकोष्ठे सुसिद्धसिद्ध· । द्वितीये सुसिद्धसाध्य । तृतीये सुसिद्ध-सुसिद्ध· । चतुर्थे सुसिद्धारि· । एव चतुर्थचतुष्केऽपि प्रथमकोष्ठे चेन् मन्त्राद्यक्षर तदा अरिसिद्ध । द्वितीये चेदरिसाध्य· । तृतीये अरिसुसिद्ध । चतुर्थे अर्य्यरिः । इति सम्यग्विचार्य, विज्ञाय मन्त्रमेलन कुर्यात् । अन्यथा मन्त्रस्त्वनर्थकारी भवेत् ।

'नास्ति मन्त्रसम मित्र नास्ति मन्त्रसमो रिपुः ।' इति **यामलवचनात्** सिद्धसिद्धादीना फलानि पूर्वमेवोक्तानि ।

---

१. ख. चतुष्टयरूपेण । २ ख. समानकोष्ठ ।

पिङ्गलामते प्रत्यक्षर सिद्धादिगणनोक्ता—

मातापितृकृत नाम यच्चाप्यभिजनैः कृतम् ।
विश्लिष्य तस्य वै वर्णान् स्वरवर्णविभेदत. ॥४०॥

तथैव मन्त्रबीजानि तत: शोधनमारभेत् ।
बिन्दुद्विबिन्दुकोपध्मानीयजिह्वाङ्घ्रिसम्भवान् ॥४१॥

सहितोच्चारणप्राप्तमधिकाक्षरमेव च ।
अपभ्रंशाक्षर लक्ष्मौ त्यक्त्वा पण्ढचतुष्टयम् ॥४२॥

मन्त्राक्षरै. सहैकैक नामवर्णान्विशोधयेत् ।
व्यञ्जनैर्व्यञ्जनान्येव स्वरैः सार्द्धं स्वरास्तथा ॥४३॥

आद्यमाद्येन सशोध्य द्वितीयेन द्वितीयकम् ।
मन्त्रे वाप्यथवा नाम्नि वर्णा स्युर्विषमा यदा ॥४४॥

तदा मन्त्रं समारभ्य सम यावत्प्रयोजयेत् ।
आद्यन्तयोः सिद्धवर्णा मन्त्रे यस्मिन्वरानने ॥४५॥

अचिरेणैव कालेन स तावत्सर्वसिद्धिद. ।
साध्यान्तादियुतो यस्तु सोऽतिकृच्छ्रेण सिद्ध्यति ॥

आदावन्ते सुसिद्धस्तु सर्वकामविभूतिदः ।
आदावन्ते रिपुर्यस्य भवेत्त्याज्यः स मन्त्रक. ॥४७॥

आदौ सिद्धोऽन्त्यसाध्यो यो द्विगुणेन स सिद्ध्यति ।
आदौ सिद्ध सुसिद्धोऽन्ते यथोक्तात्सिद्ध्यते जपात् ॥४८॥

आदौ सिद्धोऽन्त्यशत्रुर्यः स त्याज्यो मन्त्रसत्तमै. ।
साध्यादिश्चैव सिद्धान्तस्त्रिगुणात्सिद्ध्यते जपात् ॥४९॥

आदौ साध्यः सुसिद्धोऽन्ते प्रोक्तमार्गेण सिद्ध्यति ।
आदौ साध्यस्त्वन्तशत्रुर्यत्नात्त परिवर्जयेत् ॥५०॥

सुसिद्धादिस्तु सिद्धान्तो यथोक्तादेव सिद्ध्यति ।
सुसिद्धादिस्तु साध्यान्तश्चतुर्गुणमपेक्षते ॥५१॥

सुसिद्धादिश्चान्तशत्रुर्मध्यम. परिकीर्त्तित.
आद्यारिस्त्वन्तसिद्धादि. सोऽपि त्याज्योऽत्र कर्मणि ॥५२॥

आदौ मध्ये तथा चान्ते सिद्ध. शुभफलप्रदः ।
सर्वसाध्य उदासीन' प्रोक्तस्तन्त्रे स्वयम्भुवा ॥५३॥

स्थानत्रितयसुसिद्ध सर्वानर्थांश्च साधयत्येव ।
स्थानत्रितयगतारिर्मन्त्रो मृत्युर्न सन्देह' ॥५४॥

सिद्धादि साध्ययुग्मान्तो व्यर्थ इत्युच्यते बुधै' ।
सिद्धादिर्हि सुसिद्धान्तः सर्वकार्यार्थसाधकः ॥५५॥
सिद्धादिररियुग्मान्तो नाशक. सम्प्रकीर्त्तितः ।

शत्रुर्भवति यदादौ मध्ये सिद्धस्तदन्तके साध्यः ॥
कष्टेन कार्यसिद्धिस्तस्य फलं स्वल्पमेव भवेत् ॥५६॥

यदि भवति रिपु. प्रथमे मध्ये च भवति साध्ययुगम् ।
कार्यं विलम्बित स्यात्प्रणश्यति क्षिप्रमेवान्ते ॥५७॥

आद्यन्तयोर्यदा साध्यो मध्ये सिद्ध. प्रजायते ।
आद्यन्तयोर्यदा सिद्धो मध्ये साध्य. प्रजायते ॥५८॥

तावुभौ साध्यसिद्धौ हि जपाधिक्येन सिद्धचतः ।
अरिसम्पुटित. सिद्धः सुसिद्धोऽपि तथा भवेत् ॥५९॥

सर्वनाशकरो ज्ञेयः साधकस्य न सशयः ।
सिद्धान्तरितसाध्यस्तु सुसिद्धान्तरितोऽथवा ॥६०॥

शीघ्र सिद्धचति मन्त्रोऽयमीशान. स्वयमब्रवीत् ।
सिद्धान्तरितशत्रुश्च सुसिद्धेनाऽपि चेद्भवेत् ॥६१॥

नासौ रिपुर्भवेन्मन्त्र. किन्तु कृच्छ्रेण सिद्धचति ।
साध्यान्तरितसिद्धस्तु सुसिद्धोऽपि तथा यदि ॥६२॥

सिद्धचत्यतीवकष्टेन साधकस्य न चान्यथा ।
रिपुणान्तरितः सिद्ध सुसिद्धोऽपि तथा यदि ॥६३॥

ईदृश लक्षण दृष्ट्वा दूरत. परिवर्जयेत् ।
रिपुणा दूषितो मन्त्रो नैव देयः कदाचन ॥६४॥इति।

नारायणीयेऽपि—

दुष्टार्णप्रचुरो मन्त्रो य. स्यात्स च विनिन्दितः ।

अपेक्षितार्थद्योतनिकायां व्याख्यातम् । तत्र पूर्ववन्मातृकाक्षराणि सलिख्य, तत्समीप मन्त्र नाम च लिखित्वा, प्रथमाक्षरेण प्रथमाक्षर शोधयित्वा,

पुनर्द्वितीयाक्षर शोधयित्वा, नामपरिसमाप्तौ पुनर्नाम लिखित्वा, यावन्मन्त्रपरिसमाप्तिस्तावच्छोधयित्वा, यस्मिन्मन्त्रे दुष्टार्णाः, साध्यार्णा, वैरिणश्च इतरेभ्यो वहवो भवन्ति, तदा तन्मन्त्र वर्जयेदित्यर्थ । अत्र केषाञ्चिद्वर्णानां शोधन नास्तीत्याहु. ।

नमः प्रणवसयोगावपभ्रशाक्षराणि च ।
वर्जयित्वैव गणन कर्त्तव्य च सुरेश्वरि ॥६५॥ इति ।

॥ अथ ऋणधनशोधनचक्रम् । तत्र

कुलमूलावतारे—

इन्द्रर्क्षनेत्ररविपञ्चदशर्त्तुवेद ।
वह्न्यायुधाष्टनवभिर्गणिताश्च साध्यान् ।
दिग्भूगिरिश्रुतिगजाग्निमुनीषुवेद—
षड्वह्निभिश्च गणितानथ साधकार्णान् ॥६६॥
नामाज्झलादकठवाद्गजभक्तशेष,
ज्ञात्वोभयोरधिकशेषयुत ऋण स्यात् ॥ इति ।

अस्यार्थः—इन्द्र १४, ऋक्ष २७, नेत्र २, रवि १२, पञ्चदश १५, ऋतु ६, वेद ४, वह्नि ३, आयुध ८,[1] दिक् १०, भू १, गिरि ७, श्रुति ४, गज ८, अग्नि ३, मुनि ७, इषु ५, वेद ४, षट् ६, वह्नि ३ नामाज्झलात् । अयमर्थ.—

मन्त्रवर्णान्साधकनामाक्षराणि च स्वरव्यञ्जनविन्दुविसर्गभेदैः पृथक् कृत्वा, वक्ष्यमाणाकठत्रादिवर्गैकादशोत्थाङ्केषु गुरूक्तयुक्त्या सयोज्य, पृथक् पृथग् जाताङ्कसमुदाय गजभक्तशेषमष्टभिराहृतोर्वरित ज्ञात्वोभयोः साधकमन्त्राक्षरयोर्हृतावशिष्टाङ्कयोर्मध्ये यत्राङ्काधिक्य स ऋणी स्यादिति ।

॥ [2]अथैतच्चक्रनिर्माणप्रकारः ॥

तत्र दक्षिणोत्तरायता सप्तरेखा प्राक्प्रत्यगायता द्वादशरेखाश्च विलिख्य, षट्षष्टिकोष्ठानि कृत्वा, तत्र सर्वोपरिगतैकादशकोष्ठात्मकप्रथमपङ्क्तौ स्ववामादिदक्षिणान्त प्रथमकोष्ठे- १४, द्वितीये- २७, तृतीये-२, चतुर्थे-१२, पञ्चमे-१५, षष्ठे-६, सप्तमे-४, अष्टमे-३, नवमे-८, दशमे-८, एकादशे-९, इत्येकादशभेदादङ्कानालिख्य, तदधो द्वितीयपङ्क्तौ स्ववामादिदक्षिणान्त अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ अं अः

---

१. स. ८, ९ । २ तथैतच्चक्र० ।

इत्येकादशस्वरानेकादशकोष्ठेषु समालिख्य, तदध पङ्क्तौ ककारादिटकारान्तानेकादश वर्णास्तथैव समालिख्य, तदध पङ्क्तौ ठकारादिफकारान्तानेकादशवर्णान्विलिख्य, तदध पङ्क्तौ बकारादिहकारान्तान्वर्णान् विलिख्य, तदध पङ्क्तौ १०/१/७/४/८/३/७/५/४/६/३/ इत्येकादशविधानङ्कानेकादशकोष्ठेषु विलिखेदित्यकठवचक्र निर्माय विचारयेत् ।

तत्र स्वेष्टमन्त्रस्य वर्णान् स्वरव्यञ्जनविन्दुविसर्गं पृथकक्कृत्वा, सर्वोपरिगतपङ्क्तिस्थाङ्कन यस्य यस्य वर्णस्य यो योऽङ्कस्त त वर्णं तेन तेनाङ्केन गणयित्वा, सञ्जाताङ्कसख्यासमुदायमष्टभिराहृत्यावशिष्टमङ्क पृथक् सस्थाप्य, शिष्यनामाक्षराणि च तथैव स्वरव्यञ्जनविन्दुविसर्गः पृथक्कृत्वा, सर्वाध पङ्क्तिस्थाङ्केषु यस्य यस्य वर्णस्य यो योऽङ्कस्त त तेन तेनाङ्केन गणयित्वा, सञ्जाताङ्कसमुदायमष्टभिराहृत्यावशिष्टमङ्क पृथक् सस्थाप्य, मन्त्रसाधकयोरवशिष्टाङ्कमध्ये योऽङ्कस्त्वधिकसख्याक. स ऋणीति ज्ञेय । मन्त्रश्चेदृणी तदा स मन्त्रो ग्राह्यः । यस्य मन्त्रस्य साधक ऋणी भवति स मन्त्रस्त्याज्य इति ऋणधनशोधनप्रकार ।

तन्त्रराजेऽन्यथाऽप्युक्तः । यथा—

नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिवर्णकम् ।
त्रिधा कृत्वा स्वरैर्भिद्यात्तदन्यद्विपरीतकम् ।।६५।।

इति । अस्यार्थ.-साधकनाम्नो यदाद्यक्षर तत आरभ्य मन्त्राद्यक्षरपर्यन्त मातृकाक्रमेण गणयित्वा, तमङ्क त्रिगुणित कृत्वा स्वरै. सप्तभिर्हरेदिति । अय[1] साधकराशिः ।

एव मन्त्राद्यक्षरमारभ्य साधकनामाद्यक्षरपर्य्यन्तं मातृकाक्रमेण गणयित्वा तमङ्क सप्तगुणित कृत्वा त्रिभिर्भजेत इति मन्त्रराशि । अन्यत् पूर्ववत् ।

तन्त्रान्तरोक्तो वा ऋणधनशोधनप्रकारो यथा—

साध्यनाम द्विगुणित साधकेन समन्वितम् ।
अष्टाभिश्च हरेच्छेष तदन्यद्विपरीतकम् ।।६८।।

इति । अस्यार्थ -मन्त्राक्षराणि स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्कृतानि द्विगुणयेत् । साधकनामाक्षराण्यपि स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्कृतानि तेषु संयोजयेत् ततोऽष्टभिर्हरेत् । अय मन्त्रराशिः ।

---

१. ख अथ ।

एवं साधकनामाक्षराणि स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्कृतानि द्विगुणितानि स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्कृतानि मन्त्राक्षरैः संयोजितानि अष्टभिर्हरेत्। एवं साधकराशिः। अन्यत् पूर्ववत्। एवमुक्तेष्वन्यतमेनावश्यं ऋणधनशोधनं मन्त्रेषु कर्त्तव्यम्।

तन्त्रराजे—

कथं ऋणित्वं मन्त्राणां साधकानां च मे वद।
पूर्वजन्मकृताभ्यासे पापादस्याफलाप्तिकृत् ॥६९॥
पापे नष्टे फलावाप्तिर्जायतेऽसंशयं नृणाम्।
मन्त्रास्तु प्राप्तमात्रेण प्राक्तनः सिद्धिदो भवेत् ॥७०॥
सिद्धमन्त्राद्गुरोर्लब्धमन्त्रो यः सिद्धिभाङ् नरः।
लक्ष्मीमदादनादृत्य मन्त्रं भोगमवाप्तवान् ॥७१॥
स मन्त्रस्य ऋणी ज्ञेयो भजनं तस्य पूर्वकम्।
तस्मादृणविशुद्धिस्तु कार्या सर्वैस्तु सर्वतः ॥७२॥

इति मन्त्रसाधकयोरन्योन्यं ऋणित्वं धनित्वं च ऋणविशुद्धिः[1] मन्त्रस्य यावत्संख्याङ्कैः साधकः ऋणी भवति तावत्संख्यलक्षजपेनैव भवेदिति साम्प्रदायिकाः।

॥ अथ षट्पदचक्रम् ॥ तत्र

कुलमूलावतारे—

षड्दलं पद्ममालिख्य प्रागादिषु दलेषु च।
अकादिवर्णानेकैकाल्लिखेन्निःषण्ढकूटकान् ॥७३॥
स्वनामाद्यक्षरं यत्र तदारभ्य विचारयेत्।

॥ अथैतच्चक्ररचनाप्रकारः ॥

तत्र षड्दलं कमलमालिख्य, तद्दलेषु प्रागादिप्रादक्षिण्येन ऋ ॠ ऌ ॡ क्ष-वर्जितान् मातृकावर्णानेकैकशः पुनः पुनः समालिख्य, स्वनामाद्यक्षरं यत्र दले तिष्ठति तत्प्रथमं दलं परिकल्प्य, तदारभ्य मन्त्राद्यक्षरं यत्र तिष्ठति तद्दलपर्यन्तं गणयित्वा, तत्फलानि विचारयेत्। तानि तु सारसङ्ग्रहे—

प्रथमे सम्पदुद्दिष्टा द्वितीये सम्पदन्तकः।
तृतीये तु धृतिं विद्याच्चतुर्थे बन्धुविग्रहः ॥७४॥

1. ख. ऋणविशुद्धिस्तु।

पञ्चमे संशयं विद्यात्षष्ठे सर्वविनाशनः ।

विजयमालिनीतन्त्रे—

अल्पदोषा वहुगुणा मन्त्रा देया विचक्षणैः ।
सिद्धादिकोष्ठक ज्ञात्वा ततः सिद्धिः प्रजायते ॥७५॥

अत्र मन्त्रमेलने प्रसिद्धमेव नाम ग्राह्यम् । तथा च—

ज्ञानोन्नयने—

सिद्धसाध्यादियोगेषु मन्त्रदाने विशेषतः ।
प्रसिद्ध नाम गृह्णीयाद्येन सुप्तोऽपि जागृयात् ॥७६॥

पिङ्गलामते तु विशेषः—

प्रसिद्धं यद्भवेन्नाम किञ्चास्य जन्मनाम च ।
यतीना पुष्पपातेन गुरुणा यत्कृत भवेत् ॥७७।
नाम्नस्तस्यैव वर्णानि विभक्तानि च कारयेत् ।

अन्यत्राऽपि—

लोके प्रसिद्धनामाऽथ मातापित्रा तथा कृतम् ।
सुप्तो जागर्त्ति येनाऽसौ दूरस्थश्च प्रभाषते ॥७८॥
वदत्यन्यमनस्कोऽपि तन्नाम ग्राह्यमत्र तु ।
मातापितृकृत नाम शोधनीयम्प्रयत्नतः ॥७९॥

अन्ये त्वत्र जन्मनाम ग्राह्यमिति वदन्ति ।

जन्मर्क्षाक्षरतो वीक्ष्यं तत्र मन्त्रादिमाक्षरम् ॥ इति ।

अत्र प्रसिद्धमेव नाम ग्राह्यमिति मुख्यः पक्षः ।

कुलार्णवे—

एकाक्षरे तथा कूटे त्रैपुरे मन्त्रनायके ।
स्त्रीदत्ते स्वप्नलब्धे च सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥८०॥
नृसिंहार्कवराहाणां प्रासादप्रणवस्य च ।
सपिण्डाक्षरमन्त्राणा सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥८१॥

अन्यत्र—

स्वप्नलब्धे स्त्रिया दत्ते मालामन्त्रे च त्र्यक्षरे ।
वैदिकेषु च सर्वेषु सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥८२॥

सोमसिद्धान्ते—

पाशाद्य त्र्यक्षरं मन्त्र त्रैपुर चण्डनायकम् ।
सौर मृत्युञ्जय शाक्त शाम्भव विनतासुतम् ॥८३॥

सौरमन्त्रास्तु येऽपि स्युर्वैष्णवा नारसिंहका ।
सिद्धसाध्यसुसिद्धारिविचारपरिवर्जिताः ॥८४॥

प्रणव त्र्यक्षर माया व्योमव्याप्यं षडक्षरम् ।
मालामन्त्रेषु सर्वेषु सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥८५॥

तथा रत्नसागरे—

हंसस्याष्टाक्षरस्यापि तथा पञ्चाक्षरस्य च ।
एकद्वित्र्यादिबीजस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥८६॥

नृसिंहार्कवराहाणां कालिका सिद्धकालिका ।
श्यामला च तथा चण्डी सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥८७॥

रुद्रयामले—

अघोरमन्त्रे देवेशि मालामन्त्रस्य पार्वति ।
नपुंसकस्य मन्त्रस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥८८॥

कुलमूलावतारे—

स्वप्नोपलब्धमन्त्रस्य न विधिर्नैव च क्रियाः ।
उद्दिष्टदेवतां ध्यात्वा जपेच्छुभकर भवेत् ॥८९॥

अगस्तिसंहितायाम्—

राममन्त्रेषु सर्वेषु शृणुष्व मुनिपुङ्गव ।
तारकत्वान्मन्त्रराजे सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥९०॥

सिद्धान्तशेखरे—

एकत्रिपञ्चसप्तार्णनवरुद्राक्षरान्विते ।
द्वात्रिंशदक्षरे मन्त्रे सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥९१॥

ये च बौद्धाश्च जैनाश्च गोपाला वैष्णवाश्च ये ।
सिद्धसाध्यसुसिद्धारिविचारपरिवर्जिताः ॥९२॥

व्योमव्यापी षडर्णश्च मातृका हरवल्लभा ।
बहुरूपाह्वयो मन्त्र पञ्च साधारणा मता ॥९३॥

पदार्थादर्शे—

पिण्डे तारे स्वप्नलब्धे षडर्णे
प्रासादार्के त्रैपुरे नारसिंहे ।
मालामायामातृवाराहकामा—
ऽस्त्रे नो दोषस्त्र्यायवेदेषु रत्ने ।।९४।। इति ।

मालामन्त्रस्वरूपमुक्तं महाकपिलपञ्चरात्रे—

वहुवर्णास्तु ये मन्त्रा मालामन्त्रास्तु ते स्मृताः ।
दशाधिकाक्षरा माला पञ्चाधिकाऽर्द्धमालिका ।।९५।।
न माला पञ्चपर्यन्ता वृद्धस्थविरवालका ।
वार्द्धके सिद्धिदा माला अर्द्धमाला तु यौवने ।।९६।।
वाल्ये पञ्चाक्षराधस्तु मन्त्रः सिद्धिप्रदायकः ।। इति ।

प्रयोगसारे तु—

नवाक्षरान्ता ये मन्त्रा वीजमन्त्राः प्रकीर्त्तिताः ।
पुनर्विंशतिवर्णान्ता मन्त्रा मन्त्रास्तथोदिताः ।।९७।।
ततोऽधिकाक्षरा मन्त्रा मालामन्त्रा इति स्मृताः ।
वाल्ये प्रसिद्धिदा वीजमन्त्रा मन्त्रास्तु यौवने ।।९८।।
मालामन्त्रास्तु वार्द्धक्ये विशेषेण प्रसिद्धिदाः ।।

नारायणीये—

विंशत्यर्णाधिका मन्त्रा मालामन्त्रा इति स्मृताः ।
दशाक्षराधिका मन्त्रास्तदर्वाग्वीजसञ्जिताः ।।९९।।
वार्द्धके सिद्धिदा मालामन्त्रा मन्त्रास्तु यौवने ।
पञ्चाक्षराधिका वाल्ये सिद्धिदा सर्वदाऽपरे ।।१००।।

पदार्थादर्शे—

आज्ञासिद्धास्तु ये मन्त्रा योगिनीनाम्प्रसादतः[1] ।
लब्धा ये केऽपि ते मन्त्राः सर्वकामफलप्रदाः ।।१०१।।

मुण्डमालातन्त्रे—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ।।१०२।।

---

१. ख. योगिनां च० ।

बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका ।
एता दश महादेवि महाविद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥१०३॥

नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नक्षत्रादिविचारणा ।
कालादिशोधनं नास्ति न च मित्रादिशोधनम् ॥१०४॥

एतद्व्यतिरिक्तेषु मन्त्रेष्ववश्य शोधनं कार्यम् । यदुक्तम्—

मन्त्रो वा यदि वा विद्या स्तवो वा सूक्तमेव वा ।
अर्थवन्धुशरीरस्य नाशको भवति क्षणात् ॥१०५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दुष्टं सर्वत्र वर्जयेत् ।

दुष्टमन्त्रग्रहणे प्रकारान्तरमप्युक्तम्—

पदार्थादर्शे—

एषु दोषेषु सर्वत्र माया काममथापि वा ।
क्षिप्त्वा चादौ श्रियं दद्यात्तद्दूषणविमुक्तये ॥१०६॥

तारसम्पुटितो वापि दुष्टमन्त्रोऽथ सिद्धयति ।
यस्य यत्र भवेद्भक्तिः सोऽपि मन्त्रोऽस्य सिद्धयति ॥१०७॥

भुवनेशीपारिजाते—

मायाबीजसमायुक्तः क्षिप्रप्रसिद्धिदो भवेत् ।
पिण्डस्तु केवलो मन्त्रो मायाबीजोज्वलीकृतः ॥१०८॥
मायाबीजाद्भवेत्प्राणो बीज चैतन्यवीर्यवत् ।

तथा— अनुलोमविलोमस्थवल्कृप्तया वर्णमालया ।
प्रत्येकवर्णयुङ्मन्त्रा जप्ताः स्युः क्षिप्रसिद्धिदाः ॥१०९॥
वैरिमन्त्रा अपि नृणामन्ये मन्त्राश्च किम्पुनः ।

यद्यज्ञानादरिमन्त्रग्रहणं स्यात्तदा तत्त्यागप्रकार उच्यते ।

तत्र श्रीरुद्रयामले—

अरिमन्त्रपरित्यागविधिं वक्ष्ये महेश्वरि ।
यद्ज्ञात्वा मोचयेच्छिष्यं शत्रुमन्त्रभयाद् गुरुः ॥११०॥

अज्ञानाद्यत्र कुत्राप्तमरिमन्त्रं महेश्वरि ।
जप्त्वा मूढा महादुःखं प्राप्नुवन्ति हि तत्कृतम् ॥१११॥

गुरुस्तद्रक्षयेद्येन[1] विधिना त्त वदामि ते ।
शुचि. समाहितो भूत्वा प्रारभेत्प्रवरे दिने ॥११२॥

अशेषदु.खनाशाय देशिक प्रवर विधिम् ।
तत्रादौ रम्यभवने कुम्भ दीक्षाविधानत. ॥११३॥

मण्डले स्थापयेद्देवि पूजयेत्त शुभैर्जलै ।
विलोममन्त्रपाठेन तत्रावाह्येष्टदेवताम् ॥११४॥

सकलीकृत्य सम्पूज्यावरणानि प्रपूजयेत् ।
एव सावरणामिष्ट्वा देवि मन्त्रस्य देवताम् ॥११५॥

हुत्वा विलोममन्त्रेण गोघृतेन महेश्वरि ।
अष्टोत्तरसहस्र वा शत वाष्टोत्तरम्प्रिये ॥११६॥

ब्रह्मार्पणेन मनुना तथान्ते तर्पयेत्प्रभुम् ।
ततो यवान्नदुग्धान्नैर्देवताभ्यो बलि हरेत् ॥११७॥

विदिक्षु दिक्षु च तथाऽधश्चोर्द्ध्वे मनुवित्तम ।
आयाहीन्द्र सुराधीश शतमन्यो शचीपते ॥११८॥

नमस्तुभ्य गृहाणेम पुष्पधूपादिकम्बलिम् ।
आयाहि तेजसा नाथ हव्यवाह वरप्रद ॥११९॥

गृहाण पुष्पधूपादि बलिमेनम्प्रयोजितम् ।
प्रेतनाथ त्वमायाहि भिन्नाञ्जनसमद्युते ॥१२०॥

बलि दत्त गृहीत्वेम सुप्रीतो वरदो भव ।
नमस्ते रक्षसा नाथ निर्ऋते त्वमिहागत ॥१२१॥

गृहाण बलिपूजादि मया भक्त्या निवेदितम् ।
एहि पश्चिमदिक्पाल जलनाथ नमोऽस्तु ते ॥१२२॥

भक्त्या निवेदिताम्पूजां गृहीत्वा प्रीतिमाप्नुहि ।
प्रभञ्जन प्राणपते त्वमेहि सपरिच्छद. ॥१२३॥

मया प्रयुक्त विधिवद् गृहाण बलिमादरात् ।
कुबेरतारकाधीशावागच्छेता सुरोत्तमौ ॥१२४॥

१. ख. गुरुस्तान् रक्षयेद्येन ।

[1]मन्त्रसारसङ्ग्रहे षष्ठ्या अपि ग्रहणम्—

द्वितीया पञ्चमी वापि षष्ठी चापि विशेषतः ।
द्वादश्यामपि कर्त्तव्य त्रयोदश्यामथापि वा ॥१६५॥ इति ।

मन्त्ररत्नावल्यां तु—

चतुर्थीं नवमी षष्ठीमष्टमी च चतुर्दशीम् ।
पौर्णमासी विना शेषा हिता मुक्तौ मुमुक्षुभिः ॥१६६॥ इति ।

तत्त्वसारसंहितायाम्—

ता तां तिथिं समालोच्य तद्भक्तास्तत्र दीक्षयेत् ।

इन्द्र —

कस्य का तिथिरुद्दिष्टा विशेषाद्वद नारद ॥१६७॥

नारदः—

ब्रह्मणः पौर्णमास्युक्ता द्वादशी चक्रधारिणः ।
चतुर्थी गणनाथस्य भानोः प्रोक्ता तु सप्तमी ॥१६८॥
नित्यामार्गेषु पार्वत्या अष्टमी च चतुर्दशी ।

कालोत्तरे—

ब्रह्मणः पौर्णमास्युक्ता द्वादशी चक्रधारिणः ।
चतुर्दशी शिवस्योक्ता वाचः प्रोक्ता त्रयोदशी ॥१६९॥
द्वितीया तु श्रियः प्रोक्ता पार्वत्याश्च तृतीयका ।
चतुर्थी गणनाथस्य भानोः प्रोक्ता तु सप्तमी ॥१७०॥

विष्णुदीक्षायां पञ्चरात्रे विशेष.—

द्वादश्या शुक्लपक्षस्य सूर्यसङ्क्रमणे तथा ॥इति।

रत्नावल्याम्—

षष्ठी भाद्रपदे शेषे तथा कृष्णा त्रयोदशी ।
कार्त्तिके नवमी शुक्ला मार्गे शुक्ला तृतीयका ॥१७१॥
पौषे च नवमी शुक्ला माघे शुक्ला चतुर्थिका ।
फाल्गुने नवमी शुक्ला चैत्रे कामचतुर्दशी ॥१७२॥

---

१. ख. इतः पूर्वमयमंशो विशेष·—"क्वचित्तु 'त्रयोदश्यां हरिव्रते' ति त्रयोदश्या निषेध उक्तः" ।

वैशाखे चाक्षया चैव ज्येष्ठे दशहरातिथिः ।
आषाढे नवमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥१७३॥

एतानि देवपर्वाणि तिथिकोटिफल[1] लभेत् ।
अत्र दीक्षा प्रकर्त्तव्या न मास च परीक्षयेत् ॥१७४॥

न वार न च नक्षत्र न तिथ्यादिकदूषणम् ।
न योग करण चैव शङ्करेण च भाषितम् ॥१७५॥

अन्यत्र—

चैत्रे त्रयोदशी शुक्ला वैशाखैकादशी सिता ।
ज्येष्ठे चतुर्द्दशी कृष्णा आषाढे नागपञ्चमी ॥१७६॥

श्रावणैकादशी भाद्रे रोहिणीसयुताऽष्टमी ।
आश्विने च महापुण्या महाष्टम्यप्यभीष्टदा ॥१७७॥

कार्त्तिके नवमी शुक्ला मार्गशीर्षे तथा सिता ।
षष्ठी चतुर्द्दशी पौषे माघेऽप्येकादशी सिता ॥१७८॥

फाल्गुने च सिता षष्ठी चेति कालविनिर्णयः ।

योगिनीतन्त्रे—

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
रविसङ्क्रान्तिदिवसे युगाद्याया सुरेश्वरि ॥१७९॥

मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिने तथा ।
आदित्य मङ्गल सौरं त्यक्त्वा वारा विभूतये ॥१८०॥

माधवभट्टकृतशारदातिलकटीकायाम्—

रवौ गुरौ तथा सोमे कर्त्तव्य बुधशुक्रयोः ॥इति॥

मन्त्रसद्भावे—

मन्त्रारम्भो रवौ शुक्ले बुधे जीवे विशेषतः ।
शनौ मृत्युः क्षयो भौमे सोमे सर्वं च निःफलम् ॥१८१॥

सारसंग्रहे—

रवौ गुरौ बुधे शुक्रे कर्त्तव्य परमेश्वरि ।
इति ज्ञात्वा वरारोहे मन्त्रं दद्याद्विचक्षण. ॥१८२॥

---

१. ख. तीर्थकोटिफलं ।

आश्विने सर्वसिद्धिश्च कार्त्तिको ज्ञानसिद्धिदः ।
शुभकृन्मार्गशीर्षः स्यात्पौषो दुःखविधायकः ॥१४८॥
माघे मेधाविवृद्धिश्च फाल्गुने सर्ववश्यता ॥इति ।

सिद्धान्तशेखरे तु विशेष —

शरत्काले च वैशाखे दीक्षा श्रेष्ठफलप्रदा ।
फाल्गुने मार्गशीर्षे च ज्येष्ठे दीक्षा च मध्यमा ॥१४९॥

आषाढः श्रावणो माघः कनिष्ठः सद्भिरादृतः ।
निन्दितश्चैत्रमासस्तु पौषो भाद्रपदस्तथा ॥१५०॥

निन्दितेष्वपि मासेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे शुभा ।

श्रीकण्ठसंहितायामन्यथोक्तम्—

शरत्काले च वैशाखे दीक्षा श्रेष्ठफलप्रदा ।
मार्गफाल्गुनके श्रेष्ठा ज्येष्ठे चैव तु साऽधमा ॥१५१॥

माघमासे तु शुभदा दुष्टा चाषाढमासके ।
आनन्ददा श्रावणे सा पौषे भाद्रे च निन्दिता ॥१५२॥

आश्विनस्यापि निषेधः शिवयामले उक्त —

महाभवचतुर्दश्यामुपरागेषु चाश्विने ।
ददन्मन्त्रं भवेन्मन्त्री दरिद्रः सप्तजन्मसु ॥१५३॥ इति ।

कालोत्तरे—

शरद्वसन्तयोर्योगो दीक्षाकर्मविधौ स्मृत ।
तयोरसम्भवे वर्षा विनाऽन्यत्र प्रशस्यते ॥१५४॥

कारणे—

आषाढपूर्वमासे च आषाढे मार्गशीर्षके ।
दीक्षा न कारयेद्धीमानन्यमासे तु कारयेत् ॥१५५॥ इति ।

[1]अयमत्र सिद्धान्तः-येषां मासानां बहुभिर्वचनैः सत्फलत्वमुक्तं ते दीक्षायां प्रशस्तत्वेन ग्राह्याः ।

---

१. ख. इत पूर्वमयमंशो विशेष —गोपालमन्त्रग्रहणे स्कान्दे चैत्रमासोऽपि प्रशस्त उक्त —

श्रीमद्गोपालमन्त्राणां दीक्षाया तु न दुष्यति ।
चैत्रमासो यदुक्ता तद्दीक्षा तत्रैव देशिकैः ॥१॥

अगस्तिसंहितायाम्—

शुक्लपक्षेऽथ कृष्णे वा दीक्षा सर्वशुभावहा ।इति।

ज्ञानार्णवे—

शुक्लपक्षे शुभदिने शुभवारे वरानने ।
मन्त्राद्यारम्भणं कुर्याद्…………………॥१५६॥इति।

कालोत्तरे—

मुक्तिकामै कृष्णपक्षे भूतिकामै. सिते सदा ।
दीक्षा कार्या महादेवि …………………॥१५७॥ इति ।

शैवागमे—

शुक्लपक्षे प्रकुर्वीत कृष्णे वा देशिकोत्तमः ।
शुक्ले सर्वसमृद्धि. स्यात्कृष्णे मध्यमतो भवेत् ॥१५८॥

सारसङ्ग्रहे—

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ।
त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता. सर्वकामदाः ॥१५९॥

श्रीकण्ठसंहितायाम्—

द्वितीया सप्तमी श्रेष्ठा षष्ठी सर्वत्र निन्दिता ।
द्वादश्यामपि कर्त्तव्य त्रयोदश्यामथापि वा ॥१६०॥

विजयमालिनीतन्त्रे—

पञ्चम्येकादशी शुक्ला सप्तमी च त्रयोदशी ।
दशमी शुक्लपक्षस्य द्वादशी च विशेशत. ॥१६१॥

रत्नसागरे—

तृतीया विहिता नित्य षष्ठी सर्वत्र निन्दिता ।
सप्तम्या धनलाभ स्यादष्टम्या गुरुनाशनम् ॥१६२॥

नवम्यां रिक्थनाश स्याद्दशमी सुखदायिनी ।
एकादश्या भवेल्लाभो धनस्य वृषभस्य च ॥१६३॥

द्वादश्या धनलाभः स्यात्त्रयोदश्या सदोदय· ।
शिष्यहानिश्चतुर्दश्यां पौर्णमासी तु सिद्धिदा ॥१६४॥

अमाया पुत्रनाशः स्यात्प्रतिपद् बुद्धिनाशिनी ।

पुष्पधूपादिभिः प्रीतौ भवेतां वरदौ मम ।
ईश त्वमेहि भगवन् सर्वविद्याश्रय प्रभो ॥१२५॥

पूजितः पुष्पधूपाद्यैः प्रीतो भव विभूतये ।
आयाहि सर्वलोकाना नाथ ब्रह्मन् समर्चनम ॥१२६॥

गृहाण सर्वविघ्नान्मे निवर्त्तय नमोऽस्तु ते ।
आगच्छ वरदाव्यक्त विष्णो विश्वस्य नायकः ॥१२७॥

पूजितः परया भक्त्या भव त्वं सुखदो मम ।
तत. सपरिवारां च पूजयेन्मन्त्रदेवताम् ॥१२८॥

मन्त्रेण विपरीतेन पुष्पधूपोपचारकैः ।
ततस्तु प्रार्थयेद्विद्वान् पूजिता मन्त्रदेवताम् ॥१२९॥

आनुकूल्यमनालोच्य मया तरलबुद्धिना ।
यदुपात्त च प्रभावमरिमन्त्रस्वरूपकम् ॥१३०॥

तेन मे मनसः क्षोभमशेष विनिवर्त्तय ।
पाप प्रतिहत मेऽस्तु भूयाच्छ्रेय. सनातनम् ॥१३१॥

तनोतु मम कल्याण पावनी भक्तिरेव च ।
इति सम्प्रार्थ्य मन्त्रेशी मन्त्र यन्त्रे विलोमतः ॥१३२॥

विलिख्यामलकर्पूरचन्दनेन समर्चयेत् ।
कलशोपरि संस्थाप्य भक्त्या परमया युतः ॥१३३॥

तद्यन्त्र देवि मतिमान् बद्ध्वा निजशिरस्यथ ।
स्नायात् पूजितकुम्भस्थैर्जलैर्मन्त्रमयैः शिवैः ॥१३४॥

पुनश्चान्येन तोयेन कुम्भमापूर्य सयत. ।
तन्मध्ये मन्त्रयन्त्र च निक्षिप्याऽथ प्रपूजयेत् ॥१३५॥

त कुम्भं निम्नगातीरे शुद्धे वाऽन्यजलाशये ।
विसृजेदथ विप्रांश्च यथाशक्त्या प्रभोजयेत् ॥१३६॥

इत्थ कृतविधानस्य रिपुमन्त्रोद्भवा रुजः ।
विनश्यन्ति न सन्देहः क्रमाच्चित्तप्रसन्नता ॥१३७॥

जायतेऽतीवसम्पन्नो वर्द्धते तत्कुल क्रमात् ।

॥ अथ दीक्षायां मासादिशुद्धिः ॥ तत्र—

पदार्थादर्शे—

असिद्धिर्भूमिसम्पत्तिर्मरण बन्धुनाशनम् ।
आयुर्वृद्धि प्रजानाश सम्पत्ती रत्नसञ्चयः ॥१३८॥

शुभप्राप्तिः स्थाननाशो मोक्षार्थं च वशीकृतिः ।
चैत्रादीना फल ज्ञेय मलमास तु वर्जयेत् ॥१३६॥

मन्यालभैरवतन्त्रे—

चैत्रे दु.खाय दीक्षा स्याद्वैशाखे सर्वसिद्धिदा ।
ज्येष्ठे मृत्युप्रदा सा स्यादाषाढे बन्धुनाशिनी ॥१४०॥

श्रावणे वृद्धिदा नॄणा नभस्ये दु खदा मता ।
आश्विने सर्वसिद्धि. स्यात्कार्त्तिके ज्ञानवृद्धिदा ॥१४१॥

शुभदा मार्गशीर्षे च पौषे मेधाविनाशिनी ।
माघे सुवर्णलाभ. स्यात्फाल्गुने सर्वसिद्धिदा ॥१४२॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

मधुमासे भवेद् दु ख माधवे रत्नसञ्चय. ।
मरण भवति ज्येष्ठे चाषाढे बन्धुनाशनम् ॥१४३॥

समृद्धि. श्रावणे नून भवेद्भाद्रपदे क्षयः ।
प्रजानामाश्विने मासि सर्वत. शुभमेव हि ॥१४४॥

ज्ञान स्यात्कार्त्तिके सौख्य मार्गशीर्षे भवत्यपि ।
पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्मेधाविवर्द्धनम् ॥१४५॥

फाल्गुनेऽपि समृद्धि स्यान्मलमास परित्यजेत् ॥इति॥
पदार्थादर्शे आषाढस्यापि सत्फलत्वमभ्यबोधि ।

वैशाखपूर्वजे मासे मन्त्रारम्भ. सुदु सहः ।
वैशाखे धनदायी च ज्येष्ठे मृत्युप्रदो भवेत् ॥१४६॥

आषाढे पुत्रलाभाय श्रावणे शुभदो मतः ।
भाद्रे चैव ज्ञानहानिस्तथा सद्भिः प्रकीर्त्तिता ॥१४७॥

विजयमालिनीतन्त्रे—

रवौ बुद्धिमवाप्नोति शुक्रे चैव धनागमं ।
बुधेऽभियोगरहितो गुरौ पुत्रान्वितो भवेत् ॥१८३॥

शन्यङ्गारकयोर्मृत्युरविद्या सोमके भवेत् ।
इति ज्ञात्वा वरारोहे मन्त्रं दद्याद्विशालधीः ॥१८४॥

चिन्तामणौ—

अश्विनी रोहिणी चार्द्रा तथा पुष्योत्तरात्रयम् ।
हस्तचित्रास्वातिमैत्रविशाखाश्च धनिष्ठया ॥१८५॥

पुनर्वसू रेवती च दीक्षायामुत्तमा मता ।

मैत्रं अनुराधा । तथा—

कामधेनौ—

रोहिणी मृगशीर्षं च तथा पुष्यश्च हस्तकः ।
स्वात्यनुराधे रेवती च तथा चाप्युत्तरात्रयम् ॥१८६॥

शुभान्येतानि दीक्षायां नक्षत्राणि वरानने ।
उत्तरात्रयरोहिण्यो रेवतीपुष्यवासवम् ॥१८७॥

धनिष्ठावायुमित्राश्विपित्र्यं त्वाष्ट्रं च नैर्ऋतं ।
[1]ऐशवैष्णवहस्ताश्च दीक्षायां तु शुभावहाः ॥१८८॥ इति ।

वासवं ज्येष्ठा, वायुः स्वाती, मित्रं अनुराधा, अश्वि अश्विनी, पित्र्यं मघा, त्वाष्ट्रं चित्रा, नैर्ऋतं मूल, ऐशमार्द्रा, वैष्णवं श्रवणम् ।

संहितायामपि—

अश्विनीरोहिणीस्वातिविशाखाहस्तभेषु च ।
ज्येष्ठोत्तरात्रयेष्वेव कुर्यान्मन्त्राभिषेचनम् ॥१८९॥

तन्त्रसारे—

अश्विन्यां सुखमाप्नोति भरण्यां मरणं ध्रुवम् ।
कृत्तिकायां भवेद् दुःखी रोहिण्यां वाक्पतिर्भवेत् ॥१९०॥
मृगशीर्षे सुखावाप्तिरार्द्रायां बन्धुनाशनम् ।
पुनर्वसौ धनाढ्यं स्यात्पुष्ये शत्रुविनाशनम् ॥१९१॥

---

१. ख. ऐष० । २. ख. सौन्दर्यं ।

अश्लेषायां भवेन्मृत्युर्मघायां दुःखमोचनम् ।
[1]सौदर्यं पूर्वफाल्गुन्या तथैवोत्तरके खगे ॥१९२॥

दीक्षा कार्या प्रयत्नेन हस्तायां च धनी भवेत् ।
चित्रायां ज्ञानसिद्धिः स्यात्स्वात्या शत्रुविनाशनम् ॥१९३॥

विशाखायां सुखं चानुराधाया बन्धुवर्द्धनम् ।
ज्येष्ठाया सुतहानि· स्यान्मूलाया कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥१९४॥

पूर्वाषाढोत्तराषाढे भवेता कीर्तिदायिके ।
श्रवणाया भवेद् दुःखी धनिष्ठाया दरिद्रता ॥१९५॥

बुद्धि· शतभिषाया स्यात्पूर्वभाद्रे सुखी भवेत् ।
सौख्य चोत्तराभाद्रे रेवत्यां कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥१९६॥

रत्नावल्यां च—

त्रीण्युत्तराणि रोहिण्यः पुष्यक मृगशीर्षकम् ।
हस्तस्वात्यनुराधाश्च मघा मूल च रेवती ॥१९७॥

अभिजित् श्रवणं चेति ।

कारणे च—

पौष्णं रोहिण्यथादित्य श्रवण चाश्विनी तथा ।
सावित्र त्वाष्ट्रवायव्यमैन्द्र नैर्ऋतमेव च ॥१९८॥

तिष्य त्रिरुत्तरार्द्रा च सौम्य शिष्यत्रिजन्मभम् ।
नक्षत्राणि प्रशस्तानि दीक्षाकर्मणि सुव्रत ॥१९९॥ इति ।

पौष्ण रेवती, आदित्य पुनर्वसुः, सावित्र हस्तः, । सौम्य मृग. ।

नीरतन्त्रेऽपि—

रोहिणी श्रवणार्द्रा च धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् ।
पुष्य [2]शतभिषे क्वै(चै)व दीक्षानक्षत्रमुच्यते ॥२००॥

अन्यवचनेषूक्तानामपि मघाज्येष्ठामूलश्रवणशतभिषजां निषेधः ।

---

१. ख, शतभिषक् क्वव । २. ख. सौन्दर्यं

पिङ्गलामते—

कृत्तिकायां मनस्तापो भरण्या च महापथः ।
पूर्वाया दण्डयेद्राजा मघाया मृत्युमादिशेत् ॥२०१॥

मूलेन कलहं विद्याज्ज्येष्ठा भवति हानिदा ।
पूर्वाषाढे भयम्प्रोक्तं श्रवणेऽनेकरोगदा ॥२०२॥

शतभिषा[1] क्षोभदा सन्ताप भाद्रपदे भवेत् ।

आवश्यकत्वे पूर्वोक्तवचनेषु विहितत्वेनोक्तेरेतान्यपि ग्राह्याणि ।

वसिष्ठः—

पूर्वाषाढा प्रतिपदा पञ्चमी कृत्तिका तथा ।
पूर्वाभाद्रपदा षष्ठी दशमो रोहिणी तथा ॥२०३॥

द्वादश्या सर्पनक्षत्रमर्यम्णा च त्रयोदशी ।
नक्षत्रलुम्पा इत्येते देवानामपि नाशदाः ॥२०४॥

सर्पनक्षत्र अश्लेषा, अर्यमा उत्तराफाल्गुनी ।

रत्नावल्याम्—

योगाश्च प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्य. शोभनः शुभः ।
सुकर्मा च धृतिर्वृद्धिर्ध्रुव. सिद्धिश्च हर्षणः ॥२०५॥
वरीयांश्च शिवः सिद्धो ब्रह्मा ऐन्द्रश्च षोडश ।इति।

ज्योति.शास्त्रे—

शुभानि करणान्याहुर्दीक्षायां च विशेषतः ।
शकुन्यादीनि विष्टिं च विशेषेण विवर्जयेत् ॥२०६॥ इति ।

अत्रादिपदेन किंस्तुघ्नचतुष्पदनागाना ग्रहणम् ।

संहितायाम्—

पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे स्वोदये तिथिवारयो; ।
गुरुशुक्रोदये शुद्धलग्ने द्वादशशोधिते ॥२०७॥

प्रवृद्धे वलसयुक्ते शुक्रे देवगुरौ तथा ।
शुभे विधुसमायोगे शुभवर्गे शुभोदये ॥२०८॥
इत्यादौ सर्वमन्त्राणां सङ्ग्रहः सर्वसौख्यकृत् ।

१. ख. शतभिषायां ।

ज्योतिःशास्त्रे—

नीचस्थे वक्रसंस्थेऽप्यतिचरणगते बालवृद्धोऽस्तगे वा,
सन्यासो देवयात्रा व्रतनियमविधि कर्णवेधश्च दीक्षा ।
मौञ्जीबन्धोऽङ्गनाना परिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा,
वर्ज्या सद्भिः प्रयत्नात्त्रिदशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते च ॥२०९॥

माधवटीकायां तन्त्रान्तरे—

अस्तङ्गते दैत्यगुरौ शिशौ च
वृद्धेऽथवा देवगुरौ तथैव ।
भवेन्न दीक्षाग्रहणे शुभाय
जीवातिचारे मलमाससञ्ज्ञे ॥२१०॥
जीवे हरौ दैत्यगुरौ ससूर्ये,
केतूद्गमे भूचलनादिदोषे ।
अकालवृष्टौ जलदेवदीक्षा,
जीवातवे नैव च साधकानाम् ॥२११॥

वाराहीतन्त्रे—

शुक्रोऽस्तो यदि वृद्धो वा गुर्वादित्यो भवेद्यदि ।
मेषवृश्चिककर्कसिंहेषु तदा दोषो न विद्यते ॥२१२॥

सारसङ्ग्रहे—

मन्त्राद्यारम्भण मेषे धनधान्यप्रद भवेत् ।
वृषे मरणमाप्नोति मिथुनेऽपत्यनाशनम् ॥२१३॥
कर्कटे सर्वसिद्धिः स्यात् सिंहे मेधाविनाशिनी ।
कन्या लक्ष्मीप्रदा नित्य तुलायां सर्वसिद्धय.[1] ॥२१४॥
वृश्चिके सर्वसिद्धिः स्यात् धनुर्ज्ञानविनाशनम् ।
मकर. पुत्रदः प्रोक्त. कुम्भो धनसमृद्धिदः ॥२१५॥[2]
मीनो दुःखप्रदो नित्यमेवं राशिफल प्रिये ।[3]

---

१. ख. मेव राशिफल प्रिये । २. ख. पद्यमिदं नास्ति ।
३. ख. पदद्वयस्थानेऽयमंशो दृश्यते—"केषुचित्पुस्तकेषु—
'मीनो दुःखप्रदो नित्यमेवं मासविधिक्रम ।'
इति पाठदर्शनात् सौर एव मासो दीक्षायामादेय इत्यवगम्यते ।"

तथा रुद्रयामले—

मीने सिंहे तथा चापे वृषे हानिः प्रजायते ।
मेषे सर्वसमृद्धिः स्यात् कन्या रत्नप्रदा भवेत् ॥२१६॥

तुलायां धनधान्यं स्याद् वृश्चिके सर्वसिद्धयः ।
मकरे पुत्रलाभः स्यात् कुम्भे पशुसमृद्धयः ॥२१७॥

मिथुने पशुनाशः स्यात् कर्कटो राज्यदो मतः ।
एवं लग्नफलं ज्ञात्वा मन्त्रं दद्याद्विशालधीः ॥२१८॥

वृषं मीनं तथा चापं सिंहलग्नं विवर्जितम् ।
सुखदं शुभदं नित्यं कन्याद्यं सर्वसिद्धिदम् ॥२१९॥ ॥इति ।

॥ अथ दीक्षालग्नात् स्थानविशेषेषु स्थितानां ग्रहाणां शुभाशुभफलानि ॥

सारसङ्ग्रहे—

त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः ।
दीक्षायां तु शुभाः सर्वे रन्ध्रस्थाः सर्वनाशकाः ॥२२०॥

आयः एकादशस्थानं, लग्नचतुर्थसप्तमदशमस्थानानां केन्द्रसंज्ञा, पञ्चमनवमयोः त्रिकोणसंज्ञा, सूर्यकुजशनिराहुकेतुपापयुतबुधाः क्षीणः शशी च पापाः, गुरुभृगुसुतपापरहितबुधाः पूर्णश्चन्द्रश्च शुभाः, रन्ध्रमष्टमं स्थानं, सर्वे नवग्रहा अपि ।

अथ चन्द्रफलम्—जन्मत्रिषट्सप्तैकादशपङ्क्तिगः शशी शुभफलप्रदो मतः नेत्रद्वादशवसुपञ्चवेदग्रहराशिगः शशी दुष्टः स्मृतः ।

शैवागमे—

अधोमुखे शुभे भे च चन्द्रशुद्धौ विशेषतः ।
कृष्णे तारावलं कुर्यात्स्वनामादिविचिन्तनम् ॥२२१॥

अधोमुखनक्षत्राणि गरुडपुराणे—

भरणीकृत्तिकाश्लेषामघामूलविशाखकाः ।
तिस्रः पूर्वास्तथा चैव अधोवक्त्राः प्रकीर्त्तिताः ॥२२२॥

शैवागमे—

धर्मदः प्रातःकालः स्यात्सगवो (गो) राज्यदः स्मृतः
मध्याह्ने सर्वसिद्धिः स्यात्सायाह्नो मध्यमो भवेत् ॥२२३॥

रजनी मन्त्रदाने तु निषिद्धा देशिकोत्तमैः ।
दिवा सर्वम्प्रकुर्वीत सिद्धिदं परमं स्मृतम् ॥२२४॥

क्रियाकाण्डशेखरे तिथ्यादि सर्वमुक्त्वोक्तम्—

इत्यादि निपुणं वीक्ष्य दीक्षा कुर्वीत देशिकः ।
मौमुक्षवी प्रत्यय न कालादिनियमः स्मृत ॥२२५॥

रत्नावल्यां च—

निन्द्यानि तानि सर्वाणि प्रशस्तानि विमुक्तये ।

॥ अथ दीक्षायामन्येऽपि कालविशेषाः ॥

पदार्थादर्शे—

शिष्यत्रिजन्मदिवसे सङ्क्रान्तौ विषुवेऽयने ।
अन्येषु पुण्ययोगेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो. ॥२२६॥
शिष्यानुकूले काले वा देहशुद्धि. शुभावहा ।
शशिदिनकरयोर्ग्रहणे जन्मनि शिष्यस्य मकरसङ्क्रान्तौ ।
करुणासमये च गुरोर्नक्षत्रादीष्यते न दीक्षायाम् ॥२२७॥

तथा—

शिष्यजन्मदिवसेषु सङ्क्रमे प्रग्रहे शशिदिनेशयोरपि ।
पुण्ययोगयुजि वा शुभे नृणा मन्त्रसिद्धिरभिधीयते परा ॥२२८॥

सिद्धान्तशेखरे—

विषुवेऽप्ययनद्वन्द्वे आषाढ्या दमनोत्सवे ।
दीक्षा कार्या तु कालेषु पवित्रारोपकर्मणि । २२९॥

रत्नसागरे

सत्तीर्थके विधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणोः ।
मन्त्रदीक्षाम्प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥२३०॥

ज्ञानार्णवे—

मन्त्राद्यारम्भणं कुर्याद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
ग्रहणाद्देवदेवेशि काल. सप्तदिनावधि ॥२३१॥

कुलमूलावतारे—

पवित्रपर्व देवेशि दामने वा शुभे दिने ।
कालचर्चा न कर्त्तव्या ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो. ॥२३२॥
पुण्यतीर्थे कुरुक्षेत्रे देवीपीठचतुष्टये ।
प्रयागे श्रीगिरौ काश्यां कलाकाल न शोधयेद् ॥२३३॥

योगिनीतन्त्रे—

ग्रहणे च महातीर्थे नास्ति कालस्य निर्णयः ।
गयाया भास्करक्षेत्रे विरजे चन्द्रपर्व्वते ॥२३४॥

महाविद्यासु कालादिविचारो नास्ति निश्चितम् ।

अत्र दीक्षाया रविचन्द्रोपरागयोर्मध्ये रव्युपरागस्य प्राशस्त्यम् ।

सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेपित भवेत् ॥२३५॥

सूर्यग्रहणकालेन समो नान्य. कदाचन ।
तत्र यद्यत्कृत सर्वमनन्तफलद भवेत् ॥२३६॥

न मासतिथिवारादिशोधन सूर्यपर्व्वणि ।
ददातीष्टं च गृह्णीयात्तस्मिन् काले गुरोर्नर ॥२३७॥

सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनाऽभ्यासेन वेगतः ।

इति चिन्तामणिकालिकोद्भवोक्ते. ।

चन्द्रग्रहे तु या दीक्षा या दीक्षा वनचारिणाम् ।
जनकस्य च या दीक्षा दारिद्र्यं सप्तजन्मसु ॥२३८॥

इति योगिनीतन्त्रे चन्द्रोपरागस्य निन्द्यत्वोक्तेः ।

तन्त्रसारे तु विशेष —

न कुर्याच्छाक्तिकीं दीक्षामुपरक्ते विभावसौ ।
न कुर्याद्वैष्णवी दीक्षा यदि चन्द्रमसो ग्रहः ॥२३९॥

तत्त्वसारसंहितायाम्—

तिथिं विनापि दीक्षायां विशिष्टावसरं शृणु ।
दुर्लभे सद्गुरूणा तु सकृत् सङ्ग उपस्थिते ॥२४०॥

तदनुज्ञा यदा लभ्या स दीक्षावसरो महान् ।
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये क्षेत्रे वा दिवसे निशि ॥२४१॥

आगच्छति गुरुर्देवाद्यदा दीक्षा तदा भवेत् ।इति।
यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः ॥२४२॥

न तिथिर्न व्रतं होमो न स्नान न जपक्रिया ।
दीक्षाया. कारण किन्तु स्वेच्छावाप्ते तु सद्गुरौ ॥२४३॥ इति ।

तन्त्रसारे—

शिष्यानाहूय गुरुणा कृपया दीयते यदा ।
तदा लग्नादिक किञ्चिन्न विचार्यं कथञ्चन ॥२४४॥

तदा सर्वे ग्रहा वारा नक्षत्राणि च राशयः ।
यस्मिन्नहनि सन्तुष्टो गुरुः सर्वे शुभावहाः ॥२४५॥

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मजगोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्ट-
विरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ
सप्तमस्तरङ्गः ॥७॥



अष्टमस्तरङ्गः

॥ अथ दीक्षाङ्गभूतमण्डपनिर्माणार्थं भूमिपरीक्षा ॥

तथा च महाकपिलपञ्चरात्रे —

तत्र भूमिं परीक्षेत वास्तुज्ञानविशारदः ।
स्फुटिता च सशल्या च वल्मीकारोहिणी तथा ॥१॥

दूरतः परिवर्ज्या भूः कर्त्तुरायुर्धनापहा ।
स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी ॥२॥

सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुतो भया ।
[1]ईशकोणप्लवा सा च कर्त्तुः श्रीदा सुनिश्चितम् ॥३॥

पूर्वप्लवा वृद्धिकरी वरदा तूत्तरप्लवा ।
विद्वेषं मरणं व्याधिं कुर्यादग्निप्लवा मही ॥४॥

या दक्षिणप्लवा भूमिर्नित्यं मृत्युभयप्रदा ।
गृहक्षयकरी सा च भूमिर्या नैऋतप्लवा ॥५॥

धनहानिकरी पृथ्वी कीर्तिता वरुणप्लवा ।
वातप्लवा तथा भूमिर्नित्यमुद्वेगकारिणी ॥६॥

श्वेता तु ब्राह्मणी पृथ्वी रक्ता वै क्षत्रिया स्मृता ।
वैश्या पीता तु विज्ञेया कृष्णा शूद्रा प्रकीर्तिता ॥७॥

ब्राह्मणी घृतगन्धा स्यात् क्षत्रिया रसगन्धकृत् ।
क्षारगन्धा भवेद्वैश्या शूद्रा विड्गन्धिनी क्षितिः ॥८॥

---

१. ख. ईशकोणस्तथा ।

मधुरा ब्राह्मणी भूमिः कषाया क्षत्रिया स्मृता ।
वैश्या तिक्ता च विज्ञेया शूद्रा स्यात् कटुका मही[1] ॥९॥

ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया स्याच्छराकुला ।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला ॥१०॥

सिता पीता तथा रक्ता कृष्णवर्णसमन्विता ।
स्थिरोदका दृढा स्निग्धा भूमि सर्वसुखावहा ॥११॥

तथा— ज्ञात्वा भूमिं परीक्षेत पूर्वोदक्प्रवणां शुभाम् ।
असङ्कटा तथा छन्नां[2] तृणैस्तोयपरिप्लुताम् ॥१२॥

सम्पूर्यमाणे खाते तु तथाधिकमृदं शुभाम् ।
श्वेतारुणा पीतकृष्णा विप्रादीनाम्प्रशस्यते ॥१३॥

प्रयोगसारे—

वितस्तिमात्रविस्तार निर्माय विवर भुवि ।
निःक्षिपेत्ता मृद तस्मिस्तासु शिष्टासु शोभनम् ॥१४॥

समासु मध्यमं विद्यान्न्यूनास्वधममुच्यते ।
परीक्ष्यैव प्रयत्नेन त्यक्त्वा भूमिं कनीयसीम् ॥१५॥

अङ्गारतुषकेशास्थिहीनं कृत्वा तु भूतलम् ।इति।

वासिष्ठ्याम्—

खन्यमाने यदा कुण्डे पाषाण प्राप्यते भुवि ।
तदापमृत्यवे चास्थिकेशाङ्गारैर्धनक्षयः ॥१६॥

भस्मनाऽग्निभयम्प्रोक्तं तुषैः प्रोक्ता दरिद्रता ।इति।

महाकपिलपञ्चरात्रे—

प्रासादारम्भकाले च गृहादौ च विशेषतः ।
शल्योद्धारस्तु कर्तव्यो यदीच्छेच्छुभमात्मनः ॥ १७॥

प्रासादारम्भकाले च यदङ्ग स्पृशते पुमान् ।
वास्तुदेशे दृढ तत्र शल्यं विद्याद्विचक्षणः ॥१८॥

कण्डूयति शिरः पुंसि शिर शल्य समुद्धरेत् ।
शल्य तत्रास्थि विज्ञेयं खन्यमाने करत्रये ॥१९॥

---

१. क. मरी । २. ख. छिन्नां ।

अग्निदाहश्च रोगश्च धनहानिश्च जायते ।
यत्नेनोत्पाटयेच्छल्य यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः ॥२०॥

बाहू कण्डूयमाने तु निर्दिशेल्लोहशृंखलाम् ।
हस्तद्वयेन सन्तिष्ठेल्लक्षण कथित तव ॥२१॥

स्वामिनो मरण विद्यात् प्रदेशगमन तथा ।
यत्नेनोत्पाटयेच्छल्य यदीच्छेद् भद्रमात्मनः ॥२२॥

ऊरू कण्डूयमाने तु कास्यशल्य विनिर्दिशेत् ।
हस्तैकेन च सन्तिष्ठेल्लक्षण कथित तव ॥२३॥

असती च भवेद् भार्या यशोहानिश्च जायते ।
यत्नेनोत्पाटयेच्छल्य यदीच्छेच्छुभमात्मनः ॥२४॥

हस्तौ कण्डूयमाने तु कङ्काल च विनिर्दिशेत् ।
त्रिहस्तेन च सन्तिष्ठेत् खन्यमाने न चान्यथा ॥२५॥

अग्निदाहश्च रोगश्च सशल्य मरण भवेत् ।
यत्नेनोत्पाटयेच्छल्य यदीच्छेद् [1]भद्रमात्मनः ॥२६॥

पृष्ठ कण्डूयमाने तु बाहुशल्य विनिर्दिशेत् ।
हस्तेनैकेन सन्तिष्ठेन्नात्र कार्या विचारणा ॥२७॥

स्वामिनाशो भवेत्तत्र भार्या वा जायतेऽसती ।
पादौ कण्डूयमाने तु हस्तशल्य विनिर्दिशेत् ॥२८॥

सार्द्धहस्तेन सन्तिष्ठेल्लक्षण कथित तव ।
गोनाशो राजदण्डश्च सस्यहानिश्च जायते ॥२९॥

यत्नेनोत्पाटयेच्छल्य यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः ।
कुक्षी कण्डूयमाने तु पाषाण तत्र निर्दिशेत् ॥३०॥

हस्तद्वितयमानेन लक्षण गदित तव ।
भुजङ्गदशस्तत्र स्यात्तस्माच्छल्य समुद्धरेत् ॥३१॥

जानु कण्डूयमाने तु तत्र भस्म विनिर्दिशेत् ।
हस्तद्वयेन सन्तिष्ठेल्लक्षण गदित तव ।३२॥

---

१. ख. शुभ०

अग्निदाहो मनस्तापः क्लेशदुःखभयानि च ।
करोत्येवंविध कर्म तस्मात्तद्वै[1] समुद्धरेत् ॥३३॥

गोशृङ्गः पीतमण्डूकः शङ्खः शुक्तिश्च कच्छप. ।
शम्बूकश्च प्रशस्ताः स्युर्यश्चान्या रत्नजातय' ॥३४॥

अङ्गार वै तुषं केशमस्थिगत्यं विचारयेत् ।
खन्यमाने जल यावच्छल्यदोषो विनश्यति ॥३५॥

दूरनीचस्थित वारि खनितु नैव शक्यते ।
पञ्चहस्त प्रखातव्य शल्यदोषोपशान्तये ॥३६॥

शल्योद्धार ततः कृत्वा पूरयेत् सुसम यथा । इति ।

हयशीर्षपञ्चरात्रेऽपि—

प्रासादे दोषद शल्य भवेद्यावज्जलान्तिकम् ।
तस्मात् प्रासादिकी भूमिः शोध्या यावज्जलान्तिकम् ॥३७॥

शिलान्त कर्करान्त वा यावद्वा शुद्धतां व्रजेत् । इति ।

॥ अथ भूमेः समीकरणम् ॥

शिल्पशास्त्रे—

कीलेनैकीकृते मूले पृथक् सूक्ष्मसमाग्रयोः ।
दण्डयोरग्रनैकट्ये न्यस्य तन्मध्यचिह्नत. ॥३८॥

कीलादिना योजनीयो दण्ड. समतया द्वयोः ।
मूलदेशे लम्बसूत्रमस्पृशद् भारवद्भुवम् ॥३९॥

भूस्थे ग्रयुग्मे मध्याङ्कात्तिर्यग्दण्डगतात्पुनः
स्खलेत् तत्पूरयेदन्य निम्नयेद्वापि युक्तित. ॥४०॥

अङ्के यावत् सूत्रमेति भूरेव समता व्रजेत् ।

अयमर्थः—समस्थौल्यदीर्घऋज्वोः कीलेन प्रोतमूलयोर्दण्डयोरग्रनिकटे तादृश तिर्यग्दण्ड तदर्धदीर्घं कीलेन योजयित्वा, तन्मध्ये चिह्न कृत्वा, दण्डत्रयेण दीर्घत्रिकोणाकार विधाय, दीर्घदण्डयोर्मूलाल्लम्बमान सूत्रमग्रे लघुपाषाणादिबद्ध तिर्यग्दण्डस्य चिह्नोपरि[2] भूमि यथा न स्पृशति तथा विधाय[3], [4]भूमिस्पृष्टाग्रयो-

१. ख. तस्मात्त वै । २. ख. मध्यचिह्नोपरि । ३. ख. निधाय ।
४. ख भूमि स्पृष्टाग्रयो० ।

स्तयो र्मूल धृत्वा, शनैराकृष्टे तिर्यग्दण्डमध्याङ्काद्यत्र सूत्र चलति तत्र निम्ना भूस्ता पूरयेत् । अन्यत्र खनित्वा वा यथा मध्यचिह्ने सूत्रमेति तथा सर्वत्र कुर्यादिति शिल्पशास्त्रोक्तप्रकारेण भूमि समीकृत्य तत्र **प्राचीसाधन** कुर्यात् । तत्प्रकारस्तु—

दिव्यसारस्वततन्त्रे—

निर्मले दिवसे वृक्षप्रासादादिविवर्जिते ।
स्थाने समतले श्लक्ष्णे कृत्वा हसपद सुधीः ॥४१॥

तदवष्टम्भत कुर्याद् द्वादशाङ्गुलमानतः ।
वृत्त तु परितो भ्रान्त्या तन्मध्ये स्थापयेद् बुधः ॥४२॥

सूच्यग्रसरल शङ्कु वर्तुल द्वादशाङ्गुलम् ।
षडङ्गुलपरीणाहमूल शिल्पिवरेण तु ॥४३॥

रचित यत्नतस्तस्मिन् वृत्ते पूर्वापराह्णयोः ।
शङ्क्वग्रच्छायासम्पातस्थानयोश्चिह्नयुग्मकम् ॥४४॥

कृत्वा चिह्नद्वयप्रापि सूत्र प्राक्प्रत्यगायतम् ।
दत्वा वृत्तायतार्द्धेन सूत्रेणेच्छाधिकेन च ॥४५॥

पूर्वपश्चिमयोर्वृत्तद्वय श्लिष्ट परस्परम् ।
विधाय च तयो सन्धिद्वयप्रापि प्रसारयेत् ॥४६॥

मध्यचिह्नस्पृष्टमध्य तत्सूत्र दक्षिणोत्तरम ।
एतत् सार्द्धांशमानेन कृत्वा कोणेषु लाञ्छनम् ॥४७॥

तेषु सूत्राष्टकन्यासाच्चतुरश्र सम भवेत् ।

अथैतद्रचनाप्रकार—तत्र मेघाद्यनावृतसूर्ये निर्मलनभोमण्डले दिवसे वृक्षप्रासादाद्यनावृते भूप्रदेशे समे स्थाने क्वचिद् विन्दु कृत्वा, तदवष्टम्भतः प्रतिदिश द्वादशाङ्गुलमानेन वृत्त निष्पाद्य,तत्र षडङ्गुलमानपरिणाहमूलमुत्तरोत्तरपरिणाहापचयेन सूचीमात्रकृताग्रपरिणाहमृज्वाकृति द्वादशाङ्गुलोच्छ्रायोपेत वृत्ताकार शिल्पिवरेण निर्मित शङ्कु वृत्तमध्यस्थविन्दुमध्ये शङ्कुमूलपरिणाहमध्य यथा भवति तथा सम्थाप्य, तच्छङ्कुछायाग्रस्य पूर्वाह्णे तद्वृत्तरेखापश्चिमभागे यत्र सम्पातः तत्र चिह्न कृत्वा, अपराह्णेऽपि शङ्कुछायाग्रस्य तद्वृत्तरेखापूर्वभागे यत्र सम्पातो भवति तत्र च चिह्न विधाय, तच्चिह्नद्वयप्रापि सूत्र विधाय, पूर्वपश्चिम परिकल्प्य, तच्चिह्नद्वयावष्टम्भेन तच्चिह्नान्तरालमानस्य स्वेष्टा-

विकेनार्द्धमानेनान्योन्यसमेन किञ्चिदन्योन्यसंश्लिष्टं पूर्वापर वृत्तद्वयं विधाय, वृत्तरेखादक्षिणोत्तरसन्धिद्वयप्रापि प्राक्पश्चिमसूत्रमध्यगतया तिर्यग्रूपेण यत्सूत्रं तद्दक्षिणोत्तर परिकल्प्य, पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरसूत्रद्वयाग्रचतुष्कसम्पाताद् वक्ष्यमाणाद् वक्ष्यमाणमानेन तुल्यमुपकल्पितसूत्राग्रैस्तैस्तेषां मण्डलकुण्डादीनां प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोत्तरात्मकदिक्चतुष्टय परिकल्पयेत् इति। अत्र स्थूलदृष्ट्या तन्त्रराजाद्युक्तप्रकारेण प्राचीसाधनविधि प्रदर्शितः। सूक्ष्मप्रकारस्तु सारसङ्ग्रहे—सुसमे भूतले कृत्वेत्यारभ्योक्तप्रकारेण पूर्वदिनकृत्यमुक्त्वा—

दिनान्तरेऽपि देवेशि प्राग्वच्चिह्नद्वय सुधी.।
कृत्वा वृत्ते तु यत्र स्याच्छाया या परमेश्वरि ॥४८॥
प्रवेशो निर्गमश्चैव तत्र पूर्वदिने यदा।

प्रविष्टा निर्गता छाया यदा तन्मध्यनाडिकाः ॥४९॥
छायादिना तु विज्ञाय छायापगमचिह्नयोः।

अन्तर दिनयोरिष्टैश्चतुराद्यैर्विभागकै. ॥५०॥
विभज्य तत्र चिह्नानि कृत्वा ताभिः सुरेश्वरि।

नाडीभिः कल्पिता भागा गुणनीयाः प्रयत्नतः ॥५१॥
षष्ट्याहत तु लब्धांशै. पूर्वद्युर्यतकृत भवेत्।

प्राचीसूत्रं पूर्वभागे उत्तरे उत्तरायणे ॥५२॥
अयने दक्षिणे चैव दक्षिणस्या दिशि ध्रुवम्।

चाल्यते चेत् स्फुटा सा स्यात् प्राची तु परमेश्वरि ॥५३॥ इति।

॥ रात्रौ प्राचीसाधनम् ॥ यथा—

पदार्थादर्शे—

कृत्तिका श्रवण पुष्यश्चित्रास्वात्योर्यदन्तरम्।
तत्प्राच्या दिशो रूप युगमात्रोदितम्पुर. ॥५४॥

त्रिकाण्डमण्डनेऽपि—

श्रवणस्योदये प्राची कृत्तिकायास्तथोदये।
चित्रास्वात्यन्तरे प्राची न प्राची चन्द्रसूर्ययोः ॥५५॥

इति प्राचीसाधनं विधाय—

व्यासद्विगुणरज्ज्वन्तपाशौ कृत्वाङ्कयेदिमाम्।
व्यासार्द्धमाने शङ्क्वर्थं सार्द्धेऽस्मिन्कर्षणाय च ॥५६॥

प्राच्यन्तशङ्क्वोस्तत्पाशौ कृत्वा चाकर्षकर्षणे ।
शङ्क्वङ्के वा छ्रो(श्रो)णिरेवमुदग्व्यत्यस्य चांशकौ ॥५७॥

इति शिल्पशास्त्रोक्तरीत्या [1]मण्डपक्षेत्रमुदिष्टमानादधिकविस्तारायाम समचतुरस्रं कल्पयेत् ।

अस्यार्थ.—कुण्डमण्डपादेर्व्यासो यावानिष्टस्तावद्द्विगुणरज्जुमुभयतः पाश कृत्वा, तामेकत. पाशाद् व्यासार्द्धमात्रे शङ्क्वर्थं चिह्नयेत् । ततः शङ्क्वङ्कादग्रतो व्यासार्द्धमानेन चिह्नाय कर्षणात कुण्डमण्डपादौ प्राचीसूत्रं प्रमाणेन दत्वा, तदन्तयोः शङ्कू निखन्य, तयोस्तद्रज्जुपाशौ तथा कुर्याद् यथा व्यासार्द्धाङ्को यत. कृतः स पाशः प्रतीच्या स्यात् । ततः कर्षचिह्नदक्षिणतः आकृष्य, व्यासार्द्धचिह्ने दक्षिणश्रोणिशङ्कु दत्वा, तस्यैवमुत्तरदिक्श्रोण्यां च शङ्कु दद्यात् । ततः पाशौ व्यत्यस्यैवमशौ साध्यावित्येव समचतुरस्रं क्षेत्र कृत्वा तत्र **मण्डपनिर्माणं** कुर्यात् । तत्र—

मन्त्रमुक्तावल्याम्—

अथ मण्डपनिर्माण ब्रूमहे ब्रह्मणोदितम् ।
श्रेष्ठमध्यमहीनैस्तु मानैस्तच्च त्रिधा मतम् ॥५८॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

राज्ञा होमाभिषेकेषु दीक्षादानव्रतादिषु ।
भानोर्गत्या दिशो ज्ञात्वा पुण्याह वाचयेत् सुधीः ॥५९॥

तत. पञ्चनिनादेन मण्डप रचयेच्छुभम् ।
ज्येष्ठमध्याधमत्वेन तन्मान त्रिविध मतम् ॥६०॥

षोडशाष्टादशमितैर्हस्तैर्मानमिहोत्तमम् ।
हस्तैर्विशतिभि. केचिन्मानमुत्तममूचिरे ॥६१॥

मध्यम द्वादशकरैश्चतुर्दशकरैर्मतम् ।
अधम दशभिर्हस्तैर्मितमाहुर्मनीषिणः ॥६२॥

केचित्तु नवभिस्तद्वत् सप्तभिर्वाथ पञ्चभिः ।
हस्तैर्मित वदन्त्येव विस्तारायामसंयुतम् ॥६३॥

प्रतिष्ठासारसङ्ग्रहे तु—

स्वल्पो द्वादशहस्तोऽथ द्विद्विवृद्ध्या तत. क्रमात् ।

इत्येतेन चतुर्दशहस्तस्य मध्यमतोक्ता षोडशहस्तस्योत्तमता च ।

---

१. क मण्डपक्षेत्र० ।

सिद्धान्तशेखरे—

············मण्डपोऽर्ककरोऽपि वा ।
कर्त्तव्या मण्डपाश्चान्ये द्विद्विहस्तप्रवृद्धितः ॥६४॥

सोमशम्भुनाऽप्युक्तम्—

············मण्डपोर्ककरोऽथवा— ।
द्विहस्तोत्तरया वृद्ध्या शेषाः स्युर्मण्डपाः शुभाः ॥६५॥

सिद्धान्तशेखरे—

चतुरस्रं चतुर्द्वारम्········· । इति
स्थलादर्काङगुलोच्छ्राय मण्डपस्थलमीरितम् ॥६६॥

सारसङग्रहे—

स्तम्भैः षोडशभिर्युक्तं चतुर्द्वार सुशोभनम् ।
दिक्षु द्वाराणि चत्वारि साष्टाङ्गुलकरद्वयात् ॥६७॥
सार्ध्यङ्गुलकरद्वन्द्वाद्विदधीत करद्वयात् ।
ततो मण्डपसूत्र तु त्रिगुणम्परिकल्पयेत् ॥६८॥
पूर्वादिषु क्रमात्तस्य मध्यभागस्तु वेदिका ।
इष्टकाभिर्मृदा वा सा कार्या दर्पणसन्निभा ॥६९॥

वसिष्ठसंहितायाम्—

हस्तोन्नतां च विस्तीर्णां चतुर्हस्तैः समन्ततः ।

क्रियासारे—

त्रिभाग मण्डप कृत्वा मध्यभागन्तु वेदिका ।
हस्तमानं तदुत्सेध चतुरश्र सम यथा ॥७०॥
पक्वाभिर्वाऽप्यपक्वाभिरिष्टिकाभिर्दृढं यथा ।
कर्त्तव्या वेदिका श्रेष्ठा तदभावे मृदाऽपि वा ॥७१॥
अवक्रा पार्श्वसुस्निग्धा दर्पणोदरसन्निभा ।
वक्रपार्श्वा विलग्नमध्या परपा दृगशोभना ॥७२॥
मानहीनाधिका या सा कर्त्तुः कर्मविनाशिनी ।इति।

सिद्धान्तशेखरे—

मध्ये स्तम्भचतुष्क स्यात्तन्मध्ये वेदिका मता ॥७३॥

अन्यत्रापि—

वेदिकोणेषु विन्यस्येत्स्तम्भान्वेदस्वरूपकान् ।

आग्नेयादिक्रमेणैवेति तेन बहिर्द्वादशस्तम्भस्थापनमप्याग्नेयादिक्रमेणेति ज्ञेयम् । तदुक्तम्—

स्तम्भोच्छ्राये शिलान्यासे सूत्रयोजनकीलके ।
खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरः ॥७४॥ इति ।

सारसङ्ग्रहे—

वेदिकोणेषु विन्यस्या. स्तम्भा वेदस्वरूपकाः ।
ते चोत्तमे तदर्द्धोच्चा मध्यमाधमयो पुनः ॥७५॥

अष्टहस्तोन्नतिभृतस्तेऽतो द्वादश शोभनाः ।
ऋजव पञ्चहस्तास्ते सशिखास्तु समन्ततः ॥७६॥

चतुःकोणेषु चत्वारश्चाष्टौ ते सूत्रकोटिषु
समान्तराला. सर्वे ते स्थाप्या. षोडश देशिकैः ॥७७॥

पञ्चरात्रे—

सारदारुभवास्तम्भान् कुर्यादृजून्समानिति ।

क्रियासारे तु विशेष'—

यज्ञीयवृक्षो वेणुर्वा क्रमुक. स्तम्भकर्मणि ।
अन्ये विशुद्धवृक्षा वा भवेयुर्नान्यभूरुहाः ॥७८॥ इति ।

सारसङ्ग्रहे—

पञ्चमाशोन्मितास्ताश्च निखनेद् भुवि देशिकः ।
मध्यस्तम्भचतुष्काग्रादेकीभूताग्रकम्पुनः ॥७९॥

कृत्वा काष्ठचतुष्क तु तदग्रे कलश शुभम् ।
शोभितं कमलेनाथ मुखस्थेन सुदारुजम् ॥८०॥

निर्मित शिल्पिभि सम्यक् स्थापयेद्देशिकोत्तमः ।
आच्छादयेत्ततो वांशै. कटैः केरदलैश्च तम् ॥८१॥

हयशीर्षपञ्चरात्रे—

मण्डप मण्डयेदार्द्रशाखाभिस्तु समन्ततः ।

यत्तु क्रियासारे—'भित्तिं च परितः कृत्वे'ति, तत्तु स्थिरप्रतिमादिमण्डपेष्विति ज्ञेयम् । 'नियमोऽय समाख्यात स्थिरलिङ्गक्रियासु चे' ति तत्रैवोक्तेः ।

मन्त्रमुक्तावल्याम्—

दिक्षु द्वाराणि चत्वारि विदध्यात्पञ्चमाशतः ।

क्रियासारेऽपि—

...............दिक्षु द्वाराणि मध्यतः ।
तोरणानि च तेष्वेव द्वारेषु स्थापयेत् सुधीः ॥८२॥

पञ्चरात्रे—

कनीयसि स्या द्विकरश्चतुरङ्गुलवृद्धित ।
मध्यमोत्तमयोर्द्वार.........................॥८३॥ इति ।

सारसङ्ग्रहे—

मण्डपद्वारबाह्ये च युग्म युग्म दिशा क्रमात् ।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटोत्थ तोरण न्यसेत् ॥८४॥

सप्तषट्पञ्चककर निखनेद् भुवि पूर्ववत् ।
विशालता च तस्याथ दशभिस्त्वङ्गुलैर्मता ॥८५॥

पञ्चाङ्गुलमित स्थौल्य विषम चतुरश्रकम् ।
मध्यमभागे तोरणयोस्तिर्यक्काष्ठम्प्रविन्यसेत् ॥८६॥

सार्द्धहस्तद्वयद्वपादहस्तयुग्घस्तयुग्मतः ।
अग्निमीलेतिमन्त्रेण विन्यसेत् पूर्वतोरणम् ॥८७॥

इषेत्वेत्यादिमन्त्रेण दक्षिण तोरण न्यसेत् ।
अग्न आयेतिमन्त्रेण पश्चिमस्य निवेशनम् ॥८८॥
शन्नो देवीति मन्त्रेण दद्यादुत्तरतोरणम् ।

महाक पिलपञ्चरात्रेऽपि—

देवास्तोरणरूपेण सस्थिता यज्ञमण्डपे ।
विघ्नविध्वसनार्थं च रक्षार्थं त्वधरस्य च ॥८९॥

न्यसेन् न्यग्रोधमैन्द्र्या ये याम्या चौदुम्बर तथा ।
वारुण्या पिप्पल चैव कौबेर्यां प्लक्षक न्यसेत् ॥९०॥

सुशोभन तु पूर्वस्यामृग्वेदादिसुमन्त्रितम् ।
इषेत्वेति च मन्त्रेण सुभद्राख्य तु दक्षिणे ॥९१॥

सुकर्माख्य सु वारुण्या सामवेदादिकेन तु ।
शन्नो देवीति मन्त्रेण सुहोत्र तूत्तरे न्यसेत् ॥९२॥

इद च तोरणस्तम्भनिवेशन मण्डपाद् बहिर्हस्तमानेनेति ज्ञेयम् । तदुक्तम्—

मण्डपाद्द्वारबाह्ये च वेदिमानेन दिक्क्रमात् ।
प्लाक्षमौदुम्बराश्वत्थवटोत्थ तोरण न्यसेत् ॥९३॥ इति ।

सिद्धान्तशेखरे विशेष.—

एकमेषामलाभे स्यात्तदभावे शमीद्रुम. ।
जम्बू खदिरसारश्च तालो वा तोरणे स्मृता ॥९४॥ इति ।

क्रियासारे तु—

अवक्राः सत्वचस्सार्द्रा दण्डाः स्युस्तोरणे शुभाः ।
तोरण घटयित्वैवमूर्द्ध्व शूलत्रय न्यसेत् ॥९५॥

पिङ्गलामते—

शूलेन चिह्निताः कुर्याद् द्वारशाखास्तु मस्तके ।
शूले नवाङ्गुल दैर्घ्यं तुरीयांशेन विस्तृति. ॥९६॥

ऋजु वै मध्यशृङ्ग स्यात् किञ्चिद् वक्र च पार्श्वयोः ।
हीने चैव समाख्यात द्व्यङ्गुल रोपयेत्तथा ॥९७॥

शेषाणां द्व्यंगुला वृद्धिर्वेगश्चाङ्गुलवृद्धितः ।

हीने कनिष्ठमण्डपे, शषाणां मध्यमोत्तमाना, वेग. प्रवेशः ।

वास्तुशास्त्रे—

मस्तके द्वादशांशेन शङ्खचक्रगदाम्बुजम् ।
प्रागादिक्रमयोगेन न्यसेत्तेषा स्वदारुजम् ॥९८॥

द्वादशाश तिर्य्यक्फलकस्य, स्वदारुज तत्तोरणदारुसजातीयकाष्ठसम्भवम्, तेन कनिष्ठमण्डपे चतुरङ्गुलोच्च, मध्यमे सार्द्धचतुरङ्गुलमुत्तमे पञ्चाङ्गुलमिति ।

केचित्तु—

तत्र हस्तोन्मिताः कीलाः सस्थाप्या वैष्णवे तथा ।
शङ्खचक्रगदापद्मैर्लाञ्छिता शूलसन्निभाः ॥९९॥

तत्र तिर्यक्फलकेषु ततः प्रतितोरणमेकैक. कलश स्थाप्यः, प्रतिकोण चैकैक । तदुक्तम्—

गन्धपुष्पाम्बरोपेतान् कुम्भांस्तेषु विनि क्षिपेत् ।
ध्रुव धरा वावपति च विघ्नेश तेषु पूजयेत् ॥१००॥

मण्डपस्य तु कोणस्थकलशेषु क्रमादमी ।
अमृतो दुर्जयश्चैव सिद्धार्थो मङ्गलस्तथा ॥१०१॥
[1]पूजा द्वारस्थकुम्भेषु शक्राद्यास्तन्मनूत्तमैः । इति ।

---

१. ख० पूज्या ।

अन्यत्रापि—

मण्डपे कलशौ द्वौ द्वौ द्वारे द्वारे निवेशयेत् ।
गालितोदकसम्पूर्णौ चाम्रपल्लवशोभितौ ॥१०२॥

सारसङ्ग्रहे—

ऊर्ध्वे ध्वज च बध्नीयात् घण्टाचामरभूषितम् ।
पञ्चहस्तो ध्वजः प्रोक्तो दण्डस्तु दशहस्तकः ॥१०३॥

ततस्तु लोकपालाना पताका बाहुसम्मिताः ।
द्वादशाङ्गुलविस्तारास्तत्तन्मूर्त्या च लाञ्छिताः ॥१०४॥

पीतरक्तश्यामधूम्रश्वेतधूम्रासितार्जुना' ।
आयुधाङ्का पताकाः स्यु. पुष्पगन्धसमन्विताः ॥१०५॥

यथायोग्य दण्डयुतास्तत्तन्मन्त्रेण ता न्यसेत् ।

प्रतिष्ठासारसङ्ग्रहेऽपि—

पीतरक्तादिवर्णाश्च पञ्चहस्ता ध्वजाः स्मृताः ।
द्विपञ्चहस्तैर्दण्डैस्ते वंशजैः सयुता मताः ॥१०६॥

द्विपञ्चहस्तै. दशहस्तैः । अन्यत्रापि—

पञ्चहस्ता ध्वजा कार्या वैपुल्येन[1] द्विहस्तका. ।
दण्डश्च दशहस्त. स्यादष्टदिक्षु च ता न्यसेत ॥१०७॥

क्रियासारे तु विशेषः—

ध्वजानां लक्षणं सम्यगुच्यते तु यथातथम् ।
मण्डपस्य बहिर्दण्डैर्दशहस्तायतै सह ॥१०८॥

पूर्वाद्यष्टहरित्स्वष्टौ ध्वजान्सस्थापयेद् बुधः ।
तेषा हस्तद्वय व्यासो मध्य च करसम्मितम् ॥१०९॥

व्यासार्द्धं शिखरं पुच्छ हस्तत्रितयमानकम् ।
मत्स्याभ शिखर पुच्छशिखर तु त्रिकोणकम् ॥११०॥

तयोर्मध्ये चतु.कोण ध्यजानेवम्प्रकल्पयेत् ।
मातङ्गवस्तमहिषसिहमत्स्यैणवाजिन.[2]॥१११॥

वृषभ च यथान्यायं ध्वजमध्ये क्रमाल्लिखेत् ।
अथवा दिग्गजानष्टावैरावतपुर.सरान् ॥११२॥

---

१ ख,० सिंहमत्स्यौन० ।   २. ख० वैपुलेन ।

ध्वजेषु विलिखेदुक्तधातुभिश्च सलक्षणम् ।
एवं ध्वजानां कथितं लक्षणं ते शुभावहम् ॥११३॥ इति।

अष्टौ दिग्गजास्तु—

ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥११४॥

ध्वजानामावश्यकत्वमुक्तं—

हयशीर्षपञ्चरात्रे—

अतः परं प्रवक्ष्यामि ध्वजारोपणमुत्तमम् ।
यत्कृत्वा पुरुषः सम्यक् समस्तफलमाप्नुयात् ॥११५॥
यातुधाना गुह्यकाश्च कूष्माण्डा खेचरास्तथा ।
चिन्तयन्त्यसुरश्रेष्ठा ध्वजहीनं सुरालयम् ॥११६॥
ध्वजेन रहिते ब्रह्मन्मण्डपे तु वृथा भवेत् ।
पूजाहोमादिकं सर्वं जपाद्यं यत्कृतं बुधैः ॥११७॥
रक्षणेन विना यद्वत् क्षेत्रं नश्यति क्षेत्रिणः ।
ध्वजं विना देवगृहं तथा नश्येत सर्वथा ॥११८॥
विष्णुपारिषदाः क्रूराः कूष्माण्डाद्यास्तु ये स्मृताः ।
पूजादिकं तु गृह्णन्ति देवं दृष्ट्वा न रक्षितम् ॥११९॥
दृष्ट्वा ध्वजास्तु देवस्य मण्डपे ज्वलनप्रभान् ।
नश्यन्ति सर्वे ते चार्करश्मिक्षिप्तं तमो यथा॥१२०॥

सारसङ्ग्रहे—

प्रतिकुण्डं पताकास्तु प्रोक्ता शास्त्रार्थकोविदैः ।
सप्तहस्ताः पताकाः स्युः सप्तमांशेन विस्तृताः ॥१२१॥
लोकपालानुवर्णेन नवमी तुहिनप्रभा । इति ।
चन्द्रमण्डलगौरेण वितानेन विभूषितम् ॥
दुकूलवेष्टितस्तम्भं नानादीपाद्यलङ्कृतम् ॥१२२॥
आम्रपल्लवमालाभिः शोभितं द्वारमुत्तमम् ॥
वेष्टितं दर्भरज्ज्वा च विदध्यान्मण्डपं शुभम् ॥१२३॥इति॥

सदुक्तं सिद्धान्तशेखरे—

चूतपल्लवमालाढ्यं वितानैरुपशोभितम् ।
विचित्रवस्त्रसञ्छन्नं तुलास्तम्भविभूषितम् ॥१२४॥

सफलैः कदलीस्तम्भैः क्रमुकैर्नालिकेरजैः ।
फलैर्नानाविधैर्भोज्यैर्दर्पणैश्चामरैरपि ॥१२५॥
भूषित मण्डप कुर्याद्रक्तपुष्पसमुज्ज्वलम् ।इति।

हयशीर्षपञ्चरात्रेऽपि—

दर्पणैश्चामरैर्घण्टैः स्तम्भान् वस्त्रैर्विभूषयेत् ।
कलशैर्घटिकाभिश्च साधारैः कर्करैस्तथा ॥१२६॥ इति ।

मण्डपान्यथाभावे दोष उक्त —

क्रियासारे—

अनुक्तसाधनैः क्लृप्तो यदि वा कुटिलाकृतिः ।
मानाधिकोऽथवा न्यूनो मण्डप. कर्तृ नाशनः ॥१२७॥

आख्यातसाधनै. क्लृप्त. शोभन. सममानकः ।
मनोज्ञो मण्डपो योऽसौ कर्मकर्तुः शुभावहम् ॥१२८॥ इति ।

॥ अथैतन्निर्माणप्रकारः ॥

तत्र प्रोक्तविधिना समीकृते भूतले पञ्चवाद्यघोषपुरस्सर ब्राह्मणैः स्वस्ति वाचयित्वा, यथोद्दिष्टमानहस्तविस्तार समचतुरस्र कोणचतुष्टयनिखातशङ्कुचतुष्टयलग्नरज्जुचतुष्टयं विधाय, पूर्वापरायतं दक्षिणोत्तरायतं च मध्यसूत्र दूरीकृत्य, तच्चतुरस्रक्षेत्र पुनर्नवधा विभज्य, परितः कोणचतुष्टये स्तम्भचतुष्टय दिक्चतुष्टय गतपूर्वापरायतदक्षिणोत्तरायतसूत्रचतुष्ककोटयष्टकगतस्तम्भाष्टकमिति सम्भूय, द्वादशस्तम्भान्नातिस्थूलकृशानवक्रानव्रणानेकजातीयान्सुवृत्तान् पञ्चहस्तसमुच्छ्रायान् खातप्रविष्टस्वस्वपञ्चमभागान् प्रमाणाद्बहिरर्द्ध स्वस्वस्यौल्यतृतीयांशस्थूलवितस्त्युन्नतशिखायुक्तान्, मध्यविभक्तेः कोणचतुष्टये-स्तम्भचतुष्टय पूर्वस्तम्भसजातीयं पूर्वतः किंचित्स्थूलमुत्तममण्डपे तन्मानस्यार्द्ध मानोच्चमन्यमण्डपेष्वष्टहस्तसमुन्नत[1] पूर्ववत्सशिखं पञ्चमांशेन प्रविष्टभूतलमिति सम्भूय, षोडशस्तम्भान्निखाय, तेषामुपरि समजातीयानि ऋजून्यव्रणानि शिखाप्रवेशयोग्यवेधयुक्तकोटिद्वयवन्ति तिर्यक्काष्ठानि शिल्पिभिः परिकल्पितानि द्वादशस्तम्भाग्रेषु मध्यमस्तम्भचतुष्टयाग्रेषु च चतुरस्राकारेण समारोप्य, मध्यस्तम्भचतुष्टयशिखाग्रप्रविष्टमूल वेधयुक्तमेकीकृताग्रचतुष्टयनिविष्टसजातीयकाष्ठकलशकमलाकृतिशोभिताग्र दिग्विदिक्स्थद्वादशस्तम्भशिखाग्रप्रोतमूलमध्यस्तम्भचतुष्टयाग्र स्पृष्टाग्रमध्यतिर्यक्काष्ठ-

१. ख. मण्डपेष्वघृहस्त० ।

चतुष्टयमध्यगताग्र ऋज्वाकृति यथायोग्यदीर्घस्थौल्ययुतप्रसारितद्वादशकाष्ठयुनमन्यै-रपि काष्ठैर्यथायोग्य दृढीकृत नारिकेलदलैर्वंशकटैर्वा सम्यगाच्छादित तैरेव निःशेषविहितकोणचतुष्टय चतुर्दिक्षूत्तममध्यकनिष्ठेषु साष्टाङ्गुलहस्तद्वयचतुरङ्गुल-'हस्तद्वय'[1] द्विहस्तविस्तारयुक्तसशाखद्वारचतुष्टयोपेत मण्डप विरच्य,[2] मण्डपस्य पूर्वद्वाराद्बहिर्हस्तमात्र परित्यज्य प्रशस्तवृक्षेणोत्तममध्यमकनिष्ठेषु सप्तषट्पञ्च-हस्तोच्छ्रित दशाङ्गुलविस्तृत पञ्चाङ्गुलस्थूल विषमचतुरस्र प्रमाणातिरिक्तवि-तस्त्युन्नतशिख द्वारस्योभयपार्श्वयोरुत्तममध्यमकनिष्ठेषु सार्द्धहस्तद्वयसपादहस्तद्व-यान्तराल यथापूर्व पञ्चमांशेन [3]प्रविष्टभूतल फलकद्वय,—

अग्निमीळे पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विज होतार रत्नधातमम् ।

इति मन्त्रेण निखाय, तत्सजातीयकाष्ठेन समानविस्तारस्थूल विषमचतुरस्र-कोटिद्वयेऽपि शिखाप्रवेशयोग्यवेधयुत तिर्यक्फलक समारोप्य, दर्भमाला च बध्नीयात् । एव दक्षिणद्वारि औदुम्बरतरुमय तोरणम्

इषे त्वोर्जे त्वावायवस्थोपन्यवस्थदेवोव: ।
सविता प्रार्प्यंयतु श्रेष्ठतमायकर्मण: ।।

इति मन्त्रेण न्यसेत् । तत: पश्चिमद्वारे लक्षमय तोरण प्राग्वन्निर्म्मितम्

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
निहोता सत्सि बर्हिषि ।।

इति मन्त्रेण न्यसेत् । तत: उत्तरद्वारे वटवृक्षमय तोरण प्राग्वन्निर्मितं

शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
श योरभिस्रवन्तु न: ।

इति मन्त्रेण न्यसेत् ।

ततस्तेषामुपरि गतस्तत्तत्तिर्यक्फलकेषु मध्यत: सुषिर विधाय, तेषु तोरण-सजातीयकाष्ठेन निर्मितमुत्तममध्यमकनिष्ठेषु त्रयोदशैकादशनवाङ्गुलमात्रदैर्घ्यं तत्तच्चतुर्थांशविस्तार शैवे—त्रिशूलाकार, वैष्णवे—तोरणोपरिगततिर्यक्फलकस्य द्वादशांशमात्रदीर्घं प्रागादिक्रमेण शङ्खचक्रगदापद्मलाञ्छित प्रतितोरणमेकैकं कीलमारोपयेत् ।

१. '—' चिह्नितोऽशो नास्ति ख पुस्तके । २. ख० विरचय्य । ३. ख० प्रतिष्टभूतलं ।

ततो मण्डपाग्रे दशहस्तदैर्घ्यवंशदण्डाविलम्बित[1] हस्तमात्रविस्तृत पञ्च-हस्तदैर्घ्यं दातव्यमन्त्रदैवतवाहनमूर्त्यङ्कित घण्टादिभूपिताग्र सुश्वेत तत्तद्दैवत-वर्णानुरूपवर्णं वा ध्वजमारोप्य, दशदिक्षु बाहुमात्रदीर्घा यथायोग्यमानदण्डा-वलम्बितास्तल्लोकपालवर्णानुरूपवर्णास्तल्लोकपालवाहनमूर्त्यङ्किता दशाङ्गुल-विस्तृता लोकपालाना वेदोक्ततत्तन्मन्त्रेण पताकाश्च वध्नीयात् ।

तत्रेन्द्रस्य पीतवर्णा, वह्नेः पिङ्गलवर्णा, यमस्य कृष्णवर्णा, निर्ऋतेः श्यामवर्णा, वरुणस्य श्वेतवर्णा, वायोर्धूम्रवर्णा, सोमस्यामलवर्णा, ईशानस्य सितवर्णा, ब्रह्मणो रक्तवर्णा, अनन्तस्य श्वेतवर्णा इति पताकाभिरलङ्कृत्य, मण्डपस्याभ्यन्तर सुश्वेतवितानपुष्पमाल्यादिभिरलङ्कृत्याऽऽश्वत्थदलग्रथितदर्भ-रज्जुरूपवन्दनमालया मण्डपमन्तर्बहिश्च परिवेष्ट्य, स्तम्भान् दुकूलैः सवेष्ट्य, तन्मध्यस्तम्भचतुष्टयमध्यगतचतुरस्ररूपे मध्यखण्डे अपक्वेष्टकाभि स्निग्धमृद्भिर्वा चतुरस्रा दर्पणोदराश्वचतुष्टयमध्यप्रदेशा समतला वेद्यायामस्यैकादशांशेन नवमांशेन सप्तमांशेन पञ्चमांशेन चतुर्थांशेन तृतीयांशेन वा समुन्नता हस्तमात्रोन्नतां वा वेदी विदध्यात् । तदुक्तम्—

सारसङ्ग्रहे—

उच्छ्रायोऽस्या ईशनवसप्तष्वब्धित्रिभागकै । इति ।

कपिलपञ्चरात्रेऽपि—

चतुर्थांशोच्छ्रितिस्तस्यास्त्रिपञ्चसप्तमाऽपि वा ।
नवैकादशभागैस्तामिष्टकाभिः प्रकल्पयेत् ॥१२९॥ इति

तन्त्रराजे—

विदध्यान्मध्यतो वेदिं करमात्रसमुन्नताम् । इति ।

॥ मण्डपनिर्माणविधिः ॥

अत्र कनिष्ठमण्डपेषु दशहस्तमण्डपेऽपि मध्ये त्र्यंशादधिकत्रिकरायता वेदी-कुण्डवेद्योरन्तरालमुभयत. पदद्वयमात्र, तद्वहिरुभयत· कण्ठमेखलासहितकुण्डद्वय-व्याप्तभूमिश्चतुर्हस्तमिता, तद्वहिः पार्श्वद्वयेऽपि कुम्भस्थापनार्थं हस्तद्वयमिति, समस्तमण्डपभूमिव्याप्ता, अतः परमाचार्यऋत्विक्सदस्याद्युपवेशनस्थानमपि न लभ्यत इति नाय पक्ष. समीचीन· । तस्मादयं पक्षस्त्वेककुण्डमेखलादिसक्षेप-चिकीर्षायामेतावतापि चारितार्थ्यात्तद्विषय इति ज्ञेयः । अत्राचरते[2] आचार-

---

१. ख० वण्डावलम्बितं । २. ख. अत्राचरति ।

यतीत्याचार्नो यजमानस्तस्य मात्राङ्गुलात्मकाङ्गुलिभिर्हस्तादि परिकल्प्य मण्डप कुर्यात् ।

'एतावदुक्त यन्मान यजमानस्य तद्भवेत् ।'

इति सारसङ्ग्रहवचनात् । 'कर्त्तुर्दक्षिणहस्तस्ये'ति शारदातिलक-वचनाच्च । हस्तस्तु चतुर्विंशाङ्गुलदीर्घः । अङ्गुलिमान तु—

महाकपिलपञ्चरात्रे—

वातायन[1] पथ प्राप्य ये भान्ति रविरश्मय. ।
तेषु सूक्ष्मा विसर्पन्तो रेणवस्त्रसरेणवः ॥१३०॥

परमाणोरष्टगुणस्त्रसरेणुरुदाहृतः ।
तेऽष्टौ केशाह्वयास्तेऽष्टौ लिक्षा यूकास्तदष्टकम् ॥१३१॥

तदष्टक यवस्तेऽष्टावङ्गुलि समुदाहृता ।
सा तूत्तमाङ्गुलिः सप्तयवा सैव तु मध्यमा ॥१३२॥

षड्यवा साऽधमा प्रोक्ता मानाङ्गुलमितीरितम् ।
विन्यस्तैस्तिर्यगष्टाभिर्यवैर्मानान्तराङ्गुलम् ॥१३३॥

शालिभिर्वा ऋजुन्यस्तैस्त्रिभिर्मानान्तर भवेत् ।
आचार्यदक्षिणकरे मध्यमाङ्गुलिमध्यमम् ॥१३४॥

पर्वणोरन्तर दीर्घमात्राङ्गुलमुदाहृतम् ।
विनाङ्गुष्ठेन शेषाभिर्मुष्टिमङ्गुलिभि. कृतम् ॥१३५॥

चतुर्द्धा विभजेदेको भागो मुष्ट्यङ्गुलः स्मृत ।
य कश्चित्पौरुषायाम विभज्य दशधा पुन. ॥१३६॥

एव द्वादशधा भाग कृत्वा तेष्वेकमङ्गुलम् ।
देहलब्धाङ्गुल नाम जानीयात्तस्य तत्पुन. ॥१३७॥

उच्छ्राय प्रतिमायाः स्यान् महामानाङ्गुलाश्रयः ।
महामानाङ्गुलिरिति मात्राङ्गुलिरिहोच्यते ॥१३८॥

प्रासादादींश्च तेनैव कुर्यान्मानान्तरेण वै ।
वेदिकापीठशिविकारथादीना विधि पुन ॥१३९॥

मानान्तराङ्गुलेनैव भवेन्नान्येन केनचित् ।
यागोपकरणाना च कुर्यान्मानाङ्गुलेन वै ॥१४०॥

---

१. ख. वातायन ।

होमाङ्गानि स्रुवादीनि कुण्ड मुष्ट्यङ्गुलाश्रयम् ।
देहलब्धाङ्गुलेनैव प्रतिमाङ्गानि कल्पयेत् ॥१४१॥
चतुर्विंशतिसङ्ख्याभिर्हस्तस्त्वङ्गुलिभिर्भवेत् । इति ।

इत्थ मण्डप विधाय, तस्मिन्मण्डपे प्रागाद्यष्टदिक्षु चतुरश्रयोन्यर्द्धचन्द्र-त्रिकोणवृत्तषट्कोणपद्माष्टाश्राख्यान्यष्टौ कुण्डानि कुर्यात् । तत्रादौ चतुरश्रकुण्ड-निर्माणप्रकारमाह—

श्रीतन्त्रराजे—

प्राक्प्रत्यक्सूत्रमास्फाल्य तन्मध्ये चिह्नकल्पनम् ।
कृत्वा तत्पूर्वतः पश्चाद् द्वादशाङ्गुलमानतः ॥१४२॥

ततस्तदग्राण्यालम्ब्य मध्यचिह्नस्य मानतः ।
कुर्याद्धि सपद कोष्ठान्यभितस्तेषु पातयेत् ॥१४३॥

पर प्रमृज्य तत्रापि विदध्याच्चिह्नयुग्मकम् ।
प्राक्प्रत्यक्चिह्नमानेन तयोरेवावलम्बतः ॥१४४॥

दक्षिणोत्तरतो हसपदे कृत्वा ततस्तयोः ।
प्रसार्य सूत्र तस्यापि मार्जयित्वोक्तमानतः ॥१४५॥

चतुष्टय तु सूत्राणा चतुरस्र भवेत्समम् ।

॥ अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः— ॥

तत्र वेद्याः पूर्वभागे मुष्ट्यङ्गुलमानेन हस्तमात्रा भुव परित्यज्य प्राक्क-ल्पितदिक्क्रमेण प्राक्प्रत्यगायत सूत्रमास्फाल्य, तन्मध्ये चिह्न कृत्वा, तच्चिह्ना-त्पूर्वतः पश्चिमतश्च द्वादशाङ्गुलमानेन चिह्न कृत्वा, तत्तदधिकाश मार्जयित्वा, तच्चिह्नद्वयावष्टम्भेन तत्सूत्रार्द्धात्किञ्चिदधिकमानभ्रमेण पूर्वापरतः किञ्चिदन्यो-न्यसंश्लिष्ट वृत्तद्वय विधाय, तयोर्दक्षिणोत्तरसन्दशरूपहसपदद्वयप्रापि प्राक्प्रत्यग् ब्रह्मसूत्रमध्यगतहसपदसम्भेददक्षिणोत्तरसूत्रमास्फाल्य, तत्रापि मध्यचिह्नाद् द्वादशाङ्गुलमानेन दक्षिणोत्तर चिह्नद्वय विधाय, तत्तदधिकाशं मार्जयित्वा, तत्सूत्राग्रचतुष्टयावलम्बनेन द्वादशाङ्गुलमानेन चतुर्षु कोणेष्वपि हसपद विधाय, तत्तदग्रात्तत्तद्धसपदप्रापि प्राक्प्रत्यक्सूत्रद्वय दक्षिणोत्तर सूत्रद्वय च सम्भूय सूत्र-चतुष्टयमास्फाल्य चतुरस्र कुर्यात् ।

ततस्तत्प्राक्प्रत्यगायतब्रह्मसूत्रमाननिम्नं समचतुरस्रं तत्र खात कृत्वा, तत्परितः कुण्डमानस्य चतुर्विंशभागमिता भुव परित्यज्य, तद्बहिर्द्वादशाङ्गुलविस्तारां

चतुरङ्गुलोत्सेधा मेखला कृत्वा, तदुपरि बाह्ये परितश्चतुरङ्गुलमानं त्यक्त्वाष्टाङ्गुलविस्तारा चतुरङ्गुलोन्नता द्वितीया मेखला कृत्वा, तदुपरि बाह्ये चतुरङ्गुलं त्यक्त्वा विस्तारोत्सेधाभ्यां चतुरङ्गुलमिता तृतीया मेखला कुर्यात् ।

एवं कृते प्रथमा मेखला द्वादशाङ्गुलोन्नता चतुरङ्गुलविस्तृता, द्वितीया मेखलाऽष्टाङ्गुलोन्नता चतुरङ्गुलविस्तृता, तृतीया चतुरङ्गुलोन्नता चतुरङ्गुलविस्तृता च भवतीति ।

अत्र केचित्प्रथमा मेखला चतुरङ्गुलविस्तृता नवाङ्गुलोन्नता, द्वितीया तु त्र्यङ्गुलविस्तृता पञ्चाङ्गुलोन्नता, तृतीया तु द्व्यङ्गुलविस्तृता द्व्यङ्गुलोन्नतेति मेखलामानमाहुः । एतन्मेखलया सह हस्तमात्रखातपक्षे ज्ञेयम् । तत्र पञ्चदशाङ्गुलनिम्नखातस्यैव विश्वकर्मणोक्तत्वात्तदूर्ध्वे नवाङ्गुलोच्छ्रायस्यैवावश्यकत्वादिति ।

हस्तमात्रखातपक्षे तु—

सर्वेषां मेखलामानं वितस्त्यष्टतदूर्ध्वकैः ।
विस्तारोत्सेधयोः कुर्यात्.........॥१४५॥

इति तन्त्रराजवचनात् ।

सत्वपूर्वकगुणान्विताः क्रमाद्,
द्वादशाष्टचतुरङ्गुलोच्छ्रिताः ।
सर्वतोऽङ्गुलचतुष्कविस्तृता
मेखला सकलसिद्धिदा मता ॥१४६॥

इति प्रपञ्चसारवचनाच्च पूर्वोक्त एव पक्षः समीचीनः । ततः सर्वबाह्यस्थमेखलाया बहिश्चतुरङ्गुलायामविस्तारोत्सेधं चतुरस्रं पीठं मृदा कृत्वा, तदुपरि निहितमूलद्वादशाङ्गुलदीर्घोत्तरोत्तरहीनपरिणाहमध्यमेखलासलग्नसरन्ध्रनीलयुतां मूले कुम्भद्वययुक्तां मध्ये सगर्त्तामुपरितनमेखलोपरिगतामष्टाङ्गुलमानविस्तारमूलां तत्प्रदेशादुभयपार्श्वतः क्रमेण सङ्कुचितामेकाङ्गुलविस्ताराग्रां द्वादशाङ्गुलमानायामामेकाङ्गुलोत्सेधमेखलायुक्तामश्वत्थपत्राकारां मूलात्किञ्चित् क्रमान्निम्नामीषत्कुण्डप्रविष्टाग्रां योनिं कुर्यात् ।

अथ *कुण्डमध्यस्थहंसपदावलम्बनेन प्रतिदिशं चतुरङ्गुलमानेन वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिः पुनः षडङ्गुलमानेन च वृत्तं कृत्वान्तर्वृत्तं कर्णिका*परिकल्प्य, वृत्तद्वयान्तरा-

— चिह्नान्तःस्थोंऽशो नास्ति ख पुस्तके ।

लवीथ्यामष्टदलानि कृत्वा, षडङ्गुलोच्चं नाभिं कुर्यादिति **चतुरस्रकुण्डनिर्माण-विधिः ।**

।। अथ योनिकुण्डमाह ।। तन्त्रराजे—

तन्मध्यपञ्चमांशेन विकाश्य ब्रह्मसूत्रकम् ।
पूर्वतः पश्चिमद्वन्द्वकोष्ठयोर्मध्यदेशतः ।।१४७।।

तत्कोणमानेन तथा भ्रामयेत्पश्चिमाग्रकात् ।
उत्तराग्रावधि तथा दक्षिणाग्रावधि प्रिये ।।१४८।।

तन्मध्यतिर्यक्सूत्राग्रद्वयावष्टम्भतस्तथा ।
विकासितब्रह्मसूत्रावधिसूत्रद्वयं भवेत् ।।१४९।।

योनिकुण्डमिदं भद्रे स्याच्चतुर्भूभयात्मसु ।
तस्मिन्नेवान्यकुण्डानि वदामि सममानतः ।।१५०।।

चतुरस्राऽभितो या तु त्यक्ता भूः साऽन्यतस्तथा ।
लभ्यते सर्वकुण्डेषु तेन सर्वाणि सर्वतः ।।१५१।।
तत्समान्येव जायन्ते षण्णवत्यङ्गुलात्मना ।इति।

।। अथैतत्कुण्डनिर्म्माणप्रकारः ।।

तत्र प्राग्वच्चतुरस्रं निर्माय, चतुःकोष्ठयुतस्य तस्य ब्रह्मसूत्रं तन्मानपञ्चमांशेन पूर्वस्यां दिशि वर्द्धयित्वा, तत्कोष्ठचतुष्टयात्मकचतुरश्रस्य पश्चिमभागस्थ-दक्षिणोत्तरकोष्ठयोः [1]नैर्ऋत्यामीशानान्तमाग्नेयादिवायव्यान्तं च कोणसूत्रद्वया-स्फालनेन लक्षितसूत्रद्वयसम्पातविदितमध्यदेशावष्टम्भस्तत्कोणावधिमानेनोत्तर-कोष्ठे प्राक्प्रत्यग्ब्रह्मसूत्रपश्चिमाग्रादिदक्षिणोत्तरतिर्यक्सूत्रोत्तराग्रावधि तद्दक्षिण-कोष्ठे तत्सूत्रपश्चिमाग्रादितत्तिर्यक्सूत्रदक्षिणाग्रावधि भ्रमादर्धचन्द्रद्वयमुत्पाद्य, तन्मध्यतिर्यक्सूत्राग्रद्वयमारभ्य प्राक्प्रसारितब्रह्मसूत्राग्रावधि सूत्रद्वयास्फालनेन योन्याकारं क्षेत्रं परिकल्प्य, तद्बहिश्च कण्ठमेखलयोर्यथोक्तमानेनोक्तयुक्त्या योनि-मण्डलद्वयं निष्पाद्य, प्राग्वत् खातं कृत्वा, योन्याकारमेव [2]कण्ठमेखलादि कल्पयेदिति ।

कुण्डानां यादृशं रूपं मेखलानां च तादृशम् ।
कुर्यात्सर्वेषु कुण्डेषु.....................।।१५२।।

इति कुलप्रकाशवचनात् ।

---

१ ख, नैर्ऋत्यादीशानान्त० । २ ख कुण्डमेखलादि ।

॥ अथार्द्धचन्द्राकारकुण्डमाह ॥ तन्त्रराजे—

तन्मध्यदशमाशं तु परित्यज्याथ ऊर्द्ध्वतः ।
शेषाशाशकमानेन तन्मध्याद् भ्रामयेत्तथा ॥१५३॥
अर्द्धचन्द्राकृतिर्येन भवेत् कुण्डं तदीरितम् । इति ।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—

तत्र प्राग्वच्चतुरस्रं कृत्वा तद्विष्कम्भमानं दशधा विभज्य, तेष्वेकैकांशं प्राक्पश्चिमयोः परित्यज्य, चिह्नद्वयं विधाय, तत्पश्चिमस्थं दक्षिणोत्तरायतं तिर्यक्सूत्रं तच्चतुरस्राद्बहिरप्यंशत्रयमानेन दक्षिणोत्तरयोर्वर्द्धयित्वा, तदग्रद्वयावधि तत्कल्पितपश्चिमब्रह्मसूत्रसंधिमध्यावलम्बनेन प्राग्रेखामध्यगतब्रह्मसूत्रसन्धिमारभ्याष्टांशमानसूत्रभ्रमादर्द्धचन्द्राकारं कुण्डं भवेदिति । इत्थमर्द्धचन्द्राकारं मण्डलं निर्माय, तद्बहिरप्युक्त्या[1] एकाङ्गुलिमानेन चार्द्धचन्द्रनिभं मण्डलद्वयं कृत्वा, प्रथमकृतमण्डलमध्ये हस्तमात्रनिम्नं खातं कृत्वा, बहिः कण्ठस्थानं परित्यज्य प्राग्वत् मेखलादिकं कुर्यादिति ।

॥ अथ त्रिकोणकुण्डमाह ॥ तत्रैव—

तत्रैव[2] षष्ठमंशं तु पार्श्वयोस्तु विकाशयेत् ।
प्रत्येकं पश्चिमं सूत्रं तन्मानेनाथ सूत्रयोः ॥१५४॥
विन्यासाद् ब्रह्मसूत्रं त[3] द्वयाग्रावधिलम्बनात् ।
कुण्डं त्रिकोणमुदितम्...................... ॥१५५॥

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—

तत्र प्रथमवच्चतुरस्रं कृत्वा, तद्ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं वहिर्गत्या प्रसार्य, तच्चतुरस्रविष्कम्भमानं षोढा विभज्य, तेष्वेकैकांशमानेन पश्चिमतिर्यक्सूत्राग्रद्वयं पार्श्वद्वयेऽपि वहिः प्रसार्य, तदग्रद्वयात्तसूत्रमानोपेतसूत्रद्वयस्य प्राक्प्रसारितब्रह्मसूत्रस्य च यत्र सम्पातस्तदवध्यास्फाल्य, त्रिकोणं कुण्डं परिकल्प्य, तद्बहिरेकांशमानेन तद्बहिर्द्वादशांशमानेन चोक्तयुक्त्या त्रिकोणद्वयं निष्पाद्य खातकण्ठमेखलादि प्राग्वत्कल्पयेदिति ।

॥ अथ वृत्तकुण्डमाह ॥ तत्रैव—

तन्मध्याष्टादशांशेन प्राक्सूत्राग्रं विकाशयेत् ।
तिर्यक्सूत्राद्बहिस्तेन मानेन भ्रामयेत्तथा ॥१५६॥
मध्यचिह्नावलम्बेन भवेत्तद्वृत्तकुण्डकम् । इति ।

---

१. ख. ०रप्युक्तयुक्त्या । २. ख. तस्यैव । ३ ख. तद् ।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—

तत्र प्राग्वच्चतुरश्रं कल्पयित्वा, तन्मध्यविष्कम्भमानमष्टादशधा विभज्य, तेष्वेकांशमानतश्चतुरश्राद्बहिर्ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं विस्तार्य, मध्यचिह्नमवलम्ब्य विस्तारितब्रह्मसूत्राग्रमानेन परितो भ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिः पुनश्चतुरस्रस्य चतुर्विंशांशमानेन कण्ठार्थं वृत्तं कृत्वा, तद्बहिः पुनर्द्वादशाङ्गुलमानेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, प्रथमकृतवृत्तमध्ये हस्तमात्रनिम्नं खातं कृत्वा, कण्ठवृत्ताद्बहिर्द्वादशाङ्गुलान्तरालवीथ्या प्राग्वन्मेखलात्रयं योन्यादिकं च रचयेदिति। अत्र वृत्तकुण्डे योनिर्नास्तीति केचित्। तन्न—

योनिकुण्डे योनिमब्जकुण्डे नाभिं च वर्जयेत्।

इति भैरवीतन्त्रवचनाद् योनिकुण्डे योनिः, पद्मकुण्डे च नाभिर्नास्तीति तान्त्रिकसिद्धान्तः।

॥ अथ षडश्रकुण्डमाह ॥ तत्रैव—

तन्मध्यषोडशांशेन विकाश्य ब्रह्मसूत्रकम्।
तेन मानेन च तथा कृत्वा वृत्तमतिस्फुटम् ॥१५७॥

तद्वृत्ते वृत्तमध्यस्य कुर्यादर्द्धेन लाञ्छनम्।
तत्र षट्सूत्रपातेन भवेत्कुण्डं षडश्रकम् ॥१५८॥ इति।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—

तत्र प्राग्वच्चतुरश्रं विधाय तन्मध्यमानं षोडशधा विभज्य, तेष्वेकांशमानेन ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं विकाश्य, तन्मानेन चतुरश्रमध्यहंसपदमध्यावलम्बनेन भ्रमाद् वृत्तम् निष्पाद्य, तन्मध्यविष्कम्भमानार्द्धेन तन्मध्यतिर्यक्सूत्रदक्षिणाग्रादि परितो वृत्ते चिह्नषट्कं विधाय, तत्र चिह्नाच्चिह्नं ज्यारूपं सूत्रषट्कमास्फाल्य, तत्तच्चापरूपवृत्तखण्डमार्जनेन षट्कोणकुण्डक्षेत्रं निष्पाद्य, तद्बहिरेकांशतो द्वादशांशतश्चोक्तयुक्त्या षट्कोणद्वयं निष्पाद्य खातादीनि प्राग्वत्कल्पयेदिति।

॥ अथ पद्मकुण्डमाह ॥ लक्षणसङ्ग्रहे—

चतुरश्रीकृतं क्षेत्रं विभजेदष्टधाऽम्बिके।
अष्टभागप्रमाणेन कर्कटेन तु मध्यतः ॥१५९॥

वर्तुलं भ्रामयेत्सेयं कर्णिकाकेसरा पुनः।
अष्टमांशद्वयेनैव मध्यतो वर्त्तुलं भवेत् ॥१६०॥

तृतीयेनाष्टमांशेन पत्राणां मध्यभूर्मता ।
चतुर्थं तु भवेत् क्षेत्रव्यासतुल्येन च भ्रमात् ॥१६१॥

चतुर्विंशतिधा भङ्क्त्वा ब्रह्मसूत्रं वरानने ।
तस्यैकं भागमादाय भङ्क्त्वा षोडशधा पुनः ॥१६२॥

पञ्चभिः षोडशैर्भागैर्न्यूनं पञ्चकमष्टकम् ।
भागमादाय तद्बाह्ये पञ्चमं मण्डलं शिवे ॥१६३॥

मध्यतो भ्रामयेत् सर्वं पत्राणामग्रभूर्मता ।
शास्त्रोक्तविधिना देवि ततः पद्मं समालिखेत् ॥१६४॥

बाह्यवृत्तान्तरालं यत्तन्मानं केसराग्रतः ।
तन्मानं कर्कटं कृत्वा केसराग्रे निधाय च ॥१६५॥

गुरूपदिष्टमार्गेण षोडशार्द्धनिशाकरान् ।
लिखित्वा कृतहस्तेन पत्राग्राणि समालिखेत् ॥१६६॥

कर्णिकाव्यासमानेन परित्यज्य तदुच्चताम् ।
निखनेदवशिष्टं तु केसराणां च मण्डलम् ॥१६७॥

खनेदन्तस्तदाकारं कुर्वन् पत्रभुवं खनेत् ।
पत्राकारा यथा सम्यग्जायन्ते परमेश्वरि ॥१६८॥

पद्मकुण्डमिति प्रोक्तं.... ....

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकारः—

तत्र प्राग्वच्चतुरस्रीकृतं क्षेत्रमष्टधा विभज्य, तन्मध्यचिह्नावलम्बनेन परितश्चैकांशमानेन कर्णिकार्थं वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरप्यंशद्वयमानेन केसरार्थं वृत्तं कृत्वा, तद्बहिरप्यंशत्रयमानेन दलार्थं वृत्तं विरच्य[1], तद्बहिरप्यंशचतुष्टयमानेन वृत्तं भ्रामयित्वा, तद्बहिरपि सार्द्धषट्कयवमानेन चतुरस्रक्षेत्राद्बहिर्वृत्तमेकं भ्रामयेत् ।

इति वृत्तपञ्चकं कृत्वा, प्रथमवृत्तद्वितीयवृत्तयोरन्तरालं षोडशधा विभज्य केसरान्विधाय, तृतीयवृत्ते दिग्विदिक्षु समान्तरालान्यष्टौ चिह्नानि कृत्वा, तत्तच्चिह्नमवष्टभ्य द्वितीयवृत्तस्पृष्टकेसररेखाग्रात्तृतीयवृत्तस्पृष्टपञ्चमवृत्तावसानान् शृङ्गद्वया-

---

१ ख विरच्य ।

ग्रकात् षोडशार्द्धचन्द्रान्निष्पाद्य, साग्राण्यष्टदलानि कृत्वा, तन्मध्यकर्णिकावृत्त विहाय, केसराणि कर्णिकां परित. प्रकाशयेत् ।

केसरवृत्त दलमध्यवृत्त[२] सम्यक् खनित्वा, चतुर्थपञ्चमवृत्तयोर्द्दलानि साग्राणि यथा भवन्ति, चतुरश्रकुण्डस्य विस्तारायामखातसमानक्षेत्रफलवत् क्षेत्रफल यथा भवति तथा गुरूक्तयुक्त्या खनन विधाय वहि:पद्माकारेणैव कण्ठमेखलादिक कुर्यादिति ।

॥ अथाष्टाश्रकुण्डमाह ॥ तन्त्रराजे—

तन्मध्यस्य चतुर्विंशमाने वाह्येऽपि पूर्ववत् ।
विधाय चतुरश्र तु पूर्वकोणार्द्धमानत ॥१६६॥

कोणादभित एवास्य कृत्वा चिह्नानि चाष्ट वै ।
तेषु चिह्नेषु कृत्वाष्टसूत्राणि परितः शिवे ॥१७०॥
कुर्यादष्टाश्रक कुण्डम्········ ····· । इति ।

अथैतत्कुण्डरचनाप्रकार.—

तत्र प्राग्वच्चतुरश्र विधाय, तन्मध्यसूत्रमान चतुर्विंशतिधा विभज्य, तेष्वेकैकागमान तद्वहि प्रतिदिश प्रसारितसूत्राग्रे पूर्ववच्चतुरश्र प्रोक्तक्रमेण विधाय, तत्र पूर्वचतुरश्रस्य कोणसूत्रस्यार्द्धमानेन वाह्यचतुरश्रे कोणचतुष्टय व्यत्यासावष्टम्भादुभयत प्रतिरेख चिह्नद्वयक्रमात्सम्भूयाऽष्टचिह्नानि कृत्वा, तच्चिह्नाच् चिह्न प्राग्वत्सूत्राष्टकमास्फाल्य, तद्वहिर्गतकोणमार्जनादष्टाश्र कुण्ड भवति । इत्थमष्टाश्रकुण्डक्षेत्र परिकल्प्य खातकुण्डमेखलादिक यथावत्कुर्यादिति **दीक्षायामष्टौ कुण्डानि** कार्याणि ।

अथ प्रसङ्गसङ्गत्या काम्यहोमार्थ च पञ्चाश्रसप्ताश्रकुण्डयोरपि लक्षण-मुच्यते । तत्रादौ—

॥ पञ्चाश्रकुण्डमाह ॥ तत्रैव—

तन्मध्यसप्तमांशेन ब्रह्मसूत्र विकाश्य तत् ।
मानेन परितो भ्रान्त्या कृत्वा वृत्त यथा च तत् ॥१७१॥

तत्त्र्यशमानात्तद्वृत्ते कृत्वा चिह्नानि तत्र वै ।
पातयेत्पञ्च सूत्राणि तत्स्यात्पञ्चाश्रकुण्डकम् ॥२७२॥ इति ।

---

२. ख दलमदलवृत्तमध्यस्थं ।

अथैतत्कुण्डनिर्माणप्रकारः—

तत्र प्राग्वच्चतुरस्रं कृत्वा, तन्मध्यमानस्य सप्तमांशेन ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं वहिर्विकाश्य, तन्मानेन चतुरस्रमध्यस्थहृत्पदावलम्बनेन भ्रमाद् वृत्तं निष्पाद्य, तच्चतुरस्रमध्यसूत्रं चतुर्द्धा कृत्वा, तेष्वंशत्रयेणांशत्रयेण तद्वृत्ते ब्रह्मसूत्रप्रागग्रादि परितः पञ्च चिह्नानि विधाय, तत्र चिह्नाच्चिह्नं ज्यारूपाणि पञ्चसूत्राण्यास्फाल्य, तत्तच्चापवृत्तखण्डमार्जनात्पञ्चास्रकुण्डं भवति। इत्थं पञ्चास्रकुण्डक्षेत्रं परिकल्प्य, तद्बहिरपि प्रोक्तयुक्त्या कण्ठमेखलार्थं पञ्चास्रद्वयं परिकल्प्य, खातादिकं प्राग्वत् कुर्यादिति।

॥ अथ सप्तास्रकुण्डमाह ॥ तत्रैव—

तन्मध्यदशमांशेन विकाश्य ब्रह्मसूत्रकम्।
तेन मानेन सम्भ्रान्त्या कृत्वा वृत्तं तथा ततः ॥१७३॥

तच्चतुःषष्टिभागेषु त्रयस्त्रिंशांशमानतः।
वृत्ते विधाय चिह्नानि सप्तसूत्राणि पातयेत् ॥१७४॥
तत्सप्तास्रं भवेत् कुण्डं.................... इति।

अथैतत्कुण्डनिर्माणप्रकारः—

तत्र प्राग्वत्समचतुरश्रं कृत्वा तन्मध्यमानं दशधा विभज्य, तेष्वेकांश-मानेन ब्रह्मसूत्रं वहिर्विकाश्य, तन्मानेन चतुरस्रमध्यस्थहृत्पदमवष्टभ्य, वृत्तं कृत्वा, तच्चतुरस्रमध्यसूत्रप्रमाणं चतुःषष्टिधा विभज्य, तेषु त्रयस्त्रिंशदंशमानेन ब्रह्मसूत्रप्रागग्रादारभ्य वृत्ते सप्तचिह्नानि कृत्वा, चिह्नाच्चिह्नं ज्यारूपेण सप्तसूत्राण्यास्फाल्य, तत्तच्चापरूपवृत्तखण्डमार्जनादेतत्सप्तास्रं कुण्डं भवेत् इति दशविधकुण्डनिर्माणप्रकारः।

दीक्षायामष्टकुण्डानि प्रागाद्यष्टदिक्षु कार्याणि। आचार्यकुण्डमिन्द्रेशान-योर्मध्ये कार्यम्। तथा चोक्तम्—
शारदातिलके—

प्राक्प्रोक्ते मण्डपे विद्वान्वेदिकाया बहिस्त्रिधा।
क्षेत्रं विभज्य मध्येऽंशे पूर्वादि परिकल्पयेत् ॥१७५॥

आशास्वष्टासु कुण्डानि रम्याकाराण्यनुक्रमात्।
चतुरस्रं योनिमर्द्धचन्द्रं त्र्यस्रं सुवर्तुलम् ॥१७६॥

षडश्रं पङ्कजाकारमष्टाश्र तानि नामतः । इति ।

आचार्यकुण्ड मध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयोः ॥१७७॥ इति ।

आचार्यकुण्ड चतुरस्र वर्तुल वा कार्यम् । यथोक्तम्—

क्रियासारे—

......................प्रधानकुण्डमुच्यते ।

वृत्त वा चतुरस्र स्यान्मध्यस्थाने वृषेशयोः ॥१७८॥ इति ।

अत्र पृथक्पृथग्रचनानि नवानि कुण्डानि कर्त्तुमशक्तः सर्वाणि कुण्डानि चतुरस्राणि वृत्तानि वा कुर्यात् । तथा चोक्तमाम्नायरहस्ये—

कुण्डानि चतुरस्राणि वृत्तमानाकृतीनि वा । इति ।

सोमशम्भुनाप्युक्तम्—

शस्तानि तानि वृत्तानि चतुरस्राणि वा सदा ॥१७९॥ इति ।

अन्यत्रापि—

वेदाश्राण्येव तानि स्युर्वर्तुलान्यथवा क्वचित् ।

अत्रोत्तमो नवकुण्डी पक्षो बोध्य, मध्यमस्तु पञ्चकुण्डी पक्ष., कनीयानेककुण्डपक्ष । तदुक्तम्

आम्नायरहस्ये—

नवपञ्चाथ चैकं वा कर्त्तव्य लक्षणान्वितम् । इति ।

सोमशम्भुनाऽपि—

वेदीपादान्तर त्यक्त्वा कुण्डानि नव पञ्च च ॥१८०॥ इति।

तन्निवेशनमुक्तमाम्नायरहस्ये—

विधाने पञ्चकुण्डानामीशाने पञ्चम भवेत् । इति ।

ज्ञानरत्नावल्यामपि—

दिक्षु वेदास्रवृत्तानि पञ्चमं त्वीशगोचरम् ॥१८१॥ इति ।

अत्र वृत्तशब्देन वृत्तार्द्धचन्द्रपद्मानि गृह्यन्ते । तथा चोक्तम्—

नारदीये—

यत्रोपदिश्यते कुण्डचतुष्कं तत्र कर्मणि ।
वेदास्रमर्कचन्द्र च वृत्तं पद्मनिभं तथा ॥१८२॥
कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि प्राच्यादिषु विचक्षणः ।
पञ्चम कारयेत्कुण्डमीशदिग्गोचर द्विज ॥१८३॥

इत्येककुण्डनिवेशनमुक्तमाचार्यैः। अथवा दिशि कुण्डमुत्तरस्या प्रविदध्याच्चतुरश्रमेकमेवेति। क्वचित् प्रतीच्यामपि निवेशनमुक्तम्।

मुक्तौ मुक्तौ तथा पुष्टौ जीर्णोद्धारे विशेषत.।
दीक्षाहोमे तथा शान्तौ वृत्त वरुणदिग्गतम् ॥१८४॥ इति।

सोमशम्भुरपि—

एक वा शिवकाष्ठाया प्रतीच्या कारयेद् बुध।

तत्रैव कुण्डपक्षे चतुरस्र वृत्त वा कुण्ड कार्यम् तदुक्तं क्रियासारे—

चतुरस्र भवेत्कुण्ड वृत्त कुण्डमथापि वा।
स्थिरार्चने चराच्चर्याया नित्ये हवनकर्मणि ॥१८५॥ इति।

पिङ्गलामतेऽपि—

कुण्डमेककर वृत्त मेखलाकण्ठनाभिमत्।
नित्ये कर्मणि दीक्षाया शान्तौ पुष्टौ सम शुभम् ॥१८६॥

सिद्धान्तशेखरे—

हस्तमात्राणि सर्वाणि दीक्षासु स्थापनादिषु।
नित्यहोमे च साहस्रे कुर्यात्कुण्डानि सर्वदा ॥१८७॥ इति।

॥ अथ कुण्डे खातविचार.॥ तत्र—

शारदातिलके—

यावत्कुण्डस्य विस्तारः खनन तावदेव तु।

वायवीयसंहितायां 'कुण्डविस्तारवन्निम्नम्'। इति। **अन्यत्रापि** यावन्मात्र कुण्डविस्तार उक्तस्तावत्खातस्यापि मानम्प्रदिष्टम्।

प्रपञ्चसारे—

विंशद्भिश्चतुरधिकाभिरङ्गुलीभि.,
सूत्रेणाप्यथ परिसूत्र्य भूमिभागम्।
ताभिश्च प्रखननन्तु तावतीभिरश्म्।

इति **प्रयोगसारदिव्यसारस्वतयो**।

चतुरस्र चतु कोष्ठ सूत्रै. कृत्वा यथा पुरा।
हस्तमानेन तन्मध्ये तावन्निम्नायत खनेत् ॥१८८॥

गणेश्वरपरामर्शिण्यामपि—

चतुर्विंशाङ्गुलायाम तावत्खातसमन्वितम् ।

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

चतुर्विंशतिसख्याभिरङ्गुलीभिः सुविस्तृतम् ।
खात च रचयेत् कुण्ड·········॥१८९॥

मेखलया सह खातमाहु । तदुक्त मोहशूरोत्तरे—

हस्तमात्र खनेत्तिर्यगूर्द्ध्व मेखलया सह ।

प्रतिष्ठासारसङ्ग्रहे—

पञ्चत्रिमेखलोच्छ्रायं ज्ञात्वा शेषमधः खनेत् ॥१९०॥

विश्वकर्माऽप्याह—

व्यासात्खात. कर. प्रोक्तो निम्न तिथ्यङ्गुलेन तु ।

प्रथमतन्त्रे—

कुण्ड जिनाङ्गुलैस्तिर्यगूर्द्ध्व मेखलया सह ॥१९१॥

सिद्धान्तशेखरेऽपि—

खात कुण्डप्रमाणं स्यादूर्ध्वं मेखलया सह । इति ।

एतत्पक्षद्वये युक्तियुक्त प्रथमपक्ष एव भाति । यत.—

'कुण्डस्वरूप जानीयात्परमं प्रकृतेर्वपु' रित्यादिना मेखलानामङ्गत्वानभिधानात्तासाम्भूषणरूपत्वात्ताभि. सह खातो नोपपद्यते । भूषणत्वे कदाचित्तासामकर्त्तव्यतापि स्यादिति चेन्न । 'शृङ्गाररहित यच्च यजमानविनाशकृ' दित्युक्तेर्भूषणस्याप्यावश्यकत्वात् । मेखलाया अननुगमे खातस्याप्यननुगमप्रसङ्गात् । त्रिमेखलापक्षेऽन्यः खात', पञ्चमेखलापक्षेऽन्यः खातः, द्वादशाङ्गुलमेखलापक्षेऽन्य इति । मेखलया सह खातवचनानि तु रत्न्यरत्न्यादिकुण्डेषु पञ्चाशदादिहोमे खाताधिक्यस्य प्रयोजनाभावात्तद्विषयाणीति ज्ञेयम् ।

श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ।
स्मृतिद्वैधे तु विषय कल्पनीयः पृथक् पृथक् ॥१९२॥

इत्युक्तेः ।

॥ अथ मेखलाः ॥ तत्र शारदातिलके—

कुण्डानां यादृश रूपं मेखलानां च तादृशम् ।
कुण्डाना मेखलास्तिस्रो मुष्टिमात्रे तु ता क्रमात् । १९३॥

उत्सेधायामतो ज्ञेया ह्येकार्धाङ्गुलसम्मिता ।
अरत्निमात्रे कुण्डे स्युस्तास्त्रिद्व्येकाङ्गुलात्मिका: ॥१९४॥

एकहस्तमिते कुण्डे वेदाग्निनयनाङ्गुला: ।
मेखलाना भवेदन्त. परितो नेमिरङ्गुलात् ॥१९५॥

एकहस्तस्य कुण्डस्य वर्द्धयेत्ता क्रमात्सुधीः ।
दक्षहस्तान्तमन्येपामर्द्धाङ्गुलवशात्पृथक् ॥१९६॥
कुण्डे द्विहस्ते ता ज्ञेया रसवेदगुणाङ्गुला. ।
चतुर्हस्ते तु कुण्डे ता वसुतर्कयुगाङ्गुला. ॥१९७॥
कुण्डे रसकरे ता : स्युर्दशाष्टर्त्वङ्गुलान्विता. ।
वसुहस्तमिते कुण्डे मनुभानुदशाङ्गुला: ॥१९८॥
विस्तारोत्सेधतो ज्ञेया मेखला. सर्वतो वुधैः ।

वायवीयसहितायाम्—

मेखलाना त्रय वापि द्वयमेकमथापि वा ॥१९९॥

क्रियासारेऽपि—

नाभियोनिसमायुक्त कुण्ड श्रेष्ठ त्रिमेखलम् ।
कुण्ड द्विमेखल मध्य नीच स्यादेकमेखलम् ॥२००॥

सोमशभौ तु—

त्रिमेखल द्विजे कुण्ड क्षत्रियस्य द्विमेखलम् ।
मेखलैका तु वैश्यस्य············॥२०१॥ इति ।
कुण्डाना यश्चतुर्विंशो भाग सोऽङ्गुलसज्ञक ।
विभज्यानेन कर्त्तव्या मेखला कण्ठनाभय ॥२०२॥

महाकपिलपञ्चरात्रे—

कुण्डे षड्भागिका त्वाद्या द्वितीयाष्टाशका स्मृता ।
तृतीया द्वादशाशा स्याद्········ ॥२०३॥ इति ।

योगिनीहृदयेऽपि—

मेखला शृणु भो देवि हस्तादिषु विशेषत ।
षण्णागार्कांशसम्भागैर्मिता. स्युर्गोपिता. शुभा. ॥२०४॥ इति ।

पञ्चमेखलापक्षे तन्मानमुक्त लक्षणसग्रहे—

मेखला: पञ्च वा कार्या. षट्पञ्चाब्धित्रिपक्षकै. । इति ।

सिद्धान्तशेखरे—

षड्बाणाब्धिवह्निनेत्रमिता. स्यु. पञ्चमेखला: ।

द्विमेखलापक्षे तन्त्रान्तरे—

षष्ठांशेनाष्टमांशेन मेखलाद्वितय मतम् ।

एकमेखलापक्षे—

एका षडङ्गुलोत्सेधविस्तारा मेखला मता ।

महाकपिलपञ्चरात्रेऽपि—

मेखलैकाऽथवा स्मृता सा चतुर्थांशविस्तारा ।

सोमशंभुरपि—अङ्गुलै. षड्भिरेका चेति ।

॥ अथ कण्ठ· ॥ तत्र वसिष्ठः—

कण्ठोऽष्टयवमात्र. स्यात् कुण्डे तु करमात्रके ।

कालोत्तरे—

खाताद्वाह्येऽङ्गुल: कण्ठ: सर्वकुण्डेष्वय विधि: ।
चतुर्विंशतिसम्भागमङ्गुल परिकल्पयेत् ॥२०५॥ इति ।

महाकपिलपञ्चरात्रे—

चतुर्विंशतिभागेन कण्ठो वै परिकीर्त्तित: ।

अन्यत्रापि—

खाताद्वाह्येऽङ्गुल: कण्ठस्तद्वाह्ये मेखला· क्रमात् ॥२०३॥

कामिके त्वन्यथोक्तं 'क्षेत्रार्कांशेन तस्योष्ठ' इति ।

सोमशम्भौ विशेष:—

वहिरेकाङ्गुल: कण्ठो ह्यङ्गुल: क्वचिदागमे । इति ।

पक्षत्रयेऽप्येकाङ्गुलपक्षो बहुतन्त्रसम्मत: ।

॥ अथ योनि: ॥ तत्र—

वायवीयसहितायाम्—

मेखलामध्यत: कुर्यात्पश्चिमे दक्षिणेऽपि च ।
योनिं सुशोभना किञ्चिन्निम्नामुन्मूलिकां शनै: ॥२०७॥

अग्रेण कुण्डाभिमुखी किञ्चिदुत्सृष्टमेखलाम् ।
कुम्भद्वयसमायुक्तामश्वत्थदलसन्निभाम् ॥२०८॥ इति ।

तथा वसिष्ठसंहितायाम्—

योनिश्च पश्चिमे भागे प्राङ्मुखी मध्यसंस्थिता ।
अष्टाङ्गुलैश्च विस्तीर्णा चायता द्वादशाङ्गुलैः ॥२०९॥
पृष्ठोन्नता गजोष्ठीव सच्छिद्रा मध्यमोन्नता ।इति ।

सच्छिद्रामध्ये 'मध्ये त्वाज्यधृतिस्तथे' ति त्रैलोक्यसारवचनात् आज्यधृतिरिति योनिमध्ये गर्त्त. कर्त्तव्य इत्याहुः साम्प्रदायिकाः । तथा—

लक्षणसङ्ग्रहे—

ईषत्कुण्डप्रविष्टाग्रा जिनांशकृतमेखला ।
मेखलार्थे पृथग् भूमिर्न ग्राह्या बाह्यत. प्रिये ॥२१०॥
योनिक्षेत्रे तु सा कार्या………………। इति ।

नारद.—

कुण्डत्र्यंशेन विस्तारा योनिरुच्छ्रायतोऽङ्गुला ।
कुण्डार्द्धेन तु दीर्घा स्यात्……………… ॥२११॥ इति ।

तथा त्रैलोक्यसारे—

दैर्घ्यात्सूर्याङ्गुला नालत्र्यंशोना विस्तरेण तु ।
एकाङ्गुलोच्छ्रिता सा तु………… ॥२१२॥

नालत्र्यंशोना अष्टाङ्गुलविस्तारा नालस्य द्वादशाङ्गुलदैर्घ्यादिति ।

स्वायम्भुवेऽपि—

मेखलामध्यतो योनि कुण्डार्द्धा त्र्यंशविस्तृता इति ।

विस्तारो मूलदेशे पिप्पलपत्राकृतित्वात् । द्विहस्तादिकुण्डेष्वप्यनया रीत्या तत्तत्कुण्डार्द्धदीर्घात्तत्तृतीयांशविस्तारात्तच्चतुर्विंशांशोच्चा योनि. कार्या यदुक्तम्-

सोमशम्भौ—

कुण्डानां यश्चतुर्विंशो भाग सोऽङ्गुलसंज्ञक. ।
विभज्य तेन कर्त्तव्या मेखलाकण्ठनाभयः ॥२१३॥ इति ।

सिद्धान्तशेखरेऽपि—

चतुर्विंशतिमो भाग. कुण्डानामङ्गुल स्मृतम् । इति ।

सिद्धान्तशेखरे—

दीर्घार्कपर्वभिर्योनिर्विस्तारेण षडङ्गुला ।
उन्नतिर्द्व्यङ्गुलेन स्यात्………………॥२१४॥

इत्युक्तम् । अत्राष्टाङ्गुलषडङ्गुलद्व्यङ्गुलयोश्च विकल्पः इति शारदा-तिलकवचनात्—योनिः सर्वत्र होतुरग्रे प्रोक्तविधिना स्थाप्येति । तत्र चतुःकुण्डपक्षे चतुरश्रे अर्द्धचन्द्रे कुण्डे च योनिर्दक्षिणभागस्थमेखलोपरि स्थाप्या तयोर्होत्रोरुत्त-राभिमुखत्वात् । अन्यकुण्डेषु पश्चिममेखलोपरि योनिः स्थाप्या तयोर्होत्रो पूर्वा-भिमुखत्वात् ।

दक्षस्था पूर्वयाम्ये तु जलस्था पश्चिमोत्तरे ।
पञ्चमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्षिणदिक्स्थिता ॥२१५॥

इति । त्रैलोक्यसारवचनात् पूर्वाग्नेययाम्येषूदङ्मुखी योनिः, अन्येषु प्राङ्-मुखी, नवमस्य तु प्राग्वदेव, पञ्चमस्य आचार्यकुण्डस्येत्यर्थः । अष्टकुण्डपक्षे तु—

प्रागग्नियाम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखी ।
शेषाणां प्राङ्मुखी प्रोक्ता........... ॥ २१६ ॥

इति सारसङ्ग्रहवचनात् एतेन योनिकुण्डेऽपि योनिः कर्त्तव्येति केचित्, तन्न ।

योनिकुण्डे योनिमब्जकुण्डे नाभिं च वर्ज्जयेत् ।

इति विश्वकर्मवचनात् आसां मेखलानां नालमुक्तम्—

तन्त्रराजे—

बहिःस्थमेखलामध्यादारब्धनिजनालकम्[1] ॥२१७॥

वितस्तमात्रकमिति । बहिस्थमेखलामध्यात् तन्मध्यगतचतुरश्रपीठादित्यर्थः । तथैव तट्टीकाकृता मनोरमाकारेण व्याख्यातत्वात् । आचार्यचरणैस्तु—

'योनिस्तत्पश्चिमादावथ दिशि चतुरस्रस्थलारब्धनाला'

इत्युक्तम् । तत्र पद्मपादाचार्यैर्मेखलात्रयाद्बहिश्चतुरश्रं पीठं चतुरङ्गुलोच्चायाम-विस्तारं कृत्वा तत्र नालं स्थाप्यमिति व्याख्यातम् ।

प्रयोगसारे—

योन्याः पश्चिमतो नालमायामे चतुरङ्गुलम् ।
त्रिद्व्येकाङ्गुलविस्तारं क्रमान्न्यूनाग्रमिष्यते ॥२१८॥

इति चतुरङ्गुलमानेन नालमुक्तम् । एतच्चतुरङ्गुलषडङ्गुलादि स्वल्पमेखलापक्षे ज्ञेयम् ।

॥ नाभिमाह ॥ तन्त्रराजे—

---

1. ख. ०वारम्य निजनालकम् ।

नाभिं कुर्यात्तु सर्वत्र कुण्डमध्ये विधानतः ।
अष्टच्छदं सरोजं तु विदध्याच्चारुविग्रहम् ॥२१९॥

चतुर्भिरङ्गुलैः कुर्यात् कर्णिकां दलमेव च ।
विस्तारादपि चोत्सेधः षड्भिः षड्भिरुदीरितः ॥२२०॥ इति ।

शारदातिलके—

कुण्डानां कल्पयेदन्तर्नाभिमम्बुजसन्निभम् ।
तत्तत्कुण्डानुरूपं च मानमस्य निगद्यते ॥२२१॥

नेत्रवेदाङ्गुलोपेतः कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत् ।
नाभिक्षेत्रं त्रिधा भित्त्वा मध्ये कुर्वीत कर्णिकाम् ॥२२२॥

बहिरंशद्वयेनाष्टौ पत्राणि परिकल्पयेत् ।

इति **नाभिलक्षणमुक्तम्** । तत्र यथागुरूपदेशं कार्यमिति ।

आतपे क्षत्रिये नाभिः प्राण्यङ्गेऽपि द्वयोरिति ।
नाभिशब्दः पुल्लिङ्गोऽप्यस्ति ।

॥ अथ कुण्डानां यथोक्तप्रकारेणाकरणे दोषः ॥

तत्र वसिष्ठः—

अनेकदोषदं कुण्डमत्र न्यूनाधिकं यदि ।
तस्मात्सम्यक् परीक्ष्येदं कर्त्तव्यं शुभमिच्छता ॥२२३॥ इति ।

तत्र दोषानाह विश्वकर्मा—

खाताधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः ।
वक्रकुण्डे तु संतापो मरणं छिन्नमेखले ॥२२४॥

मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसंक्षयः ।
भार्याविनाशकं कुण्डं प्रोक्तं योन्या विना कृतम् ॥२२५॥
अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत्कण्ठवर्जितम् । इति ।

तथा क्रियासारे—

न्यूनाधिकप्रमाणं यत् कुण्डं जर्ज्जरमेखलम् ।
शृङ्गाररहितं यच्च यजमानविनाशकृत् ॥२२६॥ इति ।

तथा जयद्रथयामले—

सूत्राधिके सुहृद्द्वेषो मानहीने दरिद्रता ।
वाग्रोधः कण्ठहीने स्यादसिद्धिर्न्यूनखातके ॥२२७॥

अधिके चासुरे भोगो मानेनाधिकमेखले ।
व्याधय सम्प्रवर्त्तन्ते वियोनो स्यादपस्मृति. ॥२२८॥
उच्चाटः स्फुटिते छिद्रसङ्कुले वाच्यता भवेत् । इति ।

इत्थ निन्दाश्रवणाद्यथोक्तलक्षणसम्पन्नानि सर्वाणि कुण्डानि कार्याणीति।

॥ अथैतेषां कुण्डानां काम्यहोमेषु कुण्डभेदेन फलभेद. ॥

तत्र कुलप्रकाशतंत्रे—

चतुरश्रे स्तम्भन स्यात्सर्वसिद्धिकर च तत् ।
भोगाः पुत्रा योनिकुण्ड अर्द्धचन्द्र शुभावहम् ॥२२९॥

मारणे केचिदिच्छन्ति त्रिकोण द्वेपकारकम् ।
रिपुघातकर[1] केचिद् वृत्त शान्तिकर जगुः ॥२३०॥

षट्कोणमुच्चाटमृतिच्छेदेषु च विशिष्यते ।
वृष्टिद पुष्टिद चापि पद्मकुण्ड विदुर्बुधा. ॥२३१॥

अष्टकोणं तु मुक्तौ स्यादरोगेऽपीति केचन ।
पञ्चकोण चाभिचारशमने भूतकृन्तने ॥२३२॥
सप्ताश्रमेव विज्ञाय काम्यकर्माणि साधयेत् ।इति।

शारदातिलके—

सर्वसिद्धिकर कुण्ड चतुरश्रमुदाहृतम् ।
पुत्रप्रद योनिकुण्डमर्द्धेन्द्वाभ शुभप्रदम् २३३॥

शत्रुक्षयकर त्र्यस्त्रं वर्त्तुल शान्तिकर्मणि ।
छेदमारणयोः कुण्ड षडस्त्र पद्मसन्निभम् ॥२३४॥
वृष्टिद रोगशमन कुण्डमष्टास्रमीरितम् ।

अय च फलविशेषः पूर्वोक्ततत्तद्दिशि कुण्डकरण एव ज्ञेय. । तदुक्त—

कामिके—

ऐन्द्रया स्तम्भे चतुष्कोणमग्नौ भागे[2] भगाकृति ।
चन्द्रार्द्धं मारणे याम्ये द्वेषे निर्ऋते त्रिकोणकम् ॥२३५॥
वारुण्यां शान्तिके वृत्तं षडश्र्युच्चाटनेऽनिले ।
उदीच्यां पौष्टिके पद्मं रौद्रयामष्टाश्रि मुक्तिदम् ॥२३६॥ इति ।

---

१. ख. रिपुघ्नातकर । २. ख. भोगे ।

पिङ्गलामतेऽपि—

कुण्ड कुशेशयाकारमुत्तरे वश्यकर्मणि ।
षडश्र्युच्चाटने वायावर्द्धेन्दु मारणे यमे ॥२३७॥
वेदाश्र स्तम्भने प्राच्यामाकर्षेऽग्नौ भगाकृति ।
वारुण्यां शान्तिके वृत्तमीशे त्वष्टाश्रि मुक्तिदम् ॥२३८॥ इति ।

सिद्धान्तशेखरे—

योन्याख्यमुच्यते कुण्डमाग्नेय्यामुत्तरामुखम् ।
प्रजावृद्धौ प्रतापे स्यादर्द्धचन्द्रमथोच्यते ॥२३९॥
याम्ये तन्मारणे शस्तमुत्तराभिमुखं सदा ।
नैर्ऋते त्र्यस्रकुण्ड स्याद्विद्वेषे पूर्ववक्त्रकम् ॥२४०॥
वृत्तकुण्डमथो वक्ष्ये वारुण्या शान्तिके हितम् ।
षडस्रमुच्यते कुण्ड वायावुच्चाटने पटु ॥२४१॥
पद्मकुण्डमथो वक्ष्ये सौम्ये तत्पुष्टिवर्द्धनम् ।
वक्ष्ये कुण्डमथाष्टास्रमीशाने सर्वकामदम् ॥२४२॥ इति ।

क्रियासारे—

कुण्डमत्रोक्तमार्गेण निर्माय्याऽथ सलक्षणम् ।
क्षत्रियोऽपि समृद्धो वा शूद्रस्ताम्रेण बन्धयेत् ॥२४३॥
तदलाभे त्विष्टकाभि. सम्वद्ध्य सुदृढ यथा ।
पूर्वोदितप्रकारेण मृदया लेपयेत्तथा ॥२४४॥
ताम्रेण लक्षणोपेत कुर्यान्मृत्तिकयाऽपि वा ।
एतत् कुण्ड चरार्चायां गृह्णीयान्न स्थिरार्चने ॥२४५॥

एतत्कुण्ड ताम्रकुण्डम् ।

अम्लेन ताम्रक कुण्ड मृण्मय गोमयाम्भसा ।
सौध च सुधया सम्यक् शोधयेदमरर्षभ ॥२४६॥
मृण्मयाना तु कुण्डाना परित सन्धिभि सह ।
रक्तमृच्छालिपिष्टाभ्या भूषयेद् हृत्प्रिय यथा ॥२४७॥ इति ।

॥ अथ वर्णभेदेन कुण्डभेदः ॥

वर्णानामादित. कुण्डान्युक्तानि क्रमतः शिवे ।
चतुरश्र वृत्तमर्द्धचन्द्र त्र्यश्रमिति क्रमात् ॥२४८॥

सर्वेषां चतुरश्रं वा दीक्षायामुत्तम शिवे ।

शारदातिलके—

विप्राणां चतुरस्रं स्याद्राज्ञां वर्त्तुलमिष्यते ।
वैश्यानामर्द्धचन्द्राभ शूद्राणा त्र्यश्रमीरितम् ॥२४६॥

चतुरस्र तु सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः ।
कुण्डस्य रूप जानीयात्परम प्रकृतेर्वपुः ॥२५०॥

प्राच्या शिरः समाख्यातं बाहू दक्षिणसौम्ययोः ।
उदर कुण्डमित्युक्त योनिः पादौ तु पश्चिमे ॥२५१॥

प्रयमतन्त्रे—

पर शरीरं प्रकृतेः कुण्डरूप पुरः शिरः ।
याम्यसौम्ये करौ कुण्डमुदर पश्चिम तथा ॥२५२॥

योनिश्च चरणौ प्रोक्तौ सर्वतन्त्रेषु शाम्भवि ।

॥ अथ होमसंख्याभेदेन कुण्डमानभेदः ॥

शारदातिलके—

मुष्टिमात्रमित कुण्डं शतार्द्धे सम्प्रचक्षते ।
शतहोमेऽरत्निमात्रं हस्तमात्रं सहस्रके ॥२५३॥

द्विहस्तमयुने लक्षे चतुर्हस्तमुदीरितम् ।
दशलक्षेषु षड्हस्त कोट्यामष्टकरं स्मृतम् ॥२५४॥

एकहस्तमित कुण्डमेकलक्षे विधीयते ।
लक्षाणा दशक यावत्तावद् हस्तेन वर्द्धयेत् ॥२५५॥
दशहस्तमित कुण्ड कोटिहोमेऽपि शस्यते ।

लक्षसागरे—

पञ्चाशत्प्रमिते होमे कुण्ड रत्निमितं भवेत् ।
अरत्निमात्र तु शते सहस्रमितहोमके ॥२५६॥

चतुर्विंशत्यङ्गुलाढ्य द्विहस्तमयुते मतम् ।
चतुर्हस्तमित लक्षे षट्कर दशलक्षके ॥२५७॥
कोटिहोमे चाष्टहस्त कुण्ड कुर्यान्महेश्वरि ।

प्रकारान्तरं च तत्रैव—

एकं लक्ष समारभ्य यावत्स्याद्दशलक्षकम् ।
तथैकहस्तमारभ्य दशहस्तं विवर्द्धयेत् ॥२५८॥
कोट्या दशकर कुण्ड प्रशस्त परमेश्वरि । इति ।

सिद्धान्तशेखरे—

लक्षार्द्धे त्रिकर कुण्ड लक्षहोमे चतु करम् ।
कुण्ड पञ्चकर प्रोक्त दशलक्षाहुतौ क्रमात् ॥२५९॥
षड्हस्त लक्षविंशत्या कोटयर्द्धे सप्तहस्तकम् ।

अन्यत्रापि—

केचिद् हस्त लक्षहोमे द्विहस्त लक्षद्वन्द्वे वह्निहस्तं त्रिलक्षे ।
होमे कुण्ड वेदलक्षेऽब्धिहस्त प्राहुर्द्रोण्णा पञ्चक पञ्चलक्षे ॥२६०॥
रसहस्त रसलक्षे सप्तकर सप्तलक्षे स्यात् ।
वसुलक्षे वसुहस्त नवहस्ते नवकर कुण्डम् ॥२६१॥
दशलक्षे दशहस्त दशकरमेवेहकोटिहोमेऽपि ।
दशहस्तान्नहि कुण्ड परमस्ति महीतलेऽमुष्मिन् ॥२६२॥ इति ।

अत्र अथैतेषां द्विहस्तादिकुण्डविशेषाणां मानाङ्गुलक्षेत्रफलानि च लक्षणसङ्ग्रहे—

फलाङ्गुलानि यावन्ति हस्तक्षेत्रे भवन्ति हि ।
द्विहस्तस्य तु कुण्डस्य ततो द्वैगुण्यमिष्यते ॥२६३॥
हस्तक्षेत्राङ्गुलान्यत्र षट्सप्तत्या सहैव च ।
शतानि पञ्च विद्यन्ते तन्मूल मध्यसूत्रकम् ॥२६४॥
चतुर्विंशत्यङ्गुलानि विदध्याद् द्विकरे पुनः ।
अङ्गुलानि द्विपञ्चाशदेकादशशतानि च ॥२६५॥
तद्बीज मध्यतो लिक्षाचतुष्क चार्द्धसयुतम् ।
चतस्रश्च तथा यूका यवा. सप्त तथैव च ॥२६६॥
अङ्गुलानि त्रयस्त्रिंशन्मान सूत्रे तु मध्यमे ।
सप्तदशशतान्यष्टाविंशतिस्त्वङ्गुलानि च ॥२६७॥
क्षेत्रस्य तु त्रिहस्तस्य मानमेवमुदीरितम् ।
तन्मूलमङ्गुलान्येकचत्वारिंशच्चतुर्यवाः ॥२६८॥

यूकाचतुष्टयं किञ्चिन्मूल लिक्षाचतुष्टयम् ।
चतुरङ्गुलयुक्तानि त्रयोविंशच्च तानि च ॥२६९॥

चतुर्हस्तस्य कुण्डस्य मानमेवमुदीरितम् ।
मूल तस्या ङ्गुलान्यष्टचत्वारिंशन्मित भवेत् ॥२७०॥

ब्रह्मसूत्र ततः पञ्चहस्तक्षेत्राङ्गुलानि तु ।
द्विसहस्रं शतान्यष्टावशीतिर्बीजमुच्यते ॥२७१॥

षट्पञ्चाशदङ्गुलानि चतुस्त्रिशच्छतानि च ।
तन्मूलमष्टपञ्चाशदङ्गुलानि च षड्यवाः ॥२७२॥

किञ्चिद्भागाधिक यूकाद्वय सप्त करस्य च ।
वेदसंख्यसहस्राणि द्वाविंशत्सहितानि च ॥२७३॥

मूल चतुर्यवैः साक त्रिषष्टिरङ्गुलानि च ।
ब्रह्मसूत्र ततश्चाष्टहस्तक्षेत्राङ्गुलानि च ॥२७४॥

वेदसख्यसहस्राणि साष्टानि षट्शतानि च ।
अङ्गुलानि तथा सप्तषष्टि सप्तयवा पुनः ॥२७५॥

किञ्चिदून मूलमस्य नवहस्ते तु दृश्यते ।
शतानि त्वेकपञ्चाशच्चतुर्भिरधिकानि च ॥२७६॥

अशीतिरङ्गुलान्यत्र क्षेत्रमानमिद भवेत् ।
द्वासप्ततीरङ्गुलानि मूलमस्य प्रकीर्त्तितम् ॥१७७॥
फलाङ्गुलानि क्षेत्रस्य दशहस्तमितस्य च ।

सहस्राणीषुसख्यानि मुनिसख्यशतानि च ॥२७८॥
षष्टिश्च कथितान्यस्य तन्मूल ब्रह्मसूत्रकम् ।

वर्द्धयेत्पञ्चसप्तत्याधिकैः सप्तयवैस्तथा ॥२७९॥
अल्पाधिकाभ्या लिक्षाभ्या साकमेवं प्रकल्पयेत् ।

अतियत्नं समास्थाय कुण्डान्यारचयेत्सुधी. ॥२८०॥
द्विहस्तादिमितानां च निर्माण दुर्घट शिवे । इति ।

अतियत्नमिति । त्रसरेण्वादिदशहस्तपर्यन्तान्मानभेदात्सम्यग्विज्ञाय कुण्ड-विस्तारायामसमाननिम्नखात यथोक्तमानकण्ठमेखलादिक च कुर्यादित्यर्थ. । दुर्घटमतिप्रयत्नसाध्यत्वात् ।

त्रसरेण्वादिमानभेदास्तु लक्षणसङ्ग्रहे—

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥२८१॥

त्रसरेणुस्तु विज्ञेयो ह्यष्टौ स्युः परमाणवः ।
त्रसरेणोरष्टगुणो रथरेणुस्तु स स्मृतः ॥२८२॥

रथरेणवस्ते ह्यष्टौ वालाग्रं तन्मतं बुधैः ।
वालाग्राण्यष्टलिक्षा तु यूका लिक्षाष्टकं स्मृतम् ॥२८३॥
अष्टौ यूका यवं प्राहुरङ्गुलं तु यवाष्टकम् ।

रत्निरङ्गुलपर्वाणां विज्ञेयस्त्वेकविंशतिः ॥२८४॥
कर एव कलांशेन हीनोऽरत्निरुदाहृतम् ।

चत्वारि विंशतिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु ॥२८५॥ इति ।

एवं कुण्डकरणाशक्तौ होमार्थं स्थण्डिलमप्युक्तम् । शारदातिलके—

नित्यं नैमित्तिकं होमं स्थण्डिले वा समाचरेत् ।
हस्तमात्रेण तत्कुर्याद्वालुकाभिः सुशोभनम् ॥२८६॥
अङ्गुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरश्रं समन्ततः ।[1]

अन्यत्रापि—

कुण्डमेवंविधं न स्यात्[2] स्थण्डिलं वा समाश्रयेत् ॥२८७॥ इति ।

वसिष्ठसंहितायाम्—

इषुमात्रं स्थण्डिलं वा संक्षिप्ते होमकर्मणि । इति ।

क्रियासारे तु स्थण्डिले देशविशेषोऽप्युक्तः ।

होमोऽष्टदिक्षु प्राक्प्रवहः प्रागुदक्प्रवणोऽथवा ।
उदक्प्रहः प्रदेशो वा स्थण्डिलस्य स्थलं स्मृतम् ॥२८८॥

---

१. अतः परं ख पुस्तके विशेषः—

स्थण्डिलं वापि कुर्वीत सुसिद्धैः सिकतैः सितैः ।
हस्तमात्रप्रविस्तारं सुसमं त्र्यङ्गुलोन्नतम् ॥

हस्तेत्युपलक्षणं होमबाहुल्येन महदपि । अर्थात् परिमाणमिति कात्यायनवचनात् ।

२. ख. तस्मात् ।

वायवीयसंहितायाम्—

स्थण्डिल बालुकाभिश्च रक्तमृद्रजसापि वा ।
अथाग्निकार्यं वक्ष्यामि कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा ॥२८९॥
वेद्या वाप्यायसे पात्रे मृण्मये च नवे शुभे ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मजगोस्वामि-
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्त-
सिंधावष्टमस्तरङ्ग ॥८॥



नवमस्तरङ्गः

॥ अथ स्रुक्स्रुवौ ॥

तत्र सारसङ्ग्रहे—

स्रुक्स्रुवौ शिंशुपाश्वत्थश्रीपर्णीखदिराम्रजौ ।
चन्दनद्वयदेवद्रुवैकङ्कतशमीभवौ ॥१॥

विल्वोदुम्बरपालाशनागकेसरसम्भवौ ।
वकुलाशोकपुन्नागप्लक्षन्यग्रोधचम्पकैः ॥२॥
निर्मिताविति ।

शारदातिलके—

श्रीपर्णीशिंशुपाक्षीरशाखिष्वेकतम बुधः ।
गृहीत्वा विभजेद् हस्तमात्रं षट्त्रिंशता पुन. ॥३॥

विंशात्यशैर्भवेद् दण्डो वेदिस्तैरष्टभिर्भवेत् ।
एकांशेन मित कण्ठ, सप्तभागमित मुखम् ॥४॥

वेदोत्र्यशेन विस्तार कण्ठस्य परिकीर्त्तितः ।
अग्र कण्ठसमान स्यान्मुखे मार्गं प्रकल्पयेत् ॥५॥

मेखलामुखवेद्योः स्यात्परितोऽर्द्धं समानत. ।
दण्डमूलाग्रयो. कुम्भौ गुणवेदाङ्गुलैः क्रमात् ॥६॥

गण्डीयुग यमांशै. स्याद्दण्डस्यानाह ईरितः ।
षड्भिरंशै. पृष्ठभागो वेद्या कूर्माकृतिर्भवेत् ॥७॥

हंसस्य वा हस्तिनो वा पोत्रिणो वा मुखं लिखेत् ।
मुखस्य पृष्ठभागे स्यात्सम्प्रोक्तं लक्षणं स्रुचः ॥८॥

स्रुचश्चतुर्विंशतिभिर्भागैरारचयेत् स्रुवम् ।
द्वाविंशत्या दण्डमानमंशैरेतस्य कीर्त्तितम् ॥९॥

चतुर्भिरंशैरानाहः कर्षाज्यग्राहि तच्छिरः ।
अंशद्वयेन निखनेत्पङ्के मृगपदाकृतिः ॥१०॥

दण्डमूलाग्रयोर्गण्डी भवेत्कङ्कणभूषिता । इति ।
गण्डीयुगं कङ्कणाकारं कङ्कणभूषिता ॥११॥

स्वयमुक्तत्वात्[1] । 'गण्डीकङ्कणबद्धवेदि'ति **वायवीयसंहितावचनाच्च** अन्यत्र तु गण्डी कुम्भः । तत्र तस्यैवावश्यकत्वात् । **वायवीयसंहितायाम्** 'स्रुक्-स्रुवौ तैजसौ वापी'ति । स्रुक्स्रुवाभावे कुम्भसम्भवः ।

पलाशपत्रे निश्छिद्रे रुचिरे स्रुवस्रुवौ मुने ।
निदध्याद्वाऽश्वत्थपत्रे संक्षिप्ते होमकर्मणि ॥१२॥ इति ।

[2]अथैतद्रचनाप्रकारः—

तत्र शिंशुपाश्वत्थश्रीपर्णीखदिराम्रचन्दन'रक्तचन्दन'[3]देवदारुवैकङ्कतशमीपलाशोदुम्बरबिल्वपनसवकुलाशोकनागकेसरपुन्नागचम्पकवटवृक्षाणामन्यतमस्य-शुष्कमव्रणमशीर्णं घुणादिभिरदुष्टमनुद्दिष्टमानादधिकस्थूलदीर्घं समचतुरस्रं काष्ठं गृहीत्वा, तत्र मुष्ट्यङ्गुलेन चतुर्विंशत्यंगुलमानं षट्त्रिंशदंशेन विभज्य, तेषु विंशत्यंशं दण्डार्थं विभज्यावशिष्टषोडशभागेष्वग्रदेशे भागाष्टकं मुखार्थं परिकल्प्यावशिष्टभागाष्टकेन समचतुरस्रां वेदीं कृत्वा, तन्मध्ये चिह्नं कृत्वा, तच्चिह्नमवलम्ब्यार्द्धांशमानेनाभितो वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरप्येकांशमानेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, वृत्तयोरन्तराले भागत्रयनिम्नं मध्ये वृत्ताकारां कर्णिकां स्थापयन् गर्त्तं कृत्वा; तद्बहिरर्द्धांशमानेन वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरप्येकांशमानेन वृत्तान्तरं कृत्वा, वृत्तद्वयान्तरालेऽष्टदलानि परिकल्प्य, तद्बहिरर्धांशमानेन सुषमाकारां चित्रितां वा शोभां विदध्यात् ।

ततोऽग्रेऽवशिष्टाष्टांशेन वेद्यास्तृतीयांशेन पार्श्वद्वयखण्डनेन मध्ये एकांशेन कण्ठं विधाय, कण्ठतं किञ्चिदुच्चमवशिष्टैः सप्तभिरंशैरग्रे कण्ठसमानविस्तारं

---

१. ख. नास्ति । २. क, तर्यतत्र० । ३. ख. '—' चिह्नगतोंऽशो नास्ति ।

समतलमधस्तादधोऽधः क्षीयमाणविस्तारं मुखं कृत्वा, मुखेऽपि वेदिवन्मेखला परिकल्प्य, कण्ठादधोमुखस्थमेखलामभिन्दन् प्रणालिकाकारमेकाशमाननिम्न-कनिष्ठप्रदेशयोग्यं खातं कृत्वा, कर्णिकामध्यस्थखातमध्यान् मुखमध्यस्थप्रणाला-कारखातमध्ये यथा घृतं निस्सरति तथा तप्तलोहशलाकया कण्ठवेदीपरिविभेदि सुषिरं विधाय, तथैवाग्रेऽपि मुखपरिविभेदिवृत्तनिर्गमनाय कनिष्ठप्रवेशयोग्यं रन्ध्रं कुर्यात् ।

ततो वेद्याः पृष्ठभागे कूर्माकारं मध्ये किञ्चित्समतलं भूमौ यथा निश्चलं तिष्ठति तथा कृत्वा, मुखस्य पृष्ठभागे मध्ये किञ्चिन्निम्नं कृत्वा, मुखरन्ध्राधस्ता-दुच्चभागं हंसमुखाकारं, गजमुखाकारं, वराहमुखाकारं वा सुरम्यं कारयित्वा, दण्डस्याग्रे वेद्यध एकांशेन कङ्कणाकारं त्रयं, चतुष्टयं वा कृत्वा, तदधोऽशचतुष्टयेन मुखकण्ठमध्यमूलादिसुशोभितमूर्ध्वमुखं कुम्भं निर्माय, तदधः पुनरेकांशेन प्राग्व-त्कङ्कणानि कृत्वा, तदधो नवांशमानं सुवर्त्तुलं षडशमानदैर्घ्यसूत्रेण वेष्टनयोग्यस्थूलं दण्डमध्यं कृत्वा, तदधः पुनरेकांशेन कङ्कणानि तदधोंऽशत्रयेण प्राग्वदूर्ध्वमुखं कुम्भं, तदधः पुनरेकांशेन कङ्कणानि च कुर्यात् ।

इति स्रुचं निर्माय स्रुचः षट्त्रिंशद्भागेषु चतुर्विंशतिभागदैर्घ्यमग्रदेशेऽशद्व-यमानेन वर्त्तुलाकारस्थूलशिरोभागयुतं सुवर्त्तुलं स्रुवं निर्माय, तस्य मुखप्रदेशे पङ्कमध्यगतमृगपदाकारं कर्षमात्रघृतग्राहिखातं कृत्वा, तदधस्त्वेकांशमानेन प्राग्व-त्कङ्कणानि तदधोऽशचतुष्टयेन कुम्भं तत एकांशेन पुनः कङ्कणानि तत एकादशा-शमात्रं चतुरशमानदैर्घ्यसूत्रवेष्टनयोग्यस्थूलं त्यक्त्वा, पुनरेकांशेन कङ्कणानि ततोऽ-शत्रयेण कुम्भं पुनरेकांशेन कङ्कणानि च कुर्यादिति स्रुवनिर्म्माणप्रकारः ।

एवं स्वर्णरौप्यताम्रमयौ वा स्रुक्स्रुवौ कार्यौ । स्रुक्स्रुवाभावे पलाशस्य मध्यपत्रद्वयं पिप्पलदलद्वयं वा होमे ग्राह्यम् । संस्कारोऽपि स्रुक्स्रुवयोरिव पत्रयोरपि कार्यः[1] ।

॥ अथ वास्तुपूजा ॥

तत्र श्रीतन्त्रराजे—

चतुरस्राकृतिः कश्चिदसुरः सर्वनाशकः ।
पुरा तस्य वधायैव सर्वे देवाः समुद्यमम् ॥१३॥

---

१. ख० पुस्तकेऽतोऽग्रेऽयमंशो विशेषः —

विधानमालायाम्—अग्रे घृतो विनाशाय घृतो मध्ये प्रजाक्षयः ।
मूले घृतस्तु होतुश्च मृतिं दद्याच्छ्रुवो ध्रुवम् ॥
अग्रान्मध्याच्च मध्ये तु मूलान्मध्याच्च मध्यतः ।
ध्रुवः प्रधार्यो विद्वद्भिः सर्वकामार्थसिद्धये ॥

कृत्वा निहन्तुमुद्युक्तास्तैरवध्योऽभवद्वरात् ।
आवयोस्तन्निरासाय मामेत्याऽकथयस्तदा ॥१४॥

कथयास्माकमधुना तद्वा स्तुपुरुषस्य तु ।
दर्पशान्ति न चेदस्य विश्वमासीदुपद्रुतम् ॥१५॥

इत्युक्ते तैर्मया प्रोक्त निधन तस्य दुःशकम् ।
खात्वा तमवनौ तस्य शरीरे स्थापयेत्तथा ॥१६॥

नित्यशश्च त्रिपञ्चाशन्निस्पन्दाक्रमणाय वै ।
नियोज्य तेषा ये पूजाविमुखास्तै कृतानि तु ॥१७॥

सुकृतानि समादद्युर्दुष्कृतानि च कुर्वते ।
तस्मात्तेषामर्चन तु प्रत्यब्द कुर्वता सदा ॥१८॥
शुभान्येवाशु जायन्ते नैवाऽशुभकथापि च । इति ।

पदार्थादर्शे—

कश्यपस्य गृहिणी च सिंहिका,
राहुवास्तुतनयावजीजनत् ।
पूर्वजो हरिनिकृत्ताकन्धरो
दैवतैरवरजो निपातिते ॥१९॥ इति ।

महाकपिलपञ्चरात्रे—

पूर्वमासीन्महानुग्र सर्वभूतभयङ्कर ।
स देवैर्निहितो भूमौ स वास्तुपुरुष स्मृत ॥२०॥

यावद्भूमि स्थिरा लोके तावद्वास्त्वसुर[1] स्थित ।
सहारे तु लय याति देवै सर्वग्रहादिभि ॥२१॥

विस्तारोऽस्य समन्ताच्च शतकोटिसुयोजन ।
सस्थितोऽसौ धरा व्याप्य प्रोत्तान कृष्णवर्णक ॥२२॥

जानुकूर्परको वास्तोर्वह्निवायुप्रकोष्ठगौ ।
पितृपादपुटश्चायमीशमूर्द्धा हृदञ्जलि ॥२३॥
ऊर्ध्वकेश सुपीनश्च वर्त्तुलाक्षोऽसुराकृति । इति ।

अन्यत्राधोमुखतोक्ता—

१. क. ०वास्तुसुर ।

वास्त्वीशनामा ह्यसुरोऽतिकायो
देवैः पुरा दत्तवरोऽभिपूज्य. ।
शेते स भूम्या प्रविसार्य पादौ,
हस्तौ तथाऽधोवदन' सदैव ॥२४॥

ईशानेस्य शिरोनिवेशितमभूद्वास्तोष्पतेर्मारुते,
वह्नौ चापि करद्वय पदयुग नक्तञ्चरागास्थितम् ।

इति सोमशम्भु. ।

आकुञ्चितकर वास्तुमुत्तानमसुराकृतिम् ।
स्मरेत्पूजासु कुड्यादिनिवेशे त्वधराननम् ॥२५॥

जानुनी कूर्परासक्ते दिशि वातहुताशयोः ।
पैत्र्या पादयुग रौद्रया शिरोऽस्य हृदयेऽञ्जलिः ॥२६॥

मयेनोक्तम् ।

गृहाधिकरणे यत्र नार्चितो वास्तुदैवत ।
तत्र शून्य भवेत्सर्वं रक्षोविघ्नादिभिहतम् ॥२७॥

तस्माद्वास्त्वर्चन कार्यं सम्यक्सम्पदमीप्सुभिः ।
शुभकर्मणि दीक्षायां मण्डपकरणे गृहादिविधिषु तथा ।
विहितो वास्तुबलि. स्याद्रक्षोविघ्नोपशातिसपद्भ्य. ॥२८॥

महाकपिलपञ्चरात्रे—

भूमे. परिग्रहे पूर्वं शिलाना स्थापने तथा ।
जलाधारग्रहार्थं च यजेद्वास्तु विशेषतः ॥२९॥

अपरेष्वपि कार्येषु यागहोमादिकेषु च ।
वास्तुमण्डलक कुर्यात्सूत्रयित्वा सम गुरुः ॥३०॥

सुसम सुखद वास्तु विषम न सुखावहम् ।
ब्रह्माद्यादितिपर्यन्त पञ्चाशत्त्रयसयुता ॥३१॥
सर्वेषां किल वास्तूनां नायका. परिकीर्त्तिता. ।

शारदातिलके—

राक्षसं वास्तुनामान हत्वाऽधिष्ठाय तत्तनुम् ।
स्थिताश्चिपञ्चाशद्देवास्तेभ्य पूर्व बलिं हरेत् ॥३२॥

बलिमण्डलमेतेषा यथावदभिधीयते ।
पूर्वापरायत सूत्र विन्यसेद् हस्तमानतः ॥३३॥

महाकपिलपञ्चरात्रे विशेष.—

गृहप्रासादकूपाना मण्डपस्य जलस्य च ।
वास्तुमण्डलक कार्यमष्टहस्त तु नापरम् ॥३४॥

॥ अथैतच्चक्ररचनाप्रकारः ॥

सारसग्रहे—

तच्चक्रादिविधान च यथावदभिधीयते ।
कृत्वा समतलां भूमि चतुरस्राकृति शुभाम् ॥३५॥

अष्टाष्टकोद्यतपदा कोणसूत्रसमन्विताम् ।
चतुष्पदयुते तस्या मध्यकोष्ठे च देशिकः ॥३६॥

ब्रह्माणमर्च्चयेत्तत्र चतुष्पदयुते पुन ।
प्रादक्षिण्येन पूर्वादि यजेत्कोष्ठचतुष्टये ॥३७॥

आर्य्यक च विवस्वन्त मित्रमन्य महीधरम् ।
कोणार्द्धकोष्ठयोरेकमेक मन्त्री समर्चयेत् ॥३८॥

वह्न्यादीशान्तमभितो वक्ष्यमाणेष्वनुक्रमात् ।
सावित्र सविता शक्र इन्द्रजिद्रुद्रतज्जयौ ॥३९॥

आपापवत्सकौ चेति प्रोक्तास्तेऽष्टौ तु नामत. ।
कोणार्द्धकोणपार्श्वेषु वह्न्यादीशान्तमर्च्चयेत् ॥४०॥

शर्वं गुह चार्यमण जम्भक पिलपिञ्जकम् ।
चरकी च विदारी च पूतना चैव देशिक ॥४१॥

तत पूर्वादिपरितो यजेदष्टौ दिशं प्रति ।
ईशानश्चाथ पर्जन्यो जयन्तः शक्रभास्करौ ।४२॥

सत्यो वृषोऽतरिक्षश्च पूर्वाशाकोष्ठगा क्रमात् ।
अग्नि पूषा च वितथो यमोऽथ गृहरक्षक ।४३॥

गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगो दक्षिणदिग्गता ।
निर्ऋतिश्च तथा दौवारिक सुग्रीवकस्तथा ॥४४॥

वरुण. पुष्पदन्तश्च सुरः शोषाख्यरोगकौ ।
पश्चिमाशास्थकोष्ठेषु पूज्या एते यथाक्रमम् ॥४५॥

वायुर्नागस्तथा मुख्य. सोमो भल्लाटकस्तथा ।
अर्गलो दितिरप्येवमदितिश्च यथाक्रमम् ॥४६॥

कोष्ठेषूत्तरसस्थेषु देवा एते समीरिताः ।
चित्रै रजोभिरापूर्य देवताना पदानि वै ॥४७॥

व्रीहिमुद्गयवै क्षौद्रघृतदुग्धप्लुतैः क्रमात् ।
अष्टोत्तरशत चाष्टोत्तरविंशतिमेव वा ॥४८॥

प्रत्येक तैर्हुनेद् द्रव्यैर्मन्त्रैस्तद्वच्च पायसैः ।
वलि च तेषां कुर्वीत पायसैर्व्यञ्जनान्वितैः ॥४९॥
ससितैर्दुग्धकदलीफलापूपादिसयुतम् । इति

॥ अथैतच्चक्ररचनाप्रकारः पूजाविधिश्च ॥

तत्र मण्डपस्य नैर्ऋतकोणे हस्तमात्रविस्तारायामा वितस्त्युन्नता समचतुरश्रा वेदिकायताश्च नव नव रेखा' कृत्वा, समान्तरालानि चतुःषष्टिकोष्ठानि निष्पाद्य, तत्र वायव्यकोणादाग्नेयकोणगत नैर्ऋत्यकोणादीशानकोणगत चेति कर्णसूत्रद्वयमास्फाल्य, वास्तुचक्र निर्माय, तन्मध्यकोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्य, तद्बहिः, प्रागादिचतुर्दिक्षु प्रतिदिग चत्वारि कोष्ठानि मध्यकोष्ठसलग्नान्येकीकृत्य, त्रिपञ्चाशद्देवतापूजास्थानानि परिकल्प्य, तानि स्थानानि वक्ष्यमाणपञ्चवर्णरजोभिर्मनोहर यथा भवति तथा सम्यगापूर्य, पुष्पाजलिमादाय "ब्रह्मादित्रिपञ्चाशद्देवता इहागच्छतागच्छतेति पुष्पाञ्जलिप्रक्षेपेणावाह्य, "ब्रह्मादित्रिपञ्चाशद्देवताः यथास्थान तिष्ठत तिष्ठते' ति सस्थाप्य, "ब्रह्मादिभ्य इदमासनमि" ति पुरः पुष्पाञ्जलि दत्वा, सर्वमध्ये—"ॐ ब्रह्मणे नम ; पूर्वादिचतुर्दिक्षु—ॐ आर्यकाय नमः, ॐ विवस्वते नम., ॐ मित्राय नम., ॐ महीधराय नम" इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्याग्नेयादिकोणचतुष्कगतार्द्धकोष्ठाष्टकेषु प्रादक्षिण्येनाग्नेयादीशानकोणपर्यन्त 'ॐ सावित्राय नम', एव सवित्रे, शक्राय, शक्रजिते, रुद्राय, रुद्रजिते, अद्भ्यो, अपवरमकाय नम" इति सम्पूज्य, तद्बहिस्थवीथ्यामाग्नेयादिकोणचतुष्कगतसूत्र[1]--भिन्नकोष्ठचतुष्टयपार्श्वगतकोष्ठाष्टके आग्नेयादीशानपर्यन्त— ॐ शर्वाय, एव गुहाय, अर्यम्णे, जम्भकाय, पिलिपिच्छकाय, चरक्यै, विदार्यै, पूतनायै नम." इति सम्पूज्य, ततस्तद्बहिर्गतवीथीचतुष्टये प्राचीदिग्गतवीथ्यामीशानाद्याग्नेयपर्यन्तम् "ॐ ईशानाय नमः, एव पर्जन्याय, जयन्ताय, शक्राय, भास्कराय, सत्याय, वृषाय, अन्तरिक्षाय नम." इत्यष्टौ देवताः सम्पूज्य, दक्षिणवीथ्यामाग्ने-

---

१ ०चतुष्कगतकर्णसूत्र ।

यादिनैर्ऋत्यन्तम्— "ॐ अग्नये नमः, एव पूष्णे, वितथाय, यमाय, गृहरक्षकाय, गन्धर्वाय, भृङ्गराजाय, मृगाय नम" इति सम्पूज्य, तत. पश्चिमवीथ्या नैर्ऋत्यादि वायव्यान्त— "ॐ निर्ऋतये नम , दौवारिकाय, सुग्रीवाय, वरुणाय, पुष्पदन्ताय, असुराय, शोपाय, रोगाय नम" इति सम्पूज्योत्तरवीथ्या वायव्यादीशानान्त "ॐ वायवे नम , ॐ नागाय, मुख्याय, सोमाय नम , भल्लाटकाय, अर्गलाय, दित्यै, अदित्यै नम" इति गन्वपुष्पाद्यैस्त्रिपञ्चाशद्देवताः सम्पूज्य, कुण्डस्थण्डिलादौ वक्ष्यमाणविधिनाऽग्निस्थापन कृत्वा—"ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, ॐ आर्यकाय स्वाहा" इत्यादि पूजितदेवताना स्वाहान्तैर्नाममन्त्रै. प्रत्येक व्रीहियवमुद्गैर्घृतमधुदुग्धपरिप्लुतै. सघृतैः पायसैश्चैकैकद्रव्येणाष्टोत्तरशतसख्यमष्टाविंशतिसंख्य चैकैकदेवतानाम्ना हुत्वा "ॐ ब्रह्मणे एष बलिर्नम" इत्यादिपूजितदेवताभ्यस्तत्तन्नाम्ना तिलदुग्वकदलीफलापूपनानाव्यञ्जनान्वितै पायसैस्तत्तत्पदे तस्यै तस्यै बलि निवेदयेदिति वास्तुपूजाविधिः ।

अथ वास्तुदेवतानां ध्यान तन्त्रान्तरोक्तं लिख्यते—

उक्ताना सर्वदेवाना स्वरूप च निगद्यते ।
अक्षमाला स्रुव दक्षे वामे दण्ड कमण्डलुम् ॥५०॥
दधानमष्टनयन यजेन्मध्येऽम्बुजासनम् ।
सर्वे चतुर्भुजा देवा वास्तुदेहे व्यवस्थिता. ॥५१॥
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे खड्गखेटकपाणय ।
ब्रह्माण सन्निरीक्षन्ते तद्वक्त्राभिमुखाश्च ते ॥५२॥
स्वस्वस्थानस्थिताश्चैव साधारणमुदाहृतम् ।

अत्र प्रतिदैवत बलिद्रव्यभेदा मन्त्राश्चोक्ता—महाकपिलपञ्चरात्रे—

पायसोदनलाजैश्च युक्त धूपै. प्रसूनकै. ।
अक्षततिलसयुक्त माषभक्तादिमण्डितम् ॥५३॥
गृहाणेम बलि ब्रह्मन् वास्तुदोष प्रणाशय ।
गन्धादिशर्करापूप पायसोपरि सस्थितम् ॥५४॥
आर्यकाख्य गृहाणेम सर्वदोष प्रणाशय ।
चन्दनार्चित नाथ कर्पूरागुरुमण्डितम् ॥५५॥
विवस्वन्वै गृहाणेम सर्वदोष प्रणाशय ।
सगुड पायस नाथ पुष्पादिसुसमन्वितम् ॥५६॥
गृहाणेम बलि हृद्य मित्र शान्ति प्रयच्छ मे ।
माषोदन समास च गन्धादिक्षीरसयुतम् ॥५७॥

गृहाणेम महीभृत्त्वं सर्वदोष प्रणाशय ।
क्षीरखण्डसमायुक्त पुष्पादि च सुशोभितम् ।।५८।।

गृहाणेम वलिं हृद्यमाप. शान्ति प्रयच्छ मे ।
दधीदं गुडसम्मिश्र गन्धादि च सुमण्डितम् ।।५९।।

गृहाणेम वलि वत्स विघ्नमत्र प्रणाशय ।
पुष्पादि कुशपानीय कर्पूरागुरुवासितम् ।।६०।।

सावित्र वै गृहाणेम शान्तिमत्र प्रयच्छ मे ।
पिष्टक सगुड नाथ रक्तगन्धादिशोभितम् ।।६१।।

गृहाणेमं वलि सूर्य विघ्नमत्र प्रणाशय ।
शीतमन्न तथा पुष्प कुङ्कुमादिसमन्वितम् ।।६२।।

गृहाणेमं वलिं हृद्य शक्रदेव नमोऽस्तु ते ।
ओदन घृतसयुक्तं वस्त्रगन्धादिमण्डितम् ।।६३।।

गृहाणेम वलि हृद्यमिन्द्रजय नमोऽस्तु ते ।
पक्वापक्वमिद मांस वस्त्रपुष्पादिसयुतम् ।।६४।।

गृहाणेम वलि हृद्यं रुद्रदेव नमाम्यहम् ।
हृन्मास सघृत पक्व गन्धपुष्पादिसयुतम् ।।६५।।

गृहाणेम वलि रुद्रजय स्वस्ति प्रयच्छ मे ।
रक्तपुष्प समासं वै रक्तवस्त्रादिसयुतम् । ६६।।

विदारि वै गृहाणेमं रक्षोविघ्नं प्रणाशय ।
पित्त रक्तास्थिसंयुक्तं रक्तगन्धादिमण्डितम् ।।६७।।

गृहाणेम वलि पापो रक्षोविघ्न प्रणाशय ।
सघृत मांसभक्तं च वस्त्रगन्धाद्यलङ्कृतम् ।।६८।।

वलि गृहाण शर्वेम रक्षोविघ्न प्रणाशय ।
मांसपुष्पादिसंयुक्त माषभक्तोपरि स्थितम् ।।६९।।

गृहाणेमं वलि स्कन्द रक्षोविघ्न प्रणाशय ।
श्वमांसं पिष्टकैर्युक्त पक्वमासोदकान्वितम् ।।७०।।

अर्यमन्वै गृहाणेम रक्षोविघ्न प्रणाशय ।
रक्तमासोदन मत्स्य गन्धपुष्पसमन्वितम्[1] ॥७१॥

जृम्भक त्व गृहाणेम रक्षोविघ्न प्रणाशय ।
छागकर्णान्वितं मास वस्त्रगन्धादिसयुतम् ॥७२॥

पिलिपिच्छ गृहाणेम रक्षोविघ्न प्रणाशय ।
घृतेन स।धित मास वस्त्रगन्धादिसयुतम् ॥७३॥

चरकि त्वै गृहाणेमं रक्षोविघ्न प्रणाशय ।
सघृत चाक्षतान्नं च वस्त्रगन्धाद्यलङ्कृतम् ॥७४॥

गृहाणेम वलि त्वीश वास्तुदोषापहारकम् ।
उत्पल पायसैर्युक्त वस्त्रादिकसमन्वितम् ॥७५॥

गृह्णाणेमं वलिं हृद्य मेघगज नमोऽस्तु ते ।
पञ्चहस्त सुपोत च ध्वज भक्तादिमण्डितम् ॥७६॥

गृहाणेम वलि हृद्यं जिष्णुसुत नमोऽस्तु ते ।
ओदन घृतसम्पूर्णं पञ्चरत्नादिमण्डितम् ॥७७॥

गृहाणेम वलिं हृद्य देवराज नमोऽस्तु ते ।
रक्तपुष्पयुत भक्त रक्तगन्धादिभिर्युतम् ॥७८॥

गृहाणेम वलि हृद्य भास्कर त्व नमोऽस्तु ते ।
वितान धूम्रवर्णाभ गन्धादिकसुशोभितम् ॥७९॥

रक्तयुक्त गृहाणेम वलि सत्य नमोऽस्तु ते ।
इद तु मासभक्त वै रक्तवस्त्रादिपूजितम् ॥८०॥

गृहाणेम वृष वलि वास्तुदोषं प्रणाशय ।
इद तु शावल मांस नैवेद्यादिषु सयुतम् ॥८१॥

गृहाणेम वलि हृद्य व्योम शान्ति प्रयच्छ मे ।
सुवर्णपिष्टक नाथ गन्धवस्त्रादिभिर्युतम् ॥८२॥

घृतान्वित गृहाणेम सप्तजिह्व नमोऽस्तु ते ।
क्षीर लाजासमायुक्त रक्तपुष्पादिमण्डितम् ॥८३॥

---

१. ख गन्धधूप० ।

गृहाणेम बलि हृद्य पूपदेव नमोऽस्तु ते ।
दधिगन्धादिभिर्युक्त पीतपुष्पसमन्वितम् ॥८४॥
बलि वितथ गृह्णेम विघ्नमत्र प्रशामय ।
भक्त मधुप्लुत चैणरक्तवस्त्रादिमण्डितम् ॥८५॥
गृहाणेमं बलि हृद्य यमदेव नमोऽस्तु ते ।
पक्वमासोदन चैव नीलवस्त्रादिमण्डितम् ॥८६॥
प्रीतिकर गृहाणेम गृहरक्ष नमोऽस्तु ते ।
नानागन्धसमायुक्त रक्तपुष्पादिभिर्युतम् ॥८७॥
बलि गृहाण गन्धर्व सर्वदोष प्रशामय ।
इमा तु शाकुनी जिह्वा माषभक्तोपरिस्थिताम् ॥८८॥
गृहाणेम बलि भृङ्गराज शान्ति प्रयच्छ मे ।
एव घृततिलोपेत गन्धपुष्पादिसयुतम् ॥८९॥
गृहाणेम बलि हृद्य मृगदेव नमोऽस्तु ते ।
शर्करासयुत खण्ड वस्त्रगन्धादिमण्डितम् ॥९०॥
प्रीतो बलि गृहाणेम रक्षोराज नमोऽस्तु ते ।
चन्दनागुरुकाष्ठ च गन्धपुष्पादिभिर्युतम् ॥९१॥
गृहाणेम बलि हृद्य दौवारिक नमोऽस्तु ते ।
इद तु पायसं नाथ गन्धपुष्पादिमण्डितम् ॥९२॥
सुग्रीव वै गृहाणेम बलि शान्ति प्रयच्छ मे ।
यवाग्राणि त्र गोदुग्ध भक्तोपरिसुरोपितम् ॥९३॥
गृहाणेम बलि हृद्य जलराज नमोऽस्तु ते ।
माषयुक्त कुशस्तम्बघृतगन्धादिसयुतम् ॥९४॥
पुष्पदन्त गृहाणेम सर्वदोष प्रशामय ।
मधुना साधितं पिष्ट गन्धाद्यैरुपशोभितम् ॥९५॥
बलि गृहाणासुरेम सर्वदोष प्रशामय ।
घृत चान्नसमायुक्त कर्पूरादिसमन्वितम् ॥९६॥
गृहाणेम त्रलि शेष सर्वशान्ति प्रयच्छ मे ।
यवज तण्डुल नाथ गन्धपुष्पादिशोभितम् ॥९७॥

गृहाणेम बलिं रोग सर्वरोग प्रशामय ।
सघृत मण्डक चेदमन्नाद्यैरुपशोभितम् ॥९८॥

गृहाणेम बलिं हृद्यं मृगवाह नमोऽस्तु ते ।
इद तु कृसर चान्न गन्धपुष्पादिमण्डितम् ॥९९॥

पातालेश गृहाणेम विघ्नमत्र प्रशाम्यतु ।
नालिकेरोदकं भक्त पीतवस्त्रादिसयुतम् ॥१००॥

गृहाणेम बलिं मुख्य वास्तुदोष प्रणाशय ।
पायस मधुना मिश्र नानापूजोपशोभितम् ॥१०१॥

गृहाणेम बलिं सोम सर्वदोष प्रणाशय ।
ओदन घृतसम्मिश्र गन्धपुष्पसमन्वितम् ॥१०२॥

गृहाणेम बलिं हृद्य भल्लाटक[1] नमोऽस्तुते ।
माषान्न तु घृताभ्यक्त पुष्पगन्धादिमण्डितम् ॥१०३॥

गृहाणेमं बलि हृद्यमर्गलाख्य नमोऽस्तु ते ।
क्षीरखण्डसमायुक्त नानापूजोपशोभितम् ॥१०४॥

दैत्यमातर्गृहाणेम सर्वदोषं प्रणाशय ।
पोलिका मधुसम्मिश्रा वस्त्रगन्धादिसयुताम् ॥१०५॥

गृहाणेम बलिं हृद्य देवमातर्नमोऽस्तु ते ।
स्वर्गपातालमर्त्ये च ये देवा वास्तुसम्भवा. ॥१०६॥

गृह्णन्त्वमु बलिं हृद्यं तुष्टा यान्तु स्वमन्दिरम् ।
मातरो भूतवेताला ये चान्ये बलिकाङ्क्षिण. ॥१०७॥

विष्णो पारिषदा ये च तेऽपि गृह्णन्त्विम बलिम् ।
पितृभ्य. क्षेत्रपालेभ्यो बलिं दत्वा प्रकामतः ॥१०८॥
अभावादुक्तमार्गस्य कुशपुष्पादिभिर्यजेत् ।

प्रयोगसारे—

वास्तुशेषक्रियाभूत सर्वरक्षाविभूतिकृत् ।
भूतप्रीतिप्रदश्चास्मिन् दिशां बलिरुदीर्यते ॥१०९॥

---

१. ख. भल्लाट स्व ।

दिक्पालपरिषत्सर्वभूतानुद्दिश्य नामभि. ।
पूजा विसर्जनान्ता या स विज्ञेयो दिशां वलि ॥११०॥

दध्यम्बुरजनीपुष्पलाजसक्तुतिलान्धसा ।
द्रव्येण वितरेद्दिक्षु बलिं दिक्क्रमयोगतः ॥१११॥

सुराणां तेजसा चैव प्रेतानां रक्षसामपि ।
तथा जलाना प्राणानां नक्षत्राणां च यत्पुनः ॥११२॥

विद्यानामधिपाना च तान् यथोक्त्वा वलिं हरेत् ।
सवाहनपद प्रोक्त्वा परिवाराय शक्तये ॥११३॥

तत्पार्षदेभ्यश्च ततः सर्वेभ्य इति सयुतम् ।
भूतेभ्यश्च क्रमाद् भूय. प्रादक्षिण्यात्क्षिपेद्बलिम् ॥११४॥

द्विपत्पिशाचवेतालरक्षोरक्षाभयार्तिहा ।
दिशा वलिर्विशेषेण सर्वसम्पत्समृद्धिदः ॥११५॥

वास्तौ ग्रहे प्ररोहे भूतद्रोहे गृहप्रवेशे च वितते च शांतिहोमे दिशा वलि. सिद्धये प्रयोक्तव्य इति ।

वास्तूपशमन कुर्यात्समिद्भिर्वलिकर्मणा ।
होमस्त्रिमेखले कार्यः कुण्डे हस्तप्रमाणके ॥११६॥

यवैः कृष्णतिलैस्तद्वत्समिद्भिः क्षीरवृक्षजै ।
पालाशै. खादिरैर्वापामार्गोदुम्बरसम्भवैः ॥११७॥

कुशदूर्वामयैर्वापि मधुसर्पि समन्वितै. ।
होमान्ते भक्ष्यभोज्यैस्तु वास्तुदेशे वलि हरेत् ॥११८॥

अथ वास्तुपूजाफल तदकरणे फलवैपरीत्यं च श्रीतन्त्रराजे—

एव सिंहगते भानौ पूर्णाया प्रतिवत्सरम् ।
स्वगेहे वास्तुपूजा यो मण्डले तु समाचरेत्[1] ॥११९॥

न वालमरणव्याधिभूतप्रेताधिकानि च ।
न सर्वपीडा नान्योन्यकलहाद्यशुभानि च ॥१२०॥

---

१. क नमर्चयेत् ।

पुत्रपौत्रधनारोग्यपशुदासीसमृद्धिभाक् ।
अरोगी विजयी ख्यातश्चिर जीवति तद्गृहे ॥१२१॥

राजवेश्मसु सर्वत्र तथा च महिषीगृहे ।
सचिवामात्यसेनानीभवनेषु पुरे तथा ॥१२२॥

विदध्यात्प्रतिवर्षं तु प्रोक्तसिद्ध्यै तु देशिकः ।
न चेदुक्तान्यथारूपफलै. क्लेशोऽनिश भवेत् ॥१२३॥

अथाङ्कुरार्पणविधिः । तत्र सारसग्रहे—

सप्तभिर्नवभिर्वापि दिनैर्दीक्षादिनात्पुरा ।
बीजारोपणकर्मेद कर्त्तव्यं सर्वकामदम् ॥१२४॥

सिद्धान्तशेखरे—

प्रतिष्ठाया च दीक्षाया स्थापने चोत्सवे तथा ।
सम्प्रोक्षणे च शान्त्यर्थं विवाहे मौञ्जिवन्धने ॥१२५॥

सर्वमङ्गलकार्येषु कारयेदङ्कुरार्पणम् ।
प्रतिष्ठादिवसात्पूर्वं नवमे सप्तमे दिने ॥१२६॥
पञ्चमे वा तृतीये वा सद्यो वा चाङ्कुरार्पणम् ।

महाकपिलपञ्चरात्रेऽपि—

पुण्याहघोषण कृत्वा ब्राह्मणैः सह देशिकैः[1]
मङ्गलाङ्कुरसरोप कुर्यात्तत्रैव चाहनि ॥१२७॥
सप्तमान्नवमाद्वापि प्रागेव यज्ञकर्मणः । इति ।

अन्यत्राऽपि—

उत्सवेषु विविधेष्वपि दीक्षास्थापनादिपु पवित्रविधौ च मङ्गलाङ्कुरविधि विदधीत इति । तत्र पूर्वेद्युरुपोष्य नान्दीश्राद्ध स्वगृह्योक्तविधानेन विधायाङ्कुरार्पण कुर्यात् । तदुक्तम्—

गुरुर्विशुद्ध. प्रागेव शुद्धाहात्सप्तमेऽहनि ।
सङ्कल्प्योपोष्य कर्त्तव्यमङ्कुरारोपण शुभम् ॥१२८॥

कुर्यान्नान्दीमुख श्राद्धं पूर्वेद्युः स्वस्तिवाचनम् ।
स्वगृह्योक्तप्रकारेण तदेतद्विदधीत वै ॥१२९॥

१, ख. देशिकः ।

सहितायाम्—

सर्वत्राभ्युदयश्राद्ध मङ्कुरोत्पादन तथा ।
आदावेव प्रकुर्वीत कर्मणोऽभ्युदयात्मनः ॥१३०॥

शारदातिलके—

मण्डपस्योत्तरे भागे शाला पूर्वापरायताम् ।
गूढा कुर्यात्ततस्तस्या मण्डल रचयेत्सुधी. ॥१३१॥

सारसङ्ग्रहे—

मण्डपोत्तरदिग्भागे सुसवृत्ततरे परे ।
भवने मण्डल कुर्यादिके प्राग्वरुणायतम् ॥१३२॥

याम्योदीच्यायत त्वन्ये प्रवदन्ति मनीषिण. ।
पदानि द्वादशात्र स्युस्तेषु स्थानत्रय भवेत् ॥१३३॥

चतुष्टयपदोपेते[1] पदान्यापूरयेत्ततः ।
पीतरक्तसितश्यामै रजोभिर्वह्निपूर्वकम् ॥१३४॥

ईशान्त क्रमतस्त्वाहु. पात्राणि विविधानि च ।
वैष्णव्यः पालिका प्रोक्ताश्चतुर्विंशाङगुलोच्छ्रिता· ॥१३५॥

वैरिञ्च्य· पञ्चमुख्यश्चाप्युच्छ्रिता षोडशाङ्गुलै ।
शैवा शरावाश्चत्वारो भान्वङ्गुलसमुच्छ्रिता. ॥१३६॥

सिद्धान्तशेखरे—

यथासम्भवमान वा पालिकादि समाचरेत् ।इति।

तथा सारसङ्ग्रहे—

प्रक्षाल्य सूत्रै· संवेष्टच स्थानेष्वग्न्यादि विन्यसेत् ॥१३७॥

शालिपूर्णेषु गन्धादिदर्भकूर्चयुतेषु च ।
पूरयेत्तानि पात्राणि बालुकामृत्करीषकै. ॥१३८॥

मृदानयने विशेष । सिद्धान्तशेखरे—

गन्धादिभिश्च कुद्दाल पूजयित्वा दिनान्तरे ।
गीतनृत्यसमायुक्त गजवाजिसमन्वितम् ॥१३९॥

१. ख० पदोपेत ।

गुर्वादयो रथारूढा गजारूढास्तथापरे ।
गत्वा तीर तडागस्य नद्या. पुष्पवनस्य वा ॥१४०॥

तत्र शुद्धं भुवो भाग दर्भैः सम्मृज्य चास्त्रत ।
अभ्युक्ष्य चार्घतोयेन तत्तन्मन्त्रमनुस्मरन् ॥१४१॥

हृदा भूमि समावाह्य गन्धपुष्पैः समर्च्चयेत् ।
कुद्दालमस्त्रमन्त्रेण खात्वा भूमिमथो मृदम् ॥१४२॥

गृहीत्वा वामदेवेन पूरयेत्कास्यपात्रके ।
हृदा मृद च सम्मृज्य वस्त्रेणाच्छाद्य धारयेत् ॥१४३॥

पुर वा निलय वापि सर्वमङ्गलनि स्वनैः ।
गुरः प्रदक्षिण कृत्वा मण्डप त्वानयेत्तत ॥१४४॥
एतत्कर्म दिवा काले कुर्याद्रात्रौ न बुद्धिमान् ।

सारसङ्ग्रहे—

शखस्वनेन नादैश्च पञ्चभिर्ब्राह्मणाशिपा ।
क्षालयेद् दुग्धववीजैस्ततो वीजानि निर्वपेत् ॥१४५॥

सारस्वतमते—

वीजानि तानि प्रक्षाल्य जलक्षीरेण च क्रमात् ।इति।

शारदातिलके—

सुधाबीजेन वीजानि दुग्धे प्रक्षाल्य मन्त्रवित् ।
मूलमन्त्रेण जप्तानि पञ्चघोषपुर सरम् ॥१४६॥

आशीर्वाग्भिर्द्विजातीना मङ्गलाचारपूर्वकम् ।
निर्वपेत्तेषु पात्रेषु देशिको यतमानस. ॥१४७॥

जप्तानीत्यत्र जपसख्याष्टोत्तरशतम् । तदुक्तम्—

महाकपिलपञ्चरात्रे—

सख्यानुक्तौ शतं साष्ट सहस्र वा जपादिषु । इति ।

पञ्चघोषास्तु पटहझञ्झामृदङ्गमुखवाद्यशङ्खाः ।

सारसग्रहे वीजान्युक्तानि—

तानि प्रियङ्गुश्यामाकतिलसर्षपशालयः ।
मुद्गाढकीसुनिष्पावखल्वमाषाः प्रकीर्त्तिता ॥१४८॥

शारदातिलके—

शालिश्यामाढकीमुद्गतिलनिष्पावसर्षपाः ।
कुलत्थकङ्गुमाषाश्च बीजान्यङ्कुरकर्मणि ॥१४६॥

निष्पावा. वल्लाः न तु राजमाषा. 'निष्पावान् राजमाषाश्च सुप्ते देवे विवर्जयेदि'ति पृथगुक्तेः । सर्वाणि बीजान्येकीकृत्य प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा निशाया निर्वपेत् । तदुक्तम्—

सिद्धान्तशेखरे—

बीज मुख्येन मूलेन प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुख ।
वापयेत्सर्वबीजानि पालिकादिष्वनुक्रमात् ॥१५०॥
बीजानामधिप. सोमस्तस्माद्रात्रौ तु निर्वपेत् ।

सारस्वतमते—

बीजानां दैवत सोम. स रात्रौ कान्तिमान्यतः ।
तस्माद् गुरुस्तु बीजानि निशायामेव वापयेत् ॥१५१॥

एतेषु बीजेषु पूज्यदेवता अत्रैवाह—

स्कन्द प्रियङ्गौ निष्पावे वायुमग्निं कुलत्थके ।
आढक्या निर्ऋतिं सोम मुद्गे वैवस्वत तिले ॥१५२॥
प्रजापति शालिपुञ्जे त्वनन्त सर्षपेऽर्चयेत् ।
इन्द्र श्यामे च माषेषु वरुण च नगात्मजे ॥१५३॥

हरिद्रासेचने मन्त्रः प्रयोगसारे—

त्र्यम्बकाय देवाय शङ्कराय शिवाय च ।
सर्वलोकप्रधानाय शास्वताय नमो नम. ॥१५४॥

सिद्धान्तशेखरे तु प्रत्यह तेषु सोमपूजाप्युक्ता ।

विकीर्याऽनेन मन्त्रेण हरिद्राचूर्णमिश्रितम् ।
तोय प्रवर्षयेत्तेषु सिञ्चेत्तान्वै दिन प्रति ॥१५५॥ इति ।
सोम सम्पूजयेन्नित्यमधिवासदिनावधि ।
अधिवासदिने प्राप्ते सोममुद्वासयेद् गुरु ॥२५६॥ इति ।

सारसङ्ग्रहे—

हरिद्राद्भिश्च ससिच्य वस्त्रैराच्छादयेद् गुरुः ।
सन्ध्ययोरुभयो रात्रौ प्रदद्यादुत्तमं बलिम् ॥१५७॥
त्रिविधस्यापि पात्रस्य सप्तस्वपि दिनेषु च ।
प्रथमेऽहनि भूतेभ्यस्तिला लाजा हरिद्रया ॥१५८॥

दधिसक्त्वन्नमित्युक्त पितृभ्यस्तिलतण्डुला. ।
तृतीयेऽह्नि यक्षेभ्य करम्भा लाजसयुताः ॥१५६॥

चतुर्थेऽह्नि नागेभ्यो नारिकेलजलाप्लुतम् ।
सक्तुपिष्ट च सम्प्रोक्त पञ्चमे ब्रह्मणे वलिः ॥१६०॥

पद्माक्षताश्च पष्ठेऽह्नि शिवायापूपसयुतम् ।
अन्न स्यात्सप्तमे चाह्नि विष्णवे स्याद् गुडौदनम् ॥१६१॥

यदि स्यान्नवरात्र च तदोभयदिने वलि. ।
विष्णवे स्याच्च दुग्धान्न कृसर स्यात्क्रमात्तत ॥१६२॥

प्रणवाद्यैर्हृदन्तै. स्वनामभिर्वलिमन्त्रका । इति ।

करम्भा दधिसक्तवः, पद्माक्षता. पद्मवीजानि, कृसरस्तिलमुद्गै. सह सिद्ध ओदन. ।

अथैतन्मण्डलरचनाप्रकारः—

तत्र दीक्षादिनात्पूर्वमेव नवभि. सप्तभिर्वा दिनै प्राङ् निर्मितमण्डपस्योत्तर-भागे सुसवृत गृह निर्माय गोमयोपलिप्ते सुसमे भूतले प्राक्प्रत्यगायता' पञ्चहस्त-दीर्घा' पञ्चरेखा याम्योदीच्यायता वितस्त्यन्तरालाश्चैकादशरेखाः कृत्वा, चत्वा-रिंशत्कोष्ठोपेत सार्द्धद्वयहस्तविस्तारोपेत मण्डल कृत्वा, तत्र चतुर्दिग्गतचतुर्विंशति-कोष्ठान्येकीकृत्य, वीथीः कृत्वा, मध्यचतुष्कस्योभयपार्श्वयो कोष्ठद्वय मार्ज-यित्वाऽवशिष्टचतुष्कत्रयात्मक द्वादशपदोपेत विपुल मण्डल निर्माय, चतुश्चतुःकोष्ठै-रेकमेक स्थान ब्रह्मविष्णुरुद्राणा पश्चिममध्यपूर्वक्रमेण परिकल्प्य, तत्र पश्चिमा-दिचतुष्क*त्रयेऽपि प्रतिचतुष्क*—माग्नेयकोष्ठमारभ्येशानकोष्ठपर्यन्त पीतरक्तश्वेत-श्यामवर्णै रजोभि प्रतिचतुष्कमेकेन रजसैक कोष्ठमिति क्रमेण द्वादशकोष्ठान्या-पूर्य्य, वीथीचतुष्टय रक्तरजसा रेखा सर्वा श्वेतरजसा चापूर्य्य, तत्र स्थानत्रये मध्यचतुष्के विष्णुदैवत्याश्चतुर्विंशत्यङ्गुलोन्नतिविस्तृतियुक्ता डमरुकाकाराश्चतस्र. पालिका मध्ये दूर्वापिप्पलदलाम्रपल्लवै. सह सूत्रेण सवेष्टिता सस्थाप्यास्तथा पश्चिमचतुष्केऽप्येकस्मिन्पात्रे पञ्च पात्राणि यथा भवन्ति तथा शिल्पिवरनिर्मि-तानि प्राग्वद् डमरुकाकाराणि षोडशाङ्गुलोन्नतिविस्तृतियुक्तानि ब्रह्मदैव-त्यानि चत्वारि पात्राणि तथैव पिप्पलदलादियुक्तानि सस्थाप्य, तथा पूर्व-चतुष्के द्वादशाङ्गुलोन्नतिविस्तृतिभृत शिवदैवत्या. प्राग्वत्पिप्पलदलादियुक्ता-

— चिह्नगतोंशोनास्ति ख पुस्तके ।

श्चत्वारः शरावा संस्थाप्याः । इति द्वादशपात्राणि प्रक्षालितानि द्वादशकोष्ठेषु प्रतिकोष्ठमेकमेकं पात्रं शालिपुञ्जेषु गन्धाक्षतकूर्च्चयुक्तेषु संस्थाप्य, तानि पात्राणि वालुकामृत्करीषैः सम्पूर्य्य, प्रियङ्ग्वादिदशबीजानि दशपात्रेषु कृत्वा, वक्ष्यमाणपूजाक्रमेण स्वनामादिदक्षिणान्तं पङ्क्त्याकारेण संस्थाप्य, तेषु प्रियङ्गुषु "स्कदाय नमः, निष्पावेषु—वायवे नमः, आढकीषु—निर्ऋतये नमः, मुद्गेषु—सोमाय नमः, तिलेषु—वैवस्वताय नमः, शालिषु—प्रजापतये नमः, सर्षपेषु—अनन्ताय नमः, श्यामाकेषु—इन्द्राय, माषेषु—वरुणाय नमः इति गन्धादिभिः सम्पूज्य, तानि दशबीजानि एकैकस्मिन्नूतनभाण्डे स्वर्णादिरचिते मृण्मये वा प्रियङ्गुश्यामाकतिलसर्षपशालिमुद्गाढकीनिष्पावखल्वमाषाख्यानि दशधान्यान्येकीकृत्य वमित्यमृतबीजेन गोदुग्धैः प्रक्षाल्य, शङ्खस्वनादिपञ्चवाद्यघोषपुरस्सरं तेषु पात्रेषु प्रथमं ब्रह्मदैवत्येषु, ततो विष्णुदैवत्येषु, ततः शिवदैवत्येषु इति क्रमेण बीजानि निर्वाप्य, हरिद्रामिश्रितैर्जलैः संसिच्य, नूतनवस्त्रैराच्छाद्य सन्ध्ययोरर्द्धरात्रे च सप्तस्वपि दिनेषु प्रतिदिनं बलिं दद्यात् ।

तत्र प्रथमदिवसे तिललाजासक्तुशाल्योदनानि हरिद्राचूर्णयुक्तान्येकीकृत्य, कवलत्रयं निष्पाद्य, पात्रत्रये कृत्वा, त्रिविधस्यापि पात्रस्य समीपे त्रिकोणमण्डले साधारं तद्बलिपात्रं निधाय, प्रथमं ब्रह्मदैवतपात्रस्य समीपे "सर्वभूतानि इहागच्छतेह तिष्ठतेति" भूतान्यावाह्य, संस्थाप्य, "ॐ सर्वभूतेभ्यो नमः" इति गन्धादिभिः सम्पूज्य "सर्वभूतबलिद्रव्याय नमः" इति बलिद्रव्यं च सम्पूज्य हस्ततले जलं गृहीत्वा, वामहस्तेन बलिपात्रं स्पृशन् "ॐ सर्वभूतेभ्य एष बलिर्नमः" इति बलिपात्रोपरि जलं निःक्षिपन् बलिमुत्सृजेत् । एवं विष्णुपात्रसमीपे तथा शिवपात्रचतुष्कसमीपे च बलिं दद्यादिति प्रोक्तकालत्रयेऽपि **बलिदानविधिः** ।

अत्र केचिन्मण्डलस्य चतुर्दिक्षु बलिर्देय इत्याहुस्तत्र यथागुरूपदेशं कार्यमिति । ततो द्वितीयदिने पितृभ्यस्तिलतण्डुलैः प्रागुक्तपरिपाट्यैव प्रोक्तकालत्रयेऽपि बलिं दद्यात् । एवं तृतीयदिवसे यक्षेभ्यो दधिसक्तुलाजामिश्रितं बलिं दद्यात् । चतुर्थेऽहनि नागेभ्यो नालिकेरजलाप्लुतसक्तुपिष्टबलिः । पञ्चमदिने ब्रह्मणे पद्माक्षतबलिः । षष्ठदिने शिवायापूपसंयुतौदनबलिः । सप्तमे दिने विष्णवे गुडौदनबलिः । नवरात्रपक्षे तु विष्णव एवाष्टमदिने दुग्धौदनबलिः । नवमदिने कृसरबलिर्देयः । अत्र सर्वत्र बलिदाने प्रथमदिने प्रोक्त एव विधिर्ज्ञेयः । तत्तन्नाम्ना पूजनं बल्युत्सर्जनं च ज्ञेयमिति । अत्र नवस्वपि दिनेषु प्रतिदिनं तत्तद्देवताबलिदानानन्तरं दशदिक्पालेभ्योऽपि तत्तद्दिक्षु "ॐ इन्द्राय एष बलिर्नमः" इत्यादि तत्तन्नाम्ना घृतशर्करासहितपायसेन बलिर्देय इति **बीजारोपणविधिः** ।

॥ अथाङ्कुरपरीक्षा ॥ सारस्वतमते—

प्ररूढाण्यङ्कुराण्यन्यो न वीक्षेत कदाचन ।
आचार्य एव प्रविशेत्तच्छिष्यो वा तदाज्ञया ॥१६३॥

सिद्धान्तशेखरे—

यजमानाभिवृद्ध्यर्थमङ्कुराणि परीक्षयेत् ।
सम्यगूर्ध्वप्ररूढानि कोमलानि सितानि तु ॥१६४॥

धूम्रवर्णान्यपूर्णानि तथा तिर्यग्गतानि तु ।
श्यामलानि च कुब्जानि वर्जयेदशुभानि च ॥१६५॥

अवृष्टिं कुरुते रक्तं धूम्राभं कलहं तथा ।
अपूर्णं जननाशाय दुर्भिक्षं श्यामलाङ्कुरम् ॥१६६॥

तिर्यग्गते भवेद् व्याधिः कुब्जे शत्रुभयं तथा ।
अशुभे चाङ्कुरे जाते शान्तिहोमं समाचरेत् ॥१६७॥

मूलमन्त्रेण जुहुयाद् गुरुर्मन्त्रिवरैः सह ।
अघोरास्त्रेण चाज्येन शतं वाथ सहस्रकम् ॥१६८॥ इति ।

सारस्वतमतेऽपि—

प्ररूढैरङ्कुरैः कर्तुं निर्दिशेच्च शुभाशुभम् ।
श्यामैर्धूम्रैरङ्कुरैरर्थहानि—
स्तिर्यग्रूढैर्व्याधिरान्दोलितैस्तैः ।
कुब्जैर्दुःखं दुःप्ररूढैर्मृतिर्वा,
रोगो भुग्नैः स्थानदेशेऽष्टहानिः ॥१६९॥ इति ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मजगोस्वामि-
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ नवमस्तरङ्गः ॥९॥



दशमस्तरङ्गः

॥ अथ दीक्षायाः पूर्वकृत्यम् ॥

पुण्याहं वाचयित्वादौ ब्राह्मणैः स्वस्तिपूर्वकम् ।
पञ्चवाद्यनिनादैश्च वेदघोषैः सुहृद्वृतः ॥१॥

गत्वा गुरुगृहं शिष्यः प्रणम्य गुरुपादुकाम् ।
दत्वा वरणसामग्रीं सङ्कल्प्य वृणुयाद् गुरुम् ॥२॥

उच्चार्यामुकमन्त्रस्य ग्रहणाय द्विजोत्तमाः ।
गुरुत्वेनेति सम्भाष्य त्वामहं च ततो वृणे ॥३॥

इत्युक्त्वा वृणुयाच्छिष्यो वृतोऽस्मीति ततो गुरुः ।
यथोचितं गुरोः कर्म कुरुष्वेति वदेच्छिशुः ॥४॥

करवाणीति चोच्चार्य पञ्चवाद्यपुरःसरम् ।
ततः शिष्येण सहितो यायाद्यागगृहं गुरुः ॥५॥

सारसङ्ग्रहे—

पुण्याहवाचनं कृत्वा शिष्यो भक्तिपरायणः ।
हारकुण्डलकेयूरमुद्रिकाङ्गदभूषणैः ॥६॥

हेमयज्ञोपवीतैश्च मधुपर्कैर्यथाविधि ।
महार्घवस्त्रैस्ताम्बूलफलपुष्पसुगन्धकैः ॥७॥

अवित्तशाठ्यमभ्यर्च्य यथावद् वृणुयाद् गुरुम् ।
ऋत्विजोऽपि तथाऽभ्यर्च्य वृणुयादुक्तसंख्यकान् ॥८॥

मधुपर्कविधानमुक्तं डामरे—

मधुपर्कविधानं ते यथावत्कथयाम्यहम् ।
श्रीपर्णीवृक्षपीठानि हस्तमानानि मानतः ॥९॥

अष्टाङ्गुलसमुच्छ्रायसहितानि समानि च ।
सप्तविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रे ग्रन्थिभूषिता ॥१०॥

विष्टरे सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्त्तितम् ।
सुकोष्णोदकसम्पूर्णाः पाद्यार्थे ताम्रगड्डुका ॥११॥

शङ्खा अर्घप्रदानाय गन्धपुष्पजलान्विता ।
दूर्वोदकसमायुक्ताः स्थापनीया पृथक् पृथक् ॥१२॥

सुताम्रस्य कमण्डलुश्च आचम्योदकपूरिता ।
सम्पुटा मधुपर्कार्थं कांस्या दध्यादिपूरिताः ॥१३॥

महान्त्यर्घाणि वस्त्राणि मुद्रिकाद्य सुभूषणम् ।
मयूरपत्रच्छत्राणि सोष्णीषाणि समाहरेत् ॥१४॥

पादुका आहरेत्तत्र चार्मभूषणभूषिता. ।
अन्यत्स्मार्त्त यदस्त्युक्त मधुपर्कस्य पूजने ॥१५॥

तत्कृत्वा फलमाप्नोति महायज्ञार्हणोपमम् ।
अन्येभ्यो मधुपर्कस्य विप्रेभ्य. पूजन स्मृतम् ॥१६॥

भक्त्या तद्द्विगुण दद्यादाचार्याय सुभक्तिमान् ।
अन्यैर्द्विजै. सम यत्र देशिकस्य प्रपूजितम् ॥१७॥
तस्मिन् यज्ञे फल स्वल्पमनावृष्टौ यथा क्षिते. । इति ।

सारसग्रहे—

देशिकेन्द्रो विधानेन स्नात्वा निर्वर्त्तिताह्निक. ।
मौनमास्थाय भूषाढ्यो गच्छेद्यागगृह प्रति ॥१८॥

आचार्यः पूर्वदिवसे उपवेश्य समासने ।

पूर्वदिवसे तद्दिनपूर्वभागे । प्रातरेवेत्यर्थ ।

शिष्य मूलेन सञ्जप्त दद्याद्वै दन्तधावनम् ॥१९॥

दन्तान्विशोध्य पुरतः स्थण्डिले हस्तमात्रके ।
चतुरश्रे त्याजयेत्तत्परीक्षेत ततो गुरुः ॥२०॥

ईशानाग्रे ज्ञानलाभः प्रागग्रे भूतिरुत्तमा ।
आग्नेयाग्रे मनस्तापो बन्धुनाशश्च दक्षिणे ॥२१॥

राक्षसाग्रे मृत्युभय वारुण्यग्रे मन.शुचे ।
वायव्याग्रे व्यग्रता च कौवेराग्रे सुखावहम् ॥२२॥
अमङ्गलस्थानपाते प्रायश्चित्त समाचरेत् ।

प्रायश्चित्त तु—

दुर्निमित्तविनाशाय जुहुयाच्छतमस्त्रतः ॥२३॥ इति ।

वायवीयसंहितायाम्—

अप्रशस्ताशामुखे तस्मिन् गुरुस्तद्दोषशान्तये ।
शतमर्द्धं तदर्द्धं वा जुहुयान्मूलमन्त्रत ॥२४॥ इति ।

क्षारसंग्रहे—

ततः स्वप्नपरीक्षां च कुर्याद्देशिकसत्तमः ।
क्रूरस्वप्नेऽधमा दीक्षा ह्यक्रूरे मध्यमा मता ॥२५॥
उत्तमस्वप्नपूर्वा तु दीक्षा सर्वोत्तमा मता ।

स्वप्नलक्षणानि तन्निवेदनप्रकारश्चाग्रे वक्ष्यते । तथा—

एव विचार्य ततो गुरुः पूजा समाचरेत् ॥२६॥
विश्रायाऽऽचमनं तत्र सामान्यार्घं विधाय च ।

द्वारपूजोक्तैव ।

अर्घोदकेन सम्प्रोक्ष्य द्वारपूजां समाचरेत् ॥२७॥
ततश्च देशिको विद्वान् दिव्यानालोकनेन च ।
अन्तरिक्षगतानस्त्रोदकैरुत्सारयेत् क्रमात् ॥२८॥
पार्थिवान्पार्ष्णिघातैश्च त्रिभिरुत्सार्य यत्नतः ।
अङ्ग सङ्कोच्य किञ्चित्तु शाखा वामगता स्पृशन् ॥२९॥
उत्सारितानां विघ्नाना ददद्वर्त्म तु दक्षिणे ।
पादेन दक्षिणेनाथ प्रविशेद्यागमण्डपम् ॥३०॥

दक्षिणपादपुर सर प्रवेश. पुर्न्दैवतविषयः । शाक्ते तु वामपादपुरःसरमेव ।

वामपाद पुरस्कृत्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ।

इति त्रिपुरार्णववचनात् । तथा—

ब्रह्माण वास्त्वधीश च नैर्ऋत्या दिशि पूजयेत् ।
अर्घाम्बुना च गव्ये यागस्थाने सुपिञ्चिते ॥३१॥
वीक्षणाद्यैस्तत. शुद्धि चतुर्द्वारान्तमाचरेत् ।
संवीक्ष्य मूलमनुना ह्यस्त्रेण प्रोक्षयेत्तत. ॥३२॥
कुर्यात्ताडनमस्त्रेण कवचेनाऽस्य सेचयेत् ।
श्रीखण्डागुरुचन्द्रैश्च धूपितेऽस्त्रेण सप्तधा ॥३३॥
जप्तान् चन्दनसिद्धार्थदूर्वाभस्माक्षतान् कुशान् ।
सलाजान्दिकिरेन्मन्त्री प्रत्यूहघ्नान् हि मण्डपे ॥३४॥
मार्जयेदस्त्रमन्त्रेण तान्मन्त्री दर्भमुष्टिना ।
आसनाय तु वर्द्धन्या ईशाने स्थापयेच्च तान् ॥३५॥

पुण्याहं वाचयित्वाऽथ विप्रान्सतोष्य यत्नतः ।
वेदिकाया लिखेत्पश्चात्सर्वतन्त्रानुसारत ॥३६॥
तल्लक्षणमथो वक्ष्ये सर्वतन्त्रानुसारतः ।
देशिको वेदिकामध्ये गोमयेनोपलेपिते ॥३७॥
पूर्वोक्तक्रमयोगेन चतुरश्र प्रकल्पयेत् ।
चतु कोष्ठसमायुक्त [1]कर्णसूत्रविभूषितम् ॥३८॥
तत्र कोष्ठचतुष्कान्त.सूत्राणा स्याच्चतुष्टयम् ।
कोणाख्यकोष्ठमध्येषु दृश्यन्ते मत्स्यका यथा ॥३९॥
ऐन्द्रवारुणग युग्म सौम्ययाम्यगत द्वयम् ।
मकरेष्वेषु सूत्राणि दद्याच्चत्वारि मन्त्रवित् ॥४०॥
पूर्वपश्चिमग तद्वद्दक्षिणोत्तरग पुन ।
मकरान्पूर्ववत्कुर्यात्तत्र सूत्राणि पातयेत् ॥४१॥
शतयुग्म च पश्चागत्षट्पदानि यथा पुन ।
प्रादुर्भवन्ति सूत्राणि रम्याण्येव विकाशयेत् ॥४२॥
षट्त्रिंशत्कोष्ठके मध्ये सरोज परिकल्पयेत् ।
तद्बहि परितः पीठमेकपङ्क्त्या प्रकल्पयेत् ॥४३॥
पङ्क्तिद्वयेन तद्बाह्ये वीथीकल्पनमीरितम् ।
ततोऽन्त्यपङ्क्तियुग्मेन द्वारशोभे विधानत ॥४४॥
उपशोभाश्च कोणानि मन्त्रवित्परिकल्पयेत् ।
अथ वक्ष्ये विधानेन सरोजलिखनक्रमम् ॥४५॥
सरोजस्थानज भाग द्वादश तु परित्यजेत् ।
ततो वृत्तत्रय मध्ये कुर्यात्सम्यग्यथाविधि ॥४६॥
कर्णिका मध्यवृत्तेन द्वितीयेन तु केसरान् ।
अन्त्यवृत्तेन पत्राणि पत्राग्र त्यक्तभागतः ॥४७॥
अन्त्यवर्त्तुलमध्यस्य परिमाण तु यद्भवेत् ।
किञ्जल्काग्रेषु सस्थाप्य पार्श्वतस्त्वर्द्धचन्द्रकान् ॥४८॥
सलिख्य सन्धिसम्बद्धसूत्रन्यास विधाय च ।
दलाग्रमानतो वृत्त कुर्यात्सम्यग्विचक्षण ॥४९॥

---

१ ख. वर्णसूत्र० ।

वृत्तान्तर्मध्यसूत्रस्य पार्श्वयोस्तु यथाविधि ।
बहि. करेण कुर्वीत पत्राग्राणि विधानवित् ॥५०॥

किञ्जल्कान्यत्र मूलेषु द्विश. कुर्वीत देशिक. ।
सामान्य कमल ह्येतत् शास्त्रे सर्वत्र गीयते ॥५१॥

त्रिभि. पादैस्तु पीठस्य पादान्कोणेषु कल्पयेत् ।
अतिरिक्तै. पदैः पीठगात्राणि रचयेत्तत. ॥५२॥

वीथीपङ्क्तिद्वय सम्यगेकीकृत्य प्रमार्जयेत् ।
ततो द्वाभ्या चतुर्भिश्च कोष्ठैर्द्वारचतुष्टयम् ॥५३॥

चतुर्दिक्षु विधानेन रम्याकार प्रकल्पयेत् ।
कोष्ठत्रयेण चैकेन प्रत्येक द्वारपार्श्वयो. ॥५४॥

शोभा भवन्त्यतः कोष्ठैरेकतस्त्रिभिरेव च ।
उपशोभास्तत. कोष्ठै' षड्भि. कोणानि कल्पयेत् ॥५५॥

रजोभिर्भूषयेत्पञ्चवर्णैरेतत्तु मण्डलम् ।
निशारजो भवेत्पीत शुक्ल तण्डुलज स्मृतम् ॥५६॥

रक्त कौसुम्भमुद्दिष्ट कृष्णमाहुर्मनीषिण ।
पुलाकदाहसम्भूत श्याम विल्वच्छदोद्भवम् ॥५७॥
पञ्चवर्णाः समाख्याता दीक्षामण्डलकर्मणि ।

शारदातिलकेऽपि—

पीत हरिद्राचूर्णं स्यात् सित तण्डुलसम्भवम् ।
कुसुम्भचूर्णमरुण कृष्ण दग्धपुलाकजम् ॥५८॥
विल्वादिपत्रक श्याममित्युक्त वर्णपञ्चकम् ।

'स्यात्पुलाकस्तुच्छधान्ये' इत्यमरः ।

महाकपिलपञ्चरात्रे—

पीत क्षितिस्तु विज्ञेया शुक्लमाप' प्रकीर्त्तिता ।
तेजो वै रक्तवर्णं स्यात् श्याम वायु प्रकीर्त्तितः ॥५९॥

आकाश कृष्णवर्णं तु पञ्चम तु महामुने ।
सिते तु देवता रुद्रो रक्ते ब्रह्मादिदेवताः ॥६०॥

पीते तु देवता विष्णु. कृष्णे चैवाच्युतः स्मृत. ।
श्यामे तु देवता नागः समाख्यातो मयाऽनघ ॥६१॥

शुक्ल ग्रहापदो हन्ति रक्त क्रूरगणोद्भवम् ।
कृष्ण सर्वासुरोत्साह नील वैनायकी तथा ॥६२॥
पैशाची राक्षसी चैव निहन्ति हरित रजः ।
तस्माद् होमेऽभिषेके च योगे चैव विशेषतः ॥६३॥
वर्त्तयेन्मण्डल तैस्तु देवसन्तुष्टिकारकम् । इति ।

तन्त्रान्तरे तु विशेष.—

शक्तस्तु वाञ्छेद्यदि सिद्धिमुग्रा,
तद्वर्णरत्नैरिह मण्डलानि ।
आभूषयेन्मौक्तिकपुष्परागमाणिक्यनीलैर्हरितैश्च रत्नैः ॥६४॥ इति ।

तथा —उत्सेधतारतो रेखा. शुक्ला अङ्गुलमानत तारो विस्तारः ।

सर्वा सीमागता कार्या. शुक्ला मण्डलकर्मणि ॥६५॥
पीतवर्णेन चूर्णेन कर्णिका पूरयेत्ततः ।
किञ्जल्कानुक्तवर्णेन[1] दलानि श्वेतवर्णतः ॥६६॥
श्यामेन रजसा सन्धीन् मन्त्रविच्चाभिपूरयेत्[2] ।
*अथवा कर्णिका मन्त्री पीतेनैव प्रपूरयेत् ॥६७॥
किञ्जल्कान् पीतरक्तेन रक्तेनैव दलान्यपि ।
कृष्णेन रजसा सन्धीन् कुर्यान्मन्त्रवित्तमः* ॥६८॥
[3]पीतेनैवाथ कृष्णेन पीठगर्भप्रपूरणम् ।
पीठपादांस्तु रक्तेन पीठगात्राणि शुभ्रत ॥६९॥
वीथीचतुष्कमध्येषु कल्पवल्ली प्रकल्पयेत् ।
पत्रमूलफलाकारमण्डिता हृदयङ्गमा. ॥७०॥
नानावर्णरजोभिस्ता रञ्जयेत्कुशली गुरु. ।
शुभ्रेण रजसा द्वारचतुष्क पूरयेत्तत· ॥७१॥

---

१. ख० रक्तवर्णेन ।
२. ख. कुर्यान्मन्त्रविदुत्तमः । *—* चिह्नान्तर्गतांशो नास्ति ख. पुस्तके ।
३. ख पीतेन वाथ ।

रक्तवर्णेन तच्छोभाः पीतेनैवोपशोभिकाः ।
कृष्णवर्णेन कोणानि वहीरेखात्रय ततः ॥७२॥

शुक्लारुणाख्यकृष्णैस्तु रजोभिर्भूषयेत्क्रमात् ।
सामान्य सर्वतोभद्रमण्डल ह्येतदुत्तमम् ॥७३॥

वसिष्ठसंहितायां दलेषु विशेषः —

पीत पूर्वे सित देय पश्चिमेऽप्युत्तरे तथा ।
रक्त तु दक्षिणे कृष्ण पाटल वह्निसस्थितम् ॥७४॥

नैर्ऋत्ये नीलवर्णं च वायव्ये धूम्रवर्णकम् ।
ईशे गौर विनिर्दिष्टमष्टपत्रेष्वय क्रम ॥७५॥

अथैतन्मण्डलरचनाप्रकारः—

तत्र प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायता समान्तराला सप्तदश सप्तदश रेखाः कृत्वा, षट्पञ्चाशदुत्तरशतद्वयकोष्ठयुत चतुरश्रमण्डल कृत्वा, तन्मध्यगतषट्त्रिंशत्कोष्ठान्येकीकृत्य, तद्बहिश्चतुर्दिक्ष्वेकपङ्क्तिं परितः सम्मार्ज्यैकीकृत्य, पीठ परिकल्प्य, तद्बहिरपि चतुर्दिग्गतपङ्क्तिद्वयमेकीकृत्य, सम्मार्ज्य, वीथी परिकल्प्य, सर्वमध्यगतसरोजस्थाने बहि परितो द्वादशन[1] भाग परित्यज्य, सर्वमध्यावलम्बनेन समान्तराल वृत्तत्रय सम्पाद्य, तत्र सर्वमध्यवृत्तमध्ये कर्णिकां परिकल्प्य, तद्बहिर्गतवृत्तवीथी केसरार्थं परिकल्प्य, केसरस्थान षोडशधा विभज्य, तच्चिह्नावलम्बनेन [2]द्वितीयतृतीयवृत्तयोरन्तरालमानसूत्रमानेन गुरूक्तयुक्त्या, षोडशार्द्धचन्द्रान्परिकल्प्य, तैरष्टदलानि कृत्वा, तृतीयवृत्ताद्बहिस्त्यक्तैकांशतो मध्यचिह्नावलम्बनेन वृत्तान्तर निष्पाद्य, गुरूक्तयुक्त्या पत्राग्राणि विधायैकैकदलमूले केसरद्वय यथा दृश्यते तथा विरच्य,[3] पद्म कृत्वा, पद्मबहिर्गतैकपङ्क्तिरूपचतुरश्रपीठस्य कोणचतुष्टयेऽपि कोष्ठत्रयेण कोष्ठत्रयेण पीठपादान्परिकल्प्यावशिष्टकोष्ठैरेकीभूतै पीठगात्राणि विधाय, तद्बहिर्गतपङ्क्तिद्वयकोष्ठानि सम्यक्प्रमार्ज्य, वीथीविधाय, तद्बहिर्गतपङ्क्तेश्चतुर्दिक्षु मध्ये मध्यकोष्ठद्वयमेकीकृत्य, सर्ववाह्यगतपङ्क्तेरपि चतुर्दिक्षु प्रतिदिश कोष्ठचतुष्टयमार्जनेन द्वारचतुष्टयं परिकल्प्य, द्वारचतुष्टयस्यापि पार्श्वयोः पङ्क्तिद्वयगतकोष्ठेषु अन्तःपङ्क्तेः कोष्ठत्रय वहिःपङ्क्ते कोष्ठमेकमिति कोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्य, शोभा विधाय, तत्पार्श्वयोरप्यन्तःपङ्क्ते कोष्ठमेक वहिःपङ्क्तेः कोष्ठत्रयमिति कोष्ठचतुष्टय

१ ख द्वादशं ।   २. ख. 'तृतीय' इति नास्ति ।   ३. ख. विरचय्य ।

कोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्योपशोभाः परिकल्प्यावशिष्टैः षड्भिः षड्भिः कोष्ठैश्चत्वारि कोणानि कल्पयेदिति सर्वतोभद्रमण्डलं निर्माय, सरोजकर्णिकाकेसरदलदलाग्र-पीठवीथीद्वारशोभोपशोभाकोणस्थानानि पञ्चवर्णरजोभिर्भूषयेत् ।

पञ्चवर्णरजांसि तु—हरिद्राचूर्णं पीतं रजः, तण्डुलचूर्णं शुक्लं, कुसुम्भचूर्णं रक्तं, दग्धतुच्छधान्यचूर्णं कृष्णवर्णम्, बिल्वपत्रचूर्णं श्याममिति ।

रजोविन्यासप्रकारस्तु—सीमागताः सर्वा रेखा शुक्लरजसा एकाङ्गुलोत्सेधविस्तारयुताः कार्याः । पीतरजसा कमलकर्णिका केसराणि च समापूर्य, शुक्लरजसा दलानि च सम्पूर्य, श्यामरजसा दलसन्धीनापूरयेत् । अथवा कर्णिका पीतेन, केसरान् पीतरक्ताभ्यां, दलानि रक्तेन, दलसन्धीन् कृष्णेन रजसा सम्पूर्य, पीतेन कृष्णेन वा पीठगर्भमापूर्य, पीठपादान् रक्तेनापूर्य, पीठगात्राणि शुभरजसाऽऽपूर्य, वीथीचतुष्टये कल्पवल्ली कोरकपुष्पपल्लवफलमण्डिता नानावर्णरजोभिरारचय्य, शुभ्रेण रजसा द्वारचतुष्कमापूर्य, रक्तवर्णेन द्वारशोभा, पीतेनोपशोभा, कृष्णेन कोणानि चापूर्य, तद्बहीरेखात्रयमेकैकाङ्गुलान्तरालं शुक्लरक्तकृष्णरजोभिः कुर्यादिति **सर्वतोभद्रमण्डलनिर्माणविधिः** ।

अन्यानि मण्डलान्यत्र वक्ष्यन्ते च प्रसङ्गतः ।
पूर्वोक्ते चतुरश्रे तु तावत्सूत्राणि पातयेत् ॥७६॥

यावत्स्यात्कोष्ठशतकं चत्वारिंशत्समन्वितम् ।
वेदान्वितं तु तन्मध्ये पद्मं षट्त्रिंशता शुभम् ॥७७॥

एकपङ्क्त्या भवेत्पीठं वीथिका नात्र दृश्यते ।
पूर्ववद् द्वारशोभा स्यादुपशोभाऽत्र नास्ति वै ॥७८॥

षड्भिः कोष्ठैस्ततः कुर्यात्कोणानि प्रोक्तवर्त्मना ।
अन्यत्सर्वं विधातव्यं पूर्वमण्डलवच्छुभम् ॥७९॥

एतन्मण्डलमन्यत्तु चतुरस्रे सुशोभने ।
पातयेत्क्रमशः सूत्रं यावत्कोष्ठानि सर्वतः ॥८०॥

चतुष्पष्टिमितान्यत्र जायन्ते तत्र मध्यतः ।
चतुर्भिः पङ्कजं कार्यं चतुष्कं तत्समन्ततः ॥८१॥

वीथीः कुर्यान्मण्डलान्तर्दिग्गतेषु चतुर्ष्वपि ।
चतुष्केषु[1] तु पद्मानि विदध्यान्मन्त्रिकोविदः ॥८२॥

१. ख. चतुर्ष्वपि ।

पानीय प्रोक्षणीसस्थ त्यक्त्वा सम्पूर्य पूर्ववत् ।
उपचारैश्चन्दनाद्यैर्मण्डल पूजयेद् गुरु. ॥१०८॥
पूरयेत्कर्णिका पूर्व शालिभिस्तण्डुलैस्तत. ।

शारदातिलकेऽपि—

तनस्तन्मण्डल मन्त्री गन्धाद्यैः साधु पूजयेत् ।
शालिभि कर्णिकामध्यमापूर्योपरि तण्डुलैः ॥१०६॥

शालितण्डुलप्रमाणं पदार्थादर्शे—

शालीस्तु कर्णिकाया च निक्षिप्याढकसम्मितान् ।
तण्डुलाश्च तदष्टाशान्…… ……… …॥११०॥ इति ।

आढकलक्षणं तु पिङ्गलामते—

गुञ्जाभिर्दशभिर्माषैः शाणो माषचतुष्टयम् ।
द्वौ शाणौ धटक कोलो वदर द्रक्षणश्च स ॥१११ ।

तौ द्वौ पाणितल कर्ष सुवर्णं कवलग्रह. ।
पिचुर्विडालपदक तिन्दुकीक्षश्च तद्द्वयम् ॥११२॥

शुक्तिरष्टमिका ते द्वे पल बिल्व चतुर्थिका ।
मुष्टिराम्र प्रकुञ्चोऽय द्वे पले प्रसृतिस्तथा ॥११३॥

भविष्यत्पुराणे—

पलद्वय तु प्रसृत द्विगुणं कुडव मतम् ।
चतुर्भि कुडवै प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकः ॥११४॥

आढकैस्तैश्चतुर्भिश्च द्रोणस्तु कथितो बुधैः ।
कुम्भो द्रोणद्वय शूर्प खारी द्रोणास्तु षोडश ॥११५॥ इति ।

शारदातिलके—

अलङ्कृत्य पुनस्तेषु दर्भानास्तीर्य तन्त्रवित् ।
कूर्चमक्षतसयुक्त न्यसेत्तेषामथोपरि ॥११६॥

सारसङ्ग्रहे—

छिन्नमूला. कुशा दीर्घाः सप्तविंशतिसंख्यकाः ।
ब्रह्मग्रन्थियुतास्त्वग्रदेशे कूर्च इहोच्यते ॥११७॥

डामरेऽपि—

सप्तविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रे ग्रन्थिभूषिता ।
विष्टरे सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्त्तितम् ॥११८॥

शारदातिलके—

आधारशक्तिमारभ्य पीठं मन्त्रमयं यजेत् ।
अथ कूर्मशिलारूढां शरच्चन्द्रनिभप्रभाम् ॥११९॥

आधारशक्तिं प्रयजेत्पङ्कजद्वयधारिणीम् ।
मूर्ध्नि तस्याः समासीनं कूर्म्मं नीलाभमर्चयेत् ॥१२०॥

ऊर्ध्वे ब्रह्मशिलासीनमनन्तं कुन्दसन्निभम् ।
यजेच्चक्रधरं मूर्ध्नि धारयन्तं वसुन्धराम् ॥१२१॥

तमालश्यामलां तत्र नीलेन्दीवरधारिणीम् ।
अभ्यर्चयेद्वसुमतीं स्फुरत्सागरमेखलाम् ॥१२२॥

तस्यां रत्नमयं द्वीपं तस्मिंश्च मणिमण्डपम् ।
यजेत्कल्पतरूंस्तस्मिन् साधकाभीष्टसिद्धिदान् ॥१२३॥

अधस्तात्पूजयेत्तेषां वेदिकां मण्डलोज्ज्वलाम् ।
पश्चादभ्यर्च्चयेत्तस्यां पीठं धर्मादिभिः पुनः ॥१२४॥

रक्तश्यामहरिद्रेन्द्रनीलाभान् पादरूपिणः ।
वृषकेसरिभूतेभरूपान् धर्मादिकान्यजेत् ॥१२५॥

गात्रेषु पूजयेत्तांस्तु नञ्पूर्वानुक्तलक्षणान् ।
आग्नेयादिषु कोणेषु दिक्षु वाऽथाम्बुजं यजेत् ॥१२६॥

आनन्दकन्दं प्रथमं सविन्नालमनन्तरम् ।
सर्व्वतत्त्वात्मकं पद्ममभ्यर्च्य तदनन्तरम् ॥१२७॥

मन्त्री प्रकृतिपत्राणि विकार[1]मयकेसरान् ।
पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यां कर्णिकां पूजयेत्ततः ॥१२८॥

कलाभिः पूजयेत्सार्द्धं तस्यां सूर्येन्दुपावकान् ।
प्रणवस्य त्रिभिर्वर्णैरथ सत्वादिकान्गुणान् ॥१२९॥

---

१. ख विकार ।

चतुष्कानि विदिक्स्थानि चत्वारि विभजेत्सुधीः ।
यावत्षोडशकोष्ठानि भवन्त्येतानि मार्जयेत् ॥८३॥

तथा यावत्स्वस्तिकानामाकारः प्रकटीभवेत् ।
रजोभिः शुक्लहारिद्ररक्तनीलैः प्रपूरयेत् ॥८४॥

स्वस्तिकानीगतश्चान्यत्पूर्ववत्परिकल्पयेत् ।
उदितं मण्डलं ह्येतन्नवनाभं सुशोभनम् ॥८५॥

एतदेवोक्तमार्गेण त्रिस्वस्तिकमनुत्तमम् ।
मण्डलं स्यात्तु पञ्चाब्जं सर्वकामफलप्रदम् ॥८६॥

दीक्षायां वा महादाने देवपूजाव्रतादिषु ।
एतन्मण्डलमध्ये तु कुर्यादन्यतमं बुधः ॥८७॥
वेदिकायामासने स प्राङ्मुखः संविशेदथ ।

श्रीविद्यादीक्षायां तु मण्डलस्थाने श्रीचक्रनिर्माणमुक्तम् । तथा च—
ललिताविलासे—

इत्थं श्रीचक्रमुद्धृत्य सिन्दूरेणातिसुन्दरम् ।
वेदिकायामासने स्वे प्राङ्मुखः पूजिते विशेत् ॥८८॥ इति ।

एतद्रचनाप्रकारस्तु श्रीविद्याप्रकरणेऽभिधेयः ।
बद्धपद्मासनो मौनी ऋजुकायो जितेन्द्रियः ॥

शारदातिलके—

उक्तेषु मण्डलेष्वेकं वेदिकायां समालिखेत् ।
विशेन्मृद्वासने मन्त्री प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥८९॥

बद्धपद्मासनो मौनी समाहितजितेन्द्रियः ।
स्थापयेद्दक्षिणे भागे पूजाद्रव्याणि देशिकः ॥९०॥

सुवासिताम्बुसम्पूर्णं सव्ये कुम्भं सुशोभितम् ।
प्रक्षालनाय करयोः पात्रं पश्चान्निवेशयेत् ॥९१॥

घृतप्रज्वलितान् दीपान् स्थापयेत्परितः शुभान् ।
दर्पणं चामरं छत्रं तालवृन्तं मनोहरम् ॥९२॥

मङ्गलाङ्कुरपात्राणि स्थापयेद्दिक्षु देशिकः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वामदक्षिणपार्श्वयोः ॥९३॥

नत्वा गुरुं गणेशान भूतशुद्धि समाचरेत् ।
करशुद्धि समापाद्य कुर्यात्तालत्रय ततः ॥९४॥

ऊर्ध्वोर्ध्वमस्त्रमन्त्रेण दिग्बन्धमपि देशिक ।
तेन सञ्जनित तेजोरक्षां कुर्यात्समन्तत ॥९५॥

सारसङ्ग्रहे—

भूतशुद्धि तत कृत्वा प्राणस्थापनमाचरेत् ।
न्यासादिक तत. कुर्याद्देशिको यतमानसः ॥९६॥

ऋषिं न्यसेत्ततो मूर्ध्नि छन्दो वक्त्रगत न्यसेत् ।
देवता हृदये न्यस्य मूलमन्त्रस्य देशिकः ॥९७॥

षडङ्गं विन्यसेन्मन्त्री पञ्चाङ्ग वा यथाविधि ।
यस्य मन्त्रस्य पञ्चाङ्ग नेत्र तस्य विहीयते ॥९८॥

अङ्गैर्विहीनस्य मनोरङ्ग तेनैव कल्पयेत् ।
तत्तत्तन्त्रोक्तमार्गेण न्यासानन्यान्समाचरेत् ॥९९॥

शरीरे स्वस्य मन्त्रज्ञो योगपीठं प्रकल्पयेत् ।
देहात्मके तत पीठे ध्यायेन्मन्त्रस्य देवताम् ॥१००॥
दर्शयित्वा ततो मुद्रा. स्थापयेदर्घमुत्तमम् ।
जलेन पूरिता दक्षे प्रोक्षणी स्थापयेत्तत. ॥१०१॥

तत्राल्पमल्प शङ्खाम्बु तत उत्तरतो न्यसेत् ।
पाद्यमाचमनीय च मधुपर्कं च मन्त्रवित् ॥१०२॥

ततो मूलाणुना मन्त्री प्रोक्षण्यद्भि. समाहित ।
स्वात्मान मण्डल चान्यपूजोपकरणादिकम् ॥१०३॥

प्रोक्षयेद् गन्धपुष्पाद्यैर्देहे स्वे देशिकोत्तमः ।
योगपीठ समभ्यर्च्य न्यासमार्गेण मन्त्रवित् ॥१०४॥

पीठान्त ततस्तत्र पूजयेदिष्टदेवताम् ।
देवतात्मा तत पञ्च कुर्याच्च सुमनोऽञ्जलीन् ॥१०५॥

शीर्षे हृदि तथाऽऽधारे चरणे सर्वगात्रके ।
पूजयेच्च निवेद्येन रहितैश्चन्दनादिभि. ॥१०६॥

सर्वोपचारैस्तच्छेषं गुर्वादिष्टेन वर्त्मना ।
समापयेदिद सर्वं प्रोक्षण्यद्भि. समाचरेत् ॥१०७॥

आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमर्च्चयेत् ।
ज्ञानात्मानं च विधिवत्पीटमन्त्रावसानकम् ॥१३०॥

पीठशक्तीः केसरेषु मध्ये च सवराभयाः ।
हेमादिरचितं कुम्भमस्त्राद्भिः क्षालितान्तरम् ॥१३१॥

चन्दनागुरुकर्पूरधूपितं शोभनाकृतिम् ।
आवेष्टिताङ्गं नीरन्ध्रं तन्तुना त्रिगुणात्मना ॥१३२॥

अर्चितं गन्धपुष्पाद्यैर्दूर्वाक्षतसमन्वितम् ।
नवरत्नोदरं मन्त्री स्थापयेत्तारमुच्चरन् ॥१३३॥

हेमादीत्यत्रादिशब्देन राजतताम्रमृण्मयाः कलशाः शक्त्यनुसारेण ज्ञेयाः । तदुक्तम्—

महाकपिलपञ्चरात्रे—

सौवर्णं कलशं रम्यं रौप्यं ताम्रमथापि वा ।
निर्दोषं मृण्मयं वापि चन्दनेन विलेपितम् ॥१३४॥ इति ।

अन्यत्र कलशप्रमाणमुक्तम्—

पञ्चाशदङ्गुलो व्यास उत्सेधः षोडशाङ्गुलम् ।
कलशानां प्रमाणं तन्मुखमष्टाङ्गुलं भवेत् ॥१३५॥ इति ।

सूत्रे तु विशेषोऽन्यत्रोक्तः—

कन्याकर्त्तितसूत्रेण त्रिगुणेन च कर्मणा ।
गुणत्रयात्मकेनैव वेष्टयेदभितः समम् ॥१३६॥ इति ।

वायवीयसंहितायां सूत्रेण कण्ठ एवं वेष्टनमुक्तम् । यथा—

सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं मृण्मयमेव वा ।
गन्धपुष्पाक्षताकीर्णं कुशदूर्वाङ्कुरार्च्चितम् ॥१३७॥
सितसूत्रावृतं कण्ठे नववस्त्रयुगावृतम् । इति ।

नवरत्नानि तु सारसङ्ग्रहे—

पुष्पं नीलं च वैदूर्य्यं विद्रुमं मौक्तिकं तथा ।
ततो मरकतं वज्रं गोमेदं पद्मरागकम् ॥१३८॥

प्रोक्तानि नवरत्नानि देशिकैस्तन्त्रवित्तमैः ।
नवरत्नानि निक्षिप्य कुम्भे कूर्चमथोपरि ॥१३९॥

दूर्वाचन्दनसयुक्त विन्यसेद्क्षतान्वितम् ।
क्षाद्यन्तक्रमतो मन्त्री मातृका मनसा जपन् ॥१४०॥

मूलमन्त्र जपन्नन्ते चिन्तयन्नैक्यमात्मनः ।
घटस्य पीठाभेद च चिन्तयन्साधकोत्तमः ॥१४१॥

पञ्चाशदोषधिक्वाथै पूरयेत्तदनन्तरम् ।
दुग्धवृक्षत्वचा क्वाथैर्ब्रह्मभूरुट्त्वगुद्भवैः ॥१४२॥
गन्धपञ्चप्रसूनादिवासितैर्वा शुभैर्ज्जलैः ।

शारदातिलकेऽपि—

क्षीरद्रुमकषायेण पालाशत्वग्भवेन वा ।
तीर्थोदकैर्वा कर्पूरगन्धपुष्पसुवासितैः ॥१४३॥

आत्माभेदेन विधिवन्मातृकां प्रतिलोमतः ।
जपन्मूलमनु तद्वत्पूजयेद्देवताधिया ॥१४४॥

शङ्खे क्वाथाम्बुसम्पूर्णे गन्धाष्टकमभीष्टदम् ।
विलोड्य पूजयेत्तस्मिन्नावाह्य सकलाः कलाः ॥१४५॥

दश वह्नेः कला पूर्वं द्वादश द्वादशात्मनः ।
कला. षोडश सोमस्य पश्चात्पञ्चशत कलाः ॥१४६॥

जपित्वा प्रतिलोमेन मूलमन्त्र च मन्त्रवित् ।
समाहितेन मनसा ध्यायन्मन्त्रस्य देवताम् ॥१४७॥

प्राणप्रतिष्ठा कुर्वीत तत्र तन्त्रविचक्षण[1] ।
कलात्मक शङ्खसस्थ क्वाथ कुम्भे विनिःक्षिपेत् ॥१४८॥

गन्धाष्टक तत्त्रिविधं शक्तिविष्णुशिवात्मकम् ।
चन्दनागुरुकर्पूरचोरकुङ्कुमरोचना. ॥१४९॥
जटामासीकपियुना शक्तेर्गन्धाष्टक विदु. ।

चोर कचूर इति प्रसिद्ध.। कपि गठिवना[2] इति प्रसिद्ध. ।

सारसङ्ग्रहे त्वन्यथोक्तम्—

चन्दनागुरुकर्पूरकाश्मीरै रोचनान्वितै. ।
सशिह्लकजटामासीसटीभि शक्तिसम्भवम् ॥१५०॥
गन्धाष्टक शुभ वश्य शक्तिमन्त्रेषु योजयेत् ।

---

१. ख तत्र विचक्षण. । २ ख गठिवना ।

काश्मीर कुड्कुम , रोचना गोरोचनाः, शिह्लक शिलारस इति प्रसिद्धम्, सटी कचूर इति प्रसिद्धम् ।

शारदातिलके—

ह्रीवेर चन्दन कुष्ठमगुरु. कुड्कुमं मुरम् ।
सेव्यक च जटामासी वैष्णव तदुदीरितम् ॥१५१॥

ह्रीवेर बालक, मुर मुरहरीति प्रसिद्ध, सेव्यक उसीरम् ।

जलकाश्मीरकुष्ठैश्च रक्तचन्दनचन्दनैः ।
तमालागुरुकर्पूरैः शाम्भव चाष्टगन्धकम् ॥१५२॥

जल वालकम् ।

गन्धाष्टकस्य[1] सयोगात्सामर्थ्याद्देशिकस्य च ।
सशक्तिक जल कुम्भे भवेदेव विदुर्बुधा. ॥१५३॥

आदौ कृशानुसम्बन्धि कलादशकमर्च्चयेत् ।
कलाद्वादशक सौरं पूजयेत्तदनन्तरम् ॥१५४॥

कलाषोडशक चान्द्र यजेत्पश्चाद् गुरूत्तमः ।
वेदादिभेदसञ्जाता. कलाः पञ्चाशत तु वा ॥१५५॥

सन्निधाप्य समभ्यर्च्येत्ततो मन्त्री तु ता क्रमात् ।

सन्निधाप्य इत्यनेनावाहनमप्युक्त सन्निधापनस्यावाहनपूर्वकत्वात् ।

मध्ये मध्ये ऋचः पञ्च पूजनीया इमा अपि ॥१५६॥
आत्ममन्त्र समुच्चार्य्य [2]शुचिषत्पदमुच्चरेत् ।
वसुरन्तपद तद्वद्रिक्षसद्धो-पद तत. ॥१५७॥

वदेत्तावेदिषपद दतिथिर्दुपद तत. ।
रोणसत्पदमुच्चार्य्यं नृषद्वरपद वदेत् ॥१५८।

वदेत्सदृतसद्व्योमसदब्जागोपद वदेत् ।
वदेज्जात्रातजेत्यस्मदद्रिजाशब्दमुच्चरेत् ॥१५९॥

सप्तमस्वरमुच्चार्य्यं सविन्द्वाषाढिन वदेत् ।
उक्त्वा वृहत्पद चा ते प्रथमो मन्त्र ईरितः ॥१६०॥

---

१. ख. गन्धाष्टकस्य । २. क. शुचिषद्पद० ।

आत्ममन्त्र. हस इति, सप्तमस्वरऋकार., आषाढी तकार:, अन्यानि पदानि स्वरूपाणि । तथा—

लोहितो वह्निसहित. पूतना द्वयन्तिका तत: ।
उक्त्वा ष्णुस्तवते-पश्चाद्वीर्येण-मृपद वदेत् ॥१६१॥

गोनभीमश्च कुचरो गिरिष्ठाश्च ततो वदेत् ।
यस्योरुषु त्रिषुपद ततौ विक्रमणेष्वधि ॥१६२॥

क्षियति भुपदं ब्रूयाद्वनानि च ततो वदेत् ।
तोयस्थो माधवः पश्चाद्वान्तः स्यात्तोयकान्तियुक् ॥१६३॥
द्वितीयो मनुराख्यातस्तृतीयः प्रोच्यतेऽधुना ।

लोहितः पकार, वह्निः रेफः, तद्युक्तस्तेन प्र, पूतना तकार:, तोय वकारः तत्स्थो माधव इकारः तेन वि, वान्त. श', तोय वः, कान्तिः आ ताभ्यां युक्तस्तेन श्वा इति, अन्यानि पदानि स्वरूपाणि ।

णान्तोऽग्निमान्तोपान्त्यस्थकलायुक्पतृतीयकः ।
चतुर्मुख सचन्द्रार्द्धस्तत स्याच्च यजामहे ॥१६४॥
पद[1] सुगन्धिम्पुष्टीति वर्द्धन च ततो वदेत् ।
पदमुर्वारुकमिवबन्धनान्मृपद वदेत् ॥१६५॥
त्योर्मुक्षीयपद पश्चान्मामृतात्पदमुच्चरेत् ।

णान्त. तकार., अग्निः रेफ, मान्तो यकारः, उपान्त्यकलाविन्दु, एतैः म्य इति । पतृतीयो वकार, चतुर्मुख. ककार. चन्द्रार्द्धो विन्दु. तेन क इति । अन्यानि पदानि स्वरूपाणि ।

गायत्र्यात्मा चतुर्थ स्यान्मन्त्र ख्यातो जगत्यलम् ॥१६६॥

तोयस्था शाल्मली प्रोक्ता सहजा-ढान्त-विष्णुयुक् ।
अग्निश्च केवलः प्रोक्तो योनिं कल्पपद वदेत् ॥१६७॥

यतु-त्वष्टा-पद पश्चात्तेजोरूपाणि पिंशतु[2] ।
आसिञ्चतु प्रजा पश्चात्पतिर्द्धाता-पद वदेत् ॥१६८॥

गर्भं दधात्विति पदमाषाढीपद्मनाभयुक् ।
पञ्चैते वैदिका मन्त्रास्तेष्वेकैक प्रपूजयेत् ॥१६९॥

तोय वकार, शाल्मली इकार, तेन वि इति । सहजा षकार., ढांतो

१. ख. सुगन्धि । २ ख. पिंशतु ।

णकारः, विष्णुयुक् उकारयुक्तः, तेन ण्णु इति । अग्नी रेफः, केवलः विस्वरः, आषाढी तकारः, पद्मनाभ एकारः तेन ते इति ।

तारस्य पञ्चभेदोत्थकला- नामान्तरे सुधीः ।
आवाह्यादौ कलाः पश्चात्सन्निधाप्याऽत्र देशिकः ।
प्राणान्संस्थाप्य चाभ्यर्चेद् गन्धाद्यैः साधकोत्तमः ॥१७०॥
यत्र यत्र कलापूजा विधिस्तत्रैवमेव हि ।
तारस्य पञ्चभेदोत्थकलानां पूजने सुधीः ॥१७१॥
कलादशकमावाह्य सृष्ट्याद्यं सन्निधाप्य च ।
हंसः शुचिषदित्याद्यां ऋचं संजाप्य पूजयेत् ॥१७२॥
प्राणसंस्थापनं कुर्यात् कलानां पूजयेच्च ताः ।
एवं जराद्यास्तीक्ष्णाद्याः पीताद्याश्च विधानवित् ॥१७३॥
निवृत्याद्याश्चापि यजेदुक्तयुक्त्या विचक्षणः ।
अकारोकारकौ प्रोक्तौ सकारो नादविन्दुकौ ॥१७४॥
शक्तिसान्तावमी सप्त ध्रुवभेदाः समीरिताः ।
अन्तिमौ द्वाविमौ भेदौ पृथगेव समीरितौ । १७५॥

शक्तिः सकारः, सान्तो हकारः, अत्राग्निसूर्यसोमकलाः सामान्यार्घस्थापनविधौ प्रागुक्ता एव, तारोत्थपञ्चाशत्कला न्यासप्रकरणे उक्ताः ।

सारसङ्ग्रहे—

ततो रसालपनसपिप्पलद्रुमपल्लवैः ।
सुत्रामवल्लरीनद्धैः कल्पवृक्षमनीषया ॥१७६॥
कलशस्याननं मन्त्री पिदधीत समाहितः ।
पश्चादक्षतसंयुक्तां सफलां शुभचक्रिकाम् ॥१७७।
देशिकेन्द्रः समादाय स्थापयेत्पल्लवोपरि ।
कल्पवृक्षफलानां हि मत्या विशदधीर्गुरुः ॥१७८॥
पट्टाम्बरयुगेनैव घटं पश्चात्प्रवेष्टयेत् ।

शारदातिलकेऽपि—

पश्चादश्वत्थपनसचूतकोमलपल्लवैः ।
इन्द्रवल्लीसमाबद्धैः सुरद्रुमधिया गुरुः ॥१७९॥
कुम्भवक्त्रं पिधायाऽस्मिंश्चषकं सफलीकृतम् ।
संस्थापयेत्फलधिया विधिवत्कल्पशाखिनाम् ॥१८०॥
ततः कुम्भं निर्मलेन क्षौमयुग्मेन वेष्टयेत् ।

अन्यत्रैकवस्त्रेणापि वेष्टनमुक्तम्—

अतिसूक्ष्मतरेणैव विशुद्धेन नवेन च ।
मायातत्वस्वरूपेण वेष्टयेद्वाससा घटम् ।।१८१॥

सारसङ्ग्रहे—

प्रधानकुम्भं संस्थाप्य वेद्यामेव गुरूत्तमः ।
तोरणानां समीपेषु पूर्वादिषु यथाक्रमम् ॥१८२॥

तोरणशब्देन तोरणसमीपस्थानि द्वाराणि लक्ष्यन्ते तेन द्वारसमीपे इत्यर्थः ।

प्राग्वन्मण्डलमालिख्य पद्मं वाष्टदलं[1] शुभम् ।
प्रागुक्तविधिना तेषु कुम्भान्संस्थाप्य देशिकः ॥१८३॥

ध्रुवं धरां वाक्पतिं च विघ्नेशं तेषु पूजयेत् ।
आग्नेयादिषु कोणेषु कुम्भान्संस्थाप्य पूर्ववत् ॥१८४॥

अमृतं दुर्जयं चैव सिद्धार्थं मङ्गलं तथा ।
सम्पूज्य वह्निकोणादिष्विन्द्रादीनथ पूजयेत् ॥१८५॥

पूर्वादिष्वष्टकुम्भेषु तेषां मन्त्रैस्तु वैदिकैः ।
पुनः पूर्वादिकुम्भेषु पूजयेद्दिग्गजानपि ॥१८६॥

ऐरावतं पुण्डरीकं वामनं कुमुदाञ्जनौ ।
पुष्पदन्तं सार्वभौमं सुप्रतीकं च देशिकः ॥१८७॥

पुनर्वेद्यां गुरुर्गत्वा उपविश्य निजासने ।
सञ्चिन्त्य मूलमन्त्रेण मूर्त्तिं तस्मिन् गुरूत्तमः ॥१८८॥
तस्यां मूर्त्तौ समावाह्य पूजयेदिष्टदेवताम् ।

शारदातिलकेऽपि—

मूलेन मूर्त्तिमिष्ट्वास्मिञ्छायायां कल्पशाखिनाम् ।
आवाह्य पूजयेत्तस्यां मन्त्री मन्त्रस्य देवताम् ॥१८९॥

पदार्थादर्शे—

मन्त्रस्य देवतामित्येकमन्त्रदीक्षायाम् । पञ्चायतनदीक्षापक्षे पञ्चकलशान् संस्थाप्य तत्तत्कलशे तत्तद्देवतामावाहयेदिति मन्त्रीत्यनेनोक्तम् । तदुक्तमाचार्यैः—

प्रोक्तेनैव कलशविधिनैकेन वाऽनेककुम्भैः ।इति ।

---

१. ख. चाष्टदले ।

पञ्चायतनदेवतास्थापनविधिस्तु पूर्वमुक्त एव। तत्तत्स्थाने तत्तत्कलशं स्थापयेत्। इति।

सारसङ्ग्रहे—

स्मृत्वा मूलमनु मन्त्री सम्यङ् नाडीपथा ततः।
निर्गमय्य च चैतन्य नासिकाग्रविनिर्गतम् ॥१६०॥

अञ्जलौ मातृकापद्मे महः पुष्पान्विते गुरुः।
मस्तकान्त समुत्थाप्य तस्यामावाहयेत्ततः ॥१६१॥

सस्थापन प्रथमत' सन्निधानमतः परम्।
सन्निरोध च सकलीकरण त्ववगुण्ठनम् ॥१६२॥

अमृतीकरण परमीकृति च स्वस्वमुद्रया, सन्निरोध चेति चकारात्सम्मुखीकरणमपि ज्ञेयम्।

क्रमाद्विदध्याच्च तत उपचारान्प्रकल्पयेत्।
आसनादिप्रसूनान्तानुपचारान्प्रकल्प्य च ॥१६३॥

तत्तन्मन्त्रविधानेषु प्रोक्ताङ्गावरणान्यपि।
सर्वान्ते लोकपालानां तदस्त्राणा च पूजनम् ॥१६४॥
विधाय पूजामेव हि धूपदीपनिवेदकैः।

प्रपञ्चसारे—

कृते निवेद्ये च ततो मण्डल परितः क्रमात्।
मङ्गलाङ्कुरपात्राणि स्थापनीयानि मन्त्रिणा ॥१६५॥

वेदिकायां दक्षभागे कृत्वा स्थण्डिलमुत्तमम्।
सस्थाप्य वह्नि सस्कृत्य वैश्वदेव समाचरेत् ॥१६६॥

यथाविधि ततस्तत्र गन्धाद्यैर्देवता यजेत्।
तत्र प्रणवपूर्वाभिर्हुत्वा व्याहृतिभि पुरा ॥१६७॥

मूलाणुना ततो हुत्वा साज्येन हविषा सुधी।
पञ्चविंशतिधा पश्चाद् हुत्वा व्याहृतिभिः पुन. ॥१६८॥

सम्पूज्य तां चन्दनाद्यै. पीठमूर्त्तौ तु योजयेत्।
अग्नि विसृज्य शिष्टेन पायसेन बलिं हरेत् ॥१६९॥

पार्षदेभ्यश्चन्दनादि पुष्पाक्षतसमन्वितम् ।
तत उत्थाप्य नैवेद्य तत्स्थलं शोधयेत्सुधी. ॥२००॥
पुनर्य्यजेच्चोपचारैः पञ्चभिर्दर्शयेत्ततः ।

छत्र चेति च चकाराद्दर्पणव्यजने गृह्येते ।

सहस्रं च जपेन्मन्त्री मूलमन्त्रं समाहितः ।
देवतायै निवेद्याऽथ तं जप सम्पदे तत ॥२०१॥

शारदातिलके—

तत शम्भोर्दिशि गुरुर्विकिरेत्पूर्वसञ्चिते ।
हेमवस्त्रादिसयुक्ता कर्करी तोयपूरिताम् ॥२०२॥
सस्थाप्य तस्यां सिंहस्था खड्गखेटकधारिणीम् ।
घोररूपा पश्चिमास्या पूजयेदस्त्रदेवताम् ॥२०३॥
चलासनेन सम्पूज्य तामादाय गुरु. पुन. ।
रक्षेति लोकपालानां नालमुक्तेन वारिणा ॥२०४॥
देवाज्ञा श्रावयन्नन्त. परिवृत्य प्रदक्षिणम् ।
अस्त्रमन्त्र समुच्चार्य्य यथापूर्वं निवेशयेत् ॥२०५॥
अभ्यर्च्य भूयो गन्धाद्यैरस्त्र जप्त्वा स्थिरासने ।
ततश्चमत्कृते वह्नौ गोक्षीरेण चरु पचेत् ॥२०६॥
अस्त्रेण क्षालिते पात्रे नवे ताम्रमयादिके ।

ताम्रमयादिकेत्यत्रादिशब्देन मृण्मयमपि पात्र ग्राह्यम् । तदुक्तम्-

कात्यायनेन—

तिर्यगूर्ध्वं समिन्मात्रा दृढा नातिबृहन्मुखी ।
मृण्मय्यौदुम्बरी वापि चरुस्थाली प्रशस्यते ॥२०७॥

समिन्मात्रा प्रादेशमात्रप्रमाणा प्रादेशान्नाधिका नोनेति **कपिलवचनात्** ।

शारदातिलके—

तण्डुलान् शालिसम्भूतान्मूलमन्त्राभिमन्त्रितान् ।
प्रसृतीना पञ्चदश क्षिप्त्वा चास्त्रमनु जपन् ॥२०८॥

तण्डुलान् त्रि' प्रक्षाल्य क्षिपेदित्युक्तं **गोभिलेन** । यथा—त्रि.फलीकृता-स्तण्डुलास्त्रिर्देवेभ्य प्रक्षालयेदिति । तथा—

प्रक्षाल्य पात्रवदन पिधाय कवचाणुना ।
प्राङ्मुखो मूलमन्त्रेण देशिकेन्द्रश्चरु पचेत् ॥२०९॥
मेक्षणेनोर्ध्वमवघट्टयन् पचेत्............... ।

इत्युक्त गोभिलेन यथा—

'कुशलः भृतमिव स्थालीपाक श्रपेत् प्रदक्षिणमुदायुवन्निति' । उत् ऊर्ध्वं आयुवन् आमिश्रयन् अवघट्टयन्नित्यर्थ. । मेक्षणलक्षणं तु कात्यायनेनोक्तम्—

इध्मजातीयमिध्मार्द्धप्रमाण मेक्षण भवेत् ।
वृत्त वार्क्षं च पृथ्वग्रमवदानक्रियाक्षमम् ॥२१०॥ इति ।

तथा— स्रुवेणाज्येन सस्विन्ने दद्यात्तप्ताभिघारणम्[1] ।
मूलेन पश्चात्तत्पात्र कवचेनाऽवतारयेत् ॥२११॥

स्विन्नलक्षणं तु—

स्वशाखोक्तश्च सुस्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनः शुभ. ।
न चातिशिथिलः पाच्यो न च वीतरसो भवेत् ॥२१२॥

तथा— अस्त्रजप्ते कुशास्तीर्णे मण्डले विधिवद्गुरुः ।
त विभज्य त्रिधा भागमेक देवाय कल्पयेत् ॥२१३॥
अन्यमग्नौ प्रजुहुयादपर देशिक स्वयम् ।
शिष्येण सार्द्धं भुञ्जीत विहिताचमनस्तत ॥२१४॥

भोजने विशेष. सोमशम्भौ—

चरोस्तृतीयभाग तु ग्रासत्रितयसम्मितम् ।
अष्टग्रासप्रमाण वा दशनस्य स्पर्शवर्जितम् ॥२१५॥
पालाशे पुटके मुक्तौ भुक्तौ पिप्पलपत्रजे ।
हृदा सम्भोजयेन्मन्त्री पूतैराचामयेज्जलै. ॥२१६॥ इति ।

तथा— आचान्त शिष्यमानीय सकलीकृत्य देशिकः ।
तालप्रमाण हृज्जप्त क्षीरवृक्षादिसम्भवम् ॥२१७॥
दन्तकाष्ठ तदा दद्याच्छिष्याय नियतात्मने ।

ताललक्षण तु—

अङ्गुष्ठमध्यमाङ्गुल्यौ ये हस्तस्य प्रसारिते ।
तदग्रयोरन्तराल तालमाहुर्मनीषिण ॥२१८॥ इति ।

---

१. ख. दद्यात्तप्राप्ताभिव्वारणम् ।

दन्तधावनदानमन्त्रस्तु पिङ्गलामते—

माया दण्डिनि ठद्वन्द्व प्रदद्यादमुना च तत् । इति ।

माया ह्रीमिति, दण्डिनि इति स्वरूप, ठद्वन्द्व स्वाहा । तथा—

दन्तान्विशोध्य स पुनस्तत्प्रक्षाल्य विसर्ज्जयेत् ॥२१९॥

नारायणीये—

दन्तकाण्ठ हृदा जप्त क्षीरवृक्षादिसम्भवम् ।
सम्मार्ज्य दन्तास्तच्छित्वा प्रक्षाल्यैतद्भुवि क्षिपेत् ॥२२०॥

पातनानन्तर परीक्षा तु पूर्वमेवोक्ता । तथा—

यथाविधि तमाचान्त शिखाबन्धाभिरक्षितम् ।
विधाय सार्द्धममुना वेद्या दर्भास्तरे गुरुः ॥२२१॥
शयीत तस्या ता रात्रिमधिवासः समीरित. ।

सोमशम्भौ तु विशेष.—

गृहस्थान् दर्भशय्याया पूर्वशीर्षान्विरक्षितान् ।
हृदा सद्भस्मशय्याया यतीन्दक्षिणमस्तकान् ॥२२२॥ इति ।

वायवीयसंहितायां तु—

देवस्य दक्षिणे भागे शिष्य तमधिवासयेत् ।
अहतास्तरणास्तीर्णे सदर्भशयने शुचि· ॥२२३॥

मन्त्रिते च शिव ध्यायन्प्राक्शिरस्को निशि स्वपेत् ।
शिखाबन्धस्य सूत्रस्य शिखया तच्छिखा गुरुः ॥२२४॥

आवेष्ट्याऽहतवस्त्रेण तमाच्छाद्य च वर्मणा ।
रेखात्रय च परितो भस्मना[1] तिलसर्षपै ॥२२५॥
कृत्वाऽस्त्रजप्तैस्तद्बाह्ये दिगीशाना बलिं हरेत् । इति ।

योगिनीतन्त्रे —

यज्जाग्रतो दूरमुदेति दैव—
मावृत्य मन्त्रान् प्रयतस्त्रिरेतान् ।
लघ्वेकभुग्दक्षिणपार्श्वशायी
स्वप्न परीक्ष्येत यथोपदेशम् ॥२२६॥

---

१. ख सभस्म ।

मन्त्रानिति बहुवचनेन सकल सूक्त गृह्यते ।

तथा— ॐ भगवन्देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन ।
इष्टानिष्टे समाचक्ष्व मम सुप्तस्य शास्वत ॥२२७॥

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—
ॐ हृतसकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नम. ॥२२८॥
[1]स्वप्नमाणवमन्त्रोऽयं कथितो नारदादिभिः ।

शैवशाक्तादौ तु पिङ्गलामते—
तारो हिलिद्वय शूलपाणये द्विठ ईरितः ।
[2]स्वप्नमाणवमन्त्रोऽयं शम्भुना परिकीर्त्तितः २२९॥ इति ।
वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥२३०॥

तन्त्रान्तरे विशेष —
[3]नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने ।
स्वप्ने कथय मे तथ्य सर्वकार्येष्वशेषतः ।
क्रियासिद्धि विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥२३१॥ इति ।

प्रातश्च स्वप्नपरीक्षा कार्या । तदुक्त पिङ्गलामते—
स्वप्ने शुभाशुभ दृष्ट पृच्छेत्प्रातः शिशु गुरुः ।
शुभे शुभ वदेत्तस्य जुहुयादशुभे शतम् ॥२३२॥
अस्त्रेणेति क्रमात्प्रोक्तो विधि. शिष्याधिवासने । इति ।

महाकपिलपञ्चरात्रेऽपि—
गुरुपादार्च्चन कृत्वा उपवासी जितेन्द्रियः ।
दर्भशय्यागतो रात्रौ दृष्ट्वा स्वप्न निवेदयेत् ॥२३३॥

अत्रोपवासीति रागप्राप्तभोजननिषेध., न तु वचनविहितचरुभोजननिषेधः ।[4]

---

१. २. क स्वप्नमानवमन्त्रोऽय । ३. ख नभोजाय ।

४. अत· परमयमशो विशेषः ख. पुस्तके—
निबन्धे—प्रात. परीक्षयेत्स्वप्न क्रूरश्चेदधमा वदेत् ।
किञ्चिद्दुष्टे मध्यमाख्यां दीक्षा श्रेष्ठे महाफलाम् ॥१॥
स्वप्नाभावे सिद्धिहीनामिति निश्चित्य भाषयेत् ।
दुष्टे क्रूरे च हीने च प्रायश्चित्त समाचरेत् ॥२॥

॥ अथ शुभसूचकस्वप्नाः ॥ तत्र—

योगिनीतन्त्रे—

त्रिविध दर्शन तस्य यथार्थमयथार्थकम् ।
अपाचक. यत्सुस्थाना संयताना हि दर्शनम् ॥२३४॥

यथार्थं तदयथार्थमस्वस्थानां विकारजम् ।
अपाचक मानस च यथार्थ फलमुच्यते ॥२३५॥

एषा स्वरूपमाह—यदिति । दर्शन देवादीना, विकारज पित्तादीनां, मानसं मनोविकारजम् ।

आगमसिद्धान्ते—

आद्ये वर्षे वत्सरार्द्धाद् द्वितीये,
यामे पाको वर्षपादात्तृतीये ।
मासे पाक. शर्वरीतुर्ययामे,
सद्य.पाको यो विसर्गेषु दृष्ट ॥२३६॥

आद्ये यामे दृष्टस्य स्वप्नस्य वर्षमात्रे पाकः फल, एवमग्रेऽपि । विसर्गं निशान्ते । तथा—

क्रूरेऽधमा मध्यमा स्याददृष्टेऽनुत्तमोत्तमे ।

न विद्यते उत्तमो यस्या. सा सिद्धिरुत्तमे स्वप्ने इत्यर्थः । तानेवाह तत्रैव—

स्वप्ने पश्यति वै देव निजेष्ट सर्वतोमुखम् ।
गुरु प्रसादसुमुख निर्मल चन्द्रमण्डलम् ॥२३७॥

गङ्गा गा भारती भानु लिङ्गिन लिङ्गमैश्वरम् ।
प्रसन्न तत्र जानीयात्सिद्धि स्वप्ननिदर्शने ॥२३८॥

प्रसन्न निजेष्टदेवम् । अत एव सिद्धिमपि ।

नारदपञ्चरात्रे—

क्षितिलाभः क्षतजाब्धितरण चाग्निपूजनम् ।
होमश्च ज्वलिते वह्नौ सङ्ग्रामविजयस्तथा ॥२३९॥

हसकोकमयूराणां रथारोहणमेव च ।

कोकश्चक्रवाक.

कपिलपञ्चरात्रे—

कन्या छत्र रथ दीप प्रासादं कमल नदीम् ।
कुञ्जर वृषभ माल्य समुद्र फलित द्रुमम् ॥२४०॥
पर्वत च हय मेध्यमाममास सुरासवम् ।
एवमादीनि सर्वाणि दृष्ट्वा सिद्धिमवाप्नुवात् ॥२४१॥

श्रुतिरपि—

यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रिय स्वप्नेषु पश्यति ।
समृद्धि तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ॥२४२॥

भैरवीतन्त्रे—

नदीसमुद्रतरणमाकाशगमनं तथा ।
भास्करोदयन चैव प्रज्वलन्तं हुताशनम् ॥२४३॥
ग्रहनक्षत्रताराणा चन्द्रमण्डलदर्शनम् ।

नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि, तारा अन्यानि ।

हर्म्यस्यारोहण चैव प्रासादशिरसोऽपि वा ॥२४४॥
नागाश्ववृषभेन्द्राणा तरुशैलावरोहणम् ।
विमानगमनं चैव सिद्धमन्त्रस्य दर्शनम् ॥२४५॥
लाभ. सिद्धिकरश्चैव देवीना चैव दर्शनम् ।
एवमादीनि सन्दृष्ट्वा नर. सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२४६॥
स्वप्ने तु मदिरापानमाममासस्य भक्षणम् ।
कृमिविष्ठालेपन च रुधिरेणाभिषेचनम् ॥२४७॥
भोजन दधिभक्तस्य श्वेतवस्त्रानुलेपनम् ।
सिंहासनस्थ यानं च ध्वज राज्याभिषेचनम् ॥२४८॥
रत्नान्याभरणादीनि दृष्ट्वा स्वप्ने प्रसीदति ।

नारदपञ्चरात्रे—

गुरुर्देवो द्विज. कन्यागोगजाश्वाश्च केसरी ।
दर्प्पण शखभेर्य्यौ च तन्त्रीवाद्य च रोचनम् ॥२४९॥
ताम्वूलभक्षण चैव तथा दध्यभिवन्दनम् ।
सिद्धान्नमाममास च मद्यक्षौमदिरासवा· ॥२५०॥
छत्र यान सित वस्त्रं तथान्यच्छ्वेतचन्दनम् ।
माल्यमुक्ताफलं हार पूर्ण. समुदित. शशी ॥२५१॥

प्रचण्डकिरणः स्वस्थो निम्नगाऽथ महोदधिः ।
प्रफुल्लपादपः शालिरोचनाकुङ्कुम मधु ॥२५२॥

लाजा सिद्धार्थकावीज नवभाण्ड च पायसम् ।
उपसन्नोऽप्यथाऽचार्य्यो गायत्रीवरसञ्ज्ञता ॥२५३॥

मन प्रीतिकराश्चान्ये लोके शस्तपद गताः ।
सर्वे स्वप्ना. शुभाः प्रोक्ता. सिद्धिमोक्षफलप्रदाः ॥२५४॥

॥ अथाशुभसूचकाः ॥ नारदपञ्चरात्रे—

चण्डाल कलभ काक गर्त्तं शून्यममङ्गलम् ।
तैलाभ्यक्त नर नग्न शुष्कवृक्ष सकण्टकम् ॥२५५॥

प्रासादमतल दृष्ट्वा नरो रोगमवाप्नुयात् ।

कलभ वालगजम् । तत्र प्रायश्चित्तमाह कपिल —

दृष्ट्वा दु.स्वप्नक चैव होमात्सिद्धिमवाप्नुयात् ।
शुभे शुभ भवेत्तस्य जुहुयादशुभे शतम् ॥२५६॥

अस्त्रेणेति क्रमाद्विद्वान्…………… । इति ।[1]

नारदपञ्चरात्रे—

दृष्ट्वा समाचरेद् होम दन्तकाष्ठोदित मुने ।
केवलेनाथ चाज्येन सिंहमन्त्रेण शान्तये ॥२५७॥

दन्तकाष्ठप्रकरणे तावदाह स्वयमेव—

शत सहस्र साष्ट वा यथाशक्त्याऽथवा द्विज ।
अस्त्रसम्पुटितेनैषा नाम्ना स्वाहान्वितेन च ॥२५८॥

दोषान् जहि जहीत्येव पद नामावसानगम् ।

अत्राऽस्त्रसिंहमन्त्रयोर्विकल्प । एषा दोषनिदानानाम् ।

॥ अथ स्वप्ननिवेदनम् । तत्रैव—

शिष्यस्तु शुचिराचात पुष्पहस्तो गुरूत्तमम् ।
प्रणम्य शिरसा हृष्टस्तस्मै स्वप्न निवेदयेत् ॥२५९॥

---

१ ख. पुस्तकेऽतः परमयमधिकोऽस्त्यशः—

नारायण शार्ङ्गधर श्रीधरं पुरुषोत्तमम् ।
वामन खड्गिनं चैव दु.स्वप्नेषु सदा स्मरेत् । इति निबन्धात् ।

स्वप्ने वाऽक्षिसमक्षं वा आश्चर्यमतिहर्षदम् ।
अकस्माद्यदि जायेत न ख्यातव्यं गुरोर्विना ॥२६०॥

मन्त्रप्रसादजनित लिङ्ग च न गुरोर्विना ।
प्रकाशनीय विप्रेन्द्र कस्यचित्सिद्धिमिच्छता ॥२६१॥

प्रकाशयति यो मोहादौत्सुक्यान्मन्त्रज सुखम् ।
निकटस्थाश्च तास्तस्य सिद्धयो यान्ति दूरतः ॥२६२॥
आविर्भवन्ति दु.खानि शोकाश्च विविधा अपि ।

इति स्वप्ननिवेदनम् ।

पिङ्गलामते सद्योऽधिवासोप्युक्तः—
सद्योऽधिवासमथवा प्रकुर्वीत यथाविधि । इति ।

मन्त्रतन्त्रप्रकाशेऽपि—
दिनद्वयेनैव कुर्याद्दीक्षाकर्म विचक्षणः ।
सद्योऽधिवासन वा स्यादेकस्मिन् दिवसे यदि ॥२६३॥ इति ।

अधिवासशब्दार्थ उक्तो महाकपिलपञ्चरात्रे—
वसतेरधिपूर्वस्य भावे घञ्प्रत्यये कृते ।
अधिवास इति ह्येप प्रयोगे सिद्धिमेति च ॥२६४॥

गुर्वादिसहितो वासो रात्रौ नियमपूर्वक ।
सोऽस्यार्थो हि निपातानामनेकार्थतया मत ॥२६५॥ इति ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मजगोस्वामि-
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते
सिंहसिद्धान्तसिन्धौ दशमस्तरङ्ग. ॥१०॥



एकादशस्तरङ्गः

।। अथाग्निस्थापनम् ।।

शारदातिलके—

ततोऽग्नियजन वक्ष्ये सर्वतन्त्रानुसारत' ।
आचार्यकुण्डे विविवत्सस्कृते शास्त्रवर्त्मना ।।१।।
अष्टादश स्यु' सस्कारा कुण्डाना तत्र चोदिताः ।
वीक्षण मूलमन्त्रेण शरेण प्रोक्षण मतम् ।।२।।
तेनैव ताडन दर्भैर्वर्म्मणाऽभ्युक्षण मतम् ।
अस्त्रेण खननोद्धारौ हृन्मन्त्रेण प्रपूरणम् ।।३।।
समीकरणमस्त्रेण सेचन वर्म्मणा मतम् ।
कुट्टन हेतिमन्त्रेण वर्ममन्त्रेण मार्ज्जनम् ।।४।।
विलेपन कलारूपकल्पन तदनन्तरम् ।
त्रिशूलीकरण पश्चाद् हृदयेनार्च्चन मतम् ।।५।।
अस्त्रेण वज्रीकरण हृन्मन्त्रेण कुशै. शुभै ।
च.तुपथ तनुत्रेण तनुपादक्षपाटनम्[१] ।।६।।

शरेण तत्तदङ्गभूतास्त्रमन्त्रेण प्रोक्षणमुत्तानहस्ताग्रेण उत्तानेन हस्तेन प्रोक्षयेदिति सूत्रणात्। अभ्युक्षण मुष्टिवन्धेन सर्वत्र सेचनम्। उद्धार —खातमृदः पूरण अन्यमृदा ।

नारदपञ्चरात्रे—

गृहीत्वा चैकदेशात्तु कुण्डमध्यात्तु मृत्तिकाम् ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्या च हृदयेनाथ पूरयेत् ।।७।। इति ।

सेचनमभ्युक्षणमेव, कलारूपकल्पन सोमसूर्याग्निकलारूपप्रकल्पनम्, त्रिसूत्रीकरण सूत्रत्रयेण वेष्टनम् । हृदयेन पूजन तु मेखलात्रयस्यैव । तदुक्तम्—

नारदपञ्चरात्रे—

समभ्यर्च्य ततोऽर्घ्याद्यैर्मध्यतः प्रणवेन च ।
तेनैव विधिना नाभि पूजयेच्चन्द्रसन्निभम् ।।८।।
मेखलात्रयपूजाया हृन्मन्त्र तु प्रयोजयेदिति ।

१, ख. तनुयापक्ष० ।

वज्रीकरण वज्रवद्दृढचिन्तनम्, चतुष्पथ कुशैश्चतुर्दिक्षु मार्गचतुष्टय-करणम् । **अक्षपाटनलक्षणं** तु तत्रैव—

अछिन्नाग्रैस्ततोदर्भैरस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितैः ॥९॥
कुण्डभित्तिगण सर्वं वर्मणा परिभूषयेत् ।
इत्येवमक्षपाटाख्यं कुण्डसस्कारमुत्तममिति ॥१०॥

हुकारेण राक्षसनिवारणमिति केचित्—

तिस्रस्तिस्रो लिखेल्लेखा हृदा प्रागुदग्रगाः ।
प्रागग्राना स्मृता देवा मुकुन्देशपुरन्दरा. ॥११॥
रेखाणामुदगग्राणा वर्म वैवस्वतेन्दव. ।

अत्र रेखालेखने कुत आरम्भः कुत्रावसान इत्याकाङ्क्षायामाह—

सौत्रामणीतन्त्रे—

प्राचीमूर्ध्वमुदक्सस्थ दक्षिणारम्भमालिखेत् ।

प्राचीमूर्ध्वं प्रागग्राम् ।

उदगग्र पुरःसस्थ पश्चिमारम्भमालिखेत् ॥१२॥

इति पुर सस्थ पूर्वं दिग्गतम् ।

नारदपञ्चरात्रे—

उल्लिखेदस्त्रराजेन दर्भकाण्डेन यत्नत ।
[1]भूमावभ्यन्तरे कुण्डे दक्षिणाशादित क्रमात् ॥१३॥
उत्तराशावधि यावद्द्याद् रेखात्रय समम् ।
प्रत्यग्भागात्समारभ्य यावत्पूर्वावधि तथा ॥१४॥ इति ।

अत्र हृन्मन्त्रास्त्रमन्त्रयोर्विकल्पो **यामले**—

'षट्कोणेनावृत देवि त्रिकोण तत्र सलिखेत् ।'

शारदातिलकेऽपि—

अथवा षट्कोणवृत्त त्रिकोण तत्र सलिखेत् ।
सर्वाण्यभ्युक्ष्य तारेण योगपीठमथार्च्चयेत् ॥१५॥

सोत्रामणीतन्त्रे तु—'प्रोक्षयेद्वाग्भवेन वे'त्युक्तम् । तेन तारवाग्भवयोर्वि-

---

१. ख. भूखावभ्यन्तरे ।

कल्प । अभ्युक्षण तु कुशजलेन विधेयम्'अभ्युक्षितकुशाम्भोभि'रिति **योगिनीतन्त्र-**
वचनात् । [२]योगपीठार्च्चन प्रयोगेऽभिधेयम् ।

शारदातिलके—

वागीश्वरीमृतुस्नाता नीलेन्दीवरसन्निभाम् ।
वागीश्वरेण सयुक्तामुपचारैः प्रपूजयेत् ॥१६॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

तत्र शक्ति च सस्मृत्य सम्यगृतुमती शुभाम् ।
अतीन्द्रियाभा सकलजगदात्म स्वरूपिणीम् ॥१७॥
ईशानसहिता तत्र सम्यग्गन्धादिभिर्यजेत् ।
शक्तिमन्त्रेण ता शक्तिमीशान मूलमन्त्रतः ॥१८॥

शारदातिलके—

सूर्यकान्तादिसम्भूत यद्वा श्रोत्रियगेहजम् ।
आनीय वह्नि पात्रेण क्रव्यादाश परित्यजेत् ॥१९॥
अभ्यर्च्य मन्त्रवित्सम्यङ् मणिज वारणेयकम् ।
कुलीनद्विजगेहोत्थ पात्रे हुतवह ततः ॥२०॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

आनाय्याऽस्त्रेण नैर्ऋत्या क्रव्यादाशं परित्यजेत् ।
देवाश मूलमन्त्रेण स्थापयेदग्रत सुधीः ॥२१॥

अत्र पात्रे ताम्रादिपात्रे । यदाहात्रिः—

पात्रान्तरेण पिहिते ताम्रपात्रादिके शुभे ।
अग्निप्रणयन कुर्याच्छरावे तादृशेऽपि वा ॥२२॥
शरावे भिन्नपात्रे वा कपाले वोल्मुकेऽपि वा ।
नाग्निप्रणयन कुर्य्याद् व्याधिहानिभयावहम् ॥२३॥

स्मृतिसार इति लिखितवचन पुरातनमृत्पात्रपरम् । अभिनवेत्युक्तेः ।

---

२. ख. इतः पूर्वमध स्थोशो विशेषः—

प्रपञ्चसारे—'प्राणाग्निहोत्रविधिनाऽयावसथीयाह्वयेऽनलस्थाने'
प्राणाग्निहोत्रविधिरपि तत्रैव—
मध्येन्द्रवरुणशशियमदिग्गतानि क्रमेण कुण्डानि ।
आवसथ्यसभ्याहवनीयानाहार्यगार्हपत्यानि ॥ इति ।

शारदातिलके—

सस्कुर्यात्त यथान्याय देशिको वीक्षणादिभिः ।
औदर्यवैन्दवाग्निस्या भौमस्यैवय स्मरन्वसोः ॥२४॥

योजयेद् वह्निवीजेन चैतन्य पावके तदा ।
तारेण मन्त्रित मन्त्री धेनुमुद्रामृतीकृतम् ॥२५॥

अस्त्रेण रक्षितं पश्चात् [1]तनुत्रेणावगुण्ठितम् ।
अर्चित त्रि परिभ्राम्य कुण्डस्योपरि देशिकः ॥२६॥

प्रदक्षिण तदा तारमन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ।
आत्मनोऽभिमुख वह्नि जानुस्पृष्टमहीतलः ॥२७॥

शिववीज धिया देव्या योनावेन विनिक्षिपेत् ।
पश्चाद्देवस्य देव्याश्च दद्यादाचमनादिकम् ॥२८॥

वैष्णवयागे तु नारदपञ्चरात्रे—

तत्र नारायणाख्यस्य शक्तिर्विद्योतलक्षणा ।
लक्ष्म्याकृतिपद प्राप्ता अमृतामृतजीवनी ॥२९॥

तथा कपिलपञ्चरात्रे—

कामोन्मत्तं तत. कृष्णं लक्ष्मीमृतुमती स्मरेत् ।
तयो सङ्गमयोगेन वह्नि' सञ्जातसस्थितिः ॥३०॥ इति ।

कुम्भसम्भवोऽप्याह—

लक्ष्मीमृतुमती भद्रा प्रभोर्नारायणस्य च ।
ग्राम्यधर्मेण सञ्जातमग्नि तत्र विचिन्तयेत् ॥३१॥ इति॥

भैरवीतन्त्रे तु—

'योनावेव विन्यसेत्स्वाभिवक्त्र'
पश्चादग्नि मूलमन्त्रेण मन्त्री ।'

इत्युक्तम् । तदत्र प्रणवमूलमन्त्रयोर्विकल्प । उदरे भव औदर्यः । विन्दुः परमात्मा तस्याग्नीषोमात्मकत्वात्तद्भवो वह्निर्वैन्दव । भूमौ भवो भौम', वसोरग्नेः, वसुर्ह्रदे हुताशे चेति कोषात् ।

शारदातिलके—

१. ख. तनुरत्रेणाव० ।

ज्वालयेन्मनुनाऽनेन तमग्निमथ देशिकः ।
चित्पिङ्गल हन दह पचयुग्मानुदीर्य च ॥३२॥
सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मन्त्रोऽयं प्रागुदीरितः ।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

उक्त्वा चित्पिङ्गलपदं हनयुग्म पचद्वयम् ।
दहयुग्म च सर्वज्ञमाज्ञापय ततो द्विठ ॥३३॥
अमुं मनुं प्रभाष्यैव कृशानुं ज्वालयेत्ततः ।

सर्वज्ञमिति कर्मणि द्वितीयामन्त्रेण सम्बुद्धयन्त ज्ञेयम् । 'सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहेति'-दक्षिणामूर्तिसंहितावचनात्

शारदातिलके—

अग्निं प्रज्वलित वन्दे जातवेद हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममल समिद्धं सर्वतोमुखम् ॥३४॥
उपतिष्ठेत विधिवन्मनुनाऽनेन पावकम् ।

पदार्थादर्शे—

जुहूषुश्च हुताग्निश्च पाणिसूर्पस्रुवादिभिः ।
न कुर्यादग्निधमन कुर्याद्व्यजनादिना ॥३५॥
मुखेनैव धमेदग्निं [1]मुखादेशोध्यजायत ।
नाग्निं मुखेनेति तु यल्लौकिके योजयेत्तु तत् ॥३६॥

कुम्भसम्भवः—कुशैः प्रज्वालयेत्ततः' । पदार्थादर्शे—अत्राग्निज्वालने ज्वालिनीमुद्रा प्रदर्शयेत् । तल्लक्षण तु—

मणिबन्धौ समौ कृत्वा करौ तु प्रसृताङ्गुली ।
मध्यमे मिलिते कृत्वा तन्मध्येऽङ्गुष्ठकौ क्षिपन् ॥३७॥
इय सा परमा मुद्रा ज्वालिनी होमकर्मणि ।इति।

शारदातिलके—

विन्यसेदात्मनो देहे मन्त्रैर्जिह्वा हविर्भुज ।
लिङ्गपायुशिरोवक्त्रघ्राणनेत्रेषु सर्वत ॥३८॥
वह्नीरार्घीशसयुक्ताः सादि-यान्ताः सबिन्दव. ।
वर्णा मन्त्राः समुद्दिष्टा जिह्वानां सप्त देशिके ॥३९॥
जिह्वास्तास्त्रिविधाः प्रोक्ता गुणभेदेन कर्मसु ।
हिरण्या गगना रक्ता कृष्णाऽन्या सुप्रभा मता ॥४०॥

---

१. ख. मुखादेशो० ।

बहुरूपाऽतिरक्ता च सात्विक्यो यागकर्मसु ।
पद्मरागा सुवर्णान्या तृतीया भद्रलोहिता ॥४१॥
लोहिताऽनन्तर श्वेता धूमिनी च करालिका ।
राजस्यो रसना वह्नेर्विहिताः काम्यकर्मसु ॥४२॥
विश्वमूर्त्तिस्फुलिंगिन्यौ धूम्रवर्णा मनोजवा ।
लोहिताऽन्या करालाख्या काली तामस्य ईरिता. ॥४३॥
एताः सप्त नियुज्यन्ते क्रूरकर्मसु मन्त्रिभिः ।
स्वस्वनामसमाना.[१] स्युर्जिह्वाः कल्याणरेतस. ॥४४॥
अमर्त्यपितृगन्धर्वयक्षनागपिशाचका ।
राक्षसा. सप्त जिह्वानामीरिता अधिदेवता. ॥४५॥

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे तु—'हिरण्या कनका रक्ते'ति पाठः । वह्नी रेफः, ईर.—यकार, अर्धीश ऊकारः, कल्याणरेतस. अग्नेरित्यर्थ. ।

शारदातिलके—

वह्ने रङ्गमनून् न्यस्येत्तनावुक्तेन वर्त्मना ।
सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्णा उत्तिष्ठ पुरुषः पुनः ॥४६॥
धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्द्धर इति क्रमात् ।
षडङ्गमनवः प्रोक्ता जातिभि. सह सयुताः ॥४७॥
मूर्त्तीरष्टौ ततो न्यस्येद्देशिको जातवेदस. ।
मूर्द्धांसपार्श्वकट्यन्धुकटिपार्श्वांसकेषु च ॥४८॥
प्रदक्षिणवशान्न्यस्येदुच्यन्ते ता यथाक्रमात् ।
जातवेदा. सप्तजिह्वो हव्यवाहनसंज्ञक. ॥४९॥
अश्वोदरजसज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः ।
कौमारतेजा. स्याद्विश्वमुखो देवमुखः स्मृत. ॥५०॥
ताराग्नये पदाद्याः स्युर्नत्यन्ता वह्निमूर्त्तय. ।
आसन कल्पयित्वाऽग्नेर्मूर्ति तस्य विचिन्तयेत् ॥५१॥
इष्ट शक्ति स्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्त जपाभम् ।
हेमाकल्पं पद्मसस्थ त्रिनेत्र ध्यायेद्वह्नि बद्धमौलिं जटाभि. ॥५२॥

---

१. ख. ०समाभा ।

सारसङ्ग्रहे—

प्रदक्षिणक्रमेणैव ससिच्य च ततो जलै ।
मेखलोपरि सशुद्धैः पुनर्दर्भचतुष्टयैः ॥५३॥
दिक्क्रमेण परिस्तीर्य्य दिक्ष्वैन्द्रीवर्जमात्मवित् ।
न क्षिपेत्परिधीन् ब्रह्मविष्णवीशास्तेषु पूजयेत् ॥५४॥

दर्भचतुष्टयैः प्रागुदगग्रैः पूर्वाग्रैरुत्तराग्रैश्च दर्भैरग्नि परिस्तरेदिति गणेश्वरपरामर्शिणीवचनात् । 'प्रागग्रैरथ दर्भैर्द्धनददिशाग्रैः परिस्तीर्यकुण्ड' मिति भैरवीतन्त्रवचनाच्च । त्रिमेखलकुण्डे मध्यमेखलायां परिस्तरणपरिधिप्रक्षेपः कार्यः । तदुक्त योगिनीतन्त्रे—

'एकमेखलके कुण्डे मेखलाधः परिस्तरेत् ।
द्विमेखले द्वितीयायां मध्यमायां त्रिमेखलः ॥५५॥

ननु पश्चिममेखलासलग्नतया नालस्य विद्यमानत्वान्मध्यमेखलायां परिस्तरपरिधिप्रक्षेप कथ भवेदित्याकाङ्क्षायामाह—सारसङ्ग्रहे—

नालमेखलयोर्मध्ये परिघे स्थापनस्य तु ।
रन्ध्रं कुर्यात्तथा विद्वान्मध्यस्थमेखलोपरि ॥५६॥ इति ।

तथा— 'स्थण्डिले सिकताना तु बाह्ये परिस्तरेदिति ।'

परिधयस्तु कात्यायनेनोक्ताः—

परिधीन्परिदधात्याद्रानेकवृक्षीयान् बाहुमात्रान् पालाशवैकंकतकाश्मर्य्यबैल्वानिति । 'स्थण्डिलके सिकताना बाह्येऽथ विन्यसेत्परिधीनि'ति च । ऐन्द्रीवर्ज्जं परिधीन्दिक्षु निक्षिपेदिति सम्बन्ध । दिक्षु-पश्चिमदक्षिणोत्तरासु, स्थविष्ठो मध्यमः, अणीयान् द्राघीयान्, दक्षिणार्द्धे कनिष्ठो ह्रसिष्ठ उत्तरार्द्धे इति सूत्राद् पश्चिमे उत्तराग्र अन्ययोः पूर्वाग्र चेति । संहितायाम्—

पात्राण्यासाद्य विधिवद् द्वन्द्वशश्चापि मन्त्रवित् ।
तान्यवोक्ष्य पवित्रेण चोत्तानानि विधाय च ॥५७॥
पुनः प्रक्षालयेत्पात्र परिपूर्य शुभाम्बुना ।
दत्वाऽक्षतान् पवित्र च तदुत्पूय निधापयेत् ॥५८॥
दिश्युत्तरस्या तत्पात्र प्रणीतेत्युच्यते बुधैः ।
ततः किञ्चित्प्रणीताम्बु प्रोक्षण्याऽऽधाय तज्जलै ॥५९॥
यज्ञसाधनसम्भार प्रोक्षयेन्मूलमन्त्रतः । इति ।
ततो ब्रह्माणमावाह्य ह्यर्चयेन्मूलमन्त्रतः ॥६०॥ इति ।

तत्राधोमुखेन हस्तेन सेचन अवोक्षणम् 'अवाङ्मुखेन हस्तेनावोक्षयेदि'ति सूत्रणात् ।

अन्यत्रापि—

स्ववामभागे प्रागग्रान् दर्भानास्तीर्य्य चोपरि ।
यथावित्तानुसारेण सौवर्णादीनि कर्मणि ॥६१॥

अधोमुखानि पात्राणि द्वन्द्वरूपाणि विन्यसेत् ।
उत्तानीकृत्य पात्राणि जलाद्यैः सम्प्रपूरयेत् ॥६२॥ इति ।

शारदातिलके—

ध्यात वह्नि यजेन्मध्ये गन्धाद्यैर्मनुनाऽमुना ।
वैश्वानरजातवेदपदे पश्चादिहावह ॥६३॥

लोहिताक्षपदस्यान्ते सर्वकर्माणि साधय ।
वह्निजायावधिः प्रोक्तो मन्त्र पावकवल्लभ. ॥६४॥

मध्ये षट्स्वपि कोणेषु जिह्वाज्वालारुचो यजेत् ।
केसरेपूक्तमार्गेण पूजयेदङ्गदेवता. ॥६५॥

दलेषु पूजयेन्मन्त्री शक्तिस्वस्तिकधारिणीः ।
लोकपालास्ततो दिक्षु पूजयेदुक्तलक्षणान् ॥६६॥

सोमशम्भौ—

रुद्रेन्द्रवह्निमांसादवरुणानिलगोचरे ।
हिरण्याद्याः स्थिता वह्ने रसना. षट् ह्यनुक्रमात् ॥६७॥
मध्यतो बहुरूपा तु····················।इति।

गणेश्वरपरामर्शिण्यामपि—

मध्ये च कोणषट्के च जिह्वाः सम्पूजयेत्ततः ।
हिरण्या तप्तहेमाभा शूलपाणिदिशि स्थिता ॥६८॥

वैदूर्य्यवर्णा कनका प्राच्या दिशि समाश्रिता ।
तरुणादित्यसङ्काशा रक्ता जिह्वाऽग्निसस्थिता ॥६९॥

कृष्णाञ्जनचयप्रख्या नैर्ऋत्या दिशि सस्थिता ।
सुप्रभा पद्मरागाभा वारुण्या दिशि सस्थिता ॥७०॥

अतिरक्ता जपाभासा वायव्या दिशि संस्थिता ।
बहुरूपा यथार्थाभा दक्षिणोत्तरमध्यगा ॥७१॥

नारदपञ्चरात्रेऽपि—

प्रभा दीप्ति-प्रकाशा च मरीचिस्तापनी तथा।
कराला लेलिहा चेति कुण्ड व्याप्य व्यवस्थिताः ॥७२॥

ईशपूर्वाग्निदिग्भागे प्रभाद्य त्रितय स्थितम् ।
रक्षोवारुणवायव्ये मरीच्याद्य त्रय तथा ॥७३॥

सौम्येऽथ मध्यमे याम्ये स्थितैका लेलिहाभिधा । इति ।

हिरण्यादीनामेव नामान्तराणि प्रभादीनि । यद्वा वैष्णवयागे त्वेताः स्वतन्त्रा.। तथा—

वायवीयसहितायाम्—

हिरण्या प्रागुदक्जिह्वा कनका पूर्वत. स्थिता ।
रक्ताऽऽग्नेयी नैर्ऋती च कृष्णाऽन्या सुप्रभा मता ॥७४॥
अतिरक्ता मरुज्जिह्वा स्वनामानुगुणप्रभा ।

अन्यावारुणी ।

त्रिशिखा मध्यमा जिह्वा वहुरूपासमाह्वया ॥७५॥

तच्छिखैका दक्षिणतो ज्वलन्ती वामत. परा ।

इति **सात्विकजिह्वा** । राजस्यस्तामस्यश्च वक्ष्यन्ते । केचित्तु—

कुण्डस्य मध्ये त्वथ सा प्रशस्ता जिह्वा हिरण्या भुवि कार्मणादौ ।
स्तम्भनादिषु मता कनकाऽन्तर्द्वेषणादिषु मता खलु रक्ता ।
मारणे निगदिता भुवि कृष्णा सुप्रभा बुधवरैरिह शान्त्याम् ॥७६॥

'उच्चाटनेऽतिरक्तान्तरि'ति वदन्ति ज्वालारुच इति जिह्वानां ध्यानम् ।

'जिह्वा. सर्वा. परिज्ञेया ज्वालाभास स्वरूपत. ।'

इति **प्रयोगसारवचनात्** ।

एता ज्वालारुचा वीता वराभययुता अपि ॥७७॥

इति **गणेश्वरपरामर्शिणीवचनाच्च** ।

पिङ्गलामते—

'कुण्डे चाष्टादश ज्ञेया. सस्काराः शिवशास्त्रन. ।'
घृते स्रुचि स्रुवे वाष्टा························॥७८॥

इति स्रुक्स्रुवयो सस्कारमाह ।

शारदातिलके—

पश्चादादाय पाणिभ्यां स्रुक्स्रुवौ तावधोमुखौ ।
त्रिः सम्प्रतापयेद्वह्नौ दर्भानादाय देशिकः ॥७९॥

तदग्रमध्यमूलानि शोधयेत्तैर्यथाक्रमम् ।
गृहीत्वा वामहस्तेन प्रोक्षयेद्दक्षिणेन तौ ॥८०॥

पुन. प्रताप्य तौ मन्त्री दर्भानग्नौ विनिक्षिपेत् ।
आत्मनो दक्षिणे भागे स्थापयेत्तौ कुशास्तरे ॥८१॥

शैवागमे—

गृहीत्वा स्रुक्स्रुवावूर्ध्वमुखौ चाधोमुखौ क्रमात् ।
प्रताप्याऽग्नौ त्रिधा दर्भमूलमध्याग्रकै. स्पृशेत् ॥८२॥

मूलमध्याग्रदेशे तु आत्मविद्याशिवात्मकम् ।
क्रमात्तत्वत्रयं न्यस्येद्धां ही हूं बीजकैः प्रिये ॥८३॥

स्रुचि शक्ति स्रुवे शम्भु विन्यस्य हृदयाणुना ।
त्रिसूत्रवेष्टितग्रीवौ पूजितौ कुसुमादिभि ॥८४॥
कुशानामुपरिष्टात्तु स्थापयेत्तौ स्वदक्षिणे ।

पिङ्गलामते—

पुनस्त्रिशः प्रताप्याऽधोमुखावग्नौ कुशान्क्षिपेत् ।
मूलमध्याग्रके न्यस्येच्छक्तीरिच्छादिका' क्रमात् ॥८५॥

इच्छादिकाः इच्छाज्ञानक्रिया. ।

शारदातिलके—

आज्यस्थालीमथाऽदाय प्रोक्षयेदस्त्रवारिणा ।
तस्यामाज्य विनि क्षिप्य सस्कृत वीक्षणादिभि. ॥८६॥

निवृत्य वायव्येऽङ्गारान् हृदा तेषु विनि.क्षिपेत् ।
इदं तापनमुद्दिष्ट देशिकैस्तन्त्रवेदिभिः ॥८७॥

सन्दीप्य दर्भयुग्मेन नीराज्याऽज्य सवर्म्मणा ।
अग्नौ विसर्ज्जयेद्दर्भमभिद्योतनमीरितम् ॥८८॥

घृते प्रज्वलितान्दर्भान् प्रदर्श्याऽस्त्राणुना गुरु' ।
जातवेदसि तान्न्यस्येदुद्योतनमिदं मतम् ॥८९॥

गृहीत्वा घृतमङ्गारान्समूह्याऽग्नौ जल क्षिपेत् ।
अङ्गुष्ठोपकनिष्ठाभ्या दर्भौ प्रादेशसम्मितौ ॥९०॥

कृत्वोत्पुनीयादस्त्रेण घृतमुत्पवन त्विदम् ।
तद्वद् हृदयमन्त्रेण कुशाभ्यामात्मसम्मुखम् ॥९१॥
घृते संप्लवन कुर्यु सस्कारा. षड्डुदीरिता ।

पिङ्गलामते—

उत्तम गोघृत प्रोक्त मध्यम महिषीभवम् ।
अधम छागलीजात तस्माद् गव्य प्रशस्यते ॥९२॥

शैवागमे—

गव्यमाज्यं समादाय मूलमन्त्राभिमन्त्रितम् ।
स्वका ब्रह्ममयी मूर्त्ति सचिन्त्य परितापयेत् ॥९३॥

तथा वायवीयसहितायाम्—

न्यस्य मन्त्र घृते मुद्रां दर्शयेद्धेनुसज्ञिताम् ।

शैवागमे—

प्रादेशमात्रदर्भाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाग्रकैः ।
घृताभ्या सम्मुख वह्नेरस्त्रेणोत्पवमाचरेत् ॥९४॥

शारदातिलके—

प्रादेशमात्र सग्रन्थि दर्भयुग्म घृतान्तरे ।
निक्षिप्य भागौ द्वौ कृत्वा पक्षे शुक्लतरौ स्मरेत् ॥९५॥
वामे नाडीमिडा भागे दक्षिणे पिङ्गला पुन. ।
सुषुम्णा मध्यतो ध्यात्वा कुर्याद् होम यथाविधि ॥९६॥
स्रुवेण दक्षिणाद्भागादादायाऽऽज्य हृदा गुरु. ।
जुहुयादग्नये स्वाहेत्यग्नेर्दक्षिणलोचने ॥९७॥
वामतस्तद्वदादाय वामे वह्निविलोचने ।
जुहुयादथ सोमाय स्वाहेति हृदयाणुना ॥९८॥
मध्यादाज्य समादाय वह्नेर्भालविलोचने ।
जुहुयादथाग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति हृदयाणुना ॥९९॥
हृन्मन्त्रेण स्रुवेणाऽऽज्य भागादादाय दक्षिणात् ।
जुहुयादग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति तन्मुखे ॥१००॥
इति सम्पातयेत्तत्ताद्भागेष्वाज्याहुर्ति क्रमात् ।
इत्यग्निनेत्रवक्त्राणा कुर्यादुद्घाटनं गुरु' ॥१०१॥

सताराभिर्व्याहृतिभिराज्येन जुहुयात्पुनः ।
जुहुयादग्निमन्त्रेण त्रिवार देशिकोत्तम. ॥१०२॥

गर्भाधानादिका वह्नेः क्रिया निर्वर्त्तयेत् क्रमात् ।
अष्टाभिराज्याहुतिभि. प्रणवेन पृथक्पृथक् ॥१०३॥

गर्भाधान पुसवन सीमन्तोन्नयन पुन' ।
अनन्तर जातकर्म स्यान्नामकरण तथा ॥१०४॥

उपनि क्रमण पश्चादन्नप्राशनमीरितम् ।
चौलोपनयने भूयो महानाम्न्यं महाव्रतम् ॥१०५॥

तथोपनिषद पश्चाद्गोदानोद्वाहकौ मृतिम् ।
शुभेषु स्युर्विवाहान्ता क्रियास्ता' क्रूरकर्मसु ॥१०६॥
मरणान्ता' समुद्दिष्टा वह्नेरागमवेदिभिः ।

नारदपञ्चरात्रे—

प्रणव पूर्वमुच्चार्य्य कर्मनाम समुच्चरेत् ।
सम्पादयामि स्वाहेति सर्वकर्मस्वय विधि. ॥१०७॥

सौत्रामणीतन्त्रे तु "विवाहान्ता वाग्भवेने" त्युक्त तदेतयोर्विकल्प । नामकर्मणि शिवाग्निर्नारायणाग्निर्दुर्गाग्निरित्यादि नाम कर्तव्यम् । तदुक्तम्—

वायवीयसहितायाम्—

जातं ध्यात्वैवमाकार जातकर्म समारभेत् ।
नालापनयन कृत्वा तत. सशोध्य सूतकम् ॥१०८॥

शिवाग्निरिति नामास्य कृत्वाऽऽहुतिपुर.सरम् ।
पित्रोर्विसर्ज्जन कृत्वा चूडोपनयनादिकम् ॥१०९॥
अथोद्वाहावसान च कृत्वा सस्कारमस्य तु । इति ।

शारदातिलके—

ततश्च पितरौ तस्य सम्पूज्याऽऽत्मनि योजयेत् ।
समिधः पञ्च जुहुयान्मूलाग्रघृतसम्प्लुता ॥११०॥

मन्त्रैर्जिह्वाङ्गमूर्त्तीनां क्रमाद्वह्नेर्यथाविधि ।
प्रत्येक जुहुयादेकामाहुतिं तन्त्रवित्तम. ॥१११॥

अवदाय स्रु वेणाज्य चतुः स्रुचि पिधाय ताम् ।
स्रुवेण तिष्ठन्नेवाग्नौ देशिको यतमानसः ॥११२॥
जुहुयाद्वह्निमन्त्रेण[1] वौषडन्तेन सम्पदे ।

प्रपञ्चसारे—

जिह्वायां मध्यसस्थाया मन्त्री ज्वालावलीतनो ॥११३॥
ताराद्यैर्दशभिर्भेदै पूर्वपूर्वसमन्वितै. ।
मनुना गाणपत्येन हुनेत्पूर्वं दशाहुती ॥११४॥
जुहुयाच्च चतुर्वार समस्तेनैव तेन तु ।
आज्येन साध्यमनुना पञ्चविंशतिसख्यकम् ॥११५॥
जुहुयात्सर्वहोमेषु सुधीरनलतृप्तये ।
तान्त्रिकाणामय न्यायो हुतानां समुदीरित ॥११६॥

गाणपत्येन महागणेशमन्त्रेण । तदुक्त—

गणेश्वरपरामर्शिण्याम्—

महागणेशमन्त्रेण पूर्वपूर्वयुतेन च ।
तारादिबीजषट्केषु करणेष्वद्रिवर्णकैः ॥११७॥
भिन्नेन दशधा तेन समस्तेन हुनेत्प्रिये ।

मन्त्र प्रयोगे वक्ष्यते । इषव. पञ्च, करणानि इन्द्रियाणि पञ्च, अद्रयः सप्त, बीजषट्क इषु इति पदच्छेद. । चरुहोमे तु चरुमिदानीं श्रपयेत्, तत्प्रकार. प्रागेव प्रपञ्चित. ।

शारदातिलके—

तत. पीठ समभ्यर्च्य देवताया हुताशने ।
अर्चयेद्वह्निरूपा तां देवतामिष्टदायिनीम् ॥११८॥
तन्मुखे जुहुयान्मन्त्री पञ्चविंशतिसख्यया ।
आज्येन मूलमन्त्रेण वक्त्रैकीकरण त्विदम् ॥११९॥
वह्निदैवतयोरैक्यमात्मना सह भावयन् ।
मूलमन्त्रेण जुहुयादाज्येनैकादशाहुती. ॥१२०॥
नाडीसन्धानमुद्दिष्टमेतदागमवेदिभि ।
जुहुयादङ्गमुख्यानामावृतीनामनुक्रमात् ॥१२१॥
एकैकामाहुतिं सम्यक्सर्पिषा देशिकोत्तमः ।

---

१. क. ०वह्निमात्रेण ।

सारसङ्ग्रहे—

पूर्वादिदिक्षु कुण्डेषु सर्वेष्वपि यथाविधि ।
गुरुर्वह्निं प्रविहरेत् सस्कृतेषूक्तवर्त्मना १२२॥
सर्वर्त्विजश्चन्दनाद्यै. सम्पूज्य प्रोक्तदेवताम् ।
सर्वावरणसयुक्तां मूलेन जुहुयुस्तत ॥१२३॥
पञ्चविंशतिधा सर्पिःसयुतेन पयोऽन्धसा ।

वायवीयसंहितायाम्—

स्रुवेणाज्य समित्पाण्या स्रुचा शेष करेण वा ।
तत्र दिव्येन होतव्य तीर्थेनार्षेण वा तथा ॥१२४॥

छन्दोगपरिशिष्टे—

दैवेन तीर्थेन च हूयते हवि',
स्वङ्गारिणि स्वर्विषि तच्च पावके ।
योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्चोपजायते ॥१२५॥

तथा प्रपञ्चसारे—

हुनेत्तु देशिकः पश्चान्मण्डले बलिमाहरेत् ।
नक्षत्राणा सवाराणा सराशीना यथाक्रमम् ॥१२६॥
दद्याद्बलिं गन्धपुष्पधूपपूर्वकमादरात् ।
ताराणामश्विन्यादीना[1] राशिः पादाधिक द्वयम् ॥१२७॥
मेषादिमुक्त्वा नक्षत्रसञ्ज्ञा पूर्वमनन्तरम् ।
देवताभ्य' पद प्रोक्त्वा दिवा नक्त वदेत्तथा ॥१२८॥
चरिभ्यश्चाथ सर्वेभ्यो भूतेभ्यश्च नमो वदेत् ।
एवं रात्रौ तु सम्पूर्णे तस्मिंस्तद्वत्प्रयोजयेत् ॥१२९॥
तथा राश्यधिपानां च ग्रहाणा तत्र तत्र च ।
सप्ताना करणानां च दद्यान्मीनाह्वमेषयोः ॥१३०॥
अन्तराले बलिस्त्वेव सम्प्रोक्तः कलशात्मक. ।
पुनर्निवेद्यमुद्धृत्य पूर्ववत्परिपूज्य च ॥१३१॥

---

१ ख ०माश्विनादीनां ।

मुखवासादिकं दत्वा स्तुत्वा तद्युक्तया पुनः ।
स्तुत्वा यथावत्प्रणमेद्भक्तियुक्तस्तु[1] साधकः ॥१३२॥

मीनाह्वमेषयोरन्तराले ईशानपूर्वदिशोर्मध्ये । तथा च—

तन्त्रराजे—

प्राच्या मेषवृषौ वह्नौ मिथुन दक्षिणे तथा ।
कुलीरसिंहौ च तथा नैऋत्ये कन्यका स्थिता ॥१३३॥

तुलाकीटौ पश्चिमतो धनुर्वायौ तु सस्थितम् ।
नक्रकुम्भावुत्तरतो मीनमीशे तु सस्थितम् ॥१३४॥

शारदातिलके—

प्रातरुत्थाय जुहुयु पुनराज्यान्वितैस्तिलै ।
द्रव्यैर्वा कल्पविहितैः सहस्र साष्टक पृथक् ॥१३५॥

ततस्तु धौतदन्तास्य स्नात शिष्य समाहितम् ।
पाययित्वा पञ्चगव्य कुण्डस्यान्तिकमानयेत् ॥१३६॥

विलोक्य दिव्यदृष्ट्या त तच्चैतन्य हृदम्बुजात् ।
गुरुरात्मनि सयोज्य कुर्यादध्वविशोधनम् ॥१३७॥

उक्त कलाध्वा तत्वाध्वा भुवनाध्वेति च त्रयम् ।
वर्णाध्वा च पदाध्वा च मन्त्राध्वेत्यपर त्रयम् ॥१३८॥
निवृत्याद्याः कलाः पञ्च कलाध्वेति प्रकीर्त्तिताः ।

सारसङ्ग्रहे—

शैवादिनिगमैर्भिन्नास्तत्त्वाध्वानो बहुक्रमाः ।
तत्र शैवानि तत्वानि षट्त्रिंशत्प्रमितान्यथ ॥१३९॥

वक्ष्यन्ते शिवशक्ती च सदाशिव इतीश्वरः ।
विद्या चैतानि शुद्धानि शुद्धाशुद्धानि सप्त च ॥१४०॥

माया विद्या कला रागः कालो नियतिरेव च ।
पुरुषश्चाप्यशुद्धानि प्रकृतिर्बुध्यहङ्कृती ॥१४१॥

मनश्चेन्द्रियदशक तन्मात्रा भूतपञ्चकम् ।
उक्तानि शैवतत्वानि षट्त्रिंशन्मन्त्रवेदिभि ॥१४२॥

---

१. क. ०भक्तियुक्तस्तु ।

अथ वैष्णवतत्वानि द्वात्रिंशत्प्रमितानि च ।
वक्ष्यन्ते जीवसहितः प्राणो बुद्धिर्मनस्ततः ॥१४३॥

दशेन्द्रियाणि तन्मात्रा भूतानाम्पञ्चक तथा ।
हृत्पद्म तेजसा चैव त्रय चत्वार एव च ॥१४४॥

वासुदेवादय. सौराण्युच्यन्ते भूतपञ्चकम् ।
तन्मात्राश्चेन्द्रियाणि स्युर्मनोऽहङ्कारबुद्धयः ॥१४५॥

प्रधानञ्चेति शक्तेस्तु तत्वानि स्युर्दशैव हि ।
आत्मविद्याशिवा एते विपरीतास्त एव च ॥१४६॥

सर्वतत्त्व च सम्प्रोक्तास्तत्वाध्वानस्तु देशिकैः ।
भुवनानीह सर्वाणि भुवनाध्वा प्रकीर्त्तितः ॥१४७॥

भुवनानि लोकास्ते तु कुलार्णवे—

अतलो वितलश्चैव सुतलश्च महातलः ।
रसातलश्च तदनु तलातल इति स्मृत. ॥१४८॥

पातालो भूर्भुवः स्वश्च महज्जनतपाह्वयाः ।
सत्यलोकश्च सम्प्रोक्ता लोका एते यथाक्रमम् ॥१४९॥

आदिक्षान्तांस्तथा वर्णान्वर्णाध्वान प्रचक्षते ।
पदाध्वा वर्णवृन्द स्यान्मन्त्राध्वा पदसञ्चयः ॥१५०॥

शिष्ये स्मरेत्तान्पादाम्बुनाभिहृद्भालमूर्द्धसु ।
कूर्चेन त गुरु शिष्य स्पृशन् कुण्डे स्वके हुनेत् ॥१५१॥

तिलैर्घृताक्तैस्ताराद्यममुकाध्वानमत्र च ।
शोधयामि द्विठान्तेन मन्त्रेणाऽष्टाहुतीः पृथक् ॥१५२॥

अत्र तत्त्वानां शुद्धादिलक्षणं पदार्थादर्शे निरूपितम् । यथा—आणवकार्मणमायीयमलत्रयरहितत्वात् शुद्धत्वम् । तत्राणवो नाम सदाशिवस्य स्वस्यानवमर्श । कार्मो नाम पुण्यपापवाहनमिति प्रतीतिः । मायीयो नाम अहङ्कारादावात्मबुद्धि । तदुक्तञ्च—

वायवीयसहितायाम्—

शिवः[1] शक्तिस्ततो नादस्तस्माद्बिन्दुः सदाशिवः ।
तस्मान्महेश्वरो जात. शुद्धा विद्या महेश्वराद् ॥१५३॥

---

१. स ०शिव ।

इति शुद्धाशुद्धानीति करणत्वेन मलत्रयराहित्याच्छुद्धत्व, कार्यरूपेण तदुक्तत्वादशुद्धत्वम् । तदुक्तम्वायवीयसहितायाम्—

सा वाचामीश्वरी शक्तिर्वागीशाख्यस्य शूलिनः ।
या सा वर्णस्वरूपेण मातृकेति विजृम्भिता ॥१५४॥ इति ।

अथानन्तसमायोगान्माया कालमवासृजत् ।
नियतिं च कला विद्यां कलातो रागपूरुषौ[1] ॥१५५॥

इत्यादि—

षट्त्रिंशत्सख्ययोपेत. शुद्धाशुद्धोभयात्मकः ।

इत्यन्तेन ।

श्रीकुलार्णवे—

शूद्रसङ्करजातीना नाध्वशुद्धिर्विधीयते ।
पादोदकप्रदानाद्यै. कुर्यात्पाशविमोचनम् ॥१५६॥

तथा— षडध्वनः क्रमात्सम्यक् प्रविलाप्य शिवावधि ।
सृजेत्सृष्ट्या विलीनास्ताञ् शिवान्ताञ्च गुरूत्तम. ॥१५७॥

देशिकेन्द्रश्च त शिष्य दृष्ट्वा दृष्ट्या च दिव्यया ।
तच्चैतन्य स्थित स्वस्मिस्तस्मिन्नेव नियोजयेत् ॥१५८॥

हुनेन्महाव्याहृतिभिस्ततो देशिकसत्तमः ।
अङ्गप्रभृत्यावृत्तीना हुनेद्भूयो घृतेन वै ॥१५९॥

भूरग्नये च पश्चाच्च पृथिव्यै च युतो मनु. ।
भुवो स्याद्वायवे चान्तरिक्षाय च युतो मनुः ॥१६०॥

स्वरादित्याय च दिवे च युतो मनुरितीरित. ।
भूर्भुव स्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यश्च पूर्वत. ॥१६१॥

दिग्भ्यस्ततो वदेदेष मन्त्र· प्रोक्तस्तुरीयक· ।
महते च द्विठान्ता· स्युर्महाव्याहृतिमन्त्रकाः ॥१६२॥

महते इति पद भूरित्यादिषु चतसृष्वप्यन्वेति । द्विठ स्वाहाकारः ।

ब्रह्मार्प्पणाद्वा मन्त्रेण सर्वकर्मच्छिदे सुधी· ।
जुहुयादाहुतीरष्टौ केवलाज्येन मन्त्रवित् ॥१६३॥

ब्रह्मार्पणमन्त्रस्तु पूजासमर्प्पण उक्तः ।

---

१ क ०रातपूरुषौ ।

कपिलपञ्चरात्रे—

अर्चयित्वा यथान्यायं जुहुयाद्वै पुनः सुधीः ।
न्यूनातिरिक्तपूर्णार्थं ददामि सघृतं तिलम् ॥१६४॥
विष्णुबीज समुच्चार्य साङ्ग कुरु कुरु द्विठ. ।
यानुलोमाष्टम वर्णं षष्ठोपान्त्यस्वराकुलम् ॥१६५॥
प्रणवेन समायुक्त विष्णोर्बीजं प्रकीर्त्तितम् ।

यानुलोमाष्टम हकारः, षष्ठस्वर ऊकारः, उपान्त्यस्वरो बिन्दुः ।

शैवागमे—

कृत्वा तु मृडनामाग्निमभ्यर्च्य प्रयतः पठेत् ।
सहस्रार्चिर्महातेजा नमस्ते बहुरूपधृक् ॥१६६॥
सर्वाशिने सर्वगतपावकाय नमोऽस्तु ते ।
त्वं रौद्रघोरकर्मा च घोरहा त्व नमामि ते ॥१६७॥
विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे ।
सर्पिषा स्रुचमापूर्य पुष्प चोपर्यधोमुखम् ॥१६८॥
स्रुगुपरि स्रुच दत्वा पुष्प तत्र प्रयोजयेत् ।
सव्योत्तरकराभ्या च सम्पुटाभ्यां च शखवत् ॥१६९॥
सङ्गृह्योत्थाय सलग्नौ नाभौ तिर्यङ् निधाय च ।
पूर्णा दर्वीति मन्त्रेण मूलेन च सुसयुन ॥१७०॥
दद्यात्पूर्णाहुतीस्तिस्रः सर्वकामप्रपूरणी. ।

पुष्पदान स्रुगुपरि । तदुक्त वायवीयसंहितायाम्—

ततो होमावशिष्टेन घृतेनापूर्य वै स्रुचम् ।
निधाय पुष्प तस्याग्रे स्रुवेणाऽधोमुखेन ताम् ॥१७१॥
सदर्भेण समाच्छाद्य मूलेनाञ्जलिनोत्थितः ।
वौषडन्तेन जुहुयाद्धारा जवसमन्विताम् ॥१७२॥ इति ।

पूर्णा दर्वी शाखाविशेषे वैदिकहोमे । मूलेन वौषडन्तेन । 'स्वाहाकारं ततो होमे पूर्णाया वौषडेव हि ।' इति तदीयवचनात् ।

हुत्वा च हविषा दद्यात्स्रुचा पूर्णाहुतित्रयम् ।
वौषडन्तेन मन्त्रेण वैष्णवेन सुरोत्तम ॥१७३॥

इति **हयशीर्षपञ्चरात्र**वचनाच्च । घृताभावे तु **नारदपञ्चरात्रे**—

अभावे तु घृतस्यैव होमद्रव्येण पूरयेत् ।
तस्योपरि घृत दद्यात्तदूर्ध्वं कुसुमादिकम् ।।१७४।। इति ।

देवीहोमे तु तूर्णयागे—

आज्येन स्रुवमापूर्य तेनापूर्य धिया तत । इति ।

सारसङ्ग्रहे—

पुन सम्पूज्य गन्धाद्यैर्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ।
कुण्डादुद्वास्य चाचार्यो देवता कलशे न्यसेत् ।।१७५।।
साङ्गा सावरणा तत्र पूजयेच्च यथाविधि ।
सप्तव्याहृत्यग्निजिह्वादीनामेकाहुतिं क्रमात् ।।१७६।।
हुत्वाऽद्भि परिषिच्याग्निम्...........।

गणेश्वरपरामर्शिण्याम्—

ॐ भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक ।
कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सन्निधिं कुरु सादरम् ।।१७७।।
इति मन्त्रेण सम्प्रार्थ्य वह्निमुद्वासयेदिति ।

कपिल.—

ततो ब्रह्माणमुद्वास्य ब्राह्मणाय प्रदापयेत् ।
द्वात्रिंशत्पलमात्रेण निर्मित ताम्रपात्रकम् ।।१७८।।
तण्डुलेन समापूर्य सहिरण्य सदक्षिणम् ।
गुरुर्वृताय तत्तस्मै पूर्णपात्र विदुर्बुधाः ।।१७९।।

सारसङ्ग्रहे—

तत परिस्तरानग्नौ परिधीन्निक्षिपेन्न तु ।
नित्ये नैमित्तिके तास्तु क्षिपेद्देशिकसत्तमः ।।१८०।।

शारदातिलके—

पावक योजयित्वा स्वे परिधीन्सपरिस्तरान् ।
नैमित्तिके दहेन्मन्त्री नित्ये तु न दहेदिमान् ।।१८१।।
नेत्रे शिष्यस्य बध्नीयान्नेत्रमन्त्रेण वाससा ।

महाकपिलपञ्चरात्रे—नवेन शुक्लवस्त्रेण नेत्रे बद्ध्वेति ।

करे गृहीत्वा त शिष्य कुण्डतो मण्डल नयेत् ।
तस्याञ्जलिं पुन पुष्पै. पूरयित्वा यथाविधि ।।१८२।।
कलशे देवताप्रीत्यै क्षेपयेन्मूलमुच्चरन् ।

नारायणीये—

न्यास शिष्यतनौ कृत्वा त प्रदक्षिणमानयेत् ।
पश्चिमद्वारमानीय क्षेपयेत्कुसुमाञ्जलिम् ॥१८३॥ इति ।

पिङ्गलामते—

पुष्पैरञ्जलिमापूर्य योगपीठे प्रदापयेत् ।
पश्चिमोत्तररुद्रेन्द्रे पुष्पपातः शुभोऽशुभे ॥१८४॥
अष्टोत्तरशत शान्त्यै जुहुयादस्त्रमन्त्रतः ।

सारसङ्ग्रहे—

नेत्रबन्धमपास्योपवेशयेत्कुशसस्तरे ।
ततश्च पाठयेच्छिष्य मन्त्रमेन गुरूत्तमः ॥१८५॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१८६॥

शारदातिलके—

आत्मयागक्रमाद्भूय. सहृत्योत्पाद्य देशिकः ।
तत्तन्मन्त्रोदितान्न्यासान् कुर्याद्देहे शिशोस्तथा ॥१८७॥

आत्मयाग. अन्तर्यागः । प्रयोगसारे—

गुणाशेन पृथिव्यादिभूतानि विलय नयेत् ।
यथावत्पिण्डसस्थानि संहारकृतयोगत. ॥१८८॥
तत. सृष्टिक्रमेणैव पिण्डं सम्भावयेत्तदा

मन्त्रतन्त्रप्रकाशेऽपि—

उपविश्याऽसने दिव्ये सहरेत्तस्य विग्रहम् ।
गन्धादिघ्राणसयुक्ता पृथिवीमप्सु सहरेत् ॥१८९॥

इत्यादिना 'उत्पन्न भावयेत्तत' इत्यन्तेन । अत्र देवताप्रार्थनामाहु-राचार्या ।

कारुण्यनिलये देवि सर्वसम्पत्तिसश्रये ।
शरण्यवत्सले मात. कृपामस्मिञ् शिशौ कुरु ॥१९०॥
आणवप्रमुखैः पाशै. पाशितस्य सुरेश्वरि ।
दीनस्यास्य दयाधारे कुरु कारुण्यमीश्वरि ॥१९१॥
ऐहिकामुष्मिकैर्भोगैरपि सवर्द्धय तामसौ ।
स्वभक्ति. सकला चास्मै दीयतां निष्कलाश्रये ॥१९२॥

शारदातिलके—

पञ्चोपचारैः कुम्भस्थां पूजयेदिष्टदेवताम् ।
तस्या तत्रोक्तमार्गेण विदध्यात्सकलीकृतिम् ॥१९४॥
मण्डलेऽलङ्कृत शिष्यमन्यस्मिन्नुपवेशयेत् ।

सोमशम्भौ—

यागालयाद्दिशीशस्य रचिते स्नानमण्डपे ।
कुर्यात्करद्वयायामा वेदिमष्टाङ्गुलोच्छ्रिताम् ॥१९५॥
श्रीपर्ण्याद्यासने तत्र विन्यस्यानन्तमासनम् ।
शिष्य निवेश्य पूर्वास्य सकलीकृत्य पूजयेत् ॥१९६॥

श्रीविद्यादीक्षायां तु सर्वतोभद्रमण्डल निर्माय तत्र शिष्यमुपवेश्याऽभिषेकः कर्त्तव्य इत्युक्तम् । तथा च—

ललिताविलासे—

अथोपवेशयेच्छिष्य भूषित मण्डलान्तरे ।
सुशुभे सर्वतोभद्रे वेद्या उत्तरदिग्गते ॥१९७॥ इति ।

प्रयोगसारे—

अथैशान्यां दिशि यथा मन्त्रविन्यस्तविग्रहम् ।
पीठस्थ चतुरस्राया वेद्या दर्भाग्रपाणिनम् ॥१९८॥
अभिषिञ्चेत्स्वक शिष्यमात्मतत्त्वानुवर्त्तिनम् ।

भुक्तौ प्राङ्मुख मुक्तावुदङ्मुखमिति ज्ञेयम् । तदुक्त **सोमशम्भौ**—

स्नाने तूदङ्मुख मुक्तौ पूर्ववक्त्र च भुक्तये ॥१९९॥

शारदातिलके—

नदत्सु पञ्चवाद्येषु सार्द्ध विप्राशिषा गुरुः ।
विधिवत्कुम्भमुद्धृत्य तन्मुखस्थान् सुरद्रुमान् ॥२००॥
शिशो शिरसि विन्यस्य मातृका मनसा जपन् ।
मूलेन साधितैस्तोयैरभिषिञ्चेत्तमात्मवित् ॥२०१॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

येन प्रकारेण पुरा पूजितश्च सुधामयैः ।
तोयैरक्षरसयुक्तैर्घटस्तेनैव वर्त्मना ॥२०२॥
तथैवेन त्वाभिषिञ्चेदाशु सम्पदवाप्तये ।

शारदातिलके—

पूजिता पुनरादाय वर्द्धिनीमस्त्ररूपिणीम् ।
तस्या सुसाधितैस्तोयैः सिञ्चेद्रक्षार्थमञ्जसा ॥२०३॥

अवशिष्टेन तोयेन शिष्यमाचामयेद् गुरुः ।
ततस्त सकलीकुर्याद्देवतात्मानमात्मवित् ॥२०४॥

उत्थाय शिष्यो विमले वाससी परिधाय च ।
आचम्य वाग्यतो भूत्वा निषीदेत्सन्निधौ गुरोः ॥२०५॥

देवतामात्मनः शिष्ये सङ्क्रान्ता देशिकोत्तम ।
पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैरैक्य सम्भावयस्तयोः ॥२०६॥
दद्याद्विद्या ततस्तस्मै विनीतायाम्बुपूर्वकम् ।

पदार्थादर्शे—

तत इत्यनेन शिष्यमूर्द्धनि हस्त दत्वाऽष्टोत्तरशत मन्त्र जपेदिति सूचितम् ।

तदुक्त वसिष्ठसंहितायाम्—

ततस्तच्छिरसि स्वस्य हस्त दत्वा शत जपेत् ।
अष्टोत्तरं ततो मन्त्रं दद्यादुदकपूर्वकम् ॥२०७॥

सारसङ्ग्रहेऽपि—

गुरुः सम्पूज्य शिष्यस्था देवता भावयंस्तयोः ।
ऐक्य गुर्विनीतस्य सम्यक् तस्य मनुं त्रिशः ॥२०८॥

दक्षकर्णे वदेद्विद्वान् विप्रायोदकपूर्वकम् ।
अन्येभ्यस्तु वदेदेवमेव मन्त्र विचक्षणः ॥२०९॥

अन्यत्राऽपि—

ऋष्यादियुक्तमथ मन्त्रवर यथावद्,
ब्रूयात् त्रिशो गुरुरनर्घ्यमवामकर्णे ।

दानानन्तरम्—

अगस्त्यः—

आवयोस्तुल्यफलदो भवत्वेवमुदीरयेत् ।
प्रसन्नवदनस्तस्मै शिष्याय मुनिपुङ्गव ॥२१०॥

स्वतो ज्योतिर्मयी विद्यां गच्छन्ती भावयेद् गुरु ।
आगता भावयेच्छिष्यो धन्योऽस्मीति विशेषत. ॥२११॥

श्रीविद्यादीक्षाया तु वस्त्रपरिधानानन्तर ललिताविलासे—

वक्ष्यमाणेण विधिना कारयेत्तत्त्वशोधनम् ।
ऋष्यादिन्यासपूर्वास्तान्न्यासांस्तस्मिन् प्रविन्यसेत् ॥२१२॥

पाशच्छेद ततस्तस्य विदध्याद्देशिकोत्तमः ।
मूलाधारे ह्यधिष्ठाने मणिपूरे त्वनाहते ॥२१३॥

आज्ञायां बिन्दुचक्रे चाप्यर्द्धेन्दौ रोधिनीस्थले ।
[1]नादनादान्तयोः शक्तौ व्यापिकाया ततः परम् ॥२१४॥

समनास्थान उन्मन्यां ध्रुवमण्डल एव च ।
विद्यायाः षोडशार्णाया षोडशार्णान्विभावयेत् ॥२१५॥

त्रिकूटस्योपदेशे तु प्रातः स्मृतिवदेव तु ।
षडाधारेषु षट्कूटभावना परिकीर्त्तिता ॥२१६॥

पञ्चमी च त्रिकूटेव[2] षट्शत्यां प्रतिपादिता ।
आधारानाहताज्ञासु ब्रह्मरन्ध्रे च भावयेत् ॥२१७॥

चतु कूटा शाङ्करी च सम्यग् देशिकसत्तमः ।
ततस्तु षोडशार्णायाः षोडशार्णेषु सस्थिताः ॥२१८॥
गुणत्रयगुणातीतस्वरूपाणा कला. क्रमात् ।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यातुरीयाणां विचिन्त्य च ॥२१९॥
अवस्थाना गुरुः शिष्य दिव्यदृष्ट्याऽवलोकयेत् ।

ज्ञानार्णवे तु या प्रोक्तास्ता. कलाः कथयाम्यहम् ॥२२०॥
उत्पत्तिर्जागरो बोधो मनोव्यावृत्तिरेव च ।
कला जाग्रदवस्थायाश्चतस्रः परिकीर्त्तिता. ॥२२१॥

अभिलाषो भ्रमश्चिन्ता स्मृतिः स्वप्नकला इमाः ।
मारण विस्मृतिर्मूर्च्छा निद्रा चैव सुषुप्तिजा. ॥२२२॥

वैराग्य च मुमुक्षा च समाविश्च तृतीयका ।
विवेकाख्या चतुर्थी स्यात्तुर्यायाश्च कला इमाः ॥२२३॥

ततश्च धनपुत्रादिमूल पातकपत्रकम् ।
अभिलापप्रसूनाद्य पापपुण्यफलान्वितम् ॥२२४॥

---

१. ख. नादे नादाऽन्तयो. । २. ख. त्रिकूटे च ।

ससारपादप ध्यात्वा तस्य शाखाद्वये पृथौ ।
श्रुतदृष्टाभिधाने तु निषण्ण स्वशिशोर्गुरु. ॥२२५॥

मोहमात्सरकामाख्यक्रोधाहङ्कारनामभि· ।
समदैः पिच्छता यातै सम्भृताभ्या निरन्तरम् ॥२२६॥

त सङ्कल्पविकल्पाख्यपक्षाभ्यामतिचञ्चलम् ।
ज्ञानोपदेशपाशेन दृढ वद्ध्वा मनःखगम् ॥२२७॥

तृष्णाचञ्चुपुट कृत्याकृत्यरूपपदद्वयम् ।
श्रीगुरुर्दिव्यदृष्टचाख्यशस्त्रेण छेदयेत्ततः ॥२२८॥

तस्य पक्षौ छिन्नपक्षो निश्चलो जायते क्षणात् ।
ततस्त्रुटितससारपाशस्य च शिशोर्गुरु. ॥२२९॥

उन्मनीभावयुक्तस्य ब्रह्मरन्ध्रे सपुष्पकम् ।
सफल दक्षिण हस्त निधायाऽस्मिन्नियोजयेत् ॥२३०॥

वाच्यरूप पर वस्तु ब्रह्म वाऽहमिति स्मरन् ।
सहस्रदलपद्मस्य कर्णिकान्तरग तु यत् ॥२३१॥

गुरुस्तव[1] वोधयित्वा षट्चक्राणि च वोधयेत् ।
श्रीपात्रामृतविप्लुड्भिः कारयेत्तत्वशोधनम् ॥२३२॥

ततो नूतनवस्त्रेण ह्याच्छाद्य च शिशो शिरः ।
तस्य दक्षिणकर्णे तु प्रथम प्रवदेद् गुरुः ॥२३३॥

विद्या श्रीपादुकाख्यां तु स्वस्वपादुकया युताम् ।
स्त्रीशूद्रपतितव्रात्यमहापातकिनामपि ॥२३४॥

दीक्षाया ब्रह्मविद्याया अधिकारो भवेद्यया ।
सन्ध्याप्रकरणे त्वग्रे वक्ष्यमाणां महाप्रभाम् ॥२३५॥

त्रिपुरा ब्रह्मभूता तां गायत्रीमुपदिश्य च ।
ततोपदिश्य बालाख्यां श्रीविद्या षोडशी तत ॥२३६॥

त्रिकूटा च तदन्त स्थां त्रिकूटां केवला तु वा ।
स्वयं ज्योतिर्मयीं विद्यां गच्छन्ती भावयेद् गुरुः ॥२३७॥

आगता भावयेच्छिष्यो धन्योऽस्मीति विशेषत ।
ततश्चक्रेश्वरीविद्या विद्यास्ताः पञ्चपञ्चिका: ॥२३८॥

---

१. ख गुहस्तत्व ।

ततो वदेत्पञ्चदश नित्याविद्याः क्रमेण तु ।
या या विद्याश्चोपयुक्तास्ताः सर्वाश्च वदेत् क्रमात् ॥२३६॥

गणेशसूर्यविष्णवीशशक्तिमन्त्रानपि क्रमात् ।
उपदिश्य ततस्तस्य नामाद्यक्षरपूर्वकम् ॥२४०॥

आनन्दनाथशब्दान्त नाम कुर्याद्विचक्षणः ।
ततस्तस्मै वदेत्सम्यक् स्वक्रम सकल गुरुः ॥२४१॥

वक्ष्यमाणमशेषेण नामपारायणादिकम् ।
ततस्तद्दिननाथस्य नाम तन्नाम कल्पयेत् ॥२४२॥

मातापितृकृत पूर्वं पारपम्यागत ततः ।
कालावाप्त तृतीय स्यात् त्रीणि नामानि साधके ॥२४३॥

वायवीयसहितायाम्—

अथ गुर्वाज्ञया शिष्यः शिवाग्निगुरुसन्निधौ ।
भक्त्यैवमभिसन्धाय दीक्षावाक्यमुदीरयेत् ॥२४४॥

वर प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा ।
नत्वनभ्यर्च्य भुञ्जीयां भगवन्त त्रिलोचनम् ॥२४५॥

पदार्थादर्शे— विद्यादानानन्तर गुरुरष्टोन्तरसहस्र मन्त्र जपेत् । तदुक्तम् 'अष्टोत्तरसहस्र स्वशक्तिहानानवाप्तये' जप्यादिति ।

नारायणीयमहाकपिलपञ्चरात्रयोरपि—

मन्त्र दत्वा सहस्र वै स्वसिद्ध्यै देशिको जपेत् । इति ।

सारसङ्ग्रहे—

अष्टोत्तरशतं शिष्यः प्रजपेद् गुरुणोदितम् ।
अष्टाविंशतिवार वा ह्यष्टकृत्वोऽथवा जपेत् ॥२४६॥

तन्त्रराजे—

देवता गुरुमन्त्रात्मतत्त्वैक्य भावयन्मुदा ।
शत जपेत्तदग्रस्थो निकटे त्रिदिन वसेत् ॥२४७॥

नो चेत्सञ्चारिणी शक्तिर्गुरुमेति न संशयः ।
तस्मात्तदन्तिके तस्य पूजादेशादिकृद् वसेत् ॥२४८॥

तदात्म्यमात्मनो लब्धु गुरोर्मन्त्रात्मनो यतः ।
ततस्तदा समारभ्य तदायत्तो धनादिभि. ॥२४९॥

तथा सारसङ्ग्रहे—

गुरुदेवात्ममन्त्राणामैक्यं शिष्यो विभावयन् ।
प्रणामं गुरवे कुर्यात्साधको भक्तिमान्मुहुः ॥२५०॥
सोऽष्टाङ्गश्चाथ पञ्चाङ्गः पूजाकर्मसु सम्मतः ।

अष्टाङ्ग-पञ्चाङ्गनमस्कारलक्षणं पूजाप्रकरणे उक्तम् ।

शारदातिलके—

प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ गुरुं तं देवतात्मकम् ।
तस्य पादाम्बुजद्वन्द्वं निजमूर्द्धनि योजयेत् ॥२५१॥
शरीरमर्थं प्राणं च सर्वं तस्मै निवेदयेत् ।

सारसङ्ग्रहे—

प्रदद्याद् गुरवे शिष्यः स्वधनार्द्धं तदर्द्धकम् ।
दशांशं वा प्रदद्याच्च वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥२५२॥

कुम्भसम्भवः—

कृतकृत्यस्ततः शिष्यः सर्वं तस्मै निवेदयेत् ।
यच्च यावच्च तद्भक्त्या गुरवे हृष्टचेतनः ॥२५३॥

[1]गोभूहिरण्यविपिनगृहक्षेत्रादिकं मुने ।
न चेदर्धं तदर्द्धं वा दशांशमथवाऽपि वा ॥२५४॥

अक्लेशादन्नवस्त्रादि दद्याद्वित्तानुसारतः ।
प्रकारान्तरमालम्ब्य गुरुं यत्नेन तोषयेत् ॥२५५॥

सारसङ्ग्रहे—

तदधीनमना नित्यं तच्चिन्तनपरायणः ।
तत्पदाब्जरजोभूषो भवेत्साधकसत्तम ॥२५६॥

तन्त्रराजे—

गुरवे दक्षिणां दद्यात्प्रत्यक्षाय शिवात्मने ।
सर्वस्वं वा तदर्धं वा तदर्द्धं वा तदाज्ञया ॥२५७॥
न चेत्तच्छक्तिसङ्क्रान्तिः कथमस्य भविष्यति ।
गजाश्वमहिषीमेषपशुदासीमहीयुतम् ॥२५८॥
सुवर्णं भूषणं वासो भवनं चान्यदीप्सितम् ।
दद्यात्स्वशक्तितो भक्त्या…… ………॥२५९॥ इति ।

---

१. भूगो ।

वायवीयसंहितायाम्—

मण्डप गुरवे दद्याद्यागोपकरणैं सह

सारसङ्ग्रहे—

अलङ्काराश्च वासांसि दद्यादृत्विग्भ्य आदरात् ।
ईश्वरार्प्पणबुद्धया तु द्विजाशीर्भिश्च नन्दित. ॥२६०॥

शारदातिलकेऽपि—

ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यात्समग्रा प्रीतमानसः ।
ब्राह्मणास्तर्पयेत्पश्चाद्भक्ष्यभोज्यै सदक्षिणै ॥२६१॥

सारसङ्ग्रहे—

ततो नानाविधैर्भक्ष्यैर्लेह्यैश्चोष्यैस्तथेतरै ।
ब्राह्मणान् भोजयेत्सम्यक् प्रदद्याद् भूरिदक्षिणाम् ॥२६२॥
एवं क्रियामयो दीक्षा सम्पद्दात्री निरूपिता ।

शारदातिलके—

अथ वर्णात्मिकां वक्ष्ये दीक्षामागमचोदिताम् ।
पुम्प्रकृत्यात्मका वर्णाः शरीरमपि तादृशम् ॥२६३॥
यतस्तस्मात्तनौ न्यस्येद्वर्णाञ्शिष्यस्य देशिकः ।
तत्तत्स्थानयुतान् वर्णान्प्रतिलोमेन संहरेत् ॥२६४॥
स्वाज्ञया देवताभावाद्विधिना देशिकोत्तमः ।
तदा विलीनतत्त्वोऽयं शिष्यो दिव्यतनुर्भवेत् ॥२६५॥
परमात्मनि सयोज्य तच्चैतन्य गुरूत्तमः ।
तस्मादुत्पाद्य तान्वर्णान् न्यसेच्छिष्यतनौ पुनः ॥२६६॥
सृष्टिक्रमेण विधिवच्चैतन्य च नियोजयेत् ।
जायते देवताभाव. परानन्दमयः शिव. ॥२६७॥
एषा वर्णमयी दीक्षा प्रोक्ता ज्ञानप्रदायिनी ।
तत. कलावती दीक्षा यथावदभिधीयते ॥२६८॥
निवृत्त्याद्याः कलाः पञ्चभूताना शक्तयो यतः ।
तस्माद्भूतमये देहे ध्यात्वा त वेधयेच्छिशो. ॥२६९॥
निवृत्तिर्जानुपर्यन्त तलादारभ्य सस्थिता ।
जानुनोर्नाभिपर्यन्त प्रतिष्ठा व्याप्य तिष्ठति ॥२७०॥
नाभे कण्ठावधि व्याप्ता विद्या शान्तिस्तत. परम् ।
कण्ठाल्ललाटपर्यन्त व्याप्ता तस्माच्छिखावधि ॥२७१॥

शान्त्यतीता कला ज्ञेया कला व्याप्तिरितीरिता ।
सहारक्रमयोगेन स्थानात्स्थानान्तर गुरुः ॥२७२॥

सयोज्य वेधयेद्विद्वानाज्ञया ताः शिवावधि
इय प्रोक्ता कलादीक्षा दिव्यभावप्रदायिनी ॥२७३॥

ततो वेधमयी वक्ष्ये दीक्षां ससारमोचिनीम् ।
ध्यायेच्छिष्यतनोर्मध्ये मूलाधारे चतुर्दले ॥२७४॥

त्रिकोणमध्ये विमले तेजस्त्रयविजृम्भिते ।
वलयत्रयसयुक्ता तडित्कोटिसमप्रभाम् ॥२७५॥

शिवशक्तिमयी देवी चेतनामात्रविग्रहाम् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरा शक्ति भित्वा षट्चक्रमञ्जसा ॥२७६॥

गच्छन्ती मध्यमार्गेण दिव्य परशिवावधि ।
वादिसान्तदलस्थार्णात्सहरेत्कमलासने ॥२७७॥

त षट्पत्रमये मध्ये वादिलान्ताक्षरान्विते ।
स्वाधिष्ठाने समायोज्य वेधयेदाज्ञया गुरु ॥२७८॥

तान्वर्णान्सिंहरेद्विष्णौ त पुनर्नाभिपङ्कजे ।
दशपत्रे डादिफान्ते वर्णाख्ये योजयेद् गुरु ॥२७९॥

तान्वर्णान्सहरेद्रुद्रे त रुद्र हृदयाम्बुजे ।
कादिगान्तार्कपत्राढ्ये योजयित्वेश्वरे गुरुः ॥२८०॥

तान्वर्णान्सहरेदस्मिन्स्त भूय कण्ठपङ्कजे ।
स्वराढ्ये षोडशदले योजयित्वा स्वरान्पुनः ॥२८१॥

सदाशिवे तान्सहृत्य त पुनर्भ्रूसरोरुहे ।
द्विपत्रे हक्षलसिते योजयित्वा ततो गुरुः ॥२८२॥

तदर्णौ सहरेद्बिन्दौ कलायां त नियोजयेत् ।
तान्नादेऽनन्तर नाद नादान्ते योजयेद् गुरु ॥२८३॥

तदुन्मन्या समायोज्य बिन्दु चक्रान्तरे च तम् ।
त पुनर्गुरुवक्त्रे तु योजयेद्देशिकोत्तमः ॥२८४॥

सहैवमात्मना शक्ति वेधयेत्परमे शिवे ।
गुर्वाज्ञया छिन्नपाशस्तदा शिष्य पतेद्भुवि ॥२८५॥

सञ्जातदिव्यबोधोऽसौ सर्वं वदति तत्क्षणात् ।
साक्षाच्छिवो भवत्येष नात्र कार्या विचारणा ॥२८६॥

एषा वेधमयी दीक्षा प्रोक्ता सवित्प्रदर्शिनी ।
क्रमाच्चतुर्विधा दीक्षा तन्त्रेऽस्मिन्सम्यगीरिता ॥२८७॥

श्रीकुलार्णवे—

हस्ते शिवपुर ध्यात्वा जपन्मूलाङ्गमालिनीम् ।
गुरु स्पृशेच्छिष्यतनुं स्पर्शदीक्षा भवेदियम् ॥२८८॥

चित्त तत्त्वे समाधाय परतत्त्वोपबृंहितान् ।
उच्चरेत्सहतान्मन्त्रान् वाग्दीक्षेति निगद्यते ॥२८९॥

निमील्य नयने ध्यात्वा परतत्त्व प्रसन्नधी. ।
सम्यक् पश्येद् गुरुः शिष्य दृग्दीक्षा सा भवेत्प्रिये ॥२९०॥

गुरोरालोकमात्रेण भाषणात्स्पर्शनादपि ।
सद्य. सञ्जायते ज्ञान सा दीक्षा शाम्भवी स्मृता ॥२९१॥

ज्ञेया सिद्धान्तशास्त्रार्थसम्प्रदायादिहेतुभि. ।
अन्तरेणोपदिष्टा ये मन्त्रा. स्युर्विफला यतः ॥२९२॥

पदार्थादर्शे—

आणवी बहुधा दीक्षा शाक्तेयी शाम्भवी पुनः ।
एकधैवेति विद्वद्भि. पठ्यते शास्त्रकोविदैः ॥२९३॥

आणवी बहुधेत्युक्ता तद्भेदा अधुनोच्यते ।
स्मार्त्ती मानसिकी यौगी चाक्षुषी स्पार्शनी तथा ॥२९४॥

वाचिकी मान्त्रिकी हौत्री शास्त्री चेत्याभिषेचिकी ।
विदेशस्थो गुरुः स्मृत्वा शिष्यपाशत्रय क्रमात् ॥२९५॥

विश्लेष्य लयभोगाङ्गविधानेन परे शिवे ।
सम्यग्योजनरूपैषा स्मार्त्ता दीक्षेति कथ्यते ॥२९६॥

स्वसन्निधौ समासीनमालोक्य मनसा शुचि. ।
मलत्रयादुपायैर्या मोचिका सा तु मानसी ॥२९७॥

योगक्रमात्ततो योगी शिष्यदेह प्रविश्य तु ।
गृहीत्वा तस्य चात्मान स्वात्मना योजनात्मिका ॥२९८॥

योगदीक्षेति सा प्रोक्ता मलत्रयविनाशिनी ।
शिवोऽहमिति निश्चित्य वीक्षणं करुणार्द्रया ॥२९९॥

दृशा सा चाक्षुषी दीक्षा सर्वपापप्रणाशिनी ॥
स्वयं परशिवो भूत्वा निस्सन्दिग्धमना गुरुः ॥३००॥

शिवहस्तेन शिष्यस्य समन्त्रं मूर्ध्नि संस्पृशेत् ।
स्पर्शदीक्षेति सा प्रोक्ता शिवाभिव्यक्तिकारिणी ॥३०१॥

शिवहस्तलक्षणं सोमशम्भौ—

गन्धैर्मण्डलकं स्वीये विदध्याद् दक्षिणे करे ।
विधिनाऽत्राऽर्चयेद् देवमित्थं स्याच्छिवहस्तकम् ॥३०२॥ इति ।

गुरुर्वक्त्रं निजं वक्त्रं विभाव्य गुरुरादरात् ।
गुरुवक्त्रप्रयोगेन दिव्यमन्त्रादिकं शिशोः ॥३०३॥

मुद्रान्यासादिभिः सार्द्धं दद्यात् सेयं स वाचिकी ।
दीक्षाऽपरा तथा मन्त्रन्याससंयुक्तविग्रहः ॥३०४॥

स्वयं मन्त्रतनुर्भूत्वा सक्रमं मन्त्रमादरात् ।
दद्याच्छिष्याय सा दीक्षा मान्त्री मलविघातिनी ॥३०५॥

कुण्डे वा स्थण्डिले वाऽपि निक्षिप्याग्निं विधानतः ।
लयभोगक्रमेणैव प्रत्यध्वानं यथाक्रमम् ॥३०६॥

मन्त्रवर्णकलातत्त्वपदविष्टपमेव च ।
शुद्धयर्थं होमरूपैषा हौत्री दीक्षा समीरिता ॥३०७॥

योग्यशिष्याय भक्ताय शुश्रूषणपराय च ।
सार्द्धं शास्त्रं यदा त्वय्या शास्त्री दीक्षेति चोच्यते ॥३०८॥

शिवं च शिवपत्नीं च कुम्भे सम्पूज्य सादरम् ।
शिवकुम्भाभिषेकात्मा दीक्षा स्यादाभिषेचिकी ॥३०९॥

कुलार्णवे—

देवास्तमेव शंसन्ति पारम्पर्य्यप्रवर्त्तकम् ।
गुरुमन्त्रागमाभिज्ञं समयाचारपालकम् ॥३१०॥

गुरुः शिष्याधिकारार्थं विरक्तोऽपि शिवाज्ञया ।
कञ्चित्कालं विधायैतत् सुशिष्याय समर्पयेत् ॥३११॥

तस्यार्पिताधिकारस्य योग. साक्षात्परे शिवे ।
ततस्तु शाश्वती मुक्तिरिति शङ्करभाषितम् ॥३१२॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साक्षात्परशिवोदितम् ।
सम्प्रदायमविच्छिन्न सदा कुर्याद् गुरु. प्रिये ॥३१३॥

भुक्तिमुक्तिप्रसिद्ध्यर्थं परीक्ष्य विधिवद् गुरु. ।
पश्चादुपदिशेन्मन्त्रमन्यथा निष्फल भवेत् ॥३१४॥

अन्यायेन च यो दद्याद् गृह्णात्यन्यायतश्च य. ।
ददतो गृह्णतो देवि कुलशापो[1] भविष्यति ॥३१५॥

गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम् ।
उपदेश ददत्तौ[2] तु प्राप्नुयातां पिशाचताम् ॥३१६॥

अशास्त्रीयोपदेश तु यो गृह्णाति ददाति च ।
भुञ्जाते तावुभौ घोरान्नरकानेकविंशतिम् ॥३१७॥

असस्कृत्योपदेश तु यः करोति विमूढधीः ।
विनश्यति च तन्मन्त्र[3] सैकते शालिबीजवत् ॥३१८॥

अनर्हे मन्त्रविज्ञान न तिष्ठति कदाचन ।
तस्मात्परीक्ष्य वक्तव्यमन्यथा निष्फलं भवेत् ॥३१९॥

सच्छिष्यायातिभक्ताय यज्ज्ञानमुपदिश्यते ।
तत्प्रापयति तत्तत्व गोक्षीरात्तु यथा घृतम् ॥३२०॥

[4]धनाद्यभयलोभाद्यैरयोग्य यदि दीक्षयेत् ।
देवताशापमाप्नोति कृत च विकृत भवेत् ॥३२१॥

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मजप गोस्वामि
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ
एकादशस्तरङ्गः ॥११॥



---

१. क. ख कुलशापो । २. ख. ददातो । ३. ख. तन्मन्त्रे. । ४. ख. धनेषु भय० ।

द्वादशस्तरङ्गः

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

[1]स्नान सन्ध्ये सदाचार नित्यकाम्ये तथैव च ।
मन्त्रसिद्धिप्रकाराश्च शिष्यायाऽभिवदेद् गुरुः ॥१॥

अन्यत्रापि—

अभिवाद्य ततः शृणोतु सम्यक्,
समयान् भक्तिभरावनम्रमूर्त्तिः ।

सदाचार उक्त. प्रयोगसारे—

देवस्थाने गुरुस्थाने श्मशाने वा चतुष्पथे ।
पादुकासनविण्मूत्रमैथुनानि विवर्ज्जयेत् ॥२॥

देव गुरु गुरुस्थान क्षेत्र क्षेत्राधिदेवताम् ।
सिद्ध सिद्धाधिवासाश्च श्रीपूर्वं समुदीरयेत् ॥३॥

प्रमत्तामन्त्यजा कन्या पुष्पिता पतितस्तनीम् ।
विरूपा मुक्तकेशी च कामार्त्ता च न निन्दयेत् ॥४॥

कन्यायोनि पशुक्रीडा दिग्वस्त्रां प्रकटस्तनीम् ।
नाऽलोकयेत्परद्रव्य परदारांश्च वर्ज्जयेत् ॥५॥

धान्यगोगुरुविप्राग्निविद्याकोशनरान्प्रति ।
नैव प्रसारयेत्पादौ नैतानपि च लङ्घयेत् ॥६॥

आलस्यमदसम्मोहशाठ्यपैशुन्यविग्रहान् ।
असूयामात्मसम्मान परनिन्दां च वर्ज्जयेत् ॥७॥

आलस्यमनुद्यम, मदः विद्याधनाभिजात्यसम्पत्समुत्थितो मनस उल्लासः, मोहो मिथ्याऽभिनिवेशः, शाठ्यं शक्तिगूहनम्, पैशुन्य परोक्षे परदोषप्रकाशनम्, असूया गुणेषु दोपारोप, आत्मसम्मान आत्मनि सम्यक्पूज्यत्वबुद्धिः ।

लिङ्गिन व्रतिन विप्र वेदवेदाङ्गसहिताः ।
पुराणागमशास्त्राणि कल्पांश्चापि न दूषयेत् ॥८॥

वेदाङ्गानि शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दोज्योतिषमिति षडङ्गानि, सहिता मन्वादिप्रणीतस्मृतय, आगमशास्त्राणि, शिवाद्युक्तयामलादीनि ।

१. ख. स्नानसन्ध्ये ।

आगत शिववक्त्रेभ्यो गत च गिरिजामुखम् ।
मतं च वासुदेवस्य तस्मादागममुच्यते ॥९॥

इत्यागमशब्दनिरुक्तिः । कल्पान् नक्षत्रकल्पो विधानकल्पोऽभिचारकल्पः शान्तिकल्पश्चेत्यथर्ववेदविभागरूपान् श्राद्धकल्पादिकानन्यांश्च ।

युग मुसलमश्मान दाम चुल्हीमुलूखलम् ।
शूर्प्पं सम्मार्ज्जनी दण्ड ध्वज वैदुर्यमायुधम् ॥१०॥

कलश चामर छत्र दर्प्पणं भूषण तथा ।
भोगयोग्यानि चान्यानि यागद्रव्याणि यानि च ॥११॥

महास्थानेषु-वस्तूनि यानि वा देवतालयें ।
दिव्योक्तानि पदार्थानि भूताविष्टानि यानि च ॥१२॥

लङ्घयेज्जातु नैतानि नैतानि च पदा स्पृशेत् ।
या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी ॥१३॥

परहिंसात्मिका या च न तामवतरेत्क्वचित् ।
प्रतिग्रह न गृह्णीयादात्मभोगविधित्सया ॥१४॥

देवतागुरुपूजार्थं यत्नतोऽप्यर्ज्जयेद्धनम् ।
धारयेदार्ज्जव सत्यं सौशील्य समतां धृतिम् ॥१५॥

क्षान्ति दयामनास्थां च दिव्यां शक्ति च सर्वदा ।
विभीतकार्क्ककारंजस्नुहीछायां न सश्रयेत् ॥१६॥

स्तम्भदीपमनुष्याणामन्येषा प्राणिनां तथा ।
नखाग्रकेशनिर्ध्धूतस्नानवस्त्रघटोदकम् ॥१७॥

तथा **सोमशम्भुः**—

न निन्देत्कारण देव न शास्त्र तेन निर्मितम् ।
न गुरु साधक चैव लिङ्गच्छाया न लङ्घयेत् ॥१८॥
[1]नाऽघा (था) ल्लङ्घेन्न निर्माल्यं तद्द्याच्छिवदीक्षिते ।

तच्छिवनिर्माल्य यथा **षडन्वयमहारत्ने**—

न लङ्घयेद् गुरोराज्ञामुत्तर न वदेत्तथा ।
रात्रौ दिवा च तस्याज्ञां दासवत्परिपालयेत् ॥१९॥

---

१. ख. नाद्या० ।

असत्यमशुभं तद्वद्बहुवादं परित्यजेत् ।
अप्रियं च तथाऽऽलस्यं कामक्रोधौ विशेषतः ॥२०॥

अप्रच्छन्नमुखो ब्रूयाद् गुरोरग्रे कदाचन ।
अद्वैतं देवपूजां च गुरोरग्रे परित्यजेत् ॥२१॥

पादुकायोगपट्टादि गुरुचिह्नानि सादरम् ।
न लङ्घयेत्स्पृशेन्नैव पादाभ्यां प्रणमेत्सदा ॥२२॥

अभिमानं न कुर्वीत धनजात्याश्रमादिभिः ।
गुरुद्रव्यं न भोक्तव्यं तेनादत्तं कदाचन ॥२३॥

पर्यङ्कशयनं तद्वत्तथा पादप्रसारणम् ।
अङ्गभङ्गं च लीलां च न कुर्याद् गुरुसन्निधौ ॥२४॥

गमनागमने कुर्यात् प्रणम्य गुरुपादुकाम् ।
*छाया न लङ्घयेत्तद्वन्न गच्छेत्पुरतो गुरोः ॥२५॥

पश्चात्पादेन निर्गच्छेत्प्रणम्य च गुरोर्गृहात् ।
गुरोरग्रे न कुर्वीत प्रभावं शिष्यसङ्ग्रहम् ॥२६॥

अहङ्कारं न कुर्वीत नोल्बणं धारयेद्वपुः ।
अगुरोः सन्निधौ नैव स्वगुरुं प्रणमेद् बुधः ॥२७॥

नमस्कारार्थं चोद्युक्तं गुरुर्दृष्ट्वा निवारयेत् ।
नियोगं गुरोर्दद्यात् युष्मदा नैव भाषयेत् ॥२८॥

उपयुक्तं परेणैव यदि वा दीक्षितेन तु ।
छत्रोपानहवस्त्राद्यं नोपयुञ्जीत कर्हिचित् ॥२९॥

असम्पत्तावथाऽऽपत्सु न दोषः क्षालिते सति ।
स्वकुले दीक्षितानां चाप्याचार्याणां तथैव च ॥३०॥
उपयुक्तान्न दोषः स्यात्तद्दत्तादाहृतादपि ।
मन्त्रोपयुक्तमन्नाद्यं तथा यन्मन्त्रसंस्कृतम् ॥३१॥

प्राप्तमायतनाद्देव्याः शिरसा प्रणतो वहेत् ।
निःक्षिपेदम्भसि ततो न पतेदवनौ यथा ॥३२॥

— चिह्नान्तर्गतांशो नास्ति ख. पुस्तके ।

जातायामापदि भ्रशे शपथ गुरुसञ्ज्ञकम् ।
न कुर्याद्भगवत्सञ्ज्ञ प्रमादेन क्रियेत चेत् ।।३३।।

तदर्थं निर्वहेद्यत्नादन्ते पूजाजपाहुतिः ।
अनिर्वाहे तु कार्यस्य यदर्थं शपथः कृत' ।।३४।।

प्रायश्चित्तजपो देवि सहस्रं स्वमनोस्ततः ।
लोकोद्वेगकरी या च या च मर्मनिकृन्तनी ।।३५।।

स्थित्युद्वेगकरी या च ता गिर नैव भाषयेत् ।
रम्यमप्युज्वलमपि मनसोऽपि समीहितम् ।।३६।।

लोकविद्वेपरण वेष न गृह्णीयात्कथचन ।
अत्रोक्तान्यः सदा ह्येतानैहिकामुष्मिकोचितान् ।।३७।।

आचारानादृतः शान्ति दीक्षित. सोऽधिगच्छति ।
स्त्रीणा विशेपतो ह्यात्समयाश्चामलाशयः ।।३८।।

पालनात् समयाना च सिद्धिरुत्पाद्यतेऽचिरात् ।
मन्त्र साम्मुख्यमायाति समयस्थस्य सर्वदा ।।३९।।

सिद्धयस्समयस्थस्य सर्वाः स्युर्मोक्षपश्चिमा. ।
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।।४०।।

अष्टम्या पूर्णिमाया च तेषु नैमित्तिको जपः ।
नित्यात्त्रिगुणितः सोऽथ पूजां चैव समाचरेत् ।।४१।।

न्यायार्जितै. साधनैश्च दानहोमार्चनादिकम् ।
कुर्यान्न चेदघो याति भक्त्या कुर्वन्नपीश्वरि ।।४२।।

।। [1]अथ पादुकाचारविधिः ।।

---

१. ख. इत. पूर्वमयमशो विशेषः—

निबन्धे—चन्दनं चाक्षत पुष्प स्वर्णं ताम्बूलसम्बरम् ।
पात्रे निधाय गुरवे शिष्यो दद्यान्न पाणिना ।।१।।

कुलार्णवे—रिक्तहस्तश्च नोपेयाद्राजान दैवत गुरुम् ।
फलपुष्पाम्बरादीनि यथाशक्ति समर्चयेत् ।।२।।
एव यो नाचरेद्देवि ब्रह्मराक्षसता व्रजेत् ।

श्रीकुलार्णवे—

वागुरा मूलवलये सूत्राद्याः कवलीकृता. ।
एव कुलागमे ज्ञान पादुकायां प्रतिष्ठितम् ॥४३॥

कोटिकोटिमहादानात् कोटिकोटिमहाव्रतात् ।
कोटिकोटिमहायज्ञात्पराश्रीपादुकास्मृतिः ॥४४॥

कोटिमन्त्रजपात्कोटिपुण्यतीर्थावगाहनात् ।
कोटिदेवार्च्चनाद्देवि पराश्रीपादुकास्मृतिः ॥४५॥

महारोगे महोत्पाते महादुःखे महाभये ।
महापदि महापापे स्मृता रक्षति पादुका ॥४६॥

तेनाधीत श्रुत ज्ञात दत्तमिष्ट च पूजितम् ।
जिह्वाग्रे वर्त्तते यस्य सदा श्रीपादुका प्रिये ॥४७॥

सकृच्छ्रीपादुका देवि यो वा जपति भक्तितः ।
स सर्वपापरहित. प्राप्नोति परमा गतिम् ॥४८॥

शुचिर्वाप्यशुचिर्वा यो भक्त्या स्मरति पादुकाम् ।
अनायासेन धर्मार्थकाममोक्षाँल्लभेत स ॥४९॥

श्रीनाथचरणाम्भोज यस्या दिशि विराजते ।
तस्या दिशि नम. कुर्याद्भक्त्या प्रतिदिन प्रिये ॥५०॥

न पादुकापरो मन्त्रो न देवः श्रीगुरो. परः
न हि शाक्तात्परो मार्गो न पुण्य कुलपूजनात् ॥५१॥

ध्यानमूल गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूल गुरो. पदम् ।
शास्त्रमूल गुरोर्वाक्य मोक्षमूल गुरोः कृपा ॥५२॥

गुरुमूला. क्रियाः सर्व्वा लोकेऽस्मिन् कुलनायिके ।
तस्मात्सेव्यो गुरुर्नित्य सिद्ध्यर्थं भक्तिसयुतैः ॥५३॥

तावदार्त्तिभयं दु ख मोहशोकभ्रमादयः ।
यावन्न याति शरण श्रीगुरुं भक्तवत्सलम् ॥५४॥

तावद् भ्रमति ससारे सर्वदुःखमलीमसः ।
यावन्न भजते भक्त्या श्रीगुरुं शिवरूपिणम् ॥५५॥

सर्वसिद्धिफलोपेतो मन्त्रस्कन्धोऽतिशोभनः[1] ।
गुरुप्रसादमूलोऽय परतत्त्वमहाद्रुमः ।।५६।।

यथा ददाति सन्तुष्टः प्रसन्नो वरदो मनुम् ।
तथा भक्त्या धनैः प्राणैर्गुरु यत्नेन तोषयेत् ।।५७।।

यदा दद्याच्छिवाय स्वमात्मान देशिकोत्तमः ।
तदा मुक्तो भवेच्छिष्यो न ततोऽस्ति पुनर्भव. ।।५८।।

तावदाराधयेच्छिष्य. सुप्रसन्नो यथा भवेत् ।
गुरौ प्रसन्ने शिष्यस्य सद्य. पाशक्षयो भवेत् ।।५९।।

मनसाऽपि न काङ्क्षेत भक्तो मानानुजीविकाः ।
सम्पादयन्ति तत्सर्वं स्वामिनो भक्तवत्सला. ।।६०।।

ब्रह्मविष्णुमहेशानदेवतामुनियोगिन. ।
कुर्व्वन्त्यनुग्रह तुष्टा गुरौ तुष्टे न सशयः ।।६१।।

भक्त्या सन्तुष्टगुरुणा योपदिष्टः कृपालुना ।
कर्ममुक्तो भवेच्छिष्यो भुक्तिमुक्त्यो स भाजनम् ।।६२।।

शिष्येणापि तदा ग्राह्य यदा सन्तोषितो गुरुः ।
तस्माद् गुरोः प्रिय कुर्यान्मनोवाक्कायकर्मभिः ।।६३।।

यदि वा परितुष्टेन गुरुणा यत्र कुत्रचित् ।
मुक्तोऽसीति समादिष्ट सोऽपि मुक्तो भवेत्प्रिये ।।६४।।

अथवा निष्प्रपञ्चेन धाम्ना केनचिदीश्वरि ।
करोमि गुरुरूपेण पशुपाशविमोचनम् ।।६५।।

न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्त श्वपचः प्रियः ।
तस्मै देयं ततो ग्राह्य स तु पूज्यो ह्यह यथा ।।६६।।

विप्रोऽपि गुणयुक्तो वाऽप्यभक्तो न प्रशस्यते ।
म्लेच्छोऽपि गुणहीनो वा भक्तिमान्स विशिष्यते ।।६७।।

गुरुभक्तिविहीनस्य तपो विद्या व्रत कुलम् ।
निःफल हि कुलेशानि केवल लोकरञ्जनम् ।।६८।।

१. क 'तन्त्रस्कन्धो०' ।

गुरुभक्त्याख्यदहनदग्धदुर्जातिकल्मषः[1] ।
श्वपचोऽपि परैः पूज्यो न विद्वानपि नास्तिकः ॥६९॥

धर्मार्थकामैः किं तस्य मोक्षस्तस्य करे स्थितः ।
सर्वार्थैः श्रीगुरौ देवि यस्य भक्तिः स्थिरा सदा ॥७०॥

स शिवो गुरुरूपेण भुक्तिमुक्तिप्रदो मम ।
इति भक्त्या स्मरेद्यस्तु तस्य सिद्धिरदूरतः ॥७१॥

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते कुलेश्वरि ॥७२॥

नारायणे महादेवे मातापित्रोश्च राजनि ।
यथा भक्तिर्भवेद्दिवि तथा कार्या निजे गुरौ ॥७३॥

लक्ष्मीनारायणौ वाणीधातारौ गिरिजाशिवौ ।
श्रीगुरुं गुरुपत्नी पितराविति चिन्तयेत् ॥७४॥

गुरुभक्त्या यथा देवि प्राप्यन्ते सर्वसिद्धयः ।
यज्ञदानतपस्तीर्थव्रताद्यैर्न तथा प्रिये ॥७५॥

श्रीगुरोर्निश्चला भक्तिर्वर्द्धते हि यथा यथा ।
तथा तथाऽस्य विज्ञानं वर्द्धते कुलनायिके ॥७६॥

किं तीर्थाद्यैर्म्महायासैः किं व्रतैः कायशोषणैः ।
निर्व्याजसेवा देवेशि भक्तिर्येषा हि सद्गुरौ ॥७७॥

कायक्लेशेन महता तपसा वापि यत्फलम् ।
तत्फलं लभते देवि सुखेन गुरुसेवया ॥७८॥

भोगमोक्षार्थिना ब्रह्म विष्णवीशपदकाङ्क्षिणाम् ।
भक्तिरेव गुरौ देवि नान्यः पन्था इति श्रुतिः ॥७९॥

अशुभानि च सर्वाणि स महापातकानि च ।
भक्तिः क्षणेन दहति तूलराशिमिवानलः ॥८०॥

विश्वासाय नमस्तस्मै सर्व्वसिद्धिप्रदायिने ।
येन मृद्दारुदृषदः फलन्त्यविकलं फलम् ॥८१॥

---

१. ख. ०दग्धदुर्नीति० ।

न योगो न तपो नार्चाक्रम. योऽपि निगद्यते ।
श्रमाये कुलमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेव विशिष्यते ॥८२॥

साक्षाद्गुरुमये देवि सर्व्वस्मिन् भुवनान्तरे ।
किं न भक्तिमता क्षेत्र मन्त्रः केषा न सिद्धयति ॥८३॥

गुरौ मनुष्यबुद्धिं च मन्त्रे चाक्षरबुद्धिताम् ।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरक व्रजेत् ॥८४॥

गुरु न मर्त्यं बुद्धयेत यदि बुद्धयेत तस्य तु ।
कदापि न भवेत्सिद्धिर्मन्त्रैर्वा देवतार्च्चनैः ॥८५॥

श्रीगुरुं प्राकृतैः सार्द्धं ये स्मरन्ति वदन्ति च ।
तेषा च सुकृत सर्वं पातक भवति प्रिये ॥८६॥

जन्महेतू हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नत. ।
गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माधर्मप्रदर्शकः ॥८७॥

गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्द्देव गुरुर्गति. ।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥८८॥

गुरोर्हित च कर्तव्य वाङ्मन.कायकर्मभिः ।
अहिताचरणाद्देवि विष्ठाया जायते कृमिः ॥८९॥

शरीरवित्तप्राणांश्च श्रीगुरु वञ्चयन्ति ये ।
कृमिकीटपतङ्गत्व प्राप्नुवन्ति नराधमा. ॥९०॥

गुरुत्यागाद्भवेन्मृत्युर्म्मन्त्रत्यागाद्दरिद्रता ।
गुरुमन्त्रपरित्यागाद्रौरव नरकं व्रजेत् ॥९१॥

गुर्व्वर्थं धारयेद्देह तदर्थं धनमर्ज्जयेत् ।
निजप्राणान्परित्यज्य गुरुकार्यं समाचरेत् ॥९२॥

गुरूक्तं परुष वाक्यमाशिष चिन्तयेत्प्रिये ।
तेन सन्तापितो वापि प्रसादमिति सस्मरेत् ॥९३॥

भोगयोग्यानि वस्तूनि गुरवे सर्वमर्पयेत् ।
तच्छेषमिति सञ्चिन्त्य चानुभूयात्कुलेश्वरि ॥९४॥

गुर्व्वग्रे न तप. कुर्यान्नोपवासादिक व्रतम् ।
तीर्थयात्रां च नो कुर्यान्न स्नायादात्मशुद्धये ॥९५॥

न नियोगं गुरोर्दद्याद्युष्मदा नैव भाषयेत् ।
ऋणदानं तथा दानं वस्तूनां क्रयविक्रयम् ॥९६॥

न कुर्याद् गुरुभिः सार्द्धं शिष्यो भूष्णुः कदाचन ।
न कुर्यान्नास्तिकैर्वादं सम्भाषणमपीश्वरि ॥९७॥

विलोक्य दूरतो गच्छेन्नासीत सह तैः क्वचित् ।
गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्यमन्तिके ॥९८॥

स याति नरकं घोरं सा पूजा निष्फला भवेत् ।
शिरसा न वहेद्भारं गुरुपादाब्जधारिणा ॥९९॥

तदाज्ञया तत्कर्त्तव्यमाज्ञारूपो गुरुः स्मृतः ।
मन्त्रागमाद्यमन्यत्र श्रुतं तस्मै निवेदयेत् ॥१००॥

गुर्वाज्ञया तद् गृह्णीयात्तदनिष्टं विवर्ज्जयेत् ।
स्वशास्त्रोक्तं रहस्यार्थं न वदेद्यस्य कस्यचित् ॥१०१॥

यदि ब्रूयात्स समयाच्च्युत एव न संशयः ।
अद्वैतं भावयेन्नित्यं नाद्वैतं गुरुणा सह ॥१०२॥

आत्मवत्सर्वभूतेषु हितं कुर्यात्कुलेश्वरि ।
आत्मस्थानाङ्गसद्भावैः शुश्रूषा स्याच्चतुर्विधा ॥१०३॥

शुश्रूषया तया देवि शिष्यः सन्तोषयेद् गुरुम् ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥१०४॥

शुश्रूषणपरो यस्तु गुरुदेवमहात्मनाम् ।
केवलं गुरुशुश्रूषा तत्कृपाकारिणी प्रिये ॥१०५॥

सद्भक्तिसहिता सा चेत् सर्वकामफलप्रदा ।
क्षीयन्ते सर्वपापानि वर्द्धन्ते पुण्यराशयः ॥१०६॥

सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि गुरुशुश्रूषया प्रिये ।
यद्यदात्महितं वस्तु तत्तद्वित्तं न वञ्चयेत् ॥१०७॥

गुरुदेवार्चको यस्तु तस्य पुण्यं न गण्यते ।
भक्त्या वित्तानुसारेण गुरुमुद्दिश्य यत्कृतम् ॥१०८॥

स्वल्पं वा बहु वा पुण्यं तुल्यमाढ्यदरिद्रयोः ।
सर्वस्वमपि यो दद्याद् गुरवे भक्तिवर्ज्जितः ॥१०९॥

शिष्यो न फलमाप्नोति भक्तिरेव हि कारणम् ।
यस्मिन्द्रव्ये गुरोरस्ति स्पृहा नानुभवेच्च तत् ॥११०॥

अवश्यं यदि वाञ्छा स्यादनुभूयात्तदाज्ञया ।
यस्तिलार्द्धं तदर्द्धं वा गुरुस्वमुपजीवति ॥१११॥

लोभान्मोहात्स पच्येत नरके च त्रिसप्तके ।
अल्पादल्प गुरुद्रव्यमदत्त स्वीकरोति यः ॥११२॥

तिरश्चा योनिमापन्नः क्रव्यादैर्भक्ष्यते प्रिये ।
गुरुद्रव्याभिलाषी च गुरुस्त्रीगमनोत्सुकः ॥११३॥

पतितस्य क्षुल्लकस्य प्रायश्चित्त न विद्यते
आज्ञाभङ्गोऽर्थग्रहण गुरोरप्रियवर्त्तनम् ॥११४॥

गुरुद्रोहमिद प्राहुर्य. करोति स पातकी ।
स्वद्रव्यविनियोग च नानिवेद्य गुरोश्चरेत् ॥११५॥

अनिवेद्य तु य. कुर्यात्स भवेद् ब्रह्मघातकः ।
गुरुस्थानं संप्रदाय तद्धर्मं यो विनाशयेत् ॥११६॥

गुरुभिः स बहि. कार्यो दण्ड्यो वध्यश्च पातकी ।
गुरुकोपान्न नाशोऽन्यो गुरुद्रोहान्न पातकम् ॥११७॥

न मृतिर्गुरुनिन्दा या गुर्वनिष्टान्न चापदः ।
जीवेदग्निप्रविष्टो वा नर. पीतविषोऽपि वा ॥११८॥

मृत्युहस्तगतो वापि नाऽपराधकरो गुरोः ।
यत्र श्री गुरुनिन्दा स्यात् पिधाय श्रवणे स्वके ॥११९॥

सद्यस्तस्मादपक्रामेद् दूर न शृणुयाद्यथा ।
गुरुर्नाम जपेत्पश्चाच्छ्रवणे सा प्रतिक्रिया ॥१२०॥

गुरुमित्रसुहृद्दासीदासाद्यान्नापमानयेत् ।
न निन्देदस्य समयान्वेदशास्त्रागमादिकान् ॥१२१॥

श्रीगुरोः पादुका भूषा गुरुनामस्मृतिर्जपः ।
गुर्वाज्ञाकरणं कृत्य शुश्रूषा भजनं गुरोः ॥१२२॥

विविक्षुर्देशिकावासं शान्तचित्तोऽतिभक्तिमान्
व्यजन पादुका छत्र चामर वाहनादिकम् ॥१२३॥

ताम्बूलमुलवरण वेषमुत्सृज्य प्रविशेच्छनै. ।
वाहन पादुका छत्रमासन वसनादिकम् ॥१२४॥

दृष्ट्वा गुरोर्नमस्कुर्यान्नात्मभोगाय कारयेत् ।
पादप्रक्षालन स्नानमभ्यङ्ग दन्तधावनम् ॥१२५॥

मूत्र निष्ठीवन क्षौर शयन स्त्रीनिषेवणम् ।
वीरासन च दुर्वाक्यमासनं हास्यरोदनम् ॥१२६॥

केशमोचनमुष्णीषं कञ्चुकं नग्नतां तथा ।
पादप्रसारण वादं कलह दूषण प्रिये ॥१२७॥

अङ्गभङ्गाङ्गवाद्यादिकरास्फालनधूननम् ।
द्यूतकुक्कुटमल्लादियुद्धमित्यादि चाम्बिके ॥१२८॥

गुरुयोगिमहासिद्धपीठक्षेत्राश्रमेषु च ।
नाचरेदाचरेन्मोहाद्देवताशापमाप्नुयात् ॥१२९॥

उपचार विना तिष्ठेद् गुर्व्वग्रे नेच्छया विशेत् ।
मुखावलोकी सेवेत तदुक्तं च समाचरेत् ॥१३०॥

गुरूक्तानुक्तकार्येषु नोपेक्षा कारयेत्प्रिये ।
सदसद्यद् गुरुर्ब्रूयात्तत्कार्यमविशङ्कया ॥१३१॥

निग्रहानुग्रहे वापि गुरु॰ सर्वस्य कारणम् ।
निर्गतं यद् गुरोर्वक्त्रात्सर्वं शास्त्र तदुच्यते ॥१३२॥

गुरुकार्ये स्वय शक्तो नापर प्रेषयेत् प्रिये ।
बहुत्वे तत्परैर्भृत्यैः सहितोऽप्यतिभक्तिमान् ॥१३३॥

गच्छस्तिष्ठन् स्वपञ्जाग्रज्जपन् जुह्वन् प्रपूजयन् ।
गुर्वाज्ञामेव कुर्वीत तद्गतेनान्तरात्मना ॥१३४॥

अभिमानो न कर्त्तव्यो जातिविद्याधनादिभिः ।
सर्वदा सेवयेन्नित्य शिष्य. श्रीगुरुसन्निधौ ॥१३५॥

छायाभूमिपरित्यागी विनीतस्त्वतिभक्तिमान् ।
देवी गुर्व्वग्रतस्तिष्ठेद् गुरुकार्यसमुत्सुक॰ ॥१३६॥

स्वकार्यमन्यकार्य्यं वा शिष्य श्रीगुरुचित्तवत् ।
गुरुपार्श्वगतो नम्रः प्रच्छन्नास्यो मित वदेत् ॥१३७॥

सामान्यतो निषेधश्चेत्सद्गुरोर्यदि सन्निधौ ।
आचरेद्यदि मूढात्मा दोष कोटिगुणं भवेत् ॥१३८॥

अनादृत्य गुरोर्वाक्य शृणुयाद्यः पराङ्मुखः
अहित वाऽहितं वापि रौरव नरकं व्रजेत् ॥१३९॥

गोब्राह्मणवध कृत्वा यत्पापं समवाप्नुयात् ।
तत्पापं समवाप्नोति गुर्वग्रेऽनृतभाषणात् ॥१४०॥

स्थानान्तरगत चार्थव्यसने विषमे स्थितम् ।
श्रीगुरुं न त्यजेत्क्वापि तदादिष्टो व्रजेत्प्रिये ॥१४१॥

अध स्थिते गुरावूर्ध्वे न तिष्ठेत कदाचन ।
न गच्छेदग्रतस्तस्य न विशेदुत्थिते गुरौ ॥१४२॥

शक्तिच्छाया गुरुच्छाया देवच्छायां न लङ्घयेत् ।
स्वच्छाया तेषु नो कुर्यान्न स्वपेद् गुरुसन्निधौ ॥१४३॥

भाषण पठनं गान भोजन शयनादिकम् ।
अनादिष्टो न कुर्वीत न चावन्दनपूर्वकम् ॥१४४॥

ब्रह्महत्याशत कुर्याद् गुर्वाज्ञां परिपालयन् ।
विना गुर्वाज्ञया शिष्यो निःश्वसेन्नातिशासनात् ॥१४५॥

सर्वं गुर्वाज्ञया कुर्यान्नालिङ्गेत स्त्रियं प्रिये ।
भक्त्या प्रणम्य चोत्तिष्ठेद्बद्धाञ्जलिपुटः प्रिये ॥१४६॥

पश्चात्पादेन निर्गच्छेन्नमस्कृत्य गुरोर्गृहात् ।
एकासनेनोपविशेद् गुरुणा तत्समैः सह ॥१४७॥

न विशेदासने देवि देवतागुरुसन्निधौ ।
गुरोः सिंहासनं देयं ज्येष्ठानामुत्तमासनम् ॥१४८॥

देश्यासनं कनिष्ठानामितरेषां समासनम् ।
जातिविद्याधनाढ्यो वा दूने दृष्ट्या गुरुं मुदा ॥१४९॥

दण्डप्रणामं कुर्वीत त्रिःप्रदक्षिणमाचरेत् ।
ततस्त्रिषड्द्वादश वा ज्येष्ठादिष्वेकमेव च ॥१५०॥

गुरुतद्गुरुयोगे तु वन्देत परमं गुरुम् ।
ततो नमेद् गुरुं सोऽपि गुर्वग्रे त निवारयेत् ॥१५१॥

प्रगुरोः सन्निधौ शिष्यः स्वगुरुं मनसा नमेत् ।
गुरुबुद्ध्या नमेत्सर्वं दैवतं तृणमेव वा ॥१५२॥

न नमेद्देवबुद्ध्या तु प्रतिमां लोहमृण्मयीम् ।
गुरोः प्रणामत्रितयं ज्येष्ठानामेकमेव च ॥१५३॥

पूज्यानामञ्जलिस्तद्वदन्येषा वाक्यवन्दनम् ।
देवान् गुरून् कुलाचार्यान् ज्ञानवृद्धांस्तपोधनान् ॥१५४॥

विद्याधिकान् स्वकर्मस्थान् प्रणमेत्कुलनायिके ।
स्त्रीद्विष्टं गुरुभिः शप्तं पाखण्डं पतितं शठम् ॥१५५॥

विकर्मिणं कृतघ्नं वा नाश्रमिणं च नो नमेत् ।
अनिवेद्य गुरौ भुङ्क्ते यस्त्वेकगृहसंस्थितः ॥१५६॥

अमेध्यं तेन भुक्तं स्यात्सूकरो जायते मृतः ।
एकग्रामस्थितः शिष्यस्त्रिसन्ध्यं प्रणमेद् गुरुम् ॥१५७॥

क्रोशमात्रस्थितो भक्त्या गुरुं प्रतिदिनं नमेत् ।
अर्द्धयोजनगः शिष्यः प्रणमेत्पञ्चपर्वसु ॥१५८॥

एकयोजनमारभ्य योजनद्वादशावधि ।
तत्तद्योजनसंख्यातमासैर्गत्वा नमेद् गुरुम् ॥१५९॥

दूरदेशस्थितः शिष्यो भक्त्या तत्सन्निधिं गत. ।
अतिदूरस्थितः शिष्यो यदीच्छा स्यात्तदा व्रजेत् ॥१६०॥

रिक्तहस्तस्तु नोपेयाद्राजानं दैवतं गुरुम् ।
फलपुष्पाम्बरादीनि यथाशक्त्या समर्पयेत् ॥१६१॥

एवं यो नाचरेद्देवि ब्रह्मराक्षसतां व्रजेत् ।
गुरुशक्तिश्च तत्पुत्रो ज्येष्ठभ्राता गुरोः समः ॥१६२॥

आत्मवच्च कनीयसः पुत्रवत्कुलपालकाः ।
लोकाचार्यस्य देवेशि गुरुज्येष्ठकनिष्ठयोः ॥१६३॥

गुरुकल्पस्य कुर्वीत प्रणामं स्वगुरोर्यथा ।
स्वज्येष्ठश्च क्रमज्येष्ठः कुलज्येष्ठस्तृतीयक. ॥१६४॥

गुरुज्येष्ठस्तु देवेशि इति ज्येष्ठचतुष्टयम् ।
यावज्ज्येष्ठाभिवादे तु क्रमकोऽष्टाङ्ग ईरितः ॥१६५॥

गुरोश्च कुलवृद्धस्य वन्दनाद्विविधानतः ।
पितृमात्रादिसर्वेषु पूज्यकोटिषु बन्धुषु ॥१६६॥

अभ्युत्थानप्रणामाद्यैरव्यक्तो दोषलाघवं ।
यदा त्वाचार्यरूपेण स्वात्मानं संप्रकाशयेत् ॥१६७॥

अभ्युत्थानप्रणामाद्यैर्दोषः स्यात्तु तदा प्रिये ।
पतिर्भूत्वा पशुभ्यस्तु प्रणामं यः करिष्यति ॥१६८॥
स महापशुरित्युक्तो देवताशापमाप्नुयात् ।
यो गुरुस्थानकं प्राप्तः पादुकापरिसंख्यया ।
गुरुवत्स तु मन्तव्यो ज्येष्ठैर्वन्द्यो न च प्रिये ॥१६९॥

॥ इति पादुकाचारविधिः ॥

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

गुरुः सम्पूज्यते यत्र तत्कर्म सफलावहम् ।
स चेन्न पूज्यते यत्र क्रिया सा निष्फला तदा ॥१७०॥

गुरोरभावे तत्पुत्रं पुत्राभावे तदङ्गनाम् ।
तदभावे च तत्पौत्रं दौहित्रं तदसम्भवे ॥१७१॥

सर्वाभावेऽर्चयेदन्यं गुरुगोत्रसमुद्भवम् ।
पूज्यते स्वगुरुर्यत्र तत्रैताः सफलाः क्रियाः ॥१७२॥
न पूज्यते निष्फलास्ता भवन्ति परमेश्वरि ।

॥ अथ समयाचारः ॥ तत्र—

श्रीकुलार्णवे—

श्रीगुरुं कुलशास्त्राणि पूज्यस्थानानि यानि तु ।
भक्त्या श्रीपूर्वकं देवि प्रणम्य परिकीर्त्तयेत् ॥१७३॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यस्य मे गुरुसन्ततिः ।
तस्य मे सर्वशिष्यस्य को न पूज्यो महीतले ॥१७४॥

गुरुं नाम्ना न भाषेत जपकालादृते प्रिये ।
श्रीनाथ-देव-स्वामीति विवादे बोधने वदेत् ॥१७५॥

श्रीगुरोः पादुकां मुद्रां मूलमन्त्रं स्वपादुकाम् ।
शिष्यादन्यत्र देवेशि न वदेद्यस्य कस्यचित् ॥१७६॥

पारम्पर्यागमाम्नायमन्त्राचारादिक प्रिये ।
सर्वं गुरुमुखाल्लब्ध सफल स्यान्न चान्यथा ॥१७७॥

श्रीशास्त्राश्रयभूत च पुस्तक देववत्प्रिये ।
नित्य समर्चयेद्भक्त्या पशुहस्ते न निःक्षिपेत् ॥१७८॥
स्वदारवन्निषेवेत कुलशास्त्राणि पार्वति ।
पशुशास्त्राणि सर्वाणि वर्जयेत्परदारवत् ॥१७९॥

श्वचर्मस्थ यथा क्षीरमपेय स्याद् द्विजोत्तमैः ।
तथा पशुमुखाद्धर्मो न श्रोतव्यश्च कौलिकैः ॥१८०॥

यः शृणोति कुलाचारं यथाशास्त्र च यो वदेत् ।
तावुभौ गच्छतः साक्षाद् योगिनीवीरमेलनम् ॥१८१॥

अश्रद्दधाना ये चात्र कुलधर्म कुलेश्वरि ।
नरकान्न निवर्त्तन्ते यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१८२॥

ऊढा धृता तथा क्रीता मूल्येन च समाहृता ।
सकृत्कामगता वापि पञ्चधा गुरुयोपितः ॥१८३॥

अलङ्घ्याः पूजनीयाः स्युर्गुरुवद्गुरुयोषितः ।
कृष्णाशुकां कृष्णवर्णां कुमारी च कृशोदरीम् ॥१८४॥

मनोहरा यौवनस्थामर्चयेद्देवताधिया ।
सहकारमशोक च क्रीडालोला कुमारिकाम् ॥१८५॥

एकवृक्ष श्मशान च समूह योषितामपि ।
नारी च रक्तवसनां दृष्ट्वा वन्देत भक्तितः ॥१८६॥

गुरुशक्तिसुतज्येष्ठकनिष्ठकुलदेशिकान् ।
प्रेरकान्सूचकांश्चापि वाचकान्दर्शकास्तथा ॥१८७॥

शिक्षकान् बोधकान् योगियोगिनीसिद्धपूरुषान् ।
कन्या कुमारिका नग्ना उन्मत्तामपि योषितम् ॥१८८॥

न निन्देन्न जुगुप्सेत न हस्येन्नापमानयेत् ।
न प्रिय नानृत ब्रूयात्कस्यापि कुलयोगिन ॥१८९॥

कुरूपेत्यतिकृष्णेति न वदेत्कुलयोषितम् ।
न पश्येद्वनिता नग्नामुन्मत्तां प्रकटस्तनीम् ॥१९०॥

न दिवा सेवयेन्नारी तद्योनिं न निरीक्षयेत् ।
या काचिदङ्गना लोके सा मातृकुलसम्भवा ॥१६१॥
कुप्यन्ति कुलयोगिन्यो वनितानामतिक्रमात् ।
शतापराधा वनिता पुष्पेणापि न ताडयेत् ॥१६२॥
दोषान्न गणयेत्स्त्रीणां गुणानेव प्रकाशयेत् ।
तिष्ठन्ति कुलयोगिन्यः कुलवृक्षेषु सर्वदा ॥१६३॥
तत्पत्रेषु न भोक्तव्यमर्कपत्रे विशेषतः ।
न स्वपेत्कुलवृक्षाधो न चोपद्रवमाचरेत् ॥१६४॥
दृष्ट्वा भक्त्या नमस्कुर्याच्छेदयेन्न कदाचन ।
श्लेष्मातककरञ्जाक्षनिम्बाश्वत्थकदम्बकाः ॥१६५॥
बिल्वो वटोदुम्बरश्च कुलवृक्षा नव स्मृताः ।
देवतागुरुशास्त्राणां सिद्धाचारविडम्बकः ॥१६६॥
विद्याचोरो गुरोर्द्रोही ब्रह्मराक्षसतां व्रजेत् ।
गुरुं मोहादनादृत्य निर्भर्त्स्य वीरपुरुषान् ॥१६७॥
विकल्प्य कुलशास्त्राणि भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः ।
एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नैव मन्यते ॥१६८॥
श्वानयोनिशतं गत्वा चण्डालत्वमवाप्नुयात् ।
गुरुं प्रकाशयेद्धीमान्मन्त्रं नैव प्रकाशयेत् ॥१६९॥
अप्रकाशप्रकाशाभ्यां क्षीयन्ते सम्पदायुषः ।
कुलधर्मं समाश्रित्य ह्याचारं यो न पालयेत् ॥२००॥
यथेष्टाचारिणस्तस्य महापातकिनः प्रिये ।
आपदो दुरिता रोगा दारिद्र्यं कलहो भयम् ॥२०१॥
योगिनीनां प्रकोपश्च स्खलितं च पदे पदे ।
भ्रष्टमानः प्रनष्टश्च तेजोहीनोऽतिदुःखितः ॥२०२॥
निन्दितः सर्वविद्विष्टो विह्वलः सङ्गवर्जितः ।
देशाद्देशान्तरं याति कार्यहानिश्च सर्वदा ॥२०३॥
तत्रापि कुलमार्गस्थाः शाकिन्यः कुलपालिकाः ।
भक्षयन्ति पुरा तासां वरो दत्तो मयैव तु ॥२०४॥
तस्मादाचारवान्देवि योगिनीनां प्रियो भवेत् ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं मन्त्रतन्त्रादिलोपजम् ॥२०५॥

अनर्हपशुदुःसङ्गं मन्त्रसाङ्कर्यसम्भवम् ।
गुप्तप्रकटसम्भूतं ज्ञानाज्ञानकृतं प्रिये ॥२०६॥

एवमादिषु दोषेषु पापस्य गुरुलाघवम् ।
देशं कालं च यो वित्ते सम्यग् ज्ञात्वा यथाविधि ॥२०७॥

प्रायश्चित्तं गुरुर्दद्यात्सर्वपापविशुद्धये ।
शिष्योऽपि च तथा प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥२०८॥

अथवा सर्वपापानां गुरुनामजपः स्मृतिः ।
जाम्बूनदस्य कालुष्यं परिशुद्धं यथाऽग्निना ॥२०९॥

अनाचारस्य मालिन्यं प्रायश्चित्ताग्निना दहेत् ।
बहुनात्र किमुक्तेन रहस्यं शृणु पार्वति ॥२१०॥

वर्णाश्रमाणां सर्वेषामाचारः सद्गतिप्रदः ।
गुरुस्त्रिवारमाचारं कथयेत्कुलनायिके ॥२११॥

तन्न गृह्णाति शिष्यश्चेत्तदापायं गुरोर्नहि ।
मन्त्रिदोषश्च राजानं भार्यादोषः पतिं यथा ॥२१२॥
तथा प्राप्नोत्यसन्देहः शिष्यपापं गुरुः प्रिये ।[1]

इति समयाचारः ।

॥ अथ होमद्रव्यमानम् ॥

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मानं हवनसिद्धिदम् ।
पुष्पं समग्रं जुहुयात्कमलं चापि पुष्कलम् ॥२१३॥

कुसुम्भवाणपुष्पाणि यथेष्टानि हुनेत्प्रिये ।
शतसंख्या राजिकास्तु तिलाश्च शतसंख्यया ॥२१४॥

---

१. इतः परमयमंशो विशेषः ख. पुस्तके—

श्रीगुरुं लक्षणोपेतं संशयच्छेदकारणम् ।
लब्ध्वा ज्ञानप्रदं देवि न गुर्वन्तरमाश्रयेत् ॥१॥
अनभिज्ञं गुरुं प्राप्य संशयच्छेदकारकम् ।
शिष्यो गुर्वन्तरं गत्वा तद्दोषेण न लिप्यते ॥२॥
शैवे गुरुत्रयं प्रोक्तं वैष्णवे गुरुपञ्चकम् ।
वेदशास्त्रेषु शतशो गुरुरेकः कुलान्वये ॥३॥

लाजा मुष्टिप्रमाणा. स्युर्घृत गटचानमात्रकम् ।
चुलुकार्द्धं पय. क्षीरमन्न ग्रासमित भवेत् ।।२१५।।

स्थूल फलं महेशानिकूष्माण्ड मातुलुङ्गकम् ।
मनःप्रियैश्च खण्डैश्च फल भवति निश्चयात् ।।२१६।।

रम्भाफल चतु खण्डं लघु चेत् खण्डित नहि ।
नालिकेरस्य खण्ड हि स्थूल कुर्यान्मिन प्रियम् ।।२१७।।

पर्वस्थाने चेक्षुदण्ड मन.सतोषकारि वा ।
द्राक्षाफल समग्र स्यान्नारङ्ग खार्ज्जुर तथा ।।२१८।।

गुग्गुलु क्रमुकार्द्धं तु कुङ्कुमं च तथा भवेत् ।
गुञ्जासम सकर्पूर कस्तूरी घुसृण तथा ।।२१९।।

चन्दन चागुरुं देवि क्रमुकेण समं भवेत् ।
मन प्रियाहुती. कृत्वा होम कुर्यात्सुलोचने ।।२२०।।

एतदाहुतिमान ते कथितं सर्वसिद्धिदम् ।
यथेच्छया वरारोहे श्रीविद्या परितोषयेत् ।२२१।।

श्रीविद्यामित्युपलक्षणम् । तथा—

शारदातिलके—

कर्षमात्र घृत होमे शुक्तिमात्र पयः स्मृतम् ।
दधि प्रसृतिमात्रं स्यात् लाजाः स्युर्मुष्टिसमिता ।।२२२।।

पृथुकास्तत्प्रमाणाः स्यु सक्तवोऽपि तथोदिता. ।
गुड. पलार्द्धमान. स्याच्छर्करऽपि तथा मता ।।२२३।।

ग्रासार्द्धं चरुमान स्यादिक्षुः पर्वमित. स्मृतः ।
एकैकं पत्रपुष्पाणि तथाऽपूपानि कल्पयेत् ।।२२४।।

कदली नागरंगाणां फलान्येकैकशो विदु ।
मातुलुङ्ग. चतुःखण्ड पनस दशधा कृतम् ।।२२५।।

अष्टधा नालिकेराणि खण्डितानि विदुर्बुधाः ।
त्रिधा कृत बिल्वफल कपित्थ खण्डित त्रिधा ।।२२६।।

उर्वारुकफल होमे कथित खण्डित त्रिधा ।
फलान्यन्यान्यखण्डानि समिधः स्युर्दशाङ्गुलाः ।।२२७।।

दूर्व्वात्रय समादिष्ट गुडूची चतुरङ्गुला ।
व्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युर्मुद्गा माषा यवा अपि ॥२२८॥

तण्डुलाः स्युस्तदर्द्धांशाः कोद्रवा मुष्टिसम्मिताः ।
गोधूमा रक्तकलमा विहिता मुष्टिमानत. ॥२२९॥

तिलाश्चुलुकमात्राः स्यु॰ सर्षपास्तत्प्रमाणकाः ।
शुक्तिप्रमाण लवण मरिचान्यपि विंशतिः ॥२३०॥

पुरु बदरमान स्याद्रामठ तत्समं स्मृतम् ।
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमानि च ॥२३१॥
तिन्तिडीवीजमानानि समुद्दिष्टानि देशिकैः । इति ।

कर्षलक्षणमुक्तं सारसङ्ग्रहे—

मापो दशगुञ्जा स्यात्षोडशमापो निगद्यते कर्ष ।

इति । तैलस्याप्येतदेव प्रमाणम् । शुक्ति॰ कर्षद्वयम्ः प्रसृतिमात्र पलद्वयमात्रम्, मुष्टिः पल, पलार्द्धं कर्षद्वयं, ग्रासार्द्धं अशीतिरत्तिकामितम्। तदुक्तं **पिङ्गलामते—**

गुञ्जाभिर्दशभिर्माष शाणो माप चतुष्टयम् ।
द्वौ शाणौ धटकः कोलो वदर द्रक्षणश्च सः ॥२३२॥

तौ द्वौ पाणितलं कर्प. [1]सुवर्णकवलग्रहः ।
पिचुर्विडालपदक[2]तिन्दुकोऽक्षश्च तद्द्वयम् ॥२३३॥

शुक्तिरष्टमिका ते द्वे पल विल्व चतुर्थिका ।
मुष्टिराम्र प्रकुञ्जोऽथ द्वे पले प्रसृतिस्तथा । इति ॥२३४॥
मातुलुङ्ग वीजपूर उर्वारुक च कर्क्कटी ।

तदर्द्धांशा शुक्तिमिताः, चुलुकमात्राः पाणितलप्रमाणा कर्षमात्रा इत्यर्थः । पुरुः गुग्गुलुः, वदरमान अशीतिगुञ्जामितम् । तथा **नारदपञ्चरात्रे—**

तृतीयखण्ड मूलानां ह्रस्वानि स्वप्रमाणतः ॥२३५॥

शैवागमेऽपि—

खण्डत्रयं स्यान्मूलाना सूक्ष्माण्येव च होमयेत् ।
कन्दानामष्टम भाग लतानामङ्गुलद्वयम् ॥२३६॥ इति ।

---

१. ख. सुवर्णं० । २ ०पदकं० ।

अथ समिधः

नारदपञ्चरात्रे—

समित्प्रादेशमात्रेण समच्छेदान्विता तथा ।
विशीर्णा द्विदला ह्रस्वा वक्रा स्थूला कृशा द्विधा ॥२३७॥

कृमिदष्टाश्च दीर्घाश्च निस्त्वचः परिवर्ज्जिताः ।
विशीर्णायुःक्षय कुर्याद् द्विदलाद् व्याधिसम्भवः ॥२३८॥

ह्रस्वाया मृत्युमाप्नोति वक्रा विघ्नकरी तथा ।
स्थूलाभिर्हरते लक्ष्मी कृशाया जायते क्षयः ॥२३९॥

द्विधाया नेत्रदोषा. स्यु कीटदष्टाऽर्थनाशिनी ।
द्वेषं प्रकुरुते दीर्घाः प्राणघ्न्यो निस्त्वचः स्मृता. ॥२४०॥

सक्षीरा नाधिका न्यूनाः समिधः सर्वकामदा ।
आर्द्रत्वच महच्छेदा तर्ज्जन्यङ्गुलवर्त्तुलाम् ॥२४१॥

ईदृग होमयेत्प्राज्ञः प्राप्नोति विपुला श्रियम् ।
श्रौते स्मार्त्ते च तन्त्रोक्ते समिध. परिकीर्त्तिताः ॥२४२॥

तथा वायवीयसंहितायाम्—

ता पालास्यः परा वापि यज्ञीया द्वादशाङ्गुलाः ।
अवक्रा अस्वयं शुष्का. सत्वचो निर्व्रणाः समा. ॥२४३॥

दशाङ्गुला वा विहिता कनिष्ठाङ्गुलसम्मिताः ।
प्रादेशमात्रा वाऽलाभे होतव्याः सकला अपि ॥२४४॥

शारदातिलके—

वैश्वानर स्थित ध्यायेत्समिद्धोमेषु देशिकः ।
शयानमाज्यहोमेषु निषण्ण शेषवस्तुषु ॥२४५॥

गुहकल्पे—

सर्वकार्यप्रसिद्ध्यर्थं जिह्वायां तस्य होमयेत् ।
चक्षु कर्णादिक ज्ञात्वा होमयेद्देशिकोत्तमः ॥२४६॥

अग्निकर्णे हुत यत्तु कुर्याच्च व्याधितो भयम् ।
नासिकाया महद्दुःख चक्षुषोर्नाशन भवेत् ॥२४७॥

केशे दारिद्रयद प्रोक्त तस्माज्जिह्वासु होमयेत् ।
यत्र काष्ठं तत्र कर्णो यत्र धूमस्तु नासिके ॥२४८॥

यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यत्र भस्म तु तच्छिर ।
यत्रैव ज्वलितो वह्निस्तत्र जिह्वा प्रकीर्तिता ॥२४९॥ इति ।

तथा शारदातिलके—

आस्यान्तर्जुहुयाद्वह्नेर्विपश्चित्सर्वकर्मसु ।
कर्णहोमे भवेद् व्याधिर्नेत्रे त्वन्धत्वमीरितम् ॥२५०॥

नासिकायां मनःपीडा मस्तके धनसंक्षयः ।
सधूमोऽग्निः शिरः प्रोक्तो निर्धूमश्चक्षुरेव च ॥२५१॥

ज्वलन् कृशो भवेत्कर्णः काष्ठलग्नश्च नासिका ।
अग्निः सञ्जायते यत्र शुद्धस्फटिकसन्निभः ॥२५२॥
तन्मुख तत्र विज्ञेय चतुरङ्गुलमानत. । इति ।

॥ अथाऽग्नेर्वर्णाद्या. ॥ तत्र—

नारदपञ्चरात्रे—

अग्नेर्भासश्च गन्धाश्च शब्दाश्चाकृतयस्तथा ।
विकाराश्च शिखाश्चैव सवेद्याः कर्मसिद्धये ॥२५३॥

पद्मरागद्युतिः श्रेष्ठो लाक्षारससमप्रभः ।
बालार्कवर्णो हुतभुग्जयार्थं शस्यते बुधैः ॥२५४॥

इन्द्रगोपकसङ्काशः शोणिताभोऽथ पावकः ।
शक्रचापनिभः श्रेष्ठ. कुसुम्भाभस्तथैव च ॥२५५॥
रक्तानां पुष्पजातीनां वर्णेनाग्निरिहोच्यते ।

पदार्थादर्शे—

मारणोच्चाटनोत्सादकर्मण्यस्मिन् सुशोभनः ।
कृष्णानां पुष्पजातीनां वर्णेनाग्निरिहोच्यते ॥२५६॥

शखस्फटिककुन्देन्दुवर्णेभ्योऽपि सित शुभ ।
शान्तिके पौष्टिके चापि विहितः सर्वदाऽनलः ॥२५७॥

॥ अथ गन्ध ॥

सुगन्धद्रव्यगन्धोऽग्निर्घृतगन्ध. सुशोभन. ।
आयुर्दः पद्मगन्धः स्याद्बिल्वगन्धश्च सुव्रतः ॥२५८॥

॥ अथ शब्दः ॥

जीमूतवल्लकीशङ्खमृदङ्गध्वनितुल्यकः ।
शब्दोऽग्नेः सिद्धये होतुरतोऽन्यः स्यादसिद्धिदः ॥२५९॥

तथा शारदातिलके—

भेरीवारिदहस्तीन्द्रध्वनिर्वह्नेः शुभावहः ।

॥ अथाऽऽकृतिः ॥

नारदपञ्चरात्रे—

छत्राकारोऽथ हंसानां मयूराणां च सिद्धिदः ।
तथाऽऽकृतिः सदा वह्निः सद्यः सिद्धिकरः स्मृतः ॥२६०॥

शेषाणां दक्षिणां रूपं न शस्तं होमकर्मणि ।
यद्रूपं कथितं चैतद्यदि तस्य प्रदक्षिणम् ॥२६१॥
अन्योऽन्यत्वं [1]प्रपद्येत तदा सिद्धिकरोऽनलः ।

॥ अथ शिखास्तत्रैव ॥

विषमाश्च शिखा वह्नेस्स्यादयश्च शुभावहाः ।
ह्रस्वा ह्रस्वोन्नता दीर्घाऽग्निज्वालाः सिद्धिदाः स्मृताः ॥२६२॥

तथा शारदातिलके—

प्रदक्षिणास्त्यक्तकम्पाः छत्राभाः शिखिनः शिखाः ।
शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापि[2] विशेषतः ॥२६३॥

तथा नारदपञ्चरात्रे—

प्रदीप्ते लेलिहानेऽग्नौ निर्धूमे सगुणे तथा ।
हृद्ये तुष्टिप्रदे चैव होतव्यं सिद्धिमिच्छता ॥२६४॥

स्निग्धः प्रदक्षिणावर्त्तः सुशब्दश्चापि यो भवेत् ।
नित्यमेवं शुभकरो यदन्यैर्वर्जितो गुणैः ॥२६५॥

तथा निषिद्धो नारदपञ्चरात्रे—

१. क. प्रदद्येत । २. क. राजस्यापि ।

अल्पतेजाश्च रूक्षश्च विस्फुलिङ्गसमन्वित. ।
धूमावलीढज्वालश्च कृशानुर्नैव सिद्धिद. ॥२६६॥

दुर्गन्धश्चावलीढश्च सित कृष्णश्च यो भवेत् ।
भूमि च विलिखेद्यस्तु सोऽपि दद्यात्पराभवम् ॥२६७।

तथा शारदातिलके—

कृष्णः कृष्णगतेर्वर्णो यजमान विनाशयेत् ।
पूतिगन्धो हुतभुजो होतुर्न्‍ त्रप्रदो भवेत् ॥२६८॥

छिन्ना वृत्तशिखा[1] कुर्यान्मृत्युं धनपरिक्षयम् ।
शुकपक्षनिभो धूम' पारावतसमप्रभः ॥२६९॥
हानिं तुरगजातीना गवा च कुरुते चिरात् ।

तथा नारदपञ्चरात्रे—

खरोष्ट्रमहिपादीनां रुतमत्र न सिद्धये ।
'कृष्णश्चटचटाशब्दस्त्वपसव्यगति. सदा ॥२७०॥

उल्लिखेद्वसुधा यश्च यश्चाधःशिख एँव च ।
नेष्यतेऽसौ मुनिश्रेष्ठ शास्त्रेऽस्मिन् पारमेश्वरे ॥२७१॥ इति ।

अत्रैवविधेषु दोषेपु प्रायश्चित्तमुक्तम—

शारदातिलके—

एवविधेपु दोषेषु प्रायश्चित्ताय देशिक.[2] ।
मूलेनाज्येन जुहुयात्पञ्चविंशतिमा(रा)हुतीः ॥२७२॥

इति पञ्चविंशतिरेकैकस्मिन्दोपे इति ज्ञेयम् ।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज-गोस्वामि-
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ
द्वादशस्तरङ्ग ॥१२॥



---

१. ख. वृत्ता शिखा ।   २. क. देशिकैः ।

त्रयोदशस्तरङ्गः

।। अथ दीक्षाप्रयोग. ।।

तत्र प्रमाणोक्तसत्फलमास-पक्ष-तिथि-नक्षत्रादिशुद्धदीक्षादिवसात्पूर्वदिवसे शिष्य. प्रातःस्नान विधाय, नित्यकृत्य कृत्वा, भूपित पञ्चवाद्यशब्दपुरस्सरं विप्रैः कृतस्वस्तिवाचन. सुहृत्साधकैः सार्द्धं द्विजगुरोर्गृह गत्वा, श्रीगुरुं साष्टाङ्ग नमस्कृत्य, तन्निदेशेन प्राणायामपूर्वक "ॐ अद्याऽमुकस्मिन्मासे अदकोराशिगते भानावमुकस्मिन्पक्षेऽमुकस्मिन् (स्या) तिथौ विप्रश्चेददकोगोत्रोऽदक.शर्मा, क्षत्रियश्चेददकोवर्मा, वैश्यश्चेददकोगुप्त, शूद्रश्चेददकोदासोऽह, चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिकामोऽदकोमन्त्रग्रहण करिष्य" इति कुशकर. प्राग्वदन उदग्वदनो वा सङ्कल्प कृत्वा, प्रमाणोक्तमधुपर्कसाधनैः स्वशाखोदीरितविधानेन श्रीगुरुं मधुपर्केण सम्पूज्य, पट्टवस्त्रयुगल-कनकाङ्गुलीय-कनककर्णालङ्कार-कनकोपवीतादिनानाविधवरणसाधन श्रीगुरुसमीपे निधाया,'ऽद्येत्यादि-तिथ्युल्लेखनान्तेऽदकोगोत्रोऽदक:शर्मेत्यादि यथावर्णमुच्चार्य्याऽह चतुर्विधपुरुषार्थ सिद्धिकामनयाऽदकोमन्त्रग्रहणायादकोगोत्रमदकोवेदान्तर्गतादक.शाखापाठिनमदक.शर्माण भवन्तमेतैर्यथाशक्तिकृतवरणसाधनैर्गुरुत्वेन वृणे' इति श्रीगुरुचरणाब्जयो. समीपे प्रणम्य, वरणसामग्रं निवेदयेत् ।

ततो वृतोऽस्मीति गुरुणा प्रतिवाक्ये दत्ते शिष्यो विहिताञ्जलि 'यथायोग्य गुरुकर्म कुरुष्वे'ति वदेत् । ततो गुरुः 'करवाणी'ति वदेत् । इत्थ श्रीगुरोर्वरणं कृत्वा, तदादेशेन श्रुतिस्मृत्यङ्गपारगामिनः सदाचारशालिनो दीक्षितानष्टौ द्विजान् वरणोक्तसाधनैः ऋत्विक्त्वेन वृणुयात् । [1]चतु.कुण्डपक्षे ऋत्विजः चत्वार एव वरणीया. ।

तत शिष्येणैवं पूजितो गुरुः स्वनित्यकृत्य विधायाऽलङ्कृत पञ्चवाद्यनिनादपूर्वकं वहुभिर्भूदेवैः सुहृद्भिश्च सयुतः शिष्येण साक मण्डपाभ्यन्तरे द्वारं गत्वोक्तविधिना द्वारपूजन कृत्वा, भूतोत्सादन विधाय, मण्डपाभ्यन्तरे प्रविश्य, पञ्चगव्यार्घसलिलेन मण्डपाभ्यन्तर प्रोक्ष्य, चतुर्भिर्वीक्षणादिसस्कारैः सस्कृत्य, श्रीखण्डागुरुघनसारादिधूपद्रव्यधूमेन धूपित विधाय, तत्र सर्षपदूर्वाभस्मचन्दनलाजाक्षतानुपदेष्टव्यमन्त्रास्त्रमन्त्रेण सप्तधाऽभिमन्त्रितांस्तत्र विकीर्य्याऽस्त्रमन्त्रेण दर्भपुञ्जेन सम्माज्र्ज्य, मण्डपस्येशकोणे तद्विकिरपुञ्ज सस्थाप्य, विप्रैः स्वस्तिवाचन कारयित्वा, वास्तुपुरुषसपर्यादिक कृत्वा, भैरवनिदेशपुर.सर वेदिकायां

१. ख॰ चतु कुण्डीपक्षे ।

निजासनमास्तीर्य्योक्तविधिना सम्पूज्य, तत्र प्राग्वदन उपविश्य स्वाग्रतः सुप्र महीतले प्रोक्तविधिना सर्वतोभद्रमण्डल विधाय, वेदी परित. प्रदीपान् प्रज्वाल्य पूजाद्रव्याणि पूर्वोक्तप्रकारेण सस्कृत्य, प्रकीर्णकाऽऽतपत्राऽऽदर्शतालवृन्तादिक यथास्थान निधाय, श्रीगुरुप्रणामपूर्वक करशुद्धितालत्रयाऽऽशाबन्धनाऽनलप्रकारत्रय भूतशुद्धि-प्राणप्रतिष्ठामातृकान्यासयोगपीठन्यासपुरस्सरं मूलमन्त्रन्यास विधाय तत्तद्देवतामुद्रा विरच्य, तत्तद्देवताध्यानमानसपर्यान्तिर्वैश्वदेवमूलमन्त्रजपतत्समर्प णार्घस्थापनाऽत्मपूजनान्तर्हवनमूलमन्त्रजपतत्समर्प्पणानि कृत्वा, "सर्वतोभद्र मण्डलाय नमः" इति मण्डल गन्धादिपञ्चोपचारैरभ्यर्च्यार्ऽर्घाम्बुना प्रोक्ष्य, तत्रोक्त विधिना पीठपूजां कृत्वा, तत्कर्णिकामाढकपरिमितशालिभिरापूर्य्य, तदुपरि तदष्टा शपरिमाणपरिमितास्तण्डुलान् कुशान् दूर्वा यथोक्तलक्षण कूर्चं च निधाय, तत्र शालिपुञ्जोपरि वह्निमण्डल पूर्वोक्ता वह्निकलाश्च सम्पूज्य, तत्र हिरण्यादिरचित त्रिगुणीकृतसूत्रावृतसमस्तावयव चन्द्रचन्दनागुरुधूपधूपित कलश 'ओंकार' मुच्चरन्न सस्थाप्य, तत्र नवरत्नानि ससुवर्णानि निक्षिप्य, कुम्भस्योपरि गन्धाक्षतदूर्वान्वित प्रोक्तलक्षण कूर्चं निधाय, तत्र "क्ष ल व ह स ष श व ल र य म भ ब फ प न ध द थ त ण ढ ड ठ ट ञ झ ज छ च ङ घ ग ख क अः अं औ ओ ऐ ए ॡ ऌ ॠ ऋ ऊ उ ई इ आ अ" इति विलोममातृकान्ते मूलमन्त्र त्रिर्ज्जपन्नात्मनः कुम्भस्य योगपीठस्य चैक्य भावयन्नुक्तपञ्चाङ्गदौषधक्वाथैर्दुग्धवृक्षत्वक्क्वाथैः पलाशवृक्षत्वक्क्वाथैः श्रीखण्डमृगमदकाश्मीरकर्पूरवासितैस्तीर्थतोयैर्वा कुम्भमापूर्य, स्वपुरतः प्रोक्तविधिना शङ्ख सस्थाप्य कुम्भजलसजातीयजलेनाऽऽपूर्य, तत्र तत्त- द्देवतागन्धाष्टक विलोड्य, प्रागुक्ता वह्निकला., सूर्यकलाः, सोमकलाश्चाऽऽवाह्य, पृथक्पृथक् प्राणप्रतिष्ठापूर्वक सम्पूज्य कलामातृकान्यासोक्ता एकपञ्चाशत्कलाः पूजयेद् यथा—

प्रथममकाराद् ब्रह्मणः समुद्भूताः कचवर्गोत्थाः सृष्ट्यादिदशकलाः समावाह्य, 'हस. शुचिषदित्यृचो वामदेव ऋषि., जगतीछन्दः, सूर्यो देवते'ति ऋष्यादीन्सस्मृत्य,

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजा अद्रिजा ऋत वृहत् ॥१॥

इति मन्त्रमुच्चार्य्य, 'ब्रह्मणे नमः' इति सम्पूज्य पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रे 'मम' पदस्थाने 'सृष्ट्यादीनामि'ति पद दत्वा, सृष्ट्यादीना प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा 'ॐ क सृष्ट्यै नम' इत्यादि दशकला. सम्पूज्य,

उकाराद्विष्णोरुत्पन्नाष्टतवर्गोत्था जरादिदशकला समावाह्य 'प्र तद्विष्णु- रित्यृचो दीर्घतमा ऋषि', त्रिष्टुप् छन्दद., विष्णुर्देवते'ति ऋष्यादीन् स्मृत्वा—

ॐ प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियति भुवनानि विश्वा ॥२॥

इति पठित्वा, 'विष्णवे नमः' इति सम्पूज्य, प्राग्वज्जरादिदशकलानां प्राणप्रतिष्ठा विधाय, जरादिदशकलाः सम्पूज्य,

मकाराद्रुद्रादुत्पन्नाः पयवर्गोत्थास्तीक्ष्णादिदशकलाः समावाह्य, "त्र्यबक-इति मन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, मृत्युञ्जयरुद्रो देवते"ति, ऋष्यादिक स्मृत्वा,

"त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥३॥

ॐ रुद्राय नम." इति सम्पूज्य तासां प्राणप्रतिष्ठा विधाय, 'ॐ पं तीक्ष्णायै नम.' इत्यादि सम्पूज्य,

ईश्वराद्विष्णोरुत्पन्नाः पकारादिक्षकारान्तपञ्चवर्णोत्थाः पीतादिपञ्च-कला आवाह्य 'गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः, गायत्री छन्दः, सविता देवते'ति-ऋष्यादिस्मरणपूर्वकं गायत्रीमुच्चार्य्य 'ईश्वराय नमः' इति सम्पूज्य, तासां प्राण-प्रतिष्ठा विधाय, 'ॐ पं पीतायै नम.' इत्यादि पञ्चकला. सम्पूज्य,

नादोत्थाः सदाशिवादुत्पन्नाः स्वरजा निवृत्याद्या. षोडशकलाः समावाह्य, 'विष्णुर्योनिं कल्पयत्विति मन्त्रस्य त्वष्टा गर्भकर्त्ता ऋषिर्विष्णुर्देवताऽनुष्टुप्छन्दो-गर्भधारणार्थे विनियोग.',

'विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आसिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते' ॥४॥ इति

पठित्वा 'सदाशिवाय नम.' इति सम्पूज्य, तासां प्राणप्रतिष्ठा विधाय 'अं निवृत्यै नम.' इत्यादि षोडशकलाः सम्पूज्येत्थं चतुर्नवतिदेवता शङ्खे सम्पूज्य सकलकला-मयं शङ्खजलं मूलमन्त्रेण कुम्भजले संयोज्य, ततः पिप्पलपनसरसालकिशलयानि इन्द्रवारुणीलतया संवेष्ट्य, कल्पद्रुमबुध्या कुम्भवदने निधाय, तदुपरि कुम्भ-सजातीयं तण्डुलपूरितं नारिकेलफलसमेतं कल्पतरुफलधिया पात्रं संस्थाप्य, पट्टवस्त्रयुगलेन कलशं वेष्टयेदिति ।

वेद्यां प्रधानकलशस्थापनं कृत्वा, प्रागादिद्वारसमीपेषु मण्डपाभ्यन्तर एव पूर्वोदीरितमण्डलेषु अष्टच्छदपद्मेषु वा शालिपुञ्जोपरि प्रतिद्वारमेकमेकं कुम्भं संस्थाप्य, तत्र पूर्वदिग्गते कलशे ध्रुवं, दक्षिणदिग्गते धरां, पश्चिमदिग्गते

वाक्पतिमुत्तरदिग्गते विघ्नेशं चाभ्यर्च्य, तथैवाग्नेयादिकोणचतुष्टये कलशान्संस्थाप्याग्नेयकोणगते कलशे अमृतं, नैर्ऋत्यकोणगते दुर्जयं, वायव्यकोणगते सिद्धार्थमीशानकोणगते मङ्गलं च सम्पूज्य, पुनः पूर्वादिदिग्गतकुम्भेषु शक्रादिलोकपालानावाह्य, वैदिकतत्तन्मन्त्रेण सम्पूज्य, पुनः प्रागाद्यष्टहरित्सु कुम्भेभ्यो बहिरैरावतं, पुण्डरीकं, वामनं, कुमुदाञ्जनौ, पुष्पदन्तं, सार्वभौमं, सुप्रतीकं चेति दिग्गजानभ्यर्च्य,

पुनः गुरुर्वेद्यां गत्वा, निजासने उपविश्य, स्वेष्टमनुना प्राणायामत्रयं विधाय, तस्य ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं सकलं न्यासं कृत्वा, देवं ध्यात्वा, मानसोपचारैरभ्यर्च्य, प्रधानकलशे प्रागुक्तप्रकारेण मूलेन मूर्त्तिं परिकल्प्य, तत्र निजेष्टदेवतामावाह्य, प्रागुक्तप्रकारेण तत्तत्कल्पोक्तविधिना साङ्गां सावरणां षोडशोपचारैरभ्यर्च्य, वेद्या दक्षिणभागे करमात्रायामविस्तारमङ्गुष्ठपर्वमात्रोन्नतं सिकताभिः समचतुरस्रं स्थण्डिलं निर्माय, तत्र नित्यहोमोक्तविधिना वैश्वानरं संस्थाप्य, चरुं श्रपयित्वा, वह्नौ देवतामावाह्याऽभ्यर्च्य, नित्यहोमोक्तविधिना सघृतेन तेन चरुणा हुत्वा, पुनः परदेवतामभ्यर्च्य, कलशस्थितमूर्त्तौ संयोज्य, तथैवाग्निं सम्पूज्य, विसृज्य, प्रागुक्तविधिना सर्वभूतबलिं तत्तत्कल्पोक्तबलिदानं च कृत्वोत्तरापोशनादिनीराजनान्तं नित्यपूजोक्तप्रकारेण कृत्वा, प्राणायामत्रयं ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं मूलमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं प्रजप्य, देवतायै[1] जपं समर्प्य, पूर्वं मण्डपेशकोणस्थापितस्य विकिरपुञ्जस्योपरि हिरण्यगर्भं वस्त्रयुगलवेष्टितं तोयपूरितं करकं विन्यस्य, तत्राऽस्त्रदेवतां मृगेन्द्रारूढां दक्षवामहस्तयोः खड्गखेटकधारिणीं घोररूपां पश्चिमदिगभिमुखीं गन्धादिभिः पञ्चोपचारैस्तिष्ठन्नभ्यर्च्य, प्रणम्य, तं करकं पाणिभ्यामुत्थाप्य, मण्डपान्तःप्रदक्षिणं भ्रमन्, तन्नालेन जलधारां निःक्षिपन्, शम्भोर्लोकपालानां चाज्ञया शिष्यसहितं मां रक्ष रक्षेति वदन्, प्रदक्षिणं परिक्रम्य, करकं स्वस्थाने स्थापयित्वोपविश्याऽस्त्रमन्त्रेण पुनस्तामस्त्रदेवतां पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य, ततो निर्मितेषु कुण्डेषु इन्द्रेशानमध्यगताऽऽचार्यकुण्डे गुरुर्वह्निस्थापनं कुर्यात् ।

तत्र प्रथमतो गोमयेन कुण्डमुपलिप्य, तत्सन्निधौ स्वासनमास्तीर्याऽभ्यर्च्य, तत्रोत्तरदिग्वदन उपविश्य, मूलेन प्राणायामत्रयं ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान्विधाय, देवतां ध्यात्वा, मानसोपचारैरभ्यर्च्य, स्वेष्टमन्त्रस्य यथाशक्तिजपं कृत्वा, जपं समर्प्य, श्रीगुरुं नमस्कृत्य, कुण्डसंस्कारान् कुर्यात् ।

---

१. ख० ष्वतायै ।

तत्र प्रथमतो मूलेन कुण्डं सम्प्रेक्ष्याऽस्त्रमनुना सम्प्रोक्ष्य, तेनैव त्रिकुशैः सन्ताड्य, कवचमनुनाऽभ्युक्ष्याऽस्त्रमन्त्रेण मध्येकुण्डं किञ्चित् खननं कृत्वाऽस्त्रमन्त्रेण तां मृत्तिकामङ्गुष्ठानामिकाभ्यामुद्धृत्य, वहिः परित्यज्य, हृदयमन्त्रेण शुद्धया मृदा खातस्थानमापूर्याऽस्त्रमन्त्रेण समीकृत्य, कवचमनुनाऽद्भिः ससिच्याऽस्त्रमन्त्रेण काष्ठपाषाणादिना कुट्टयित्वा, दृढीकृत्य, कवचमनुना दर्भैः कुण्डं सम्मार्ज्य, तेनैव गोमयोदकेन संलिप्य, तेनैव वह्निभानुसोमाष्टत्रिंशत्कलारूपं सञ्चिन्त्य, तेनैव मेखलात्रयेऽपि प्रतिमेखलं त्रिसूत्रीकृतसूत्रेण त्रिस्त्रिः संवेष्ट्य "ॐ अमुकस्मै कुण्डाय एतदासनं ते नमः" "अमुकस्मै कुण्डाय एषोऽर्घः स्वाहा" इत्यादि आसनादिदीपान्तैरुपचारैः प्रणवपूर्वकं चतुरस्रादितत्तत्कुण्डनाम्ना चतुर्थीनमोऽन्तेन सम्पूज्य, तद्वन्नाभिं च सम्पूज्य, मेखलात्रयं हृन्मन्त्रेण तद्वत्सम्पूज्याऽस्त्रमन्त्रेण कुण्डं कुलिशवद्दृढं सञ्चिन्त्य हृन्मन्त्रेण कुशैः कुण्डस्य चतुर्दिक्षु वैश्वानरस्य ज्वालाविलासाय मार्गचतुष्टयं परिकल्प्य, कवचमन्त्रेणाऽच्छिन्नाग्रैः कुशैरस्त्रमनुनाभिमन्त्रितैः कुण्डभित्तिगणं सर्वमाच्छादयन्नच्छपाटनं कुर्यादित्यष्टादशसंस्कारान्विदध्यात्।

अशक्तः पूर्वोदीरितैश्चतुर्भिरेव संस्कारैः कुण्डं संस्कृत्य, तत्र हृन्मन्त्रेणाऽस्त्रमन्त्रेण वा दक्षिणमध्योत्तरेषु प्रागग्राः पश्चिममध्यपूर्वेषूदगग्रा इति तिस्रस्तिस्रो रेखाः कुशमूलेन विलिख्य, प्राच्यग्रासु रेखासु दक्षिणरेखायां— 'विष्णवे नमः,' मध्यरेखायां— 'रुद्राय नमः', उत्तररेखायां— 'इन्द्रायनमः', उत्तराग्रासु रेखासु पश्चिमरेखायां— 'ब्रह्मणे नमः', मध्यरेखायां— 'यमाय नमः', पूर्वरेखायां— 'सोमाय नमः' इत्यभ्यर्च्य, तत्रोक्तयोगपीठसपर्याक्रमेण मण्डूकादिपरतत्वान्तं योगपीठं सम्पूज्य, तत्कमलकिञ्जल्केषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन मध्यान्तं— "ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अजितायै नमः, ॐ नित्यायै, ॐ दोग्ध्र्यै०, ॐ विलासिन्यै, ॐ अघोरायै, ॐ मङ्गलायै नमः", इति सम्पूज्य, "ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः" इति मध्ये पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, तत्र भुवनेश्वरीं तन्मन्त्रेणाऽवाह्याऽऽवाहनादिपरमीकरणान्ता मुद्राः प्रदर्श्याऽसनादिषोडशोपचारैरभ्यर्च्य, तत्र श्रीशिवं ध्यात्वा, मूलेन तद्वत्तं शिवं सम्पूज्य ऋतुस्नातां देवीं कामोन्मत्तं देवं च सञ्चिन्त्य, वैष्णवयागे तु मण्डूकादिपरतत्वान्तं योगपीठं सम्पूज्य, तत्सरोजकेसरेषु "विभूत्यै नमः, उन्नत्यै०, कान्त्यै०, सृष्ट्यै०, कीर्त्यै०, पुष्ट्यै०, उत्कृष्ट्यै०, ऋद्ध्यै०, ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः" इति मध्ये पुष्पाञ्जलिं दत्वा, लक्ष्मीमन्त्रेण लक्ष्मीमावाह्य, तथैव मुद्राः प्रदर्श्य, तथैव षोडशोपचारैरभ्यर्च्य तत्र श्रीकृष्णं ध्यात्वा, मूलमन्त्रेण तथैव तं सम्पूज्य, लक्ष्मीं ऋतुस्नातां श्रीकृष्णं च कामोन्मत्तं सञ्चिन्त्य, ततः कनकादिपात्रे तदसम्भवे नूतनेन मृत्पात्रेण वा सूर्यकान्तादिपाषाणभव

आरण्येय वा श्रोत्रियब्राह्मणभवनाद्वा वह्निमस्त्रमन्त्रेण पात्रे वृत्वा, तत्पात्रसजातीयेन पात्रान्तरेण कवचमनुना पिधाय, कन्यया सुवासिन्या वाऽऽनीतं गुरुरादायाऽस्त्रमनुना तन्मध्यतः क्रव्यादाशमेकमङ्गार रक्षःकोणे परित्यज्य, मूलेन स्वपुरतो देवाश सस्थाप्य, मूलेन वीक्ष्याऽस्त्रेण प्रोक्ष्य, तेनैव कुशैः सन्ताड्य, कवचेनाऽभ्युक्ष्य, तत्र निजमूलाधारस्थिताऽग्निमण्डलान्तर्गतपरमात्मस्वरूपाग्नीषोमात्मकबिन्दोः सकाशादग्नि निजमणिपूरगामिजठराग्निना सार्द्धं सुषुम्णाऽध्वना वहन्नासापुटमार्गेण निष्काश्य 'रँ' इति वह्निबीज वदन्नग्रतः पात्रस्थिताग्नौ वह्निचैतन्य संयोज्य, वैन्दवौदर्य्यपार्थिवाग्नीनामैक्य विभावयन्प्रणवेनाभिमन्त्र्य 'वँ' इति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्याऽस्त्रमनुना संरक्ष्य, कवचमनुनाऽवगुण्ठ्य "ॐ अग्नये नमः" इत्यग्नि गन्धाद्यैरुपचारैरभ्यर्च्य, जानुभ्या धरणी गतस्तत्पात्र पाणिभ्या गृहीत्वा, कुण्डस्योपरि त्रिः प्रदक्षिण परिभ्राम्य, देव्या योनौ शिवबीजमिति ध्यायन्, वैष्णवयागे—लक्ष्म्या योनौ श्रीकृष्णबीजमिति ध्यायन्, स्वाभिमुखं मध्येकुण्ड तारमुच्चरन्नग्नि त निक्षिप्य, सुरतान्तधिया देवदेव्योराचमन दत्वा "ॐ चित्पिङ्गल हन हन पच पच दह दह सर्वज्ञाऽऽज्ञापय स्वाहे" ति मन्त्रमुच्चरन्मुखफूत्कारेण कुशैर्वह्नि प्रज्वाल्य, काष्ठैः पटूकृत्य विहिताञ्जलिस्तिष्ठन् —

"ॐ अग्नि प्रज्वलित वन्दे जातवेद हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममल समिद्ध सर्वतोमुखम् ॥५॥

इति ज्वलन्तमग्निमुपस्थायोपविश्य, "ॐ वैश्वानर जातवेदरिहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहे" ति मन्त्रेण प्राणायामत्रय विधाय, शिरसि—भृगुऋषये नमः, मुखे—गायत्री छन्दसे नमः, हृदये—अग्नये देवतायै नमः, गुह्ये—र बीजाय नम., पादयोः—स्वाहाशक्तये नमः" इति विन्यस्य, दीक्षाङ्गहोमे विनियोग इति कृताञ्जलिर्वदेत् । लिङ्गे 'ॐ ग्रच् हिरण्यायै नमः, गुह्ये ग्रच् कनकायै नमः, शिरसि—ॐ ग्रच् रक्तायै नमः, मुखे—ॐ ग्रच् कृष्णायै नमः, नासिकाया—ॐ ग्रच् सुप्रभायै नमः, नेत्रयोः—(ॐ ग्रूँ बहुरूपायै नमः—सर्वाङ्गे—ॐ ग्रचूँ)[1] अतिरक्तायै नमः" इति सप्तजिह्वा विन्यस्य,

"ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूमव्यापिने कवचाय हु, ॐसप्तजिह्वाय नेत्राय वौषट्, ॐ धनुर्द्धरायाऽस्त्राय फट्", इति मन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्त करयोर्विन्यस्य हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत् ।

---

१. कोष्ठबद्धोंऽशः क. पुस्तके नास्ति ।

ततः शिरसि—"ॐ अग्नये जातवेदसे नमः, वामांसे—ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः, वामपार्श्वे—ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः, वामकट्या—ॐ अग्नये अश्वोदराय नमः, लिङ्गे—अग्नये वैश्वानराय नम, दक्षिणकट्या—ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः, दक्षिणपार्श्वे—ॐ अग्नये विश्वमुखाय नम, दक्षिणांसे—ॐ अग्नये देवमुखाय नमः इति विन्यस्य, स्वात्मानं वह्निरूपं ध्यात्वा ज्वालिनीमुद्रां सप्तजिह्वामुद्रां प्रचर्य्य, कुण्डस्योत्तरभागे कुशास्तरे स्रुक्स्रुवौ प्रणीताप्रोक्षणीपात्रे, आज्यस्थाली चरुस्थाली परिधित्रयसमित्पञ्चकात्मकमिध्मं समूलसाग्रदीर्घकुशमुष्टिं तथैवान्यान्यपि होमद्रव्यं दध्यक्षतादिपवित्रवलिद्रव्याणि गन्धादिपूजाद्रव्याणि च स्वसन्निधौ संस्थाप्य, पात्राण्यधोमुखानि कृत्वा, स्रुक्स्रुवादीनि तानि सपवित्राधोमुखहस्तमेकरूपावोक्षणपूर्वकमुत्तानानि विधाय, प्रणीतापात्रं प्रक्षाल्य, स्वाग्रतः कुशास्तरे निधाय, शुद्धसलिलैरापूर्य्य, तत्र गन्धं तण्डुलांश्च निक्षिप्य, प्रादेशप्रमाणं साग्रं मध्ये ब्रह्मग्रन्थियुतं पवित्रं उत्तराग्रं जलमध्ये निधाय, करद्वयानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां पवित्रमूलाग्रे धृत्वाऽग्निमनुमुच्चरन् पवित्रमध्येन जलं पात्राद्बहिः त्रिवारं भूमौ निक्षिपेदित्युत्पवनं विधाय, तज्जलमध्ये किंचिद्घृतं निक्षिप्य, तत्पात्रं पाणिभ्यामामस्तकमुत्थाप्य, कुण्डस्योत्तरभागे कुशास्तरणे स्थापयित्वा, तदुपरि प्रागग्रान्दर्भान्निक्षिपेदिति प्रणीतापात्रं संस्थाप्य, प्रोक्षणीपात्रं प्रक्षाल्य, शुद्धसलिलेनापूर्य, पात्रान्तरोद्धृतप्रणीतापात्रजलं तत्र किञ्चिद्दत्वा, तेन प्रोक्षणीपात्रजलेन मूलोच्चारपूर्वकं सर्वाणि पात्राणि, पूजाद्रव्याणि, होमद्रव्याणि च प्रोक्षयेदिति प्रोक्षणीपात्रं कुशास्तरे संस्थाप्य, प्रोक्षणीपात्रजलेन वह्निं परिषिच्य, गर्भैश्चतुर्भिश्चतुर्भिर्दर्भैः[1] प्राचीं दिशमारभ्य प्राच्यामुत्तराग्रैरीशानादिनैर्ऋत्यन्तं परिस्तीर्य, पुनर्दक्षिणस्यां प्रागग्रैः पूर्वपरिस्तरणमूलमग्रैराच्छादयन्, पुनः पश्चिमायामुत्तराग्रैर्दक्षिणपरिस्तरणमूलं मूलेनाच्छादयन्, पुनरुत्तरस्यां प्रागग्रैः पश्चिमपरिस्तरणाग्रं मूलेन पूर्वपरिस्तरणाग्रमग्रेण वाऽऽच्छादयन्, परिस्तीर्य्य परिधित्रयमादाय, सर्वतः स्थूलं पश्चिमे उत्तराग्रं, ततः कनिष्ठं दक्षिणे, पूर्वाग्रं पश्चिमे, परिधेर्मूलोपरि मूलं यथा भवति तथा, पुनस्ततोऽपि कनिष्ठमुत्तरस्यां, पूर्वपश्चिमपरिधेरग्रे परिस्तरणमूलमिति कुण्डस्य मध्यमेखलोपरिस्थपरिस्तरणोपरि परिधित्रयं निक्षिपेत्।

अत्र पश्चिममेखलायां तु परिस्तरणपरिधिस्थापनं योनिनालयोरंतरालेकार्यम्। ततः पश्चिमपरिधौ—'ॐ ब्रह्मणे नमः, दक्षिणपरिधौ—ॐ विष्णवे नमः, उत्तरपरिधौ—ॐ रुद्राय नमः' इति सम्पूज्य दीक्षितं द्विजमाहूय कुण्ड-

१. ख 'चतुर्भिर्दर्भै' रिति पाठः।

दक्षिणभागे कुशविष्टरे समुपवेश्य 'अदकोगोत्रोऽदकःशर्माऽहं अदकोगोत्र अदकोवेदान्तर्गतादकः शाखापाठिन अदकःशर्माणं त्वां दीक्षाङ्गभूतहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणाय ब्रह्मत्वेन वृणे' इति वस्त्रालङ्कारादिभिर्वरणं विधाय, गन्धादिभिः सम्पूज्य, ब्रह्मणोऽलाभे कुशवटुं वा सम्पूज्य वह्निमन्त्रेण प्रागुक्तविधिनाऽर्घ्यपाद्याचमनीयमधुपर्कपात्राणि संस्थाप्य, षट्कोणगर्भितं चतुर्द्वारयुक्तचतुरस्रत्रयवेष्टितं अष्टदलपद्मं वह्नेः पूजाचक्रं विभाव्य, प्रोक्तप्रकारेण मण्डूकादिपरतत्वान्तं तत्र योगपीठं सम्पूज्याऽष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन मध्यान्तं—"ॐ पीतायै नमः, श्वेतायै०, एवं अरुणायै०, कृष्णायै०, धूम्रायै०, तीव्रायै०, विस्फुलिङ्गिन्यै०, रुचिरायै०, ज्वालिन्यै नमः" इति नवशक्तीः सम्पूज्य, 'रं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इति समस्तं पीठं सम्पूज्य, तन्मध्ये यथोक्तरूपं वह्निं ध्यात्वा, सप्तजिह्वामुद्रां प्रदर्श्य, 'वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा अग्नये नमः' इति पुष्पाञ्जलिना वह्निं त्रिः सम्पूज्य, पुनर्वह्निमन्त्रमुच्चार्य्य 'अग्नये एष तेऽर्घः स्वाहा' एवं एतत्ते 'आचमनीयं सुधा, एष ते मधुपर्कः सुधा, एतत्ते आचमनीयं सुधा०, एतत्ते स्नानं नमः" इति स्नानान्तानुपचारान् मेखलाया वहिः पात्रान्तरे तत्तदङ्गभावनया दत्वा, पुनराचमनीयं निवेद्य, वस्त्रं वह्नावेव दत्वा, पुनराचमनीयं दत्वा, यज्ञोपवीतं दत्वा, पुनराचमनीयं दत्वा, गन्धपुष्पे वह्नावेव दत्वा षट्कोणेषु देवाग्रकोणमारभ्य मध्यान्तं—"ॐ स्य्रूं हिरण्यायै नमः, ॐ ध्य्रूं कनकायै नमः, ॐ श्य्रूं रक्तायै नमः, ॐ व्य्रूं कृष्णायै नमः, ल्य्रूं सुप्रभायै नमः, ॐ य्रूं बहुरूपायै नमः, ॐ य्य्रूं अतिरक्तायै नमः, इति सप्तजिह्वाः सम्पूज्याऽष्टदलकेसरेषु अग्नीशासुरवायव्यदेवाग्रतदादिचतुर्दिक्षु च—"ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे नमः, ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै नमः, ॐ धूमव्यापिने कवचाय नमः, ॐ सप्तजिह्वाय नेत्राय नमः, ॐ धनुर्द्धरायास्त्राय नमः." इति षडङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु देवाग्रदलमारभ्य "अग्नये जातवेदसे नमः, ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः, ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः, ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः, ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः, ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः, ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः, ॐ अग्नये देवमुखाय नमः." इति प्रादक्षिण्येनाष्टौ मूर्त्तीः सम्पूज्य, तद्बहिश्चतुरस्रे इन्द्रादीन्सायुधान्सम्पूज्य, पुनर्वह्निमन्त्रेण वह्निं सम्पूज्य, धूपादि दत्वा, नैवेद्यमुत्सृज्याऽग्नावेव निक्षिप्याऽऽचमनीयं दत्वा, ताम्बूलमग्नावेव निवेद्याऽग्निं प्रणम्य, स्रुक्स्रुवौ गृहीत्वा, तावधोमुखौ वह्नौ प्रताप्य, कुशानादाय, कुशानामग्रैस्तयोरग्रं, मध्यैर्मध्यं, मूलैर्मूलमिति त्रिः सम्मार्ज्य, पुनस्तावधोमुखौ प्रताप्य, वामपाणिनाऽऽदाय, दक्षकराग्रेण प्रोक्षणीपात्रजलेन प्रोक्ष्य, प्राग्वत्पुनरपि प्रताप्य, कुशानद्भिः संस्पृश्याऽग्नौ प्रक्षिप्य,

स्वदक्षिणभागे स्रुक्स्रुवौ कुशास्तरे निधायाऽऽज्यस्थालीं गृहीत्वाऽस्त्रमनुना प्रक्षाल्य, स्वाग्रतः कुशास्तरे निधाय, तदुपरि उत्तराग्रं प्रादेशमात्रं मध्यब्रह्मग्रन्थि-युतकुशद्वयरूपं पवित्रं निधाय, गोघृतं शुद्धं सुगन्धि [1]दीक्षादिचतुःसंस्कार-संस्कृतं 'वं' इति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृतं मूलेनाऽष्टधाऽभिमन्त्रितमाज्यस्थाल्यां निक्षिप्य, कुण्डादङ्गारानुद्धृत्य, मेखलाया बहिर्भूमौ वायव्यकोणे निक्षिप्य, तेषु हृन्मन्त्रे-णाऽऽज्यस्थालीं निधाय, कुशद्वयं प्रज्वाल्य, हृन्मन्त्रेणाज्ये निक्षिप्य, शेषमग्नौ निक्षिप्य, पुनः कुशद्वयं प्रज्वाल्य, कवचमनुनाऽऽज्यस्थालीं परितः परिभ्राम्य, दग्धशेषमग्नौ निक्षिप्य, पुनः कुशान्प्रज्वाल्य, हृदयमन्त्रेणाज्ये प्रदर्श्य दग्धशेषं वह्नौ निक्षिप्याऽऽज्यस्थालीमुत्थाप्य, प्रादक्षिण्येन कुण्डं परितो भ्रामयन्नानीय स्वाग्रतः कुशास्तरणे निधाय, वह्निस्थानाङ्गारारान् कुण्डमध्ये निक्षिप्य, जलं संस्पृश्याऽङ्गुष्ठानामिकाभ्यां पाणिद्वयेन पवित्रमूलाग्रे धृत्वाऽस्त्रमनुमुच्चरन्, तथैव पवित्रमध्येन घृतमुत्पूय हृन्मन्त्रमुच्चरन्, तथैव पवित्रमध्येन स्वाभिमुखं आज्यं त्रिः सम्प्लाव्य, तत्पवित्रमाज्यस्थाल्यां पूर्वाग्रं मध्ये निवेश्य, भागद्वयं विधाय, दक्षभागं[2] सितपक्षं वामभागमसितपक्षं परिकल्प्य, पुनस्तत्रैव वामभागे इडां, दक्षिणे पिङ्गलां, मध्ये सुषुम्णामिति नाडीत्रयं सञ्चिन्त्य, स्रुवेण हृन्मन्त्रेण दक्षभागादाज्यमादाय, 'अग्नये स्वाहा' इत्यग्नेर्दक्षिणलोचने हुत्वा 'अग्नये इदं न मम' इत्युद्देशत्यागं कृत्वा, पुनर्हृन्मन्त्रेण वामभागादाज्य-मादाय 'ॐ सोमाय स्वाहे'त्यग्नेर्वामनेत्रे हुत्वा, 'सोमायेदं न ममे'त्युद्देशत्यागं कृत्वा, हृन्मन्त्रेण मध्यात्पुनराज्यमादाय 'ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' इत्यग्नेर्ल-लाटनेत्रे हुत्वाऽग्नीषोमाभ्यां इदं न ममे'त्युद्देशत्यागं कृत्वा, पुनर्हृन्मन्त्रेण दक्षभागा-दाज्यमादाय 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहे'त्यग्नेर्वदने हुत्वा 'अग्नये स्विष्टकृते इदं न ममे'त्युद्देशत्यागं विधाय, 'ॐ भूः स्वाहाऽग्नये इदं न मम, 'ॐ भुवः स्वाहा वायव इदं न मम, ॐ स्वः स्वाहा सूर्यायेदं न मम, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा प्रजापतय इदं न मम, 'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इति वह्निमन्त्रेण वारत्रयं हुत्वा 'अग्नये इदं न ममे'ति प्रतिवारमुद्देशत्यागं कृत्वा "ॐ अग्नेर्गर्भाधानं सम्पादयामि स्वाहा, ॐ अग्नेः पुंसवनं सम्पादयामि स्वाहा, ॐ अग्नेः सीमन्तोन्नयनं सम्पादयामि स्वाहा" इति प्रतिकर्माज्याहुत्यष्टकं हुत्वा भुवनेश्वरीगर्भाज्जातमग्निं प्रागुक्तरूपं ध्यायन् "ॐ अग्नेर्जातकर्म सम्पाद-यामि स्वाहा" इत्यष्टावाज्याहुतीर्हुत्वाऽग्नेर्नालच्छेदं विधाय, सूतकं संशोध्य "ॐ अग्नेर्नामकर्म सम्पादयामि स्वाहा" इत्यष्टाज्याहुतीर्हुत्वा शिवाग्निर्गणेशा-

१. ख. धीक्षणादि० । २. ख. दक्षिणभागं ।

ग्नि रित्यादि नाम कृत्वा "ॐ वह्नेरुपनिष्क्रमणं सम्पादयामि स्वाहा "ॐ अग्नेर-न्नप्राशन सम्पादयामि स्वाहा, ॐ वह्नेश्चौल सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरुपनयन सम्पादयामि स्वाहा, ॐ अग्नेर्महानाम्न्य सम्पादायामि स्वाहा, ॐ अग्नेर्महाव्रत सम्पादयामि स्वाहा, ॐ अग्नेरुपनिषद सम्पादयामि स्वाहा, ॐ अग्नेर्गोदान सम्पादयामि स्वाहा, ॐ अग्ने समावर्त्तन सम्पादयामि स्वाहा, ॐ अग्नेर्विवाह सम्पादयामि स्वाहा" इति प्रतिकर्माष्टाष्टाज्याहुतीर्हुत्वाऽग्नेः पितरौ देवीदेवौ सम्पूज्य, मूलाग्रेष्वाज्यसिक्ता. पञ्च समिधस्तूष्णीमञ्जलिनाऽग्नौ समर्प्य, 'स्य्रूं हिरण्यायै स्वाहा, ष्य्रूं कनकायै स्वाहा, श्य्रूं रक्तायै स्वाहा, व्य्रूं कृष्णायै स्वाहा, ल्य्रूं सुप्रभायै स्वाहा, र्य्रूं वहुरूपायै स्वाहा, य्य्रूं अतिरक्तायै स्वाहा, ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय स्वाहा, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठ-पुरुषाय शिखायै स्वाहा, ॐ धूमव्यापिने कवचाय स्वाहा, ॐ सप्तजिह्वाय नेत्राय स्वाहा, ॐ धनुर्द्धरायाऽस्त्राय स्वाहा, ॐ अग्नये जातवेदसे स्वाहा, ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय स्वाहा, ॐ अग्नये हव्यवाहनाय स्वाहा, ॐ अग्नये वैश्वान-राय स्वाहा, ॐ अग्नये कौमारतेजसे स्वाहा, ॐ अग्गये विश्वमुखाय स्वाहा, ॐ अग्नये देवमुखाय स्वाहा" इति जिह्वाङ्गमूर्त्तिमन्त्रैरेकैकामाहुतिं दत्वा "ल इन्द्राय स्वाहा, र अग्नये स्वाहे" त्यादिलोकपालाना तदायुधाना च तत्तन्नाम-भिरेकैकामाज्याहुतिं हुत्वा, सर्वत्र प्राग्वत्तत्तन्नाम्नोद्देशत्याग च कुर्यात्। तत. स्रुवेणाऽज्यमादाय, स्रुचि चतुर्वारं निक्षिप्याऽधोमुख स्रुवं स्रुचो मुखे निधाय, प्रागुक्तवह्निमन्त्रमुच्चार्य्य, स्वाहास्थाने वौपडित्यग्नौ तिष्ठन् स्रुचा जुहुयात्।

तत उपविश्य ॐ स्वाहा, "ॐ श्री स्वाहा, ॐ श्री ह्री स्वाहा, ॐ श्री ह्री क्ली स्वाहा, ॐ श्री ह्री क्ली ग्लौ स्वाहा, ॐ श्री ह्री क्ली ग्लौं ग स्वाहा, ॐ श्री ह्री क्ली ग्लौ ग गणपतये स्वाहा, ॐ श्री ह्री क्ली ग्लौं ग गणपतये वरवरद स्वाहा, ॐ श्री ह्रीं क्ली ग्लौ ग गणपतये वरवरद सर्वजन स्वाहा, ॐ श्री ह्री क्ली ग्लौ ग गणपतये वरवरद सर्वजन मे वशमानय स्वाहे"ति दशधा विभक्तेन महागणपतिमन्त्रेण दशाहुतीर्हुत्वा "ॐ श्री ह्री क्ली ग्लौ ग गणपतये वरवरद सर्वजन मे वशमानय स्वाहे, ति समस्तेन गणपतिमन्त्रेण चतुर्वारमाज्येन जुहुयादित्यग्निस्थापनविधि.।

एवमग्निस्थापन कृत्वा, ततो नवीनताम्रादिपात्र अस्त्रमनुना प्रक्षाल्य, तत्र पञ्चदशप्रसृतिप्रमिताक्षि प्रक्षालितांस्तण्डुलान् मूलेनाऽष्टवारमभिमन्त्रितानस्त्र-मनु जपन्प्रक्षिप्य, तत्र सुरभिपयो यावता ते पक्वा भवन्ति तावन्निक्षिप्य, प्रक्षालितेनाऽन्यपात्रेण तत्पात्रमुख कवचमनुमुच्चरन्पिधाय, मेक्षणेन प्रदक्षिण-मूर्द्ध्वमवघट्टयन् मूलमनु स्मरन् प्राग्वदनो गुरुश्चरु श्रपयित्वा, तस्मिञ् श्रिते

मूलेन स्रुवेण घृत निक्षिप्य, कवचमनुना तत्पात्रमवतार्य्यास्त्रमनुनाऽभिमन्त्रिते कुशास्तरे चरु निक्षिप्य, भागत्रय कृत्वैक भाग कलाशस्थायै देवतायै निवेद्य, मण्डल परित. प्रथममङ्कुरार्पणकर्मकृताङ्कुरभाजनानि सर्पि पूर्णपिष्टकृत-प्रदीपाश्च स्थापयित्वा, कुण्डसन्निधौ गत्वा, निजासने समुपविश्य, निजेष्टदेवताया उक्तप्रकारेणाऽर्घ्यादिस्थापन कृत्वा, कुण्डमध्यगतवह्निवदने निजेष्टदेवतापूजाचक्र ध्यात्वा, तत्र मण्डूकादिपीठमन्त्रान्तमभ्यर्च्य, तत्र निजेष्टदेवतामावाह्य, साङ्ग सावरण तत्कल्पोक्तप्रकारेण पूजयेत् ।

अत्रार्घादिस्नानान्ता उपचारा देवोद्देशेन कुण्डाद्वहि. पात्रान्तरे विधेया: । गन्धपुष्पादिक कुण्डमध्य एव दद्यात् । ततो मूलमनुनाऽग्निनिजेष्टदेवतयोर्वक्त्रै-कीकरणार्थ पञ्चविंशतिघृताहुतीर्हुत्वा, स्वाग्निदेवतानामैक्य भावयन्नाडीसन्धा-नार्थं मूलेनाऽज्येनैकादशाहुतीर्हुत्वा, षडङ्गावरणदेवतानामप्येकैकामाहुति हुत्वा, पूर्वनिर्मितचरोर्द्वितीयभागस्य नवभागान्विधायैकभागेन मूलेन पञ्चविंशत्याहुती-र्हुत्वा, पूर्वादिदिक्स्थितेष्वष्टसु कुण्डेषु ऋत्विग्भि प्रोक्तप्रकारेणाऽष्टादशसस्कारै. संस्कृतेषु गुरु. स्वकुण्डाद्वह्निमुद्धृत्योद्धृत्य नि क्षिपेत् ।

ऋत्विजश्च स्वस्वकुण्डे प्रोक्तप्रकारेण वह्नि प्रज्वाल्योपस्थाय, परि-षेचनपरिस्तरणपरिधिप्रक्षेपणपूर्वक पूजादिक कृत्वा, समिद्धे तस्मिन्निजेष्टदेवता-मावाह्य, ताम्बूलान्तैरुपचारै सम्यगभ्यर्च्य, वक्त्रैकीकरणनाडीसन्धानहोमान्ते गुरुणा विभज्य दत्तेन घृतमिश्रचरुणा मूलमन्त्रेण पञ्चविंशतिधा स्वस्वकुण्डे जुहुयु ।

अथ गुरु. सर्वतोभद्रमण्डलस्य पूर्वादिवीथीचतुष्टये मेषादिराशिस्थानेषु प्राच्या मेषवृषौ, आग्नेय्या मिथुन, दक्षिणे कर्कसिंहौ, नैर्ऋतौ कन्या, पश्चिमे तुला, वायव्ये धनुरुत्तरे मकरकुम्भौ, ईशान्या मीन इति विभक्तेषु स्थानेषु राश्यवि-नाथेभ्यो ग्रहेभ्यो नक्षत्रेभ्य करणेभ्यश्च हुतशेषेण पायसेन बलि दद्यात् ।

यथा —

मेषवृश्चिकस्थानयो. "क ख ग घ ङ मेषवृश्चिकराश्यधिपतये मङ्गलाय एष गन्धपुष्पाक्षतयुक्तपायसबलिर्नम:, एव च ४ वृषतुलाराश्यधिपतये शुक्राय, ट ४ मिथुनकन्याराश्यधिपतये बुधाय, पं ४ कर्काधिपतये सोमाय, अ १६ सिंहाधिपतये सूर्याय, त ४ धनुर्मीनाधिपतये गुरवे, प ४ मकरकुम्भाधिपतये शनैश्चराय," पुन: पुन. क्रमेण मेषादिस्थानेषु "मेषराश्यशभूताश्विनीभरणी-कृत्तिकापादनक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तञ्चरेभ्य. सर्वेभ्यो भूतेभ्य एष गन्ध इत्यादि०

प्राग्वत्, एव वृषराश्यशभूतकृत्तिकापादत्रयरोहिणीमृगेशिरोर्द्धनक्षत्रेत्यादि०, मिथुनराश्यगभूतमृगशिरोत्तरार्धार्द्रापुनर्वसुपादत्रयनक्षत्रेत्यादि०," एवमग्रेऽपि मन्त्रा ऊह्याः। ततो मीनमेषयोरन्तराले "बवकरणाय एष इत्यादि०, एव वृषमिथुनयोरन्तराले वालवाय, मिथुनकर्कयोर्मध्ये कौलवाय, सिंहकन्ययोर्मध्ये तैतिलाय, कन्यातुलयोर्मध्ये गराय, वृश्चिकधनुषोर्मध्ये वणिजे, धनुर्मकरयोर्मध्ये विष्टये एष गधाक्षतपुष्पयुक्तपायसबलिर्नमः" इति बलिं दद्यात्। अत्र राशिद्वयाधिपतीना राशिद्वयस्थाने बलिर्ज्ञेय इति सम्प्रदायः।

ततो गुरुः कलशस्थायै निजेष्टदेवतायै उत्तरापोशनादिनीराजनान्त प्रागुक्तविधिना कृत्वा, वैदिकैः पौराणिकैः स्तवैः स्तुत्वा, नमस्कृत्य क्षमापयेत्।

ततस्तृतीय चरुभाग शिष्येण सार्द्धं गुरुर्भुक्त्वाऽऽचमन विधाय, स्वाचान्ताय शिष्याय षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृताय प्रादेशमात्र हृदयमन्त्रेणाऽष्टधाऽभिमन्त्रितं दन्तकाष्ठ दद्यात्। शिष्योऽपि तेन दन्तधावन कृत्वा, गुरोः सन्निधौ गच्छेत्। ततो गुरुः शिष्यस्य शिखाबन्धन मूलमन्त्रेण कृत्वा शिष्येण साकं वेद्यां कुशास्तरणे शयन कुर्यादित्यधिवासः।

इति श्रीगोस्वामिजगन्निवासात्मज-गोस्वामि-
श्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ
त्रयोदशस्तरङ्ग. ॥१३॥



चतुर्दशस्तरङ्गः

ततो गुरुर्ब्राह्मे मूहूर्त्ते सशिष्य उत्थाय, विहितावश्यकक्रियः प्रादेशमात्र मूलेन सप्तवारमभिमन्त्रित दन्तकाष्ठ शिष्याय दद्यात् । शिष्योऽपि तेन दन्तकाष्ठेन दशनान्विशोध्य, प्रक्षालित दन्तकाष्ठमग्रतो हस्तमात्रे चतुरस्रे स्थण्डिले निक्षिपेत् । तदा गुरुस्तत्परीक्षा कुर्यात् । परीक्षाप्रकारः शुभाशुभफलानि पूर्वमेवोक्तानि, प्रायश्चित्तमप्युक्तम् ।

तत. शिष्यः स्नात्वा कृतनित्यक्रियो भूषितः श्रीगुरु प्रणम्य, तदादेशेन तत्सन्निधावुपविशेत् । ततो गुरुः ऋत्विजश्च स्वस्वकुण्डे देवतां साङ्गां सावरणामभ्यर्च्य, साज्यैस्तत्तत्कल्पपुरश्चरणहोमोदीरितद्रव्यैर्वाऽष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशत वा जुहुयु ।

ततो गुरु शूद्रभिन्न शिष्य पञ्चगव्य पाययित्वा, कुण्डसन्निधौ नीत्वा, दिव्यदृष्ट्या समवलोक्य, तस्य हृदयपद्माज्जीवात्मान भूतशुद्धिप्रोक्तप्रकारेण तद्देहाद् ब्रह्मरन्ध्रमार्गेण नि.सार्य्य, स्वात्मनियोगबलेन गुरूक्तयुक्त्या सयोज्य, शिष्यस्य षडध्वशोधन कुर्यात् ।

तत्र शिष्यस्य चरणयो **कलाध्वान** निवृत्तिप्रतिष्ठाविद्याशान्तिशान्त्यतीता चेति पञ्चकलात्मक सर्वमन्त्रदीक्षासाधारण सञ्चिन्त्य, ततः शिष्यस्य लिङ्गप्रदेशे **गाणपतमन्त्रदीक्षायां** शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यामायाकलाविद्यारागकालनियतिपुरुषप्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमन श्रोत्रत्वक्चक्षुर्ज्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवाय्वग्निसलिलपृथिव्यात्मकषट्त्रिंशत्तत्वरूप **तत्वाध्वान** ध्यायेत् ।

सौरमन्त्रदीक्षायां तु आकाशवाय्वग्निसलिलपृथिव्यात्मक भूतपञ्चक शब्दमात्रास्पर्शमात्रारूपमात्रारसमात्रागन्धमात्रेति पञ्चतन्मात्रा., श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणाख्यानि पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थाख्यानि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, मनोऽहङ्कारो धीः प्रधान चेति चतुर्विंशतितत्वात्मकः तत्वाध्वा, **वैष्णवदीक्षायां** तु जीवः प्राणो धीर्मन, प्रागुक्तमिन्द्रियदशकं, भूतपञ्चक, पञ्चतन्मात्राश्च संहृत्य, सोमसूर्याग्निमय तेजसां त्रय, वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाश्चत्वार इति द्वात्रिंशत्तत्वात्मकस्तत्वाध्वा, **शैवमन्त्रदीक्षायां** तु गाणपतमन्त्रदीक्षोक्त एव **तत्वाध्वा, शक्तिमन्त्रदीक्षायां** तु आत्मविद्याशिवा, विपरीता शिवो विद्या आत्मेति, पुनः आत्मविद्याशिवा एव सर्वतत्व चेति दशतत्वात्मकस्तत्वाध्वा एव तत्तद्दीक्षाया तत्तदध्वानं चिन्तयेत् ।

ततः शिष्यस्य नाभौ अतलवितलसुतलमहातलतलातलरसातलपाताल-भूर्भुवःस्वर्महर्जनस्तपःसत्यलोकात्मकचतुर्दशभुवनरूपं भुवनाध्वानं सर्वमन्त्रदीक्षा-साधारणं सञ्चिन्त्य, ततः शिष्यस्य हृदये अकारादिक्षकारान्तवर्णकदम्बकरूपं **वर्णाध्वानं** विभाव्य, ततः शिष्यस्य ललाटे मूलमन्त्रवर्णसमुदायरूपं **पदाध्वानं** सञ्चिन्त्य, ततः शिष्यस्य शिरसि पदसमुदायमयमूलमन्त्रस्वरूपं **मन्त्राध्वानं** ध्यायेत् ।

इति शिष्यशरीरेऽध्वषट्कं सञ्चिन्त्य, कूर्चेण शिष्यं स्पृशन् अस्य 'कला-ध्वानं शोधयामि स्वाहे'ति घृताक्तैस्तिलैरष्टधा हुत्वा, कलाध्वानं तत्वाध्वनि विलीनं विभाव्य, पुनरस्य 'तत्वाध्वानं शोधयामि स्वाहे'ति तथैव हुत्वा, तत्वा-ध्वानं भुवनाध्वनि विलीनं विभाव्य, पुनरस्य 'भुवनाध्वानं वर्णाध्वनि विलीनं विभाव्य, पुनरस्य 'ॐ वर्णाध्वानं शोधयामि स्वाहे'त्यष्टधा हुत्वा, तं पदाध्वनि विलीनं विभाव्य पुनरस्य 'ॐ पदाध्वानं शोधयामि स्वाहे'त्यष्टधा हुत्वा, तं मन्त्राध्वनि विलीनं विभाव्य पुनरस्य 'मन्त्राध्वानं शोधयामि स्वाहे'त्यष्टधा हुत्वा, तं ब्रह्मरन्ध्रस्थपरमशिवे विलीनं विभाव्य, पुनः सहृतिप्रतिलोमेन परमशिवसका-शान्मन्त्राध्वानं सृष्ट्वा, ततः पदाध्वानं, तस्माद्वर्णाध्वानं' ततो भुवनाध्वानं, ततस्तत्वाध्वानं, ततः कलाध्वानं च सृष्ट्वा, तत्तत्स्थाने संस्थाप्य, शिष्यं दिव्यदृष्ट्या निरीक्ष्य, स्वस्थितं शिष्यचैतन्यं शिष्यस्य हृदयारविन्दे आवाहनोक्त-प्रकारेण तद्ब्रह्मरन्ध्रे संयोजयेत् । अत्राऽध्वशोधनं शूद्रसङ्करजातीनां न विधेयम् । तेषां तु निजचरणोदकप्रदानेनैवाऽध्वशोधनं विधेयम् ।

ततः पूर्ववत्स्वेष्टदेवताया अङ्गावरणदेवतानां च घृतेनैवैकैकामाहुतिं हुत्वा "ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा, ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा, ॐ सुवरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा, ॐ भूर्भुवस्व-श्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहे"त्याज्याहुतिचतुष्टयं हुत्वा, "इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारजाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्प्पणं भवतु स्वाहे'त्यष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा,

'ॐ सहस्रार्चिर्महातेजा नमस्ते बहुरूपधृक् ।
सर्वाशिने सर्वगतपावकाय नमोऽस्तु ते ॥१॥

त्वं रौद्रघोरकर्मा च घोरहा त्वं नमामि ते ।
विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे ॥२॥

इत्यग्निं प्रार्थ्याऽग्निं सम्पूज्य,

'न्यूनातिरिक्तसिद्ध्यर्थं ददामि सघृतं तिलम् । ॐ हूँ साङ्गं कुरु कुरु स्वाहा ।'

इति तिलैरेकामाहुतिं हुत्वा, घृतेन स्रुचमापूर्य तदुपरि पुष्पमधोमुखं स्रुवं च निधाय, शङ्खवत्सम्पुटाभ्यां कराभ्यां गृहीत्वोत्थाय, स्रुक्स्रुवयोर्मूलं नाभौ निधाय, वौषडन्तेन मूलमन्त्रेणाऽऽहुतित्रयं हुत्वा, प्राग्वत्तत्र देवं सम्पूज्य वह्नेः सकाशादुद्वास्य, कलशे विसृज्य, प्राग्वद् व्याहृत्यग्निजिह्वाङ्गमूर्त्तिमन्त्रैरेकैका-माज्याहुतिं हुत्वा, प्राग्वत्प्रोक्षणीजलेनाऽग्निं परिषिच्य,

ॐ भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक ।
कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम् ॥३॥

इत्यग्निं प्रार्थ्य, संहारमुद्रया तं स्वात्मन्युद्वास्य, परिधीन् परिस्तरणानि च तूष्णीमग्नौ प्रक्षिप्य, प्रणीतापात्रमुद्वास्य, स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, "ॐ प्राच्यै दिशे नमः, ॐ दक्षिणायै दिशे नमः, ॐ प्रतीच्यै दिशे नमः, ॐ उदीच्यै दिशे नमः, ॐ ऊर्ध्वायै दिशे नमः, इति तत्तद्दिशं प्रणीताजलमुत्क्षिप्य 'अधरायै दिशे नमः' इति भूमौ पतितजलेन स्वात्मानं शिष्यं च कुशैः सम्प्रोक्षयेदिति प्रणीतोद्वासनं विधाय ब्रह्माणमुद्वास्य, ब्रह्मणः स्थाने वृताय ब्राह्मणाय सहिरण्यं पूर्णपात्रं दापयेत् । पूर्णपात्रस्वरूपं तु पूर्वमेव प्रमाणं उक्तम् ।

ततो नेत्रमन्त्रेण शिष्यस्य नेत्रे नूतनश्वेतवस्त्रेण बद्ध्वा, शिष्यहस्तं निजहस्तेन गृहीत्वा, कलशसमीपं नीत्वा, कुसुमैर्नवाञ्जलिमापूर्य, स्वयं मूलमन्त्र-मुच्चरन् कलशस्थदेवतायै पुष्पाञ्जलिं दापयित्वा, नेत्रबन्धनं विमुच्य, कुशास्तरणे समुपवेश्य,

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४॥

इति मन्त्रं पाठयित्वा, कलशे देवं साङ्गं सावरणमभ्यर्च्य, पूर्वोक्तभूत-शुद्धिविधानेन शिष्यशरीरं संहृत्य, संशोध्योत्पाद्य, तस्य शरीरे मूलमन्त्रस्य ऋष्याद्यखिलन्यासजातं विन्यस्य, पुनः, कलशस्थदेवतां गन्धाद्यैः पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य, 'कारुण्यनिलये देवी'ति प्रमाणोक्तप्रार्थनाश्लोकान् पाठयित्वाऽभ्यर्च्य, मण्डप-द्वारदेवता, अर्घादिपात्रस्थ देवता, अङ्गावरणदेवताश्च देवताङ्गे विलीना विभाव्य, शिष्यं प्रागुक्तविधिना षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृत्य, तेजोरूपतामापाद्य, तेजोरूपं कलशजलं परब्रह्ममयं सञ्चिन्तयन् भूषितं शिष्यं पूर्वेशानोत्तरान्यतमदिशि

फा० ५९

सर्वतोभद्रादिमण्डले मुक्तिकाम प्राङ्मुख, भुक्तिकाममुदङ्मुख समुपवेश्य, पञ्चवाद्यनिनादपुरःसर गुरुः कलशमुत्थाप्य, कलशमुखस्थाम्रपल्लवादिक कल्पतरुशाखाधिया शिष्यस्य मूर्द्धनि निधाय, वैदिकाभिषेकमन्त्र पठद्भिर्ऋत्विग्भिरन्यैश्च द्विजैः सार्द्ध मूलमन्त्र विलोममातृका चोच्चार्य्य, स्वयमुत्तराभिमुखस्तिष्ठन् शिष्यमभिषिच्य, ततः पूर्वस्थापित करकमादाय, तत्तोयेन रक्षार्थमभिषिच्य, तत्करकावशिष्टजलेन शिष्यमाचाम्य, देवतास्वरूप त पुनः पूर्ववत् षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृत्य, नूतने शुद्धे धौते वाससी परिधाप्य स्वाचान्त त स्वसन्निधौ समुपवेश्य, शिष्यशरीरे सङ्क्रान्ता देवता गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य, शिष्यदेवतयोरैक्य भावयन् शिष्यस्य शिरसि स्वदक्षिणहस्त निधायाऽष्टोत्तरशत मूलमन्त्र जपित्वा, तत. शिष्यस्य दक्षिणश्रवणे गणेशादिचतुरायतनमन्त्रोपदेशपूर्वं मूलमन्त्र वारत्रय वदेत् ।

गणेशदीक्षायां सूर्यादिमन्त्रोपदेशपूर्वक मूलमन्त्रोपदेश कुर्यात् । शिष्यो ब्राह्मणश्चेत्तदा हस्ते मन्त्रदानोदक दद्यात् । अन्येभ्यस्तु उदकदान विनैव त्रिः कर्णे वदेत् । ततः शिष्यो गुरूपदिष्ट मूलमन्त्र ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिवारमष्टधा वा जपित्वा, जप समर्प्य, गुरुमन्त्रदेवतानामैक्य विभाव्य, साष्टाङ्ग गुरु बहुवार प्रणम्य, पुनः पञ्चाङ्ग प्रणम्य, गुरवे ऋत्विग्भ्यश्च प्रमाणोक्ता दक्षिणां दद्यात् । अन्येभ्यो द्विजेभ्यो दीनानाथेभ्यश्च दक्षिणा दत्वा, ब्राह्मणान् भोजयेत् । गुरुरपि त मूलमन्त्र स्वसिद्ध्यै अष्टोत्तरसहस्र जपेत् । तेन तत्सिद्धिहानिर्न भवतीति **क्रियामयो दीक्षा** ।

अथैव विस्तरत क्रियादीक्षा कर्त्तुमशक्तश्चेत्पूर्वोक्ते कनिष्ठे मण्डपे प्राग्वद्वेदिकाया मण्डल कृत्वा, तत्तद्देवतापूजाचक्र वा कृत्वा, तदशक्तौ चतुरस्रवेष्टितमष्टदलकमल वा निर्माय, तत्रोक्तविधिना कलश सस्थाप्य, प्राग्वच्चतुरश्रं कुण्ड, तदशक्तौ प्रागुक्तविधिना स्थण्डिल वा कृत्वा, तत्रोक्तविधिनाऽग्नि सस्थाप्याऽग्निस्थापने विस्ताराशक्तौ नित्यहोमोक्तविधिनाऽग्नि सस्थाप्योक्तविधिना होमादिक कृत्वाऽभिषिच्य मन्त्र दद्यात् ।

।। अथ क्रियादीक्षाशक्तानां वर्णदीक्षाविधिर्लिख्यते ।।

तत्र पुम्प्रकृत्यात्मके शिष्यदेहे यथोक्तविधिना विन्यस्य, पुन सहारक्रमेण मूर्द्धादिहृदयान्तस्थ क्षकार हृदयादिनाभ्यन्तरस्थ-लकारे सहृत्य, हृदयादिनाभिपर्यन्तस्थ लकार हृदयादिवामपादाग्रपर्यन्तस्थे हकारे सहरामि, हृदयादिवामपादाग्रपर्यन्तस्थं हकार हृदयादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तस्थे सकारे सहरामि०ः हृदयादिदक्षिण-

पाण्यग्रावधिस्थ सकारं हृदयादिवामपाण्यग्रावधिस्थे षकारे सहरामि०; हृदयादि वामपाण्द्यवधिस्थ षकार हृदयादिदक्षिणपाण्यग्रावधिस्थे शकारे सहरामि०; एव युक्त्या शकार वकारे सहरामीत्यादि मुखवृत्तस्थमकार शिरस्थे अकारे सहरामीत्यन्तमुक्तयुक्त्या वर्णान्सहृत्य, पुनस्तच्चैतन्य सकलतत्वग्रामसमेत परमात्मनि सयोज्य, विलीनसकलतत्त्वसमूह विगतनिखिलकलुष दिव्यतनु शिष्य विचिन्त्य पुन परमात्मन. सकाशादकरादिक्षकारान्तान् वर्णानुत्पाद्योक्तसृष्टिक्रमेण शिष्यदेहे-मातृकावर्णान्विन्यस्य, पुनश्च तच्चैतन्य तत्त्वग्रामसमेत तस्मिन् सयोज्योक्तविधिनोपदेश कुर्यादिति वर्णदीक्षा ।

॥ अथ कलादीक्षा ॥

तत्र पादतो जानुपर्यन्त निवृत्तिकला, जानुतो नाभिपर्यन्त प्रतिष्ठाकलां, 'नाभितः कण्ठपर्यन्त विद्याकला'[1], कण्ठाल्ललाटपर्यन्त शान्तिकला, ललाटाद्‌ब्रह्मरन्ध्रान्त शान्त्यतीतकलां च शिष्यदेहे सञ्चिन्त्य, निवृत्तिकला प्रतिष्ठाकलायाः सहरामि, प्रतिष्ठाकला विद्याकलायाः सहरामि, विद्याकला शान्तिकलाया सहरामि, शान्तिकला शान्त्यतीतकलाया सहरामीति क्रमात् सहृत्य, वेधयित्वा, ता परमात्मनि सहृत्य, प्राग्वत्तस्य शरीर सशोध्य[2] समुत्पाद्य, पुन परमात्मनः सकाशात् शान्त्यतीतकला ततः शान्ति, ततो विद्या, तत प्रतिष्ठा, ततो निवृत्ति च सृष्टिक्रमेण शिष्यदेहे तत्तत्स्थाने संयोज्योपदेशादिक कुर्यादिति कलादीक्षा ।

॥ अथ स्पर्शदीक्षा ॥

तत्र गुरुः स्वहस्ततले शिवरूप स्वगुरु ध्यायन् मूलविद्या षडङ्गमन्त्रान् मातृकां च जपन् शिष्यस्य शिरसि दक्षिणकर निधायोपदिशेदिति स्पर्शदीक्षा ।

॥ अथ वाग्दीक्षा ॥

तत्र गुरु परचिद्रूपे शिवे चित्त निधाय, तदुद्भूतान्समस्तमन्त्रान्ध्यायन् तन्मय. स्वय शिष्याय मन्त्रमुपदिशेदिति वाग्दीक्षा ।

॥ अथ दृग्दीक्षा ॥

तत्र गुरुः स्वनेत्रे निमील्य, परमात्मस्वरूपिणी मन्त्रदेवतां ध्यात्वा, प्रसन्नचित्तो दिव्यचक्षुषा शिष्य निरीक्ष्य मन्त्रोपदेश कुर्यादिति दृग्दीक्षा ।

---

१. क. पुस्तके नास्त्ययमश. । २. ख. सशोध्य ।

॥ अथ वेधदीक्षा ॥

तत्र गुरु शिष्यस्य मूलाधारे चतुर्दलपङ्कजमध्यत्रिकोणमध्ये यथोक्तरूपां कुण्डलिनी ध्यात्वा, तत्पत्रचतुष्टयमध्यस्थवादि-सान्ताक्षरचतुष्टय तन्मध्यस्थिते कमलासने सहृत्य, त ब्रह्माण तदूर्ध्वगतस्वाधिष्ठानाख्यषट्पत्रकमलमध्यस्थिते विष्णौ सयोज्य, वेधयित्वा, तत्पत्रषट्कमध्यस्थ वादि-लान्तवर्णषट्क डादि-फान्तवर्णदशकसहित विष्णु तत्पङ्कजमध्यस्थे रुद्रे सयोज्य, वेधयित्वा, त रुद्रमनाहताख्ये हृत्पद्मे कादि-ठान्तद्वादशवर्णाग्रद्वादशदलसंयुक्ते संयोज्य, तैरक्षरैः सार्द्धं रुद्र तन्मध्यस्थिते ईश्वरे सयोज्य, वेधयित्वा, कण्ठदेशे षोडशस्वराग्रषोडश-दलकमले विशुद्धिचक्रे तमीश्वर सयोज्य, तै. स्वरैः सार्द्धमीश्वर तन्मध्यस्थसदाशिवे सयोज्य, वेधयित्वा, त सदाशिव भ्रूमध्यस्थं द्विदलपङ्कजमाज्ञाचक्र नीत्वा, तत्पत्र-द्वयस्थह-क्षवर्णद्वयसहित सदाशिव तन्मध्यवर्त्तिनि विन्दौ सयोज्य, वेधयित्वा त विन्दु तदूर्ध्वस्थिताया कलाया सयोज्य, ता पुनर्नादे नाद नादान्ते नादान्तमुन्मन्यां ता विषुवक्त्रे विषुवक्त्र, गुरुवक्त्रे चेत्युत्तरोत्तर सयोज्य, वेधयित्वा, जीवात्मना सह ता कुण्डलिनी परमशिवे सयोज्य वेधयेदेवङ्कृते शिष्ये गुर्वाज्ञया छिन्नससार-पाशो विसज्ञ सद्य क्षितितले पतति। ततो गुरु. सहृतविपरीतक्रमेण परशि-वात्कुण्डलिनीमुत्पाद्य, तया सहृतमखिल सृष्टिक्रमेण शिष्यदेहे तत्तच्चक्रे ता तां देवता सयोज्य, हृदये जीव, मूलाधारे कुण्डलिनी सयोज्योपदेशादिक कुर्यादिति-। तत. संजातदिव्यबोधो भूतभविष्यवर्त्तमानज्ञ. सदाशिवो भवतीति वेधदीक्षा।

प्रायः कलौ वेधदीक्षाकरो गुरुस्तद्योग्यशिष्यश्च दुर्लभ इत्याहुराचार्याः; प्रसङ्गादत्रापि लिखितेयमिति शिवम्।

॥ अथ पूर्णाभिषेकविधि. ॥ तत्र—

श्रीसारसङ्ग्रहे—

पूर्णाभिषेकं वक्ष्यामि साधकानां शुभावहम्।
विना येनाभिषेकेण साधक पूर्णबोधताम् ॥५॥

आचार्यत्व च नाप्नोति सद्गतिं च समीहितम्।
तस्माद् गुरुः प्रिय शिष्य बोधयित्वाऽभिषेचयेत् ॥६॥

कुलार्णवेऽपि—

पूर्णाभिषेकहीनो यः साधको म्रियते यदि।
पिशाचत्वमवाप्नोति नरक च प्रपद्यते ॥७॥

तथा सारसङ्ग्रहे—

विरच्य विपुल चक्रं मण्डपे तु मनोहरम् ।
खारितोयभृत कुम्भ स्थापयेच्चक्रमध्यतः ॥८॥

अन्येषु कलशान् रत्नवस्त्रहेमसमन्वितान् ।
दलेषु विधिवत्स्थाप्य तत्राऽवाह्येष्टदेवताम् ॥९॥

अभ्यर्च्य मध्ये चान्येषु चाङ्गावरणदेवताः ।
शिष्यस्य जन्मनक्षत्रे प्राग्वत्तैरभिषेचयेत् ॥१०॥
अथ पूर्णाभिषेकः स्यात्साधकाभीष्टसिद्धिदः ।

खारिलक्षण तु प्रागुक्तम् ।

॥ अथैतत्प्रयोगः ॥

तत्र पूर्वोक्ते मण्डपे वेदिकाया तत्तद्देवतापूजाचक्र निर्माय चक्रमध्ये खारितोयपूर्णं कलश पूर्वोक्तविधिना सस्थाप्याऽन्येष्वपि कोणेषु, दलेषु, चतुरश्रेषु, तत्तदावरणदेवतापूजास्थानेषु प्रस्थद्वयजलपूर्णान्कलशान्सस्थाप्य, तत्र मध्यस्थकलशे निजेष्टदेवतामावाह्य, प्रोक्तप्रकारेण षोडशोपचारैः सम्पूज्याऽन्येषु कलशेषु तथैवाङ्गावरणदेवताः सम्पूज्य, दीक्षोक्तप्रकारेण शिष्यस्य जन्मनक्षत्रे पञ्चवाद्यनिनादपुरस्सर परदेवताभक्तैर्द्विजैः सह शिष्य सम्यगभिषिञ्चेत् ।

तत शिष्योऽपि श्रीगुरु प्रणम्य, दक्षिणां दत्वा, ब्राह्मणान् भोजनदक्षिणादिभिस्तोषयेत् । अथ पूर्णाभिषेकः सद्भक्तिशालिनः श्रीगुरोरधीतसमस्तागमशास्त्रस्य सदाचारस्य शिष्यस्य विधेय. । तदुक्त तन्त्रराजे—

क्रमागतसमाचारनिरते भक्तिशालिनि ।
द्वितीयमभिषेक तु कुर्याद्दिव्यात्मसिद्धये ॥११॥

॥ इति पूर्णाभिषेकविधिः ॥

अथैव दीक्षिताना लब्धद्विविधाभिषेकाना नित्यार्चननिरताना नैमित्तिकार्च्चन लिख्यते । तत्तु साधकैर्विशेषदिवसेषु विधेयम् । विशेषदिवसास्तु—

श्रीकुलार्णवे—

कृष्णाष्टमी चतुर्द्दश्यमावास्या च पूर्णिमा ।
सङ्क्रान्ति पञ्चपर्वाणि तेषु पुण्यदिनेषु च ॥१२॥

पुण्यदिनानि कुलमूलावतारे उक्तानि । यथा—

देवतातिथिनक्षत्रवारयोगेषु चेश्वरि ।
सोमसूर्योपरागेषु मन्वादिषु युगादिषु ॥१३॥
देशिकागमने चैव वीरस्वजनदर्शने ।

मन्वादियुगादयस्तु नारदेनोक्ता यथा—

द्वादश्यूर्जे शुक्लपक्षे नवम्याश्वयुजे सिते ।
चैत्रे भाद्रपदे चैव तृतीया शुक्लसञ्ज्ञिता ॥१४॥
एकादशी सिता पौषेऽथाऽऽषाढे दशमी सिता ।
माघे च सप्तमी शुक्ला नभस्येऽथ सिताष्टमी ॥१५॥
श्रावणे मास्यमावास्या फाल्गुने मासि पूर्णिमा ।
आषाढे कार्त्तिके मासि चैत्रे ज्येष्ठे च पूर्णिमा ॥१६॥
मन्वादयः स्नानदानश्राद्धेष्वानन्त्यपुण्यदाः ।
कार्त्तिके शुक्लनवमी चादि कृतयुगस्य सा ॥१७॥
त्रेतादिर्माधवे शुक्ला तृतीया पुण्यसम्मिता ।
कृष्णा पञ्चदशी माघे द्वापरादिरुदीरिता ॥१८॥
कल्यादि स्यात्कृष्णपक्षे नभस्ये च त्रयोदशी ।[1]

---

१. इतः परमयमंशो विशेषः—

मन्त्रमहोदधौ—शुचौ तत्तदहे कुर्याद्देवप्रस्वापनोत्सवम् ।
ऊर्जे तथैव देवानामुत्थापनविधिं चरेत् ॥१॥
माघकृष्णचतुर्दश्यां विशेषाच्छिवपूजनम् ।
आश्विनाद्यनवाहेषु दुर्गा पूज्या यथाविधि ॥२॥
गोपालं पूजयेद्विद्वान् नभःकृष्णाष्टमीदिने ।
रामं चैत्रसिते पक्षे नवम्यामर्चयेत्सुधीः ॥३॥
वैशाखाद्यचतुर्दश्यां नरसिंहं प्रपूजयेत् ।
यजेच्छुक्लचतुर्थ्यां तु गणेशं भाद्रमाघयोः ॥४॥
महालक्ष्मीं यजेद्विद्वान् भाद्रकृष्णाष्टमीदिने ।
माघस्य शुक्लसप्तम्यां विशेषाद्दिननायकम् ॥५॥
या काचित् सप्तमी शुक्ला रविवारयुता यदि ।
तस्यां दिनेशं सम्पूज्य दद्यादर्घ्यं पुरो हितम् ॥६॥
तत्तत्कल्पोदितानन्यान् देवताप्रीतिवर्द्धनात् ।
विशेषनियमान् ज्ञात्वा भजेद् देवमनन्यधीः ॥७॥

तथा कुलार्णवे—

गुरुजन्मदिने प्राप्ते तद्गुरोस्तद्गुरोरपि ।
मानवौघादि पूजा च स्वजन्मदिवसेऽपि च ॥१६॥

सम्पत्तौ च जये लाभे तपोदीक्षाव्रतोत्सवे ।
पीठोपपीठगमने वीरस्वजनदर्शने ॥२०॥

देशिकागमने पुण्यतीर्थे दैवतदर्शने ।
एवमादिषु देवेशि विशेषदिवसेषु च ॥ २१॥

रोगेष्वापत्सु दोषेषु दु सङ्गे दुर्निमित्तके ।
यथा बल यथा श्रद्धा यथा द्रव्य यथोचितम् ॥२२॥
यथाकाल यथादेश तथा पूजा समाचरेत् ।

तन्त्रराजे—

गुरोस्तु जन्मदिवस विद्याप्राप्तिदिन तथा ।
[1]षट्पर्वाणि विशिष्टानि सदर्शं सप्तपर्वकम् ॥२३॥ इति ।

यामले—

दमनारोपण चैत्रे श्रावणे च पवित्रकम् । इति ।

एषु विशेषदिवसेषु दिवा नित्यार्चन विधाय रात्रौ नैमित्तिकार्चन कुर्यात् । नित्यजपात् त्रिगुणजप च कुर्यात् । तदुक्त तन्त्रप्रकाशे[2]—

जपेत्प्रतिदिन यत्तु नित्य एष जप स्मृतः ।
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥२४॥

द्वादश्या पूर्णिमाया च तेषु नैमित्तिको जपः ।
नित्यात्त्रिगुणितः सोऽथ पूजा चैव हरेस्तथा ॥२५॥ इति ।

तदुक्त कुलार्णवे—

नित्यार्चन दिवा कुर्याद्रात्रौ नैमित्तिकार्च्चनम् ।
उभयो काम्यकर्माणि चेति शास्त्रस्य निश्चयः ॥

॥ अथ दमनपूजा ॥ तत्र—

ज्ञानार्णवे—

दमनारोपण वक्ष्ये साधकाना हिताय वै ।
संवत्सरकृता पूजा येन पूर्णा भवेत्प्रिये ॥२७॥

---

१. ख. इतः पूर्वमयमशो विशेष —
अक्षरत्रयतम्पातदिन पूर्णादिन तथा । २. ख. मन्त्रतन्त्रप्रकाशे ।

तपोभङ्गाय मदनो[1] मम शैलभवे यदा ।
भस्मीभवत्तदा दुःखी रतिः प्रीतिस्तदाऽभवत् ॥२८॥

तन्नेत्रवारिसम्भूता दमनस्य लताऽभवत् ।
तत्सौरभं च सौभाग्यं महदासीत्सुलोचने ॥२९॥

तेन सन्तुष्टहृदयाद्वरो दत्तो मया प्रिये ।
रत्यै प्रीत्यै च यस्मात्तु दमनः प्रकटीकृतः ॥३०॥

दमनेन च यो मन्त्री वर्षमध्ये न पूजयेत् ।
तस्य सांवत्सरी पूजा मदनाय भविष्यति ॥३१॥

इति तस्मै वरो दत्तो मयैव सुरवन्दिते ।
तस्माद्दमनपूजा हि कर्त्तव्या वीरवन्दिते ॥३२॥
अन्यथा तत्फलं वर्षकृतं कामाय जायते । इति ॥

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

चैत्रादयस्त्रयो मासाः पक्षौ सितसितेतरौ ।
पूर्वरात्रे प्रकुर्वीत सद्यो वाचाऽधिवासनम्[2] ॥३३॥
आमन्त्र्य दमनं चादौ चतुःकल्पलतादिभिः । इति ।

चतुःकल्पलताविद्या वक्ष्यन्ते । आदिशब्देन वक्ष्यमाणश्लोकमन्त्रा गृह्यन्ते ।

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र चैत्रे वैशाखे ज्येष्ठे वा मासे पक्षद्वयस्याष्टमीनवमीचतुर्द्दशीपौर्णमास्यन्यतमतिथौ पूजादिनात्पूर्वेद्युः साधकः कृतनित्यकृत्यः सायं साधकैः सार्द्धं दमनसमीपं गत्वा, स्वासने समुपविश्य, प्राणायामत्रयं ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासांश्च विधाय, वक्ष्यमाणपञ्चकामेश्वरीविद्यां, पारिजातसरस्वतीविद्यां, कुमारीविद्यां, पञ्चबाणेश्वरीविद्यां चोच्चार्य्य, पश्चात् —

कामभस्मसमुद्भूतरतिबाष्पजलोद्भव ।
ऋषिगन्धर्वदेवाय मोहनाय नमोऽस्तु ते ॥३४॥

सांवत्सरिकपूजायाः परिपूर्णत्वसिद्धये ।
दमन त्वं समायाहि क्षमस्व च नमोऽस्तु ते ॥३५॥

ॐ शिवप्रसादसम्भूत अत्र सन्निहितो भव ।
शिवकार्ये समुच्छिद्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया ॥३६॥

---

१ ख. दमनो । २. ख. वासाधिवासनम्

इति दमनमामन्त्र्य, तत्र कामदेवं रतिं च वक्ष्यमाणतत्तन्मन्त्रेण सम्पूज्य गृहमागच्छेत् । ततः पूजादिनात्पूर्वदिने कृतनित्यकृत्यः साधकः समयिभिः सार्द्धं पुनर्द्दमनकसमीपं गत्वाऽस्त्रमन्त्रेण दमनं समूलमुत्पाट्य, शस्त्रेण वा छित्त्वा, गृहमानीय, "अघोरे ऐं ॐ घोरे ह्रीं घोरघोरतरे श्रीं सर्वतः शर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः ह्रीं श्रीं" इति मन्त्रेण दमनमभ्युक्ष्य, पूजास्थाने कस्मिंश्चित्पात्रे दमनं नवधा विभज्य, मध्ये चाष्टसु दिक्षु च संस्थाप्य, हृन्मन्त्रेण चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमादिपङ्कैरालिप्य, मध्यमारभ्य स्वाग्रादि-प्रादक्षिण्येन नवधा विभक्तं दमनं "ॐ हं नमः, सं नमः, क्षं नमः, यं नमः, लं नमः, वं नमः, रं नमः, षं नमः, ॐ नमः" इति सम्पूज्य तथैवाऽऽनन्देश्वरीवीजेन नवधा विभक्तेन पूजयेत् ।

आनन्देश्वरीवीजं तु—'सहक्षमलवरयीं' इति ।

ततोऽस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य, कराभ्यां त्रिशूलमुद्रां वद्ध्वा कवचमन्त्रेण दमनोपरि भ्रामयित्वा, नूतनवस्त्रेणाऽऽच्छाद्य, रहसि स्थापयेदित्यधिवासनं रात्रौ कुर्यात् । अत्राऽस्त्रमन्त्र-हृन्मन्त्र-कवचमन्त्रादयो मूलमन्त्रस्य षडङ्गप्रोक्ता मन्त्रा ज्ञेयाः । एवं पूर्वदिने निमन्त्रणाऽधिवासनेन कृते चेत्पूजादिने तद्द्वयं कार्यमिति ।

ततः पूजादिने प्रातः साधकः स्नानादिनित्यपूजां निर्वर्त्य, रात्रौ समयिभिः सार्द्धं स्वस्तिवाचनपूर्वकं दमनं पूजास्थानमानीय, शुचिस्थले सिन्दूरेण चतुरश्र-वृत्तद्वयवेष्टितमष्टदलकमलं विधाय, तस्य मध्येऽष्टसु दलेषु च स्वर्णादिरचितान्नव कलशान्दीक्षोक्तविधिना संस्थाप्य, तदशक्तावेकं वा कुम्भं मध्ये संस्थाप्य, स्वासन-पूजादिपीठपूजान्तं प्रागुक्तविधिना कृत्वा, स्वदक्षिणभागे सर्वतोभद्रमण्डलं प्राग्वदष्ट-दलकमलं वा सिन्दूरादिना कृत्वा, तन्मध्ये पञ्चवर्णरजोभिरशोकतरुं कृत्वा—

ॐ अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशक ।
शोकार्त्तिं हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे ॥३७॥

इत्यशोकतरुं सम्प्रार्थ्य, सम्पूज्य—

त्रुट्यादिप्रलयान्तो यः कालरूपो महावलः ।
कलयत्यपि विश्वं यस्तस्मै कालात्मने नमः ॥३८॥

इति कालं च सम्पूज्य, तस्याशोकस्याधस्त्रिकोणमण्डले मण्डूकादिज्ञाना-न्तर्यात्मान्तं प्राग्वत्पीठपूजां कृत्वाऽष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादि-प्रादक्षिण्येन—"सौभाग्यायै नमः, हृद्यायै, वर्षायै, धृतये, रत्यै, प्रीत्यै, संगमायै, निर्वाणायै, कामुकायै नमः" इति मध्यान्तं सम्पूज्य, वक्ष्यमाणकामगायत्र्या कामदेवमावाह्याऽऽवाहानादिप्राण-प्रतिष्ठान्ते पाशाङ्कुशधनुर्वाणमुद्राः प्रदर्श्य, कामदेवं तरुणमरुणवर्णं रक्तवस्त्रा-

त्रिशलमुद्रा वद्ध्वा च भ्रामयेद्दमनोपरि ।
नृत्यगीतादिभिः सम्यक् कुर्याज्जागरणं तदा ॥५५॥

सद्योऽधिवासने जागरण नास्ति । 'ततो जागरणं कुर्यात्सद्यो जागरणं नही'ति दक्षिणामूर्त्तिसंहितावचनात् । चैत्रशुक्लद्वादश्या दमनकार्पणे विष्णु-विषये विशेष उक्त अगस्तिसंहितायाम्—

द्वादश्या चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनोत्सवः ।
वौधायनादिभि. प्रोक्तः कर्त्तव्यः प्रतिवत्सरम् ॥५६॥

तत्र प्रथम देवप्रार्थनम्—

क्रियालोपविघातार्थं यत्त्वया विहित प्रभो ।
न मे विघ्नो भवेदत्र कुरु नाथ दया मयि ॥५७॥

सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्व परमा गतिः ।
उपवासेन त्वां देव तोपयामि जगत्पते ॥५८॥

कामक्रोधादयो ये ते न मे स्युर्ब्रह्मघातका. ।
अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेपिक दिनम् ॥५९॥

तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य नमोऽस्तु ते ।
एवं विज्ञाप्य देवेश गुरुपादौ प्रणम्य च ॥६०॥

प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य देवेश विधिवन्नर. ।
गच्छेद्दमनकाराममेकादश्यां सुशोभितम् ॥६१॥

क्रयेणाऽऽदाय तत्रैव पूरयेच्चन्दनादिना ।
नेष्यामि राजपूजार्थमिति सम्प्रार्थ्य त नमेत् ॥६२॥

उत्पाद्य पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य प्रक्षाल्य वारिणा ।
धौतेन वाससाऽऽच्छाद्य निधाय पटले तु वै ॥६३॥

पटले वशादिपात्रे ।

घण्टापुरुषसूक्तादिस्वनैं स्वगृहमानयेत् ।

ततो गृहमागत्य देवं प्रार्थयेत्—

आमन्त्रितोऽसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम ।
प्रातस्त्वा पूजयिष्यामि सान्निध्य कुरु केशव ॥६४॥

क्षीरोदधिमहानागशय्यासस्थितविग्रह ।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नम. ॥६५॥

निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातर्दमनकं शुभम् ।
सर्वदा सर्वथा विष्णो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे ॥६६॥

इत्थमामन्त्र्य दत्वाऽथ तस्मै पुष्पाञ्जलिं पुनः ।
पूजितं तद्दमनकं कुम्भस्योपरि संस्थितम् ॥६७॥

अस्त्रेण सर्वतो रक्षेत्कवचेनाऽवगुण्ठयेत् ।
रक्षेद्वा चक्रमन्त्रेण नृहरेर्मनुनाऽथवा ॥६८॥

ततो ब्राह्मणान्गुरुं प्रणम्य गीतवादित्रादिभिः रात्रौ जागरणं कुर्यात् । ततः प्रातरुत्थाय स्नानाद्याह्निकं नित्यपूजां च कृत्वा नैमित्तिकीं कुर्यात् । तद्यथा—पूर्वदिनाधिवासितं दमनकं दूर्वादलयुतं गृहीत्वा,

ॐ देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थफलप्रद ।
हृदिस्थान्पूरयन्कामान् मम कामेश्वरीप्रिय ॥६९॥

इदं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात् ।
इमां सांवत्सरीं पूजां भगवन्परिपूरय ॥७०॥ इति ।

मूलमन्त्रसम्पुटितेन मन्त्रेण देवाय दमनकमर्प्पयेत् । ततः उत्तरप्रार्थना—

मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ।
इयं सांवत्सरी पूजा तवाऽस्तु गरुडध्वज ॥७१॥

वनमाला यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि ।
तद्वद्दामनकी माला पूजा च हृदये वह ॥७२॥

जानताऽजानता वाऽपि न कृतं यत्तवार्च्चनम् ।
तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादादुमापते ॥७३॥

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥७४॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्द्दन ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥७५॥

इति देवं प्रार्थयित्वा दण्डवत्प्रणम्य, भूषणवस्त्रादिभिर्गुरुं सम्पूज्य, नत्वा, ब्राह्मणान् भोजयित्वा, स्वयञ्च पारणं कुर्यात् । तथा—

माधवे दमनारोपः स्यान्मधौ विघ्नितो यदि ।
वैशाख्या श्रवणे नागे कर्त्तव्यं दमनार्प्पणम् ॥७६॥

माधवे वैशाखे तद्द्वादश्यामित्यर्थः, नागे पञ्चम्याम् ।

भरणमाल्यानुलेप वामदक्षिणयो रतिप्रीतियुत पाशाङ्कुशपुष्पबाणेक्षुधनुर्धरध्यात्वा "ॐ क्लीं कामदेवाय नम" इति मन्त्रेण गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य, तद्वामभागे रतिं गौरवर्णां रक्तवस्त्रपरिधानां सर्वाभरणभूषिताम्पद्मद्वयवरां ध्यात्वा "श्री श्रीं श्री क्रों रत्यै नम." इति मन्त्रेण रतिं गन्धादिभि. सम्पूज्य, कामस्य दक्षिणभागे प्रीतिं श्यामवर्णां सर्वाभरणभूपिता रक्तवस्त्रपरिधाना ताम्बूलकरां ध्यात्वा "श्रीं श्री श्री क्रो प्रीत्यै नमः" इति मन्त्रेण पञ्चोपचारैस्ता सम्पूज्य, कामदेवस्याग्रे कदम्बवनमध्ये वसन्त गौरवर्णं वामहस्तेन सुधाकुम्भ, दक्षिणहस्तेन नानापुष्पसमुच्चय दधान रक्तवस्त्राभरणमाल्यानुलेपनालङ्कृतं ध्यात्वा—

"वसन्ताय नमस्तुभ्य वृक्षगुल्मलताप्रिय ।
सहस्रसुखसवाह कामरूप नमोऽस्तु ते ॥३९॥

व वसन्ताय नमः" इति मन्त्रेण पञ्चोपचारैस्तं सम्पूज्य, पुनः कामदेव तन्मन्त्रेण सम्पूज्याऽष्टदलकेसरेषु अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्षु च—"क्लां हृदयाय नम, क्लीं शिरसे नम., क्लू शिखायै नम., क्लै कवचाय नमः, क्लौं नेत्राय नम., क्लः अस्त्राय नम" इति षडङ्गानि सम्पूज्याऽष्टदलेषु देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन— "ॐ कामाय नम., ॐ भस्मशरीराय नमः एव अनङ्गाय, मन्मथाय, वसन्तसखाय, स्मराय, इक्षुधनुर्द्धराय, पुष्पबाणाय नमः" इत्यष्टौ कामान्सम्पूज्य, चतुरस्त्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च सम्पूज्य, पुन, कामदेव तन्मन्त्रेणाऽभ्यर्च्य, धूपदीपादिताम्बूलान्तानुपचारान्समर्प्य, प्रणम्य, "कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयादि" ति कामगायत्री यथाशक्ति जपित्वा, समर्प्य,

नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदानन्दकारिणे ।
मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय च ॥४०॥

इति कामदेव प्रणम्य मूलमन्त्रस्य ऋष्यादिन्यासं कृत्वा, मध्यकुम्भे देवमावाह्य, प्राग्वत्सर्वोपचारै. साङ्ग सावरण दमनैः सम्पूज्य,

आवाहितोऽसि देवेश सद्यः काले मया विभो ।
कर्त्तव्य तु यथालाभ पूर्णं पर्व त्वदाज्ञया ॥४१ ।

इति विज्ञाप्य, साङ्ग सावरणं देव दमनै. सम्पूज्य, धूपदीपनैवेद्यानि निवेद्य, नित्यहोमोक्तविधिना तदुक्तद्रव्यैस्तत्त्रिगुणसख्य हुत्वा, नित्यजपसख्यात्रिगुणसख्य जप कृत्वा, पूजाशेष समाप्य,

सर्वरूप जगन्नाथ वाञ्छितार्थफलप्रद ।
हृत्स्थान्पूरय मे देव कामान्कामेश्वरेश्वर ॥४२॥

इति देवं प्रार्थ्य, विसृज्य, गुरुं वित्तादिभिः परितोष्य, कुमारान् ब्राह्मणांश्चान्नादिभिस्तोषयेदिति दमनपूजाविधिः। इयं दमनपूजा दमनाराम एव कार्येति केचित्। तदुक्तं मन्त्रमुक्तावल्याम्—

प्रारभेद्दामनीं पूजां विद्वान् चैत्रे शुभे दिने।
तत्तद्दैवतके भक्त्या गुरुणा दर्शितक्रमः ॥४३॥

पूर्वेद्युः संयतो भूत्वा मन्त्री वादित्रनिस्वनैः।
गच्छेद्दमनकारामं यत्राशोकः प्रतिष्ठितः ॥४४॥

तत्रोपविश्य मन्त्रज्ञः पूजिते स्वासने शुभे।
नत्वा गुरुं गणेशानं स्वेष्टदेवं च मन्त्रवित् ॥४५॥

स्वात्मानं सकलीकृत्य कलशं स्थापयेद् बुधः।
वर्द्धनीं चैव संस्थाप्य विधिना मन्त्रवित्तमः ॥४६॥

आवाह्य पूजयेत्पश्चात्कलशे मन्त्रदेवताम्।
तदस्त्रं चैव वर्द्धन्यां पूजयेद्धूपदीपकैः ॥४७॥

दत्त्वा बलिं भूतकेभ्यस्तानि निस्सार्य मन्त्रवित्।
अस्त्रेण सर्षपक्षेपात्तन्मन्त्रेण च यत्नतः ॥४८॥

कुर्याद्दमनरक्षां च वर्द्धन्या कुम्भलग्नया।
कुम्भतोयेनाऽभिषिंचेत्समन्ताद्दमनस्थलीम् ॥४९॥

अशोकं पूजयेत्तत्र तदभावे विधाय तम्।
मण्डले चन्दनेनाथ पत्रपुष्पोपशोभितम् ॥५०॥

कालं तत्रैव सम्पूज्य वसन्तं च यथाविधि।
विभाव्य नवधा पश्चादारामे दमनस्थलीम् ॥५१॥ इति।

ज्ञानार्णवे—

दमनं नवधा कुर्यात्पूजयेत्तदनन्तरम्।
आनन्देश्वरबीजेन ततो भिन्नेन सुन्दरि ॥५२॥

आनन्देश्वरीबीजेन नवधा बिन्दुना सह।
नवप्रकारसम्भिन्नं दमनं पूजयेत् क्रमात् ॥५३॥ इति।

मन्त्रमुक्तावल्यां तु—प्रोक्तविधिनैव कामपूजामभिधाय—

अघोरविद्यया पश्चाद्दमनं प्रोक्ष्य वारिणा।
अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य कवचेनाऽवगुण्ठ्य च ॥५४॥

॥ अथ पवित्रारोपणविधिः ॥ तत्र कुलमूलावतारे—

पवित्रकेन नागेन पूर्वमाराधितः शिवः ।
प्रसादाभिमुखो भूत्वा तस्मै वरमदाद्विभु ॥७७॥

प्रतिवर्षं न कुर्वन्ति पवित्रारोपणानि ये ।
तेषा सावत्सरी पूजा तव कृत्स्न भविष्यति ॥७८॥

ततः प्रभृति कुर्वन्ति शिवभक्ताः पवित्रकम् ।
आराधकैश्च कर्त्तव्यः कामचारैश्च योगिभिः ॥७९॥

कुर्यान्मिथुनसङ्क्रान्तेस्तुलासङ्क्रमणावधि ।
पक्षद्वयेऽपि पूजा स्याच्चतुर्थ्यामिण्टमीदिने ॥८०॥
नवम्या च चतुर्दश्या पवित्रारोपण चरेत् ।

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

आषाढ उत्तमो मासः श्रावणो मध्यमो भवेत् ।
हीनो भाद्रपदो मास. पक्षौ सितसितेतरौ ॥८१॥

प्रशस्तः शुक्लपक्षस्तु तदलाभे सितेतरः ।
चतुर्दश्यष्टमीपूर्णमासीतिथिषु वै यजेत् ॥८२॥[1]

तन्त्रराजे—

श्रावणे मासि पूर्णाया पवित्रै. पूजयेच्छिवाम् । इति ।

तन्त्रान्तरेऽपि—

सौवर्णं राजतं ताम्र कृतादिषु यथाक्रमम् ।
कलौ कार्पासज वाऽपि यथाशक्ति पवित्रकम् ॥८३॥

कर्त्तित द्विजकन्याभिस्त्रिगुण त्रिगुणीकृतम् ।
धौत शुक्ल शुभ सूत्रमन्यदप्युपयुज्यते ॥८४॥

---

१. इत. परमयमंशो विशेषः ख. पुस्तके—'देवताविशेषे तिथिविशेषो *निबन्धे*—

धनदश्च रमा गौरी गणेश सोमराड् गुह ।
भास्करश्चण्डिकाम्बा च वासुकिश्च तथर्षयः ॥१॥
चक्रपाणिर्ह्यनङ्गश्च शिवो ब्रह्मा तथैव च ।
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेताः पूज्यास्तिथिषु देवताः ॥२॥
यथोक्ताः शुक्लपक्षे तु तिथय. श्रावणस्य च ।
कालोत्तरे— चतुर्दश्यामथाष्टम्यां सर्वसाधारणं तु तत् ॥३॥'

पट्टवल्कलपद्मोत्थं क्षौमदार्भशणोद्भवम् ।
मुञ्जाभिसम्भव सूत्र पवित्राय प्रशस्यते ॥८५॥

तन्त्रराजे—

सौवर्णै राजतैर्वापि सूत्रै. पट्टसमुद्भवैः ।
कार्पाससम्भवै रक्तैर्नवधा गुणितै. शुभैः ॥८६॥
......................कुर्यात्पवित्रकमिति ।

दक्षिणामूर्तिसंहितायामपि—

अष्टोत्तरशत श्रेष्ठ तदर्धं मध्यम प्रिये ॥
तदर्धं च कनिष्ठ स्याद्यथाशक्त्याऽथवा प्रिये ॥८७॥

तन्त्रराजे—

अष्टोत्तरशतैः सूत्रैः कुर्याच्छक्त्यवतारकम् ।
पूजाविष्टरमानेन वितानादवलम्बयेत् ॥८८॥
स्वमानेनात्मनः कुर्यात्पवित्र तूक्तसंख्यया ।
क्रमागमज्ञशिष्याणामात्मवत्समुदीरितम् ॥८९॥
परिधानप्रमाणेन मण्डपस्यैकसूत्रतः ।
कृत्वाऽधिवास पूर्वं तु पूजयेत्तैर्यथाक्रमात् ॥९०॥

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

पवित्रदानदिवसात्पूर्वेद्युरधिवासनम् ।
सद्योऽधिवासन वापि कुर्यात्तु परमेश्वरि ॥९१॥

॥ अथ प्रयोग. ॥

तत्र मिथुनसङ्क्रमणमारभ्य तुलासङ्क्रमावधिमासचतुष्टयस्य पक्षद्वयगतचतुर्थ्यष्टमीनवमीचतुर्दशीपूर्णिमान्यतमतिथौ पवित्रैर्देव सम्पूजयेत् । पवित्राणि तु स्वर्णरजतताम्रपट्टसूत्रत्रसरीपद्मसूत्रदर्भमुञ्जशणवल्कलकार्पाससूत्रेष्वन्यतमसूत्रैः कुर्यात् । कार्पाससूत्रं चेत् सुवासिनीभि. कर्तित त्रिगुण त्रिगुणीकृत्य नवसूत्रस्यैकसरत्वेन कल्पितैरुक्तसख्यै सूत्रै पवित्राणि कुर्यात् । तत्राऽष्टोत्तरशतसूत्रैरुत्तमानि, चतु पचाशत्सूत्रैर्मध्यमानि, सप्तविंशतिसूत्रैः कनिष्ठानि तावत्तावदङ्गुलदैर्घ्याणि दशग्रन्थियुक्तानि पवित्राणि कुर्यात् । इत्थ पूज्यावरणदेवतावृन्दसमसख्यानि पवित्राणि कृत्वाऽष्टोत्तरशतसरग्रन्थियुक्त वितानात्पूजाविष्टरमानदैर्घ्यमेकं वृहत्पवित्र कृत्वाऽऽत्मनश्चागमज्ञाना क्रमज्ञानां शिष्याणा च स्कन्धादि-नाभिपर्यन्तदैर्घ्याण्युक्तपक्षत्रये त्वेकपक्षानुसारसरग्रन्थियुक्तानि पवित्राणि कुर्यात् । अन्येषां सामान्यपवित्राणि एकग्रन्थियुक्तानि यथेष्टसख्यतन्तुभिः परिधानप्रमाणदैर्घ्याणि

पवित्राणि कुर्यात् । अत्र ग्रन्थिषु सूत्रवेष्टनसंख्या तूत्तमपवित्रेषु षट्त्रिंशन्मध्यमेषु द्वादश इति कवचमन्त्रेण ग्रन्थयः कार्याः ।

इत्थं पवित्राणि विधाय, पवित्रारोपणदिनात्पूर्वदिने साधकः कृतनित्यकृत्यो रात्रौ समयिभिः सार्द्धं पवित्राणि पूजास्थानमानीय, तत्र सिन्दूरादिना कुङ्कुमरक्तचन्दनकस्तूरीकर्प्पूरलाक्षागैरिकाद्यैर्ग्रन्थिस्थानेषु विचित्रितानि पवित्राणि संस्थाप्य, तेषां सूत्रेषु—"ॐकाराय नमः, वह्नये नमः, ब्रह्मणे नमः, नागाय नमः, गुरवे नमः, रवये नमः, सदाशिवाय नमः, सर्वदेवेभ्यो नमः" इति सम्पूज्य, शिरोमन्त्रेणाऽभिमन्त्र्य, हृन्मन्त्रेणाऽभ्युक्ष्याऽस्त्रमन्त्रेणाऽवरुद्धय, तेषां दशग्रन्थिषु—"ॐ क्रियायै नमः, ॐ पौरुष्यै नमः, ॐ वीरायै नमः, ॐ गायत्र्यै नमः, ॐ अपराजितायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ जयायै नमः, ॐ मुक्तिदायै नमः, ॐ सदाशिवायै नमः, ॐ मनोन्मन्यै नमः" इति दशशक्तीः सम्पूज्य, पवित्रेषु मूलमन्त्रेण षडङ्गमन्त्रैश्च सम्पूज्य, सुगन्धपुष्पाणि, पञ्च रत्नानि, सर्वौषधीश्च निक्षिप्य, नूतनवस्त्रद्वयेनाऽऽच्छादयेदित्यधिवासनम् । पञ्चरत्नानि तु **आदित्यपुराणे**—

वज्रं मुक्ताफलं नीलं पद्मरागं तथैव च ।
मरकतेन समायुक्तं पञ्चरत्नमिदं विदुः ॥६२॥

वज्रं हीरकं, मरकतं पान्ना इति प्रसिद्धम् । **सर्वौषधयस्तु**—

'सिद्धार्थकुष्ठरजनीद्वयलोध्रमुस्ता लामज्जशैलफलिनीमुरमासिमुक्ता ।'

इति स्मृत्युक्ताः । सिद्धार्थः सर्षपः, रजनीद्वयं हरिद्रा-दारुहरिद्रा च, लामज्जकमुशीरं, शैलं शिलाजितु इति प्रसिद्धम्, फलिनी प्रियङ्गुः, मुरं मुरहरी, इत्यधिवासनं विधाय, परेद्युः साधकः कृतनित्यकृत्यः समयिभिः सार्द्धं रात्रौ पूजास्थानं वितानादिभिरलङ्कृतं प्रविश्य, पूजाविष्टरादूर्ध्वं वितानात्पूजाविष्टरपर्यन्तं बृहत्पवित्रमालम्ब्य, स्वासनपूजादिन्यासजातं विधाय, दमनपूजावत्कुम्भं स्थापयित्वाऽर्घस्थापनाद्यात्मपूजापीठपूजान्तं प्रोक्तविधिना विधाय, तस्मिन्कुम्भे देवमावाह्य, साङ्गं सावरणं सम्पूज्य, देवाय मूलमन्त्रेण पवित्रं समर्प्याऽङ्गावृत्तिदेवतानां च पवित्राणि समर्प्य, धूपदीपनैवेद्यनैमित्तिकहोमान् कृत्वा, गुरुं संतोष्य, तस्मै पवित्रं समर्प्य, गुर्वनुज्ञया स्वयमपि पवित्रधारणं कृत्वा, सामयिकानन्यानपि ब्राह्मणादीन्पवित्रदानादिभिः परितोष्य, पूजाशेषं समाप्य, ब्राह्मणादीन् भोजनभूरिदक्षिणादिभिस्तोषयेदिति **पवित्रारोपणविधिः** । इयं पवित्रपूजा अत्यावश्यकी, अकरणे निन्दाश्रवणात् ।

अथ विष्णोः पवित्रारोपणे यो विशेषः सोऽप्यत्र निरूप्यते ।

हेमाद्रौ विश्वरहस्ये—

श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थे दिवाकरे ।
द्वादश्यां वासुदेवाय पवित्रारोपणं स्मृतम् ॥९३॥
द्वादश्यां श्रावणे वाऽपि पञ्चम्यामथवा द्विज ।
अनुकूलेषु कर्त्तव्यं पञ्चदश्यामथाऽपि वा ॥९४॥

नारदपञ्चरात्रे—

कर्क्कटस्थे द्विजादित्ये सिंहकन्यातुलास्थिते ।
द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु एकस्यां यत्र रोचते ॥९५॥
जपहोमक्रियालोपशान्तये विधिपूर्वकम् ।

रामार्च्चनचन्द्रिकायाम्—

श्रावणस्य सिते पक्षे द्वादश्यां शौनकादिभिः ।
उक्तः सदा प्रकर्त्तव्यः पवित्रारोपणोत्सवः ॥९६॥

पाद्मे—

ऊर्ज्जे व्रतं मधौ दोला श्रावणे तन्तुपूजनम् ।
चैत्रे च दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ॥९७॥
पवित्रारोपणं विप्राच्छ्रावणे न भवेद्यदि ।
कार्त्तिक्यवधि शुक्लार्क्के कर्त्तव्यमिति नारद ॥९८॥

शुक्लार्वकः शुद्धद्वादशी ।

हेमरूप्यमयैः सूत्रैस्तथा कौशेयपद्मजैः ।
कुशैः काशैश्च कार्प्पासैर्ब्राह्मण्या कर्त्तितैः शुभैः ॥९९॥
कन्यया वा पवित्रं स्यान्न पुंश्चल्यादिभिः कृतैः ।
स्नात्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत् ॥१००॥
पृथक्पृथक्पञ्चगव्यैरद्भिः प्रक्षालयेत्ततः ।
मूलेनाष्टोत्तरशतं गायत्र्या रामसंज्ञया ॥१०१॥
शङ्खोदकेनाऽभिमन्त्र्य पवित्राणि विनिर्ममेत् ।
तत्रोत्तमं पवित्रं तु षष्ट्या सह शतैस्त्रिभिः ॥१०२॥
सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां शताभ्यां मध्यमं स्मृतम् ।
साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत् ॥१०३॥
अष्टोत्तरं तदर्द्धार्द्धनवसूत्रकृतेन वा ।
जानूरुनाभिपर्यन्तमुत्तमादित्रयं भवेत् ॥१०४॥
उत्तमं तु शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि मध्यमम् ।
कनिष्ठं तु पवित्रं स्यात्षट्त्रिंशद्ग्रन्थिसंयुतम् ॥१०५॥

षड्त्रिंशच्चतुर्विंशद् द्वादशेति च केचन ।
चतुर्विंशद् द्वादशाष्टावित्येके मुनयो विदु. ॥१०६॥
अष्टोत्तरसहस्रेण विंशोत्तरयुतेन च ।
शतेन सप्तत्या वाऽपि वनमाला प्रकीर्त्तिता ॥१०७॥
द्वादशाङ्गुलमानानि न्यासादष्टाङ्गुलानि वै ।
ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्यस्तथा स्त्री शूद्र एव च ॥१०८॥
स्वधर्मावस्थिताः सर्वे भक्त्या कुर्युः पवित्रकम् ।

नारदपञ्चरात्रे—

मूलमन्त्रादि सर्वस्य मन्त्रचक्रस्य नारद ।
त्रीणि त्रीण्यथवा द्वे द्वे एकैक सत्यसम्भवे ॥१०९॥
पवित्रक तु प्रत्येक सानुकूल्येन नारद ।
तथा—अतो देवेति मन्त्रेण द्विजो विष्णौ निवेदयेत् ॥११०॥
शूद्रस्य मूलमन्त्रो वा येन वा पूजयेद् हरिम् ।
स्नात्वा विज्ञापयेद्देवम्............................॥१११॥
क्रियालोपविघानार्थं यत्त्वया विहित प्रभो ।
मयैतत् क्रियते देव तव तुष्ट्यै पवित्रकम ॥११२॥
न मे विघ्नो भवेदत्र कुरु नाथ दया मयि ।
सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्व परमा गतिः ॥११३॥
उपवासेन त्वां देव तोपयामि जगत्पते ।
कामक्रोधादयो ये ते न मे स्युर्व्रतघातकाः ॥११४॥
अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिक दिनम् ।
तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य नमोऽस्तु ते ॥११५॥
कुम्भ पुण्याम्बुनाऽऽपूर्य सर्वतोभद्रके शुभे ।
स्थापयेत्पुरतो विष्णोस्तत्र सूत्राणि पूजयेत् ॥११६॥
सावत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भो ।
विष्णुलोकात्पवित्राद्य आगच्छेह नमोऽस्तु ते ॥११७॥
सर्वाभरणचित्राङ्ग सर्वदेवनमस्कृत ।
लावण्यरूपसम्पन्न सर्वकर्त्त. प्रजापते ॥११८॥
सर्वमात्मेश सूत्रेऽस्मिन्सान्निध्यं कुरु ते नम. ।
सर्वरत्नोज्ज्वलाकारब्रह्माण्डब्रह्मरोचिपा ॥११९॥

मुकुटोत्तमसर्वांशशिर.सूत्र इहैहि भो ।
इह ते जगत. कीर्त्ति. सर्वलावण्यदायिनी ।।१२०।।
श्रीसूत्रे नित्यकल्याणसान्निध्य कुरु ते नमः ।
मनुभिर्मन्त्रयेदेतै पूजयेन्मूलमन्त्रतः ।।१२१।।
अथ देव करे विद्वान् गन्धसूत्रममुद्भवम् ।
वितस्तिमानक डोर बध्नीयान्मङ्गलात्मकम् ।।१२२।।
सवत्सरकृता याऽर्चा सम्पूर्णफलदाऽस्तु मे ।
पवित्रारोपणे चैव सान्निध्य कुरु ते नम ।।१२३।।
विष्णुतेजोद्भव रम्यं सर्वपातकनाशनम् ।
सर्वकामप्रद देव तवाङ्गे धारयाम्यहम् ।।१२४।। इति मन्त्रः ।
नीराजयेत्ततो देव मङ्गलाघोषपूर्वकम् ।
मन्त्रेणाऽथ सुरेशान देवदेव तु मन्त्रयेत् ।।१२५।।
आमन्त्रितोऽसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम ।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधिं कुरु केशव ।।१२६।।
क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नम. ।।१२७।।
निवेदयाम्यह तुभ्य प्रातरेतत्पवित्रकम् ।
सर्वथा सर्वदा विष्णो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे ।।१२८।।
निपतेद्दण्डवद्भूमौ क्षिप्त्वा पुष्पाञ्जलिं ततः ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य गुरुपादौ प्रणम्य च ।।१२९।।
गीतमङ्गलनिर्घोषै. कुर्याज्जागरण ततः ।

।। इत्यधिवासनम् ।।

अपरेद्युर्नित्यपूजां विधाय—

ततो मङ्गलनिर्घोषै. शङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः ।
गन्धदूर्वाक्षतैर्युक्त दद्याद्देवाय सूत्रकम् ।।१३०।।
राम राम नमस्कार्य गृहाणेदं पवित्रकम् ।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।।१३१।।
पवित्र च कुरुष्वाऽद्य यन्मया दुष्कृत कृतम् ।
शुद्धो भवाम्यह देव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ।।१३२।।
मूलसम्पुटितो ह्येप पवित्रारोपणे मनु ।
अङ्गाद्यावृतिदेवेभ्यस्ततो दद्यात्स्वनामभिः ।।१३३।।

नैवेद्यं तु महापूर्वं ततो दद्याच्च भक्तितः ।
नीराजयेत्ततो देव रमाकान्त समङ्गलम् ॥१३४॥
सवीज्य चामरैर्दिव्यैर्दर्पणं दर्शयेत्तत. ।
प्रार्थयेद्देवदेवेश मन्त्रैरेभिर्यथाविधि ॥१३५॥
मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ।
इय सावत्सरी पूजा तवाऽस्तु गरुडध्वज ॥१३६॥
वनमाला यथा देव कौस्तुभ सतत हृदि ।
तद्वत्पवित्रपूजा च हृदये वह केशव ॥१३७॥
जानताऽजानता वाऽपि यत्कृत तु त्वदर्च्चनम् ।
केनचिद्विघ्नदोषेण परिपूर्णं तदस्तु मे ॥१३८॥

मन्त्रहीनमिति पूर्ववत् ।

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्न्निश मया ।
दासोऽयमिति मा मत्वा क्षमस्व मधुसूदन ॥१३९॥
तत पवित्र गुरवे दद्याद् गन्धादिपूर्वकम् ।
अथैनं पूजयेद् भक्त्या स्वर्णवस्त्रानुलेपनैः ॥१४०॥
ब्राह्मणान्वैष्णवाश्चैव गन्धपुष्पादिनाऽर्च्चयेत् ।
मास पक्षमहोरात्र त्रिरात्र धारयेत्तथा ॥१४१॥
देवे त सूत्रसन्दर्भं देशकालविवक्षया ।
प्रत्यह स्नानकार्यादौ सूत्राण्युत्तार्य कारयेत् ॥१४२॥
अथाऽन्ते देवमभ्यर्च्य तत. सूत्र विसर्ज्जयेत् ।
सावत्सरी शुभा पूजा सम्पाद्य विधिवन्मम ॥१४३॥
व्रजेदानी पवित्र त्व विष्णुलोक विसर्ज्जित ।
यावद्देवे पवित्राणि तावत्तिष्ठेत्समाहित. ॥१४४॥
ब्रह्मचारी हविष्याशी देवपूजापरायण ।

अकरणे तत्रैव प्रायश्चित्तमुक्तम्—

पवित्रारोपण काले न करोति कथञ्चन ।
तदाऽयुत जपेन्मन्त्र स्तोत्र वाऽपि समाहितः ॥१४५॥

॥ इति विष्णोः पवित्रारोपणविधिः ॥

इति श्रीगोस्वामिनगनिवासात्मज-गोस्वामिश्रीशिवानन्दभट्टविरचिते सिंहसिद्धान्तसिन्धौ चतुर्दशस्तरङ्ग. ॥१४॥



शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ - पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१ - १७	सकरुणहृदयो	स करुणहृदयो
२ - १६	प्रकाशोऽनिग	प्रकाशोऽनिश
२ - २०	सन्मानदान०	सम्मानदान०
२ - २३	प्रयितप्रभाव	प्रथितप्रभाव
३ - २४	शरण गत	शरण गतं
१२ - ३	थैव	तथैव
१३ - १६	चन्द्रशिलाप्रकाश	चन्द्रशिलाप्रकाश
१४ - ४	ध्यायन्नोह्निक०	ध्यायन्नाह्निक०
१४ - १०	नित्यमुक्त स्वभाव०	नित्यमुक्तस्वभाव०
१४ - १४	आज्ञा प्रार्थन०	आज्ञाप्रार्थन०
१६ - ३	गन्धलेपक्षयकर	गन्धलेपक्षयकर
१६ - २६	प्रकर्त्तव्य	प्रकर्त्तव्य
२० - २७	०नावगुण्ठ्या	०नावगुण्ठ्य
२५ - २६	ध्यायेद्धदये	ध्यायेद्धृदये
२६ - १३	समारस्य	समारभ्य
२६ - २६	कुष्णभट्टीये	कृष्णभट्टीये
२६ - ३१	स्मुतिरत्नावल्यामपि	स्मृतिरत्नावल्यामपि
३१ - १६	गोश्टङ्गमात्र०	गौशृङ्गमात्र०
३१ - २२	याज्ञवल्य.	याज्ञवल्क्य:
३२ - ६	कुवीर्त्त	कुर्वीत
३२ - १६	०मूर्न्धि	मूर्ध्नि
३३ - १२	०फलमश्नुते	फलमश्नुते
३३ - १६	शत	शत
३६ - १८	०मुद्दिष्ठ	०मुद्दिष्ट
३७ - २१	हेम	हेम
३६ - १	वक्तव्म्	वक्तव्यम्
४० - ७	पार्थिव	पार्थिव
४४ - २१	गृह्लीया०	गृह्णीया०

पृष्ठ - पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
४७ - ८	स्व	स्व
५० - १६	गरुडारूढ धातार	गरुडारूढ धातार
५० - १७	रक्त	रक्त
५० - १८	हसारूढ	हसारूढ
५० - १८	विधातार	विधातार
५४ - ४	०दासन	दासन
५४ - २२	वशासनें	वशासने
६० - १०	कुम्भक	कुम्भक
६४ - ६	दाहक	दाहक
६५ - २०	विपरीतफल	विपरीतफल
६६ - ६	०स्तिथिसरव्यान्	०स्तिथिसख्यान्
६६ - ८	पद	पद
६६ - १५	०स्तद्वीज	०स्तद्वीज
६६ - १६	हस	हस.
६७ - ६	सबिन्दुनतो	सबिन्दुनन्तो
६७ - ६	सूक्ष्म	सूक्ष्म
६७ - ६	वदेदय	वदेदय
६७ - ६	०स्त्वमरेश	०स्त्वमरेश
६७ - १२	०भिण्टीश	०भिण्टीश
६७ - १२	०सयुक्त	०सयुक्त
६७ - २०	एव	एव
६७ - २२	०पादयुग्मान्त	पादयुग्मान्तं
६८ - १६	गायत्र	गायत्र
६६ - १४	विधायेत्थ	विधायेत्थ
६६ - १८	कवर्ग	कवर्गः
७० - १२	सहारेण	संहारेण
७० - १३	षडङ्ग	षडङ्ग
७० - २५	ध्रुव	ध्रुव
७१ - ११	०ऽभय शूल कपाल	भय शूल कपालं
७१ - १४	अभय	अभय

पृष्ठ - पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
७१ - १४	चाहुभिवरम्	चाहुभिर्वरम्
७३ - १०	घृतशूकलपालकाः	घृतशूलकपालका·
७५ - १४	हसश्च सोह	हसश्च सोह
७५ - १८	पर समाख्यात	पर समाख्यात
७५ - १६	वोधित	वोवित
७५ - २४	होम	होम
७६ - २४	०त्यादिज्योतिषु	०त्यादिज्योतिष्पु
७७ - ४	स्वरूप	स्वरूपे
७८ - २	सयोज्य	सयोज्य
७८ - ६	०सङ्ग्राह्य	०सङ्ग्राह्य
७८ - १२	सवृत	०सवृतम्
७८ - १३	०सयुक्त	सयुक्त
८० - २४	पतित	पतित
८२ - २८	दोर्बल्य	दौर्बल्य
८३ - २१	आदा	आदौ
८५ - १७	त्र्यर	त्र्यक्षर
८५ - २३	स्मृता	स्मृताः
८८ - १३	चीह्नि	चह्नि
१०६ - ३	सर्वसमृद्धिद	सर्वसमृद्धिद
१०८ - १४	पञ्चरात्रवचनान्	पञ्चरात्रवचनात्
११६ - २६	वामनाख्यो	वामनाख्यो
१२२ - ६	सालाग्राम०	सालग्राम०
१२२ - २५	पड्भि	पड्भि·
१२२ - ३०	अनेकसूर्त्ति०	अनेकमूर्त्ति०
१२४ - १६	कृतै.	कृते
१२६ - २	वाऽमक्त्या	वाऽभक्त्या
१३० - १	पाषाणादिभिर्वा	पाषाणादिभिर्वा
१३० - २१	शालिग्रामादिकं	शालग्रामादिकं
१३३ - १३	पूज्यपूचकयो०	पूज्यपूजकयो०
१३४ - १३	तोर्थ	तीर्थं.

पृष्ठ - पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१३६ - २६	पद्यमदो वास्ति	पद्यमदो नास्ति
१३८ - ३२	१	२
१३६ - २७	श्रोक्ता	प्रोक्ता
१४५ - १६	सवदा	सर्वदा
१६४ - २६	हरेसद्य०	हरेस्सद्य०
१६६ - २	गृह्वीया०	गृह्णीया०
१६८ - २५	सूतसहितावाञ्च	सूतसहितायाञ्च
१७४ - ६	लोकापालान्त	लोकपालान्त
१७६ - ६	मन्त्रमता.	मन्त्रमातः
१८० - २५	पुमा	पुमान्
१८१ - २०, २४ ३०,	१, २	२, ३
१८२ - १	अस्रमन्त्रेण	अस्त्रमन्त्रेण
१८२ - २७	स्यद्धस्त०	स्याद्धस्त०
१८४ - ४	क्रमणंव	क्रमेणैव
१८४ - ३६	गण्डूदन्त०	गण्डूपदन्त०
१८४ - ३०	तिलतण्डुकै०	तिलतण्डुलकै०
१६० - १३	वाग्मिराच्छिद्र०	वाग्भिरच्छिद्र०
२०० - २	मऽभिभवन्तु	माऽभिभवन्तु
२०२ - १४	पिप्लाद	पिप्पलाद
२०४ - २५	०पाणिनाऽऽादय	०पाणिनाऽऽदाय
२०५ - २०	क्रोधदृष्टचा	क्रोधदृष्टचा
२०७ - ६	०मुद्धाघाटच	०मुद्घाटच
२१० - १८	स्फुररद्वालार्क०	स्फुरद्वालार्क०
२१४ - १०	एवम अन्तः	एवमन्तः
२१४ - १३	करस्पर्शाऽसम्भ-वात्	करस्पर्शाऽसम्भवात्
२१४ - २७	वामे–ऋ	वामे ऋं
२१८ - १५	फं जनार्दनामोयैयै	फ जनार्दनायोमायै
२२६ - ३	अह ता	अहन्ता
२२८ - १३	विन्दस्रुत	विदुस्रुत

पृष्ठ - पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
२३३ - २९	वृहस्पतिदेवताभ्याम्	वृहस्पतिदैवताभ्याम्
२३३ - ७	भववन्रत्न०	भगवन्रत्न०
२३३ - ११	ऐतत्ते मुकुट	एतत्ते मुकुट
२३३ - ११	एत्तत्ते कुण्डल	एतत्ते कुण्डल
२३३ - १४	पञ्चवाद्यगुर सरम्	पञ्चवाद्यपुरस्सरम्
२३४ - ५	देवग्राद्यष्टसु	देवाग्राद्यष्टसु
२३४ - १४	गरूडवाहनाय	गरुडवाहनाय
२३४ - १६	य वायने	यं वायवे
२३४ - १८	उदूर्ध्ववाघो	ऊर्द्ध्वाधो
२३४ - २८	सम्पूज्याऽस्त्रमन्त्रेण	सम्पूज्याऽस्त्र मन्त्रेण
२३५ - १	साराङ्गारात्रिधाय	साराङ्गारान्निधाय
२३५ - ७	गजध्वनीमन्त्र०	गजध्वनिमन्त्र०
२३५ - १२	घृत्तप्रदीदाय	घृतप्रदीपाय
२३५ - १५	प्रतिग्रह्यताम्	प्रतिगृह्यताम्
२३५ - २०	०कषायमघु रात्मक०	०कषायमधुरात्मक०
२३५ - २४	०ऽघोमुखदशिणहस्तो०	०ऽधोमुखदक्षिणहस्तो०
२३६ - ६	अमृतोपस्त्ररण०	अमृतोपस्तरण०
२३६ - ६	विरुचोत्पल	विकचोत्पल
२३६ - ८	तर्ज्जनीमञ्याङ्गुष्ठ०	तर्ज्जनीमध्याङ्गुष्ठ०
२३६ - ८	०नामिकाङ्ष्ठयोगेन	०नामिकाङ्गुष्ठयोगेन
२३६ - १०	सामानाय	समानाय
२३६ - १७	सौरव्य०	०सौख्य०
२३६ - १८	देय	देव
२३६ - २४	०प्रसहन०	०प्रहसन०
२३७ - ४	कूशाम्बुना	कुशाम्बुना
२३७ - ७	सर्वंज्ञाज्ञापय	सर्वं ज्ञापय
२३७ - ७	यन्त्रेण	मन्त्रेण
२३७ - १०	मुवर्णवर्ण०	सुवर्णवर्ण०
२३७ - १४	सहस्त्रार्चिपे	सहस्रार्चिषे
२३७ - १६	षडङ्गसन्त्री०	षडङ्गमन्त्रा०

पृष्ठ - पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
२३७ - १७	मूर्द्धिन	मूर्द्धिन
२३७ - १६	दक्षिणकय्या	दक्षिणकट्या
२३७ - २३	लप्तजिह्वा.	सप्तजिह्वा :
२३७ - २५	० नाष्ठमूर्त्ती.	० नाष्टमूर्त्ती
२३७ - २६	चतुरस्त्रे	चतुरस्त्रे
२३७ - २६	इहाव	इहावह
२३८ - ३	त्यग्ने" दक्षिण०	त्यग्नेर्दक्षिण०
२३८ - ३	इद नव	इद न
२३८ - १३	स्यू	स्यूं
२३८ - २४	अस्त्राय	अस्त्राय
२३८ - २६	प्राणावुद्धि०	प्राणबुद्धि०
२३९ - १	पङ्कया०	पङ्क्त्या०
२३९ - ५	ॐ ह्र	ॐ ह्रूं
२३९ - १८	विद्यत	विद्यते
२३९ - २२	उपनिश्य	उपविश्य
२३९ - २५	सञ्जनान्नोदकपूरित	सव्यञ्जनान्नोदकपूरित
२३९ - २८	गणानामाधिपाश्च	गणानामधिपाश्च
२४० - ८	विमृज्यऽस्त्रमन्त्रेण	विसृज्याऽस्त्रमन्त्रेण
२४० - ९	जलममृतीकृत्यऽ०	जलममृतीकृत्याऽ०
२४० - ११	०रस्त्रमन्त्रेण	रस्त्रमन्त्रेण०
२४० - १३	सुगन्धन्चू०	सुगन्धचू०
२४० - १३	कर्पु-	कर्पू-
२४० - १५	सूक्ष्मवस्त्रे ण	सूक्ष्मवस्त्रेण
२४० - १७	०दलकर्पुर०	०दलकर्पूर०
२४० - २०	नम.	नम ' इति त्रिः पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्यपुनर्मूलमुच्चार्य सुप्रसन्नायै
२४० - २०	गन्धौ	गन्धो
२४० - २२	इर्वाक्षत०	दूर्वाक्षत०
२४० - २४	निक्षिपेत	निक्षिपेत्
२४० - २५	०ऋवदीपान्	न्नवदीपान्

पृष्ठ - पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
२४० - २५	न्कर्पूगर्भ०	न्कर्पूरगर्भ०
२४० - ३१	इति त्रि पुष्पाञ्जलिनेत्यादिपङ्क्तेरभावो विचारणीय.	
२५३ - ७	सहस्त्रानेक०	सहस्रानेक०
२५५ - १७	तत्पदार्चनम्	तत्पदार्चनम्
२५६ - २६	दीक्षा	दीक्षा
२५६ - २९	योजतान्तरे मास मास	योजनान्तरे मास मास
२६१ - १२	सुश्रुश्रूषु·	सुशुश्रूषु.
२६३ - ६	केषचिन्मन्त्र०	केषुचिन्मन्त्र०
२७५ - १५	सुषम्णाधार०	सुषुम्णाधार०
२८० - ६	ला २	ला ३,
२८२ - १०	वाल	वाल
२८२ - १२	वा ४,	वा ४,
२८८ - ११	वण	वर्णा.
२९१ - ७	पङ्क्तिस्थाङ्कन	पङ्क्तिस्थाङ्केन
२९५ - १	पदार्थादर्शा	पदार्थादर्शे
३०४ - २९	२ ख सौन्दर्यं	०
३०५ - १६	१ ख शत०	२ ख शत०
३०५ - २६	२ ख मौन्दर्य	१ ख सौन्दर्यं
३०८ - १४	लग्नचतुथ०	लग्नचतुर्थ
३०९ - २३	कुर्याग्रिद्रहणे	कुर्याद्ग्रहणे
३१५ - २५	०मूलपरिशाहमध्य	०मूलपरिणाहमध्य
३२७ - १	यतीत्याचार्नो	यतीत्याचार्यो
३३१ - २६	अर्थ	अथ
३३१ - २९	०कुण्डकूम्	०कुण्डकम्
३३३ - ११	०मार्ग्रेण	०मार्गेण
३४३ - २६	शृगाररहित	शृङ्गाररहित
३४९ - ४	ह्यष्ठौ	ह्यष्टौ
३५१ - १२	स्स्त्रुवस्स्त्रुवौ	स्त्रुक्स्त्रुवौ
३५४ - १५	०सम्पदमीप्सुभि	०सम्पदभीप्सुभि
३५८ - २६	पिष्टकैयुक्त	पिष्टकैर्युक्त

पृष्ठ - पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
३६१ - १६	गृह्णन्त्वमु	गृल्ण्न्त्वमु
३६१ - २१	गृह्णन्त्विम	गृल्ण्न्त्विम
३६३ - २३	विधाऽया	विधायाऽ
३६८ - ५	स्कदाय	स्कन्दाय
३६८ - ११	ब्रह्मदैवत्येषु	ब्रह्मदैवत्येषु
३७१ - १८	पुरुत.	पुरतः
३८२ - ६	आवेष्टिताङ्ग	आवेष्टिताङ्गं
३६५ - ८२	पुरुषोमत्तम्	पुरुषोत्तमम्
३६६ - ८	स्वारूपिणीम्	स्वरूपिणीम्
४०१ - ३०	प्रदर्शयेन्	प्रदर्शयेत्
४१६ - २८	कारुण्यश्वीश्वरि	कारुण्यमीश्वरि
४२७ - २१	०निवासात्मजप-	०निवासात्मज-
४२६ - २०	०केशनिध्दूत०	केशनिर्द्धूत०
४३० - १४	२६॥	२६॥ ॐ
४३० - १८	नियोग	न नियोग
४३४ - ३०	०भवेद्दिवि	०भवेद्देवि'
४४५ - ३	महेशानिकूष्माण्ड	महेशानि कूष्माण्ड
४५२ - ३२	छन्दद	छन्दः
४५३ - ६	मृत्युञ्जयरुट्रो	मृत्युञ्जयरुद्रो
४५७ - ६	प्रचर्श्य	प्रदर्श्य
४५८ - ३१	वामपरिणना	वामपाणिना
४५६ - १०	वहि. स्थानाङ्गारारान्	वहि स्थानाङ्गारान्
४५६ - १४	दक्षभाग १	दक्षभाग २
४६० - २	कलाशस्थायै	कलशस्थायै
४६२ - १	० मृगेशिरो०	मृगशिरो०
४७० - ६	मप्तमी	सप्तमी
४७१ - २४	निश्चचय.	निश्चयः
४७४ - १६	कमगायत्रीः	कामगायत्री.
४७६ - १	त्रिशलमुद्रा	त्रिशूलमुद्रा
४७६ - २१	प्राक्ष्य	प्रोक्ष्य